श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर
दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक ग्रंथमाला पुष्प २०

श्री तत्त्वार्थ टीका

अर्थ प्रकाशिका

(पं. सदासुखदासजी विरचित)

प्रकाशक–

श्री १०८ चा. च. आ. शांतिसागर
दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संघ
फलटण

वीरसंवत २५०८ इ. स. १९८२

मूल्य – स्वाध्याय

श्री चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर
दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संघ - फलटण

श्री तत्वार्थ टीका

अर्थ प्रकाशिका

पं. सदासुखदास विरचित

प्रकाशक
चा. च. आचार्य शांतिसागर
दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था - फलटण

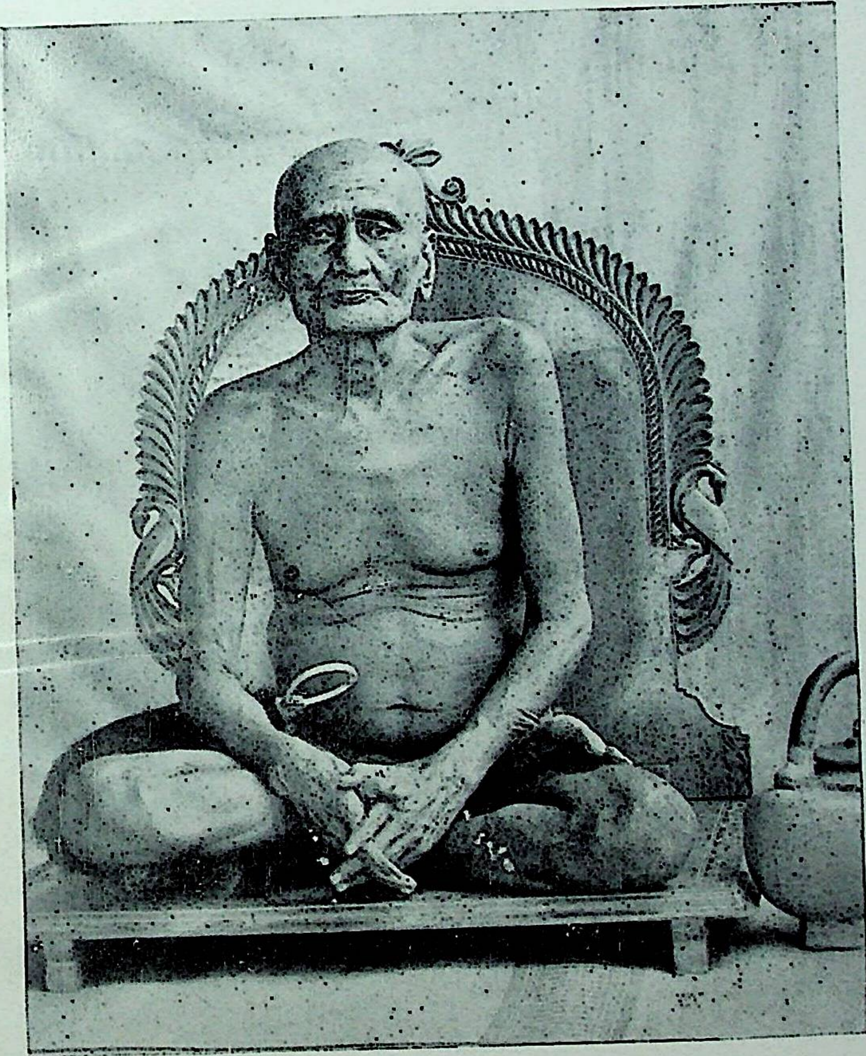
वीरसंवत २५०८ इ. सन. १९८२

मूल्य - स्वाध्याय

प्रकाशक
श्री. माणिकचंद तुळजाराम शहा
— अध्यक्ष —
श्री. चा. च. शांतिसागर दि. जैन
जिनवाणी जीर्णोधारक संस्था
फलटण.

प्रथम आवृती- १९८२ ६०० प्रती

मुद्रक
श्री. वज्रकांत वालचंद शहा
अनेकांत मुद्रणालय,
१३११ भद्रावती पेठ,
सोलापूर - ४१३ ००५



स्व. १०८ चा. च. आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज

5018

श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर

दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्थाका

संक्षिप्त परिचय

परमपूज्य श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्थाका शुभसंकल्प विक्रम संवत् २००० में पर्युषण पर्वके शुभ अवसरपर श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि क्षेत्र पर हुआ। संस्थाकी नियमावली वनाकर यह संस्था वि. स. २००१ में वारामतीमें ट्रस्ट करनेंमें आ गई। संस्थाका मुख्य उद्देश्य प्राचीन जैनसिद्धांत शास्त्रोंका जीर्णोद्धार करके जैनसाहित्यका प्रकाशन करना तथा उसका प्रचार करना यह है।

धर्मसंस्कृतिका प्राण उसका साहित्य ही होता है। धर्मसंस्कृतिकी प्रभावनाका प्रमुख अंग प्राचीन जैन साहित्य की रक्षा करना, तथा उसका प्रकाशन करना, पठन-पाठन कराकर प्रचार करना यह जानकर जब परमपूज्य आचार्य श्रीका वि. सं. २००० में श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि पर चातुर्मास था उस समय आचार्यश्रीको पता चला कि मूडबिद्रीमें जैन सिद्धांतके मूलभूत प्राण प्राचीन ग्रंथ धवला-जयधवला महाधवला ताडपत्र ग्रंन्थ बहुत जीर्ण अवस्थामें पडे हुए है। उनमेंसे महाधवलका करीब चार पाँच हजार श्लोक प्रमाण भाग कृमिकीटकोंद्वारा नष्ट हो चुका है। यदि उनकी सुरक्षा न की जाय तो सभी सिद्धांत ग्रन्थ प्रायः नष्ट हो जावेंगे।

इस वार्तासे आचार्यश्री अत्यंत चिंतित हुए। उस समय क्षेत्र पर (१) श्री १०५ भट्टारक जिनसेन मठाधीश कोल्हापूर, (२) श्री ध. दानवीर संघपति शेठ गेंदनमलजी, बम्बई, (३) श्री गुरुभक्त शेठ चंदुलाल ज्योतिचंद सराफ, वारामती, (४) श्री दानवीर रामचंद्र धनजी दावडा, नातेपुते तथा अन्य उपस्थित धर्मानुरागी श्रावकोंके सम्मुख पू. आचार्य महाराजने आगमरक्षाकी अपनी अंतरंग व्यथा सुनवाई।

आचार्यश्रीके उपदेश तथा आदेशसे प्रेरित होकर उस कार्यकी पूर्ति करनेका संकल्प तुरंत किया गया। उसी समय लगभग एक लाख रुपयेके दानकी स्वीकृति प्राप्त हुई। तथा कार्यकी रूपरेखा निश्चित करनेके हेतु एक स्थायी कमेटी नियुक्त की गई।

उपरोक्त सिद्धांत ग्रन्थ आगामी कालमें दीर्घकाल तक सुरक्षित रहे इस उद्देश्यसे उनको ताम्रपत्रों पर खुदवाकर उनको सुरक्षित स्थान पर रखनेकी इच्छा आचार्यश्रीने प्रकट की। प्रथम उनको हस्तकारागिरोंके द्वारा ताम्रपत्रों पर अक्षर खुदवानेका विचार किया गया। परन्तु इसमें अतिकष्ट तथा अशुद्धताका अधिक संभव, खर्चकी बहुलता तथा कार्यपूर्तिमें अतिविलंब आदि त्रुटियां अनुभवमें आई। श्रीमान् शेठ बालचंद देवचंद शहा बम्बई इन्होंने इस कार्यकी

पूर्ति रासायनिक प्रक्रियासे होनी चाहिये, इससे यह कार्य अच्छी तरहसे और शीघ्रगतिसे पूरा हो सकेगा ऐसा प्रस्ताव रखा जो कि तत्काल सर्वसम्मत हुआ। उस समय वहाँ पूज्य श्री १०८ समंतभद्र महाराज उपस्थित थे। उनके सूचनेनुसार श्रीमान् शेठ बालचंदजी शहाको मंत्रीपद देनेका आदेश आचार्य श्री शांतिसागर महाराजने देकर ताम्रपट बनानेका कार्यभार उन्हींको सौपा गया।

वि० सं० २००१ में जब आचार्यश्री महाराज बारामतीमें गुरुभक्त शेठ चंदुलालजी सराफ इनके बगीचेमें विराजमान थे उस समय श्री पं० खूबचंदजी श्री पं० मक्खनलालजी आदि विद्वान् तथा धर्मानुरागी श्रावक जनोंकी सभामें (१) सिद्धांत ग्रन्थोंका संशोधन पूर्वक देवनागरी लिपिमें ताम्रपत्रों पर अंकित करके उनकी स्थायी रक्षाका प्रबंध करना, तथा (२) अन्य प्राचीन ग्रन्थोंका जीर्णोद्धार करके उनको प्रकाशित कराकर उनका पठन-पाठन स्वाध्याय करनेके लिये त्यागीगणोंको, मंदिरको, तथा विद्वान् लोगोंको उनका विना मूल्य वितरण करना इन दो प्रधान उद्देश्योको पूर्ति करनेके उद्देश्यसे-'श्री १०८ चरित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, इस नामसे संस्थाकी स्थापना की गई।

उसके लिये १००० रु० या अधिक दान देनेवाले संस्थाके स्थायी सदस्य हो ऐसी योजना बनाई गई। सर्वप्रथम बटरपेपर ग्रन्थ छपवाकर रासयनिक प्रक्रियासे ताम्रपत्र पर अंकित करवाना, तथा मूल ग्रन्थ की ५००-५०० प्रतियां छपवाना, एक एक मुद्रित प्रति स्थायी सदस्योको भेटरूपमें देना, तीर्थ क्षेत्रों पर तथा मंदिरोंमें एक एक प्रति रखना, इस प्रकार आचार्यश्रीके आदेशानुसार निर्णय लिया गया।

कानूनके अनुसार संस्था रजिस्टर करनेके लिये समितिका गठन हुआ। समितिमें श्री शेठ बालचंद देवचंद, श्री बालचंद देवीदास चवरे वकील. आकोला तथा श्री माधवराव लेले वकील, सोलापूर सदस्य थे। एकमतसे संस्थाकी नियमावली तैयार की गई। तथा सोमायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट २१-१८६० के अनुसार संस्थाका दिनांक २५-५-१९४५ को अ० नं० १३७२ में रजिस्ट्रेशन संपन्न हुआ।

सिद्धांत ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रति पं० गजपती शास्त्री इन्होंने मूडविद्रीसे लाई थी। उसका मूल ताडपत्र ग्रन्थसे मिलान करनेमें स्व० पं० लोकनाथ शास्त्रीजीका अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। तथापि उसमें बहुत-सी त्रुटिया रह गई।

ताडपत्र ग्रन्थोंका संशोधन शुद्ध और साफ होना जरूरी था। इसलिये तथा ताडपत्रे ग्रन्थ जीर्ण हुए है। भविष्यकालमें उनका दर्शन दुर्लभ होगा इस हेतुसे मूल ताडपत्र ग्रन्थोंके फोटो लेकर रखनेका निर्णय हुआ। इस कार्यमें ब्र० बोधिचंद्रजी, श्री १०५ भट्टारक चारुकीर्तिजी, मूडविद्रींके ट्रस्टीगण, पं० लोकनाथ शास्त्री, पं० वर्धमान शास्त्री सोलापूर, श्री झारापकर

स्टुडिओके संचालक वर्ग आदि सज्जनोंका अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। उनका धन्यवाद कपूर्व आभार मानना हम अपना कर्तव्य समझते है।

ताडपत्र ग्रंथोके फोटो लेनेके लिये मंत्री श्री वालचंद देवचंद शहा, पं० वर्द्धमान शास्त्री, श्री झारापकर बंधु मूडबिद्री गये। वहाँ पन्द्रह दिन ठहरकर सिद्धांत ग्रन्थोंके ११०० फोटो लिये गये। उसका अंदाज खर्च रु. ११००० आया।

धवला ग्रंथके मुद्रणका कार्य प्रथम बंबईके निर्णयसागर प्रेसमें श्री पं० खूबचंदजी शास्त्रीके निगरानीमें प्रारंभ हुआ। श्री. पंडितजीकी सेवा बिना वेतन प्राप्त हुई। छपाईका काम शीघ्रगतिसे हो इस दृष्टिसे सोलापूरके कल्याण प्रेसमें श्री पं० पन्नालालजी सोनीके देखभालमें उक्त कार्य साढे तीन वर्षमें पूरा हुआ।

धवला ग्रन्थका संपादन-संशोधन-मुद्रण आदिके लिये रु. ३०००० धनराशि खर्च हुई श्री धवल ग्रन्थ ताम्रपत्र वनानेमें रु. २१००० खर्च हुआ।

सं० २००६ में श्री गजपंथाजी सिद्ध क्षेत्रके वार्षिक सभाके अवसर पर श्री संघपति सेठ गेंदनमलजीके शुभहस्त द्वारा संशोधित मुद्रित प्रति तथा ताम्रपट आचार्यश्रीको समर्पण करनेका समारोह संपन्न हुआ।

जैन समाजमें धर्मश्रद्धा तो है। परन्तु वह दृढमूल बनने स्थितिकरणमें मुख्य साधन जिनागमका स्वाध्याय-मनन आदि है। स्वाध्यायके लिये आगम ग्रंथोकी सुलभता होनी चाहिये। इस अभिप्रायसे वि० सं० २०१० में श्री चा० च० आचार्य शांतिसागर दि० जैन जीर्णोद्धार संस्था द्वारा प्रमाणित श्री श्रुतभंडार तथा ग्रन्थ प्रकाशन समिति नामक संस्था आचार्य श्रीके उपदेश तथा आदेशसे स्थापित हुई। आचार्य श्रीके हीरक जयंती महोत्सवके समय फलटणमें श्री चंद्रप्रभ मंदिरके सभा मंडपके ऊपर एक श्रुतभंडार हॉल बनवाया गया। वहीं पर धवला ग्रंथ ताम्रपट तथा मुद्रित ग्रंथ सुरक्षित रखे गये है।

इस प्रकार आचार्य श्रीके आदेशसे और मंगल आशीर्वादसे आचार्य शांतिसागर दि० जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था स्थापन होकर उसके द्वारा धवला ग्रंथराजोंको ताम्रपट-पर उत्कीर्ण कराकर उनको दीर्घकालतक सुरक्षित रखनेका पवित्रतम कार्य संपन्न हुआ। तथा आजतक अनेक प्राचीन जैन साहित्यका प्रकाशन कराकर उनका बिना मूल्य स्वाध्यायके लिये प्रचार करनेका पवित्र कार्य यह संस्था कर रही है और आगे भी करती रहेगी।

इस ग्रंथ प्रकाशन समिति संस्था द्वारा आजतक निम्न ग्रंथ प्रकाशित हो गये है।

ग्रंथ नाम	दातारोंके नाम
१. रत्नकरंड श्रावकाचार	श्री गंगाराम कामचंद, फलटण
२. समयसार (आत्मख्याति)	,, हिरालाल केवलचंद दोशी, फलटण
३. सर्वार्थसिद्धि	,, शिवलाल माणिकचंद कोठारी
४. मूलाचार	,, गुलाबचंद जीवनचंद गांधी, दहीपठी
५. उत्तर पुराण	,, जीवराज खुशालचंद गांधी, मुंवई
६. अनगार धर्मामृत	,, चंदूलाल कस्तूरचंद शहा, मुंबई
७. सागार धर्मामृत	,, पद्मप्पा धरणाप्पा वैद्य, निमगाव
८. धवला (सूत्रार्त)	,, हिराचंद तलकचंद, बारामती
९. जय धवला	,, वाबूराव भरमाप्पा सेनापुरे-कुडची
१०. कुंदकुंद भारती	संस्थामार्फत
११. अष्ट पाहुड	,,
१२. श्रावकाचार संग्रह भाग १ (वीर संवत् २५०२)	,,
१३. महापुराण भाग १ ,,	,,
१४. भ. महावीर उपदेश परंपरा ,,	,,
१५. श्रावकाचार संग्रह भाग २	संस्थामार्फत
१६. ,, भाग ३	,,
१७. ,, भाग ४	,,
१८. ,, भाग ५	,,
१९. महापुराण भाग २	,,
२०. अर्थ प्रकाशिका–	,,

ग्रंथ प्रकाशन कार्यका खर्च ध्रुवनिधिका जो व्याज आता है उसमेंसे किया जाता हैं। ध्रुवनिधि बैंकोमें Fixed Deposit रूपसे सुरक्षित रखी गई है।

इस प्रकार यह संस्था आचार्य महाराजके मंगल आशीर्वादसे प्राचीन जैन साहित्यका प्रकाशन तथा प्रचार कार्य कर रही है। प्रकाशित ग्रंथ बिना मूल्य स्वाध्यायके लिये जिन मंदिरोंमें तथा त्यागी गणोंको भेट दिये जाते है। इस प्रकार यह संस्थाका संक्षिप्त परिचय सादर करते है।

मंत्री
स्व. बालचंद देवचंद शहा

मंत्री
मोतीलाल मलुकचंद दोशी

अध्यक्ष
स्वस्तिश्री जिनसेन भट्टारक
श्री १०८ चा. च. आचार्य शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था

अध्यक्ष
चंदुलाल तलकचंद शहा
श्रुतभंडार व ग्रंथ प्रकाशन समिति

प्रथमावृत्ति
प्रस्तावना

यह 'अर्थ प्रकाशिका' नामकी तत्वार्थ सूत्र की टीका सुप्रसिद्ध जैन ग्रंथोंके भाषा टीकाकार जयपूर निवासी पंडितवर सदासुखदासजीने बनाई है। संस्कृत भाषामे अन्य अन्य आचार्योने तत्वार्थसूत्र पर अनेक टीका ग्रंथ रचे है। उनके नाम इस ग्रंथके अंतमे परिशिष्टमें सदासुखदासजीने लिखे है। तत्वार्थसूत्र ग्रंथका मुख्य नाम मोक्षशास्त्र है। सर्व कर्मोंसे आत्माको मुक्ति होना (आत्मा का स्वतःसिद्ध आत्मारूप रहना) उसे मोक्ष कहते है। शास्ति कहिये शासन करता है। अथवा शिक्षा-उपदेश देता है। उसे शास्त्र कहते है। मोक्ष का उपदेश देनेवाला जो शास्त्र उसे मोक्षशास्त्र कहते हैं।

इसके पढनेसे तत्त्वोंके अर्थका ज्ञान होता है इस हेतुसे इसको तत्वार्थाधिगम ऐंसा विशेषण दिया है। इसके पढनेसे तत्त्वार्थका ज्ञान होता है। यह ग्रंथ सूत्रमय है। अतः पंडित जन इसे तत्त्वार्थसूत्र कहते हैं।

इस कलिकालमें साक्षात् गणधर देवके समान महामुनि श्रीमान् उमास्वामी नामके आचार्यने ये सूत्र रचे है। इसके दश अध्याय है।

पढम चउक्के पढमं पंचम्मे जाण पुग्गलं तच्चं।
छह-सत्तमेसु आसव अट्ठम्मे बंध णायव्वो।।
णवमे संवर-णिज्जर, दहमे मोक्खं वियाणेई।।

प्रथम द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ इन चार अध्यायोंमें जीवतत्त्व, पांचवे अध्यायमें पंच प्रकार अजीवतत्त्व, छठे और सातवे अध्यायमें आस्रव तत्त्व, आठवें अध्यायमें बंधतत्त्व, नवमें अध्यायमें संवर और निर्जरा तत्त्व और दसवें अध्यायमें मोक्षतत्त्व इस प्रकार दस अध्यायोंमे क्रमसे सात तत्त्वोंका वर्णन किया है।

इसके पढनेसे एक अनशन उपवास का फल प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक हो वा यति हो उनको इस ग्रंथका नित्य स्वाध्याय करना चाहिये। ऐंसी शास्त्र की आज्ञा है। कर्नाटक देशमें श्रावक लोक स्नानके अनंतर नित्य संध्या वंदन क्रियामें मोक्षशास्त्र का प्रथम अध्यायका पठन पूजन करते है। उत्तर देशमें उपवास दिनोंमें केई श्रावक नित्य इन सूत्रोंका पाठ पढते है। सुनते

है । हम लोक जिस ग्रंथका स्वाध्याय करते है उसका अर्थका ज्ञान अवश्य होना चाहिये । परंतु सूत्र तो हम लोकोंको बहुतही दुर्बोध होगये है । यद्यपि गीर्वाण भाषामें इसके अनेक टीका ग्रंथ है तथापि गीर्वाण भाषा बडी कठीण हैं । हम लोक गीर्वाण भाषाके अनभिज्ञ होनेसे संस्कृत टीका पढकर भी हमको सूत्रार्थज्ञान नही होता हैं । इसलिये जयपूर निवासी पंडितवर सदासुखदासजीने परोपकार बुद्धीसे अथवा मार्ग प्रभावना के लिये बहुत परिश्रम करके अनेक संस्कृत टीका ग्रंथोंका आशय जानकर यह अर्थ प्रकाशिका नामकी भाषा टीका रची हैं । उसके पढनेसे बहुतही उपकार हो रहा हैं ।

परंतु ग्रंथ बहुत बडा होनेसे उसकी प्रत बनाकर सर्वसाधारण जैनीभाइयोंको अपने संग्रहमें रखनेको कष्टसाध्य होता हैं । लेखकोंके अज्ञानसे या प्रमादसे ग्रंथमें अशुद्धि बहुत रहती है । इस अनर्थको दूर करनेके लिये इस ग्रंथ को छपानेका विचार किया है ।

इस ग्रंथकी प्रथमावृत्ति छपानेमें अनेक दातारोंने १) श्री. रामचंद्र अभयचंद्र, बावीकर २) श्री. शिवलाल मलुकचंद, पंढरपूरकर ३) श्री. शेठ माणिकचंद पानाचंद, मुंबई ४) गांधी नाथारंगजी मुंबई ५) श्री. शेठ हिराचंद नेमचंद, सोलापूर. ६) श्री. हेमचंद साकळा, आळंद इन्होने पूर्ण सहायता दी है । श्री. पं. सदासुखदासजीने टीका की हैं । इसमें छपानेमें मेरा कुछ भी पुरुषार्थ नहीं हैं ।

लेखकोंके प्रमादसे मूलप्रतीमें कुछ अशुद्धपाठ हो गये थे उनको मेरे अल्पबुद्धीसे शुद्ध करके ग्रंथ छपाया है । मैं हिंदीभाषाका जानकार नहीं हूं । जिनागमका भी अनभिज्ञ हूं । अर्थात् मेरे संशोधनमें भी बहुत स्थळोंमे प्रमाद हुआ होगा । उसको विद्वद्जन शुद्ध करें ।

करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्तु सन्तः ।

आपका
कल्लाप्पा भरमापा निटवे-नांदणीकर
कोल्हापूर-शके १९२४

द्वितीयावृत्ति प्रस्तावना

यह 'अर्थ प्रकाशिका' नामक ग्रंथ तत्त्वार्थ सूत्रवृत्ति या मोक्षशास्त्र की जो सर्वार्थसिद्धि टीका हैं उसका संक्षेपमें भाषानुवाद पं. सदासुखदासजी इनके द्वारा किया गया है। यह ग्रंथ जैन साहित्यमें बडा महत्त्व पूर्ण है। आज कल यह ग्रंथ दुर्लभ होनेसे इसका पुनर्मुद्रण नितांत आवश्यक जानकर इस ग्रंथकी ६०० प्रतियां श्री शांतिसागर श्रुतप्रकाशन समिति फलटण द्वारा तथा ५०० प्रतियां जीवराज जैन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित करनेका निर्णय लेकर यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रंथके प्रकाशनमें कई मुमुक्षु साधर्मी बांधवोने स्वयं प्रेरणासे ज्ञानदान स्वीकार करनेसे इस ग्रंथका मूल्य लागतसे भी कम रखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है यह एक प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। डॉ. नानकचंद जैन-मेरठ इन्होंने स्वयं प्रेरणासे रु. १०००।- दान स्वीकृत किया है। इनकी प्रेरणासे ही इस ग्रंथका प्रकाशन कार्य संपन्न हुआ है। स्याद्वाद जिनवाणी का प्रचार घरघर होवे यही एक पवित्र भावना है। 'विद्याधनं दैवधनं तवैव। आत्मा की निजी स्वाभाविक संपत्ति विद्याधन ही है।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं इह विद्यते' ज्ञानके सदृश पवित्र, कल्याणकारक, सुख-शांतिदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है।

अज्ञानात् एव बंध:, ज्ञानात् एव मोक्ष: अज्ञानसे ही संसारमें भ्रमण करनेका दुःख प्राप्त होता है और ज्ञानके द्वारा ही संसार बंधनसे मुक्त होकर शाश्वत सुख-शांति की प्राप्ति होती है।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु न कश्चित् दुःखभाक्भवेत्।

—संशोधक

पं. नरेंद्रकुमार शास्त्री सोलापूर
(न्यायतीर्थ- महामहिमोपाध्याय)

अर्थ प्रकाशिका

(तत्वार्थ टीका)

पं. सदासुखदास विरचित

भूमिका

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । नमः स्याद्वादिने सर्वज्ञाय ।

नमो ऽनेकान्तवादिने जिनाय । श्री सर्वज्ञ वीतरागाय नमः ।

श्री सरस्वत्यै नमः । श्री निर्ग्रंथ गुरुभ्यो नमः ।

अथ दशाध्याय तत्वार्थसूत्रनिकी अर्थप्रकाशिका नाम टीका लिखिये है ।

मंगलाचरण

वंदौ श्री वृषभादि जिन, धर्मतीर्थंकरतार ।
नमैं जास पद इंद्रसत शिवमारग रुचिधार ॥१॥
महावीर प्रभु चरम जिन, घाति घातिया चार ।
लहि केवलपद विभु कह्यो, शुद्धधर्म विस्तार ॥२॥

अथ देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थंके प्रवर्तन करनेवाले अनंत चतुष्टयादि अनंतगुण रूप अंतरंगविभूति करि भूषित अर इंद्रादिक देव परमभक्ति करि निर्मापण किया जो अनुपम विभूति करि भूषित अर इंद्रादिक देव परमभक्ति करि निर्मापण किया जो अनुपम विभूति सहित समवसरणादि वहिरंग लक्ष्मी तिसकरि मंडित बहुरि इंद्रादिक असंख्यात देवनिके समूहकरि वंदनीक, बहुरि अनंतगुणनिके अतिशयनिकरि सहित, अर अष्टादश दोषरहित जीवनिका परम उपकार करनेवाला अर लोक अलोकका प्रकाश करनेवाला अर त्रिकालवर्ती अनंतद्रव्य, अनंतगुण, अनंतपर्यायनिका युगपत् क्रमरहित एककालमें उद्योत करनेवाला अर अनंत महिमायुक्त, अनंतशक्तिसहित, अर संसार समुद्रमें डूबते अनेक प्राणीनिकूं हस्तावलंबन देनेवाला, अर परमात्मा परब्रम्ह, परमेश्वर, परमेष्ठी, स्वयंभू, शिव, अरिहंत आदि नामकरि विख्यात, अर अशरण प्राणीनिकूं अद्वितीय शरण अर परमऔदारिक देहमें तिष्ठता, अर सत्पऋद्धि समृद्ध गौतमादि गणधर मुनिनिकरि सेवनीय है चरणारविंद जाका, अर कंठ ओष्ठ तालु जिव्हादिक अंगोपांगनिका कपन स्पर्शनरहित उपज्या अर समस्त प्राणीनिके पुण्यप्रभावकरी प्रेरित आर्य-अनार्य समस्त देशनिके प्राणिनिके ग्रहणमे आवता समस्त पापका घातक ऐसा

दिव्यध्वनि करि भव्य जीवनिका मोह अंधकार दूरी करता, अर चोसठि चामरनिकरी विराजमान, अष्ट प्रतिहार्य विभूषित, सिंहासनतै चारि अंगुल अंतरीक विराजमान भगवान् सकलपूज्य परम भट्टारक श्री वर्धमान देवाधिदेव मोक्षमार्गके प्रकाशनिके अर्थि समस्त पदार्थनिका स्वरूप मातिशय दिव्यध्वनि करि प्रगट किया। तिस अवसरमें निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋषीष्वर समस्त मुनिगणकरि वंदनीक, सप्तऋद्धिकरि समृद्ध चार ज्ञानके धारक, श्री गौतमनाम गणधर देव भगवान्भाषित अर्थकूं धारण करि द्वादशांग श्रुतरूप रचना रची।

वहुरि श्री वर्धमान स्वामीकूं मुक्तिगये पीछे १ गौतमस्वामी, २ सुधर्माचार्य,३ जंबूस्वामी ये तीन केवली वासठ वर्षपर्यंत पदार्थनिकी प्ररूपणा करी। वहुरि तिनके पीछे अनुक्रम करि १ विष्णु, २ नंदिमित्र, ३ अपराजित ४ गोवर्धन, ५ भद्रवाहु ये पांच श्रुतकेवली द्वादशांगके पारगामी भये। तिनका १०० वर्षपर्यंत का अवसर भया। तिस अवसरमें भगवान केवली तुल्य समस्त पदार्थनिका प्ररूपण भया। वहुरि १ विशाखाचार्य,२ प्रौष्ठिलाचार्य, ३ क्षत्रिय, ४ जयसेन, ५ नामसेन, ६ सिद्धार्थ, ७ धृतिषेण, ८ विजय, ९ बुद्धिमान्,१० गंगदेव,११ धर्मसेन, ये दशपूर्व के धारक एकादश परम निर्ग्रंथ मुनि अनुक्रमतै १४३ वर्षमें भये। ते यथार्थ पदार्थनिकी सम्यक् प्ररूपण करी। वहुरि १ नक्षत्र, २ जयपाल, ३ पांडु, ४ ध्रुवसेन, ५ कंसाचार्य पांच महामुनि एकादशांगविद्याका पारगामी अनुक्रमतै २२० वर्ष पर्यंत यथावत् प्ररूपणा करी। वहुरि १ सुभद्र, २ यशोभद्र, ३ भद्रवाहु, ४ महायश, ५ लोहाचार्य ये पाच महामुनि एक प्रथम अंगका पारगामी ११८ वर्षमें भये। ऐसे कालके निमित्त तै बुद्धि-वीर्यादिकनिकी मंदता होते श्री कुंदकुंदादिक अनेक परम निर्ग्रंथ वीतरागी अंगके वस्तुनिका ज्ञानी होते भये। तथा उमास्वामी भये।

ऐसे पापतै भयभीत ज्ञानविज्ञान संपन्न परमसंयमगुणकरि मंडित गुरुनिकी परिपाटीतै श्रुतका अविछिन्न अर्थके धारक इस कलिकालमें श्रुतकेवलीतुल्य श्री उमास्वामी नामा परमवीतरागी मुनि भव्यजीवनिके परम उपकार करने को भगवानको परमागकी आज्ञातै तत्वार्थसूत्र दशाध्यायरूप रचना करी।

वहुरि कालके निमित्ततै जीवनिकी बुद्धिकी मंदता जानि मोक्षमार्गके प्रवर्तन के अर्थि श्री पूज्यपाद स्वामी तवार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामा टीका रची। अर श्री समंतभद्रस्वामी ८४००० श्लोक प्रमाण गंधहस्ती नामा वडी टीका रची। तथा श्री अकलंक देव तत्वार्थवार्तिलंकार ताकूं राजवार्तिक कहिये ऐसी १६००० श्लोकनिमें टीका रची। बहुरि श्री विद्यानंदीस्वामी श्लोकवार्तिक नामा २०००० श्लोकनिमें टीका रची।

सो अब इस कलिकालमें ऐसे संस्कृत ग्रंथ पढने समझनेवाले अति अल्प रहि गये। तातें मंदज्ञानी जीवनिके मोक्षमार्गरूप शास्त्रका किंचित् अर्थ समझनेकूं देशभाषामय वचनिका लिखिये है।

दोहा— **पंचपरमपदको नमौ, चैत्यचैत्यगृहसार। जैनधर्म वच वंदिकै, करो मंगलाचार ॥१॥**

सूत्रवृत्ति वार्तिक महा, भाष्य ग्रंथ करतार।
ध्याऊ श्रीगुरुके वचन, करहु सु मम उपकार ॥२॥

चौपाई– जयति सुगुरु शिवमम विस्तारै। कर्म कठिन नय विविध विदारै
विश्वतत्त्वके जानन हारे, बदो तिस गुण होहु हमारे ॥३॥

मोक्षशास्त्र गंभीर अपारा, ताको लहिं फलितार्थ उदारा।
अति संक्षेप रूप गहि नीका, अर्थप्रकाश लिखू लघु टीका ॥४॥

सवैया तेईसा– प्रथम अवस्थामें भविजन ने तत्त्वारथके हैं रुचिवान्।
तिनके सुगम मार्ग मिलनेको हो है अर्थप्रकाश महान्।
मिलै सुराह उच्छाह बढे तब पढै बृहत् व्याख्याहितठान
दर्शनज्ञान करै निज निर्मल धरै चरन पावै शिवथान ॥५॥





अर्थ प्रकाशिका

(तत्वार्थ टीका)

दशाध्यायरुप तत्त्वार्थकी आदिविषै आप्तका लक्षणपूर्वक आप्तकूं वंदना करे है।

(मंगलाचरण)

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

मोक्षमार्गके प्रवर्तावनवारा अर कर्मरूप पर्वतनिकूं भेदन वारा, अर समस्त तत्त्वनिको जाननवारा जो हैं, ताहि तिसके गुणनिकी प्राप्तिके अर्थि वंदना करू हूं ॥

इहां तीन विशेषणनि सहित आप्तकी स्तुतिरूप मंगलाचरण कीया। तहां मोक्षमार्गका नेतृत्व विशेषणतै तो आप्तका जगतके प्राणीनिप्रति परमहितोपदेशपणा करि अद्वितीय उपकार प्रतिपादनरूप वर्णन किया। अर कर्मभूभृद्भेत्तृत्व विशेषण करि आप्तके सर्वोत्कृष्ट सामर्थ्यपणा वा निर्दोषपणा तथा वीतरागपणा प्रकट किया। जातै इंद्रादिक समस्त देव जाकू जीतै नही सके। अर जगतके समस्त जीवनिकूं जीति, स्वरूपतै भ्रष्ट करि जडरूप करि, नष्ट कीया ऐसा मोहनीय कर्म तथा ज्ञानावरण दर्शनावरण-अंतराय इति चार कर्मनिका नाश करि अपना जयनशील जिन नाम प्रगट किया। वहुरि विश्वतत्त्वज्ञातृत्व विशेषण करि समस्त गुणपर्यायसहित पदार्थनिका क्रमरहित युगपत् जाननेतै सर्वज्ञपणा वीतरागपणा प्रगट किया।

ऐसे सर्वज्ञ, वीतराग. परमहितोपदेशक तीन विशेषण विशिष्ट ही आप्त होय है। सोही शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका यथार्थज्ञान तथा आपसमान भव्य जीवनिको सर्वज्ञ वीतराग बननेका निर्बाध आदर्शरूप निमित्त कारण है। तातै आप्तकू नमस्कार रूप मंगल किया है।

अब यहां कुछ अल्प विशेष लिखिये है—

इस श्लोकमें आप्तकू नमस्कार करनेतै तथा मोक्ष अर मोक्षका मार्ग समर्थनतैं प्रथम तो नास्तिकवादी वा शून्यवादी निका परिहार है। जातै सर्वज्ञ अर जीवादिक समस्त पदार्थनिका सद्भाव नास्तिकवादी अर शून्यवादी नाही माने है। वहुरि मोक्षतत्त्व कहनेतै जो चार्वाकमतवाले परलोक तथा जीव तथा मोक्षका अभाव माने है तिनिका परिहार भया।

कर्मभूभृतां भेत्तारं इस विशेषणतै जे सदाशिव मतवाले ईश्वरको सदा मुक्त ही कहे है, ईश्वरको निष्कर्मा मानकर अन्य मुक्तात्माकी तरह कर्मका नाश करि मोक्ष नाही माने है तिनका परिहार भया।

वहुरि मीमांसादिक ब्रम्हवादी सर्वथा अद्वैतवादींका एकांतकरि सर्व जगतकू एक ब्रम्हरूप ही मानकर उसका विस्तारा माने हैं और समस्त जीव अजीवादि पदार्थनिका अभाव ही माने हैं तिनका कर्मभूभृतां भेत्तारं विशेषण करि परिहार किया। जातै ज्ञानावरण आदि समस्त कर्म हैं ते पुद्गल अजीवरूप ही हैं।

वहुरि विश्वतत्त्व ज्ञातृत्व विशेषण करि सर्वज्ञका अभाव माननेवाले चार्वाक मत तथा मीमांसक मत हैं तिनका परिहार किया। वहुरि तद्गुणलब्धये इस वचनतैं नैयायिक-वैशेषिक मतवाले मुक्तजीवतैंहू वा परमात्माकी जाति जुदी माने हैं जीवके परमात्मपदकी प्राप्ति नाही माने हैं, तिनका परिहार भया। अथवा मीमांसा मतही का भेदरूप भाट्टमतवाले आत्माके मोक्ष होता नाही माने हैं तिनका परिहार किया।

या प्रकार अन्य मतनितैं स्याद्वाद अनेकांत भिन्न हैं. अन्यमतनिमें मान्या हुआ आप्त प्रमाण नाही है, अर स्याद्वाद अनेकांतरूप जैनमतमें मान्या हुआ आप्त ही प्रमाण है नमस्कार करन योग्य है ऐसा इन विशेषण करि सिद्ध किया है।

इस शास्त्रविषै मोक्षमार्गका उपदेश है। जो घातिकर्मका नाश करि सर्वज्ञ-वीतराग परमहितोपदेशक होय सोही आप्त है। ताहीका प्रवर्ताया मोक्षमार्ग प्रमाणसिद्ध है। जातै जो सर्वज्ञ न होय तो सूक्ष्म अंतरित अर दूरार्थ पदार्थनिको कौन जाने। तहां सूक्ष्मपदार्थ तो परमाणू आदि लेय है। अर अंतरित जे अतीत कालमें हो गये अर अनागत आगामी कालमें होयेंगे। अर दूरार्थ-दूरवर्ती जे मेरुगिरी, नरक-स्वर्ग विमान आदि पदार्थ है। इनि पदार्थनिकू सर्वज्ञविना यथार्थ कोनही जाणि न सके. तदि कैसे यथार्थ उपदेश करे। अर वीतराग नाही होय तो रागद्वेषादिकके वशी हुआ यथावत् नही कह सके। अर परम हितोपदेशक नही होय तो स्वपरतत्त्वकूं जणाय आत्मकल्याणमें कौन प्रवर्तावै ? साक्षात् उपकार तो उपदेशतै ही होय है।

सिद्धभगवान वीतराग-सर्वज्ञ तो है, परंतु तिनतै उपदेश संभवै नाही, यातै तें परम-हितोपदेश आप्त नही कहे गये। तातै आप्तपणा अरहंत जिनदेवको ही वने है। सोही

सत्यार्थवादी परमहितोपदेशक आप्त है। जातै सम्यक् आप्त विना छद्मस्थ अन्यवादी एकाती अपनी इच्छातै अनेक प्रकार मिथ्या कल्पना करि वस्तूका अन्यथा स्वरूप कहे है।

कोई जीवको ज्ञानादि गुणतै भिन्न निर्गुण माने है। कोई जीव कूं सर्वथा कर्मकी उपाधिरहित नित्यशुद्ध सदामुक्त माने है। इत्यादि एकांत अभिप्रायतै वस्तु अनेकांतस्वरूप अनंतधर्मनी सहित होते हुये भी ताकू एकांतस्वरूप जाने है। केई जीवका सर्वथा अभाव माने है। यदि जीवका सर्वथा अभाव ही होय तो मै सुखी हूं, मै दुखी हूं, मै ज्ञाता हूं, मै या करी, या करुंगा ऐसा विकल्प स्वसंवेदन अचेतन देहके नाही होय। जे बुद्धिपूर्वक क्रिया देखिए है ते समस्त ज्ञानस्वरूप आत्मा को हैं। इंद्रिय-मन का विषय आत्माविना कौन ग्रहण करे। भिन्न-अभिन्न कोन जाणे। तातै आत्माका सद्भाव प्रगट है। आवाल गोपालादिक समस्तके स्वसंवेदनद्वारा अनुभवमें आवे है। कोई जीवका अस्तित्व माने। परंतु ज्ञान अर आत्माका अस्तित्व भिन्न माने। सो आत्मा विना ज्ञानका अस्तित्व कैसे साधेगा? ज्ञान विना आत्माका सद्भाव कैसे साधेगा? तातै जीवके अर ज्ञानके गुण-गुणी भावकरि तो कथंचित् भिन्नपणा है। जैसे अग्नि अर उष्णताके। अर वस्तुत्व करि दोनो अभिन्न एक वस्तु है। अभेद है। प्रदेशभेद नाही है। गुण और गुणी प्रदेशनिकरि भी यदि भिन्न होय तो दोऊनिका अभाव हो जाय।

वहुरि कोई जीवकूं कर्मउपाधिकरि सर्वथा रहित माने है। परंतु प्रत्यक्ष केई दरिद्री देखिये है। केई लक्ष्मीवान्, केई, रोगी, केई निरोगी, केई राजा केई रंक, केई दुःखी, केई सुखी, केई कुरूप, केई सुरूप, केई पंडित, केई मूर्ख, केई नीचकुलीन, केई उच्चकुलीन, ऐसे नाना रचना प्रत्यक्ष देखिये है। ते कैसे वने? पूर्वोपार्जित कर्म करि ही जीवके जानी जाय हैं। वहुरि जीवकू सर्वथा शुद्ध ही कहे। तो दीक्षा-शिक्षा-व्रत ध्यानादिक समस्त निष्फल होय जाय। तातें आप्त जो सर्वज्ञ वीतराग कह्या आत्माका स्वरूप ही सत्यार्थ है। वहुरि एकांती मोक्षका स्वरुप भी अन्यथा कल्पे हैं।

तहां केई तो ज्ञान, सुख, दुःख का अभावकू मोक्ष कल्पे है। केई प्रदीपनिर्वाणवत् कहे है। जैसे दीपक बुझि जाय, तदि दिशामे नही जाय, विदिशामे नही जाय। अभाव हो जाय। तैंसे आत्माका अभावकू मोक्ष माने है। सो आप्तका उपदेश विना यथार्थ नाही जाने है। बहुरि मोक्षकं उपाय प्रति भी अन्यथा कल्पना करे है। केई चारित्रविना ज्ञानमात्रही ते मोक्ष माने है। केई ज्ञान-चारित्र निरपेक्ष, श्रद्धानमात्रते मोक्ष माने है। केई दर्शन-ज्ञान-निरपेक्ष चारित्रते ही मोक्ष माने हें। केई दर्शन निरपेक्ष ज्ञान चारित्रते, केई ज्ञाननिरपेक्ष दर्शन चारित्रते, केई चारित्र निरपेक्ष दर्शन-ज्ञान ही तें, केई तीनोंका अभावतैं मोक्ष माने है। ते एकांतवादी वस्तूका यथावत् स्वरूप जाने नाही।

सो अब इनका यथावत् स्वरूप सर्वज्ञद्वारा प्रकाशित आगमतैं जानना उचित है ।

सो इस प्रथम श्लोक में आप्तका लक्षण कह्या । तिसकी निर्बाध सिद्धिके अर्थि श्री विद्यानंदि स्वामीने ८००० श्लोकनिमे आप्तमीमांसा रची । अर ३००० श्लोकनिमें आप्तपरीक्षा रची । तिनमें आप्तका स्वरुपका निर्णय करी, परीक्षाप्रधानी ज्ञानी-जननिका हृदयमे महान् उद्योत किया ।

अब मिथ्यावादीनिकरि कह्या जो ज्ञानमात्र ही तैं मोक्ष होना, तथा क्रियाकांड-मात्रतेही मोक्ष होना इत्यादि एकांत पक्षका निराकरणार्थ भगवान् सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देवनि करि कह्या जो मोक्षका उपाय-मार्ग ताको प्रगट करनेकू सूत्र कहे हैं ।

अध्याय-१

सूत्र-१

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग : ।। १ ।।

अर्थ- सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनोंकी एकता मोक्षका मार्ग है । मोक्ष की प्राप्तिका उपाय है । इस सूत्रमें ,सम्यक्' शब्द प्रशंसावाची है । सो प्रत्येक को लगावना । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र ये तीनों मिले हुये मोक्षका मार्ग है ऐसा कह्या । सो इहां मार्ग शब्दके एकवचनकह नेते ये तीन भिन्न भिन्न स्वतंत्र एक एक मार्ग नहीं है । तीनोंका मीला हुआ मोक्षमार्ग एक ही है ऐसा अर्थ जनावनेकू मार्ग ऐसा एकवचन कह्या है ।

जो पदार्थनिका अध्यात्म स्वरुपका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है । जिस जिस प्रकार करि जीवादि पदार्थ अवस्थित हैं तिसतिस प्रकार करि नय-प्रमाणपूर्वक अर संशय-विपर्यय-अनध्यवसाय इत्यादि दोषनि करि रहित जाणैं सो सम्यग्ज्ञान हैं । पाच प्रकारका संसारका कारण जे मिथ्यात्व-कषायादिक तिनका अभाव करनेमे उद्यमी ऐसा जो सम्यग्ज्ञानी ताकैं कर्मके ग्रहण ोनेकू कारण जे बाह्य-अभ्यंतर क्रियारुप परिणाम तिनका त्याग सो सम्यक्चारित्र हैं ।

संसारीनिका समस्त आचरण कषाय योगपूर्वकक्रिया कर्मबंधक् कारण है। जिन आचरणतै नवीन कर्मका आस्रव रुकि[१] जाय सोही सम्यक्चरित्र हैं। अज्ञानपूर्वक आचरण के निषेधके अर्थि चारित्रके सम्यक् विशेषण कह्या हैं।

प्रश्न– कोऊ कहे- ज्ञानका ग्रहण पहले किया चाहिये। सम्यग्दर्शन जो पदार्थनिका श्रद्धान है सो ज्ञानपूर्वक ही होय है। वहुरि ज्ञान शब्द दर्शन शब्दसे अल्प अक्षवाला (अल्पअक्षरवाला) हैं। सूत्रमे अल्पअक्षरवालेकू पूर्वे कह्या चाहिये।

उत्तर– यह कोई दोष नहीं है। जैसे मेघपटल दूरि होते ही सूर्यका प्रताप अरं प्रकाश दोऊ युगपत् प्रकट होय है। तैसे दर्शन मोहका उपशमतै वा क्षयोपशमतै, वा क्षयतै आत्माका सम्यग्दर्शन स्वभाव प्रकट होय हैं। तिसही कालमें आत्माके कुमति – कुश्रुत ज्ञानका अभावरूप मतिज्ञान – श्रुतज्ञान प्रकट होय है। तातै सम्यग्दर्शन – अर सम्यग्ज्ञानके कालभेद नाही। दोनो युगपत् होय है। (उसी समय संवर-निर्जराका कारण सम्यक् चारित्र भी प्रकट होनेसे तीनों युगपत् होय हैं)

वहुरि ज्ञानकू अल्प अक्षरकरि प्रधान कह्या तोहू (अल्पाक्षरात् प्रधानं वलीयः) अल्पाक्षरसे जो प्रधान होता है वह वलवान् होता है इस न्यायते सम्यग्ज्ञानसे सम्यग्दर्शन प्रधान होनेके कारण उसको पूर्वे कह्या है। सम्यग्दर्शन सबमें पूज्य है, जातै सम्यग्दर्शन होते संते ज्ञान और चारित्र आदि सव गुण युगपत् सम्यक् होते है इसलिये सूत्रमें सम्यग्दर्शनको प्रथम कह्या। ज्ञान कू मध्यमे कह्या सो सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही सम्यक्चारित्र होय है। अज्ञानीका चारित्र-बंधका ही कारण है। तातै चारित्र अंतमें कह्या।

अब आदिमें कह्या जो सम्यग्दर्शन ताका लक्षणनिर्देशके अर्थि सूत्र कहे है –

तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

अर्थ तत्वार्थनिका जो श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। तत्त्वशब्द यह सामान्यवाची सर्वनाम है. इसलिये भाव-सामान्य वाचक है। जो पदार्थ जैसा स्वरूपसे अवस्थित है तैसा तिस स्वरुपताका होना सो तत्त्व है। अर अर्यते इति अर्थः जाकू निश्चय करिये सो अर्थ हैं। तत्त्वरूपसे जो पदार्थका निश्चय सो तत्त्वार्थ है। भावार्थ – जो अर्थ जिस स्वभावकरि अवस्थित है ताका

---

१ टीप– अविरत सम्यग्दृष्टीको ४ थे गुणस्थानसे ४१ प्रकृतियोंकी बंधव्युच्छित्ति होकर संवर पूर्वक निर्जराका प्रारंभ होता है। यहां संवरको ही सम्यक्चारित्र कहा है। इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्गका प्रारंभ गुण ४ से ही होता है। बिना शुद्धोपयोग के संवर या सम्यक्चारित्र नहीं होता हैं। इसलिये गुण ४ से शुद्धोपयोगका प्रारंभ मानना नितांत आवश्यक है।

तिसस्वभावकरि भूतार्थ नयसे ग्रहण करना, निश्चय करना सो तत्त्वार्थ है । तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है । सो दोय प्रकार है ।

१ सराग सम्यग्दर्शन २ वीतराग सम्यग्यदर्शन.

१) तहां प्रशम-सवेग-अनुकंपा-आस्तिक्य है लक्षण जाका ऐसा सराग[1] सम्यग्दर्शन है ।

१) तहां रागादिकनिकी उत्कटताका अभाव सो प्रशम है । इहां उत्कटताका अनंतानुबंधी-संबंधी रागका अभाव अभिप्रेत हैं । २) संसार-देह-भोगनितै भयभीतता सो संवेग हैं । ३) सर्व प्राणिनिविषै मैत्रीभाव सो अनुकंपा है । ४) जीवादिक पदार्थ यथायोग्य अपने स्वभावकरि जैसे आगमविषै अस्तिरूप कहे है तैसे अंगीकार करना सो आस्तिक्य है ।। (विना निश्चय सम्यक्त्वके प्रशमादिक व्यवहारनयसे भी सम्यक्त्व के लक्षण नहीं है ।)

२) केवल निजआत्मस्वरूप की शुद्धता सो वीतराग सम्यक्त्व है ।

आगे कहे है– जो जीवादि पदार्थनिका सम्यक् श्रद्धानतै
सम्यग्दर्शन कैसे उपजे है इस हेतु सूचक सूत्र कहे हैं –

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३।।

अर्थ– जो सम्यग्दर्शन स्वभावके लक्ष्यसे उपजे, अन्यके उपदेश की अपेक्षा नही करे सो निसर्गज सम्यग्दर्शन हैं । अर जो परके उपदेशते भया जो अर्थज्ञान तातै उपजे सो अधिगमज सम्यग्दर्शन हैं ।

प्रश्न– निसर्गज सम्यग्दर्शनविषे पदार्थनिका ज्ञान है किनाही ? यदि ज्ञान हैं तो वहअधिगमज हो भया । कुछ भेद नही रह्या । अर जो पदार्थनिका ज्ञान नहो है तो पदार्थनिकू जानें विना कैसे श्रद्धान होय है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिविषै अंतरग हेतु जो दर्शनमोहका उपशम-क्षय-क्षयोपशम सो तो दोऊं ही सम्यक्त्वमे समान है ।

---

१ टीप– शास्त्रमें प्रयोजनवश सराग सम्यक्त्व को व्यवहार सम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व को निश्चय सम्यक्त्व कहा है । परंतु (सनि मुखो उपचारः प्रवर्तंते) इस न्यायसे निश्चय या वीतराग सम्यक्त्व के साथ होनेपर ही व्यवहार या सराग सम्यक्त्वको सम्यक्त्व माना गया है । समयसारमे जिसको अणुमात्र राग है उसको सम्यग्दर्शन नहीं है ऐसा कहनेपर प्रश्न उठाया गया हैं कि चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्ती राम-रावणादिक सरागीथे, तो क्या वे सम्यग्दृष्टि नही थे ? इसके उत्तरमें कहा है– वे सरागी होकर भी सम्यग्दृष्टी थे ।

क्योंकि उनको अनंतानुबधी– अप्रत्याख्यानकृत रागका अभाव होनेसे सराग और वीतरागताका मिश्रभाव रहता है । सम्यग्दर्शन तो सवका वीतरागही होता है सराग चरित्र के साथ जो सम्यग्दर्शन वह सराग और वीतराग चरित्र के साथ जो सम्यग्दर्शन वह वीत राग ।

ताकू होतै, जो वाह्य परके उपदेशादिक निमित्त विना होय ताकू निसर्गज कहिये। बहुरि जो परोपरदेश पूर्वक होय सो अधिगमज कहिये है। जैसे पूर्वकृत कर्मके उदयके निमित्ततै सिंहमें क्रूरता, शार्दूलमें शूरवीरता, श्यालीमे कायरता, सर्पमें दुष्टता, स्वभावहीतै है। किसीके उपदेशतै नाही। तातै निसर्गज कहिये है तैसे दर्शनमोहका उपशम-क्षय-क्षयोपशमतै स्व-पर तत्त्वका श्रद्धान होय सो निसर्गज सम्यग्दर्शन है।

अथवा देवकुरु-उत्तरकुरु भोगभूमीमें वाह्य पुरुषका उद्यमादि प्रयत्नविना ही सुवर्ण आदि होय है। तैसे वाह्य उपदेशविना ही जीवादिकनिका श्रद्धान होय सो निसर्गज है

अर जैसे सुवर्णपाषाण है सो सुवर्ण निकासनेकी विधि उपायका जाननेवाला पुरुष का प्रयोगत सुवर्ण निकसे है, तैसं अधिगमज है।

इहां सूत्रमें तत् शब्द कह्या है सो पहले सूत्रमें सम्यग्दर्शन कह्या है तिसके ग्रहणके अर्थी है।

अव तत्त्व कौन है इसका सूचक सूत्र कहे है –

जीवाजीवास्रवबंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥

अर्थ– १ जीव २ अजीव ३ आस्रव ४ बंध ५ संवर ६ निर्जरा ७ मोक्ष ये सात तत्त्व है। यहां कोऊ अद्वैतवादी कहे है–

प्रश्न– तत्त्व एकही कहना युक्त है। एकही के अनेक भेद है। तातै सात कहना युक्त नाही।

उत्तर– यद्यपि तत्त्व सामान्य अनंतपर्यायरूप एकही है। तथा जीव – अजीव ऐसे दोय है। इनतै वाह्य कोऊ नही तातै दोय हा है। शब्द-अर्थ-ज्ञान इनतै व्राह्य कोऊ नाही तातै तीन ही है। ऐसे संख्यात-असंख्यात-अनंत है। परंतु शिष्यके अभिप्रायके वशतै तत्त्वकी निरुपणा हो है। तातै अति संक्षेप ही कहे तो बडे बुद्धिवान् ही के समझमें आवे। अर अति विस्ताररुप कहे तो बहुत कालमें भी ग्रहण नही होय। तातै मध्यम क्रमकरि सात हीं कहे।

जातै इस मोक्षशास्त्रविषै मोक्षका प्रकरण है, तातै मोक्ष तो अवश्य कह्या चाहिये। अर मोक्ष कौनके होय ? जीवक होई। तातै जीव ग्रहण कीया। अर जीवके मोक्ष होय, सो पूर्वे जो जीव कहूं बंधतै बंध को प्राप्त भया होय ताहीके छूटना मुक्त होना संभवै। सो जीव अजीव दोऊनिके परस्पर मिलनेतै है। तातै अजीवका ग्रहण कीया। संसारका प्रधान कारण आस्रव बंध है। तातै उनका ग्रहण किया। अर मोक्षका प्रधान कारण संवर निर्जरा है। तातै संवर-निर्जराकू ग्रहण किया। ऐसे सामान्यमें गर्भित थे तोऊ प्रधान जाणि सप्र तत्त्व कहे। तहां चेतना लक्षण जीव है। अर चेतना गुण जिनमें नाही ऐसे पुग्द्ल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल ये पांच अजीव तत्त्व है। शुभ-अशुभ कर्मका आगमनका द्वाररूप आस्रव है। आत्मा और कर्म इन दोऊनिके प्रदेशनिका परस्पर प्रवेश होना सो बंध है। आस्रव द्वारनिका रुकना निरोध

होना सो संवर हैं। एकदेश कर्मका क्षय होना सो निर्जरा हैं। समस्त कर्मनिका वियोग होना सो मोक्ष हैं। इनका विशेष वर्णन आगे करसी।

अब ये कहे जे सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवाजीवादिक तिनका संव्यवहार विशेष में जो व्यभिचार आवे तिसके दूरि करनेके अर्थि सूत्र कहे हैं।

नामस्थापना द्रव्य भावतस्तन्न्यासः ॥५॥

अर्थ– जीवादिक पदार्थनिका तथा सम्यग्दर्शनादिक का नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव इन चार प्रकार करि न्यास कहिये निक्षेप है। आगममें जीवादिक पदार्थका संव्यवहार– कथन प्रयोग चार प्रकारके निक्षेपद्वारा होता है। नाम शब्दकी निरूक्ति दोय प्रकार करिय है–

(नीयते अर्थः अनेन इति नाम) नीयते कहिये सन्मुख करिये है अर्थ जाकरि अथवा सो नाम है। अर्थकू प्राप्त होइए जा करि सो नाम हैं। अथवा नमति कहिये अर्थकू सन्मुख करे सो नाम हैं। जिसको सुणतै ही उसका अर्थ सन्मुख हो जाय सो नाम हैं। गुण-जाति-द्रव्य-क्रिया इनकी अपेक्षा रहित-वस्तुविषै अपना पुरुषार्थ करि अपनी इच्छानुसार संज्ञा करना, नाम रखना सो नामनिक्षेप हैं। कोऊ कारणी अपेक्षा तैं होई सो नामनिक्षेप नही कहावे हैं। नाम-रूप-गुण-जाति-द्रव्य-क्रिया इन की अपेक्षा न रखते हुये लोकमें प्रवृत्तिके अर्थि अपनी इच्छातैं संज्ञा करना सो नामनिक्षप है। जैसे किसी पुरुष का नाम इंद्रराज रखना। तहां इंद्रका गुण-जाति-द्रव्य-क्रिया एकहू नही पावे, अपने मातापिता इंद्रराज नाम धरि दीया, तहा नामनिक्षेप कहिये अथवा किसींकु चतुर्भुज-वा धनपाल-देवदत्त-इंद्रदत्त-जिनादत्ता-हाथीसिंह- इत्यादिक नाम गुण-जाति-द्रव्य-क्रिया विना हि लोक कहै। सो नामनिक्षेप है। अर धवल गुणके धारककू धवल कहिये शुभ कहै तहां गुणद्वारे नाम है। मनुष्य-देव-गौ-अश्व-हस्ती इत्यादिक जातीद्वारे नाम है। पूजन करते कु पूजक, नृत्य करते कु नतक कहिये। ऐसें क्रियाद्वारे नाम है। इनकु नामनिक्षेप नाहि कहिये।

बहुरि काष्ठ-पाषाण-माटी-चित्रकर्म आदिविषै तथा सतरंजके रोणानिविषै हस्ती-घोटक (घोडा) आदि तदाकार वा अतदाकरि विषै सो यह है ऐसी स्थापना करना सो स्थापना निक्षेप है। जैसे पाषाणदिकनिका तदाकार विंवविषै वा अतदाकार अक्षत-पुष्पादिक विषै यह जिनेंद्र है, चंद्रप्रभ देव है. यह इंद्र है ऐसी स्थापना करना तथा यह जीव है वा सम्यग्दर्शन है. यह ज्ञान है ऐसे स्थापन करना सो स्थापना निक्षेप है।

प्रश्न– नाम और स्थापना तो एक ही भया। जैसे नामके अनुकूल गुण रहितका नाम सो नामनिक्षप है। तैंसेही काष्ठ-पाषाणादिकनि विषै तदाकार-अतदाकारमें यह इंद्र है ऐसा नाम करना सोही स्थापना है। जिसविषै नाम नहीं किया तिस विषै स्थापना भी नही होय है। तातै नाम अर स्थापना एक ही है। भिन्न नाही।

उत्तर– उक्त प्रश्न ठीक नही है। नाम और स्थापनामें अत्यंत भेद है।

किसीका नाम इंद्रक ह्या वा जिन कह्या तिसमें इंद्रपणाका जिन पणाका आदर नही है। अनुग्रह की वांछा नही परंतु धातुपाषाण दिकमें स्थापना किया तिसकू इंद्र या जिन माने है। जिनेंद्रकी प्रतिविंवकी स्थापनातै आपका उपकार होना वांछे है। स्थापना निक्षेप विषै तो साक्षात् वे ही है ऐसामाने है। कुछ भेद नही माने है। स्तवन करे, पूज करे, ध्यान करे। अर नामनिक्षेपविषै अन्य प्रयोजन नाही। केवल व्यवहारके अर्थि नाम धऱ्या है। ऋषभ ऐसा नाम किसीका होई। तहां कुछ पूजादिक प्रयोजन नाही। अर स्थापनाविषै ताकू साक्षात् पापका क्षय करनेवाला ऋषभ जिनेंद्र मानि पूजा-स्तवन-ध्यान करे। ऐसा भेद हैं।

वहुरि जिसकी स्थापना करनी होई तिसका आकारादि रूप स्थापना सो तदाकार स्थापना है। याकू सभ्दाव स्थापना कहिये है। और आकारादि रहित स्थापना अतदाकार स्थापना है।

प्रश्न– इस पंचमकालमें अरहंत परमेष्ठीका अतदाकार स्थापना करना कि नाही करना ?

उत्तर– इस पंचकालमें अन्यमतका देवनिकी अनेक प्रकार अनेक विपरीतरूप स्थापना होगई। जिनके शस्त्रादिकका ग्रहण, उग्ररूप-वक्रता-तीव्रराग तै लिया ऐसी परिणामनिकू विकार करनेवाली विपरीत स्थापना दीखे है।

अव कोई अतदाकार स्थापना कू आगममें कही जाणि फत्तर-मांटी इत्यादिकमें कल्पना करि कहे है कि हमारे ये ही अरहंत है। ऐसे जाणि अरहंत मानि पूजन-ध्यान-करने लग जाय तो धर्म व्यभिचार हो जाय। तातै ज्ञानी जन इस कालमें तदाकार स्थापना हीका अधिकार किया है।

प्रश्न– अरहंत प्रतिमा किस अर्थ पूजिये है ? अरहंत भगवान तो मोक्ष गये, सिद्धस्थानमें हैं। धातुपाषाणका विंवविषै तो वे आवे नाही। वा पूजा चाहैं नाही। वा किसीका उपकार-अपकार करे नाही। जे पूजन-स्तवन अभिषेक करे तामे राग करे नाही। फिर किस वास्तै पूजिये है।

उत्तर– गृहस्थ आरंभ-परिग्रह धारा है। ताका मन शुद्धात्मस्वरूपका अवलंबन विषै तो प्रवर्तै नाही। अर निरालंवन चित्त ठहरै नाही। तब आपकै परमात्मभावका अवलंबनके अर्थि वीतरागता सू परिणाम जोडनेके अर्थि प्रतिमाकू साक्षात् अरहंत स्वरूप संकल्प करि ध्यान-स्तवन-पूजन करे है। तिस अरहंत स्वरूपमें आपका परिणाम जोडनेतै उस अवसरमें सांसारिक समस्त संकल्प रूकि, अपने परमात्माका अनुभव न होय तवतक तिस परमात्मस्वरूपमें एकाग्रता होनेकरि सुख ज्ञानरूप संपदामें विघ्न करनेवाला अंतरायकर्मका अनुभाग-रस सूकि जाय है वा वीतराग भावके प्रसादतै असातावेदनीयक् आदि लेय समस्त अशुभ प्रकृति जे पूर्वे बंधी हुई सत्तामें निष्ठै थी तिनका अनुभाग रस नष्ट होजाय हे। अर जे पूर्वे बांधी पुण्यप्रकृति तिनमें अनुभार रस वधि जाय है। अर मंदकषायके प्रभावतै शुभ आयु कर्म विना समस्त

कर्मप्रकृतिनीकी स्थिति घटि जाय है। सो सिद्धांतमे भगवानका हुकम (आज्ञा-उपदेश) प्रसिद्ध है।

मंदकषायके प्रभावतै पूर्वे वांधे हुये शुभकर्मनिमें रस बधि जाय है। अर अशुभकर्मात्रिमें रस सुकी जाय है। घटिजाय हैं। अर स्थिति भिन्न आयुविना समस्त कर्म प्रकृतिनिका घटि जाय है। अर तीव्र कषाय के प्रभावतै कर्मकी समस्त पाप प्रकृतिनिमें अनुभाग रस वदि जाय अर पुण्य प्रकृतिनिमें रस घटि जाय है। अर स्थिति तीन आयुविना समस्त कर्मनिकी स्थिति वधि जाय है।

तातै अरहंत भगवानका गुणमें लीनता सो ही अरहंत भक्ति तिसके प्रभावतै सुखकी कारण पुण्य प्रकृतिनिमें रस वढि जाय तव स्वर्गादिकनिका सुख, तथा राजसंपदा भोगादिक आपहीतै प्रगट होय हैं। यद्यपि भगवान अरहंत धातुपाषाणके विंपमें आवे नाही. अव किसीका उपकार-अपकार भी वीतरागी भगवान करे नाही। नथापि उनका नाम स्मरण तथा प्रतिविंवका दर्शन अपने शुकपरिणाम-वीतरागरूप ध्यान होनेकू वाह्य निमित्त है। जातै रागरूप स्त्रीपुरुषनिकै अचेतन चित्र देखनेतै जैसे राग प्रकट होय है, तैसे वीतराग प्रतिविंव देखनेतै वीतरागता प्रकट होय है। तथा इस संसारमें रागद्वेष जीवनिके होय है। सो समस्त केवल अचेतन सुवर्ण-रूपा-मणि-माणिक्य महल - वन, वाग, नगर-ग्राम, पाषाण, कदर्म-स्मशान-वा मनुष्य-तिर्यंचनिके देह-वचन-राग सदन-दुर्गंध-सुगंध, रस, विरस इत्यादिक समस्त अचेतन पुग्दल द्रव्यनिके चिंतवन, श्रवण-अवलोकन अनुभवनतै होय है।

समस्त अचेतन आत्माके रागद्वेष उपनावनेकू सहकारी कारण है। तैसे जिनेंद्रकी परमशांत मुद्रा ज्ञानीनिके वीतरागता होनेकू सहकारी कारण है। प्रेरक नही। अर वीतरागतातै अन्य चाहना भव्यनिकै है नाही। वहुरि जो जिनेंद्रके अग्रस्थान विषै जल· चंदनादिक अष्ट द्रव्य उतारण करि चढाइ है सो कुछ भगवान भक्षण करे वा वासना लेवे ऐसा· अभिप्राय नाही है। याका ऐसा भाव हैं जैसें वडे मंडलेश्वर राजाका समागम होय तदि उनके उपरि सुवर्णरत्न-मोती वा रफेर करी क्षेप दिजिये वा आरति उताहिये हैं। पुष्प-अक्षतादिक उतारण करि क्षेपिये सो समस्त अपनी भक्ति हैं। राजाके कुदा सेनेका प्रयोजन नाही है। तैसे भव्यजीव भक्ति करि त्रैलोक्यनाथ परम मंगळरूप परमेश्वर परमात्मस्वरूप भगवान अरहंतके प्रतिविंवको देखतें हुये उत्पन्न भया है आनंद जाकै ऐसा निकट भव्य जीव भक्तितै अर्ध्य उतारग करि अग्रभूमीमें क्षेपै है। और कुछ वांछा नाही है। सो भक्तिका मार्ग-अनादिकालतै चला आवे है। नवीन नाही भया है। अर जे समस्त आरंभ परिग्रहादिकनिके त्यागी होय निज आत्मिक परमात्मरसमें लीन है तिनके दर्शन-पूजनादिकमें प्रधानता नहीं है। ते परमात्मरूपतै आशध्य आराधक रूप

१ टीप– जिन प्रतिमाग्रे अर्ध्यं निर्वपामि स्वाहा।

भेद बुद्धि छांडि परमात्मस्वरूप आत्मानुभवमें लीन भये तिष्ठे हैं। ऐसे स्थापना निक्षेपमें प्रकरण पाय कथन किया।

अव द्रव्य निक्षेपका स्वरूप कहिये है–

जो अन्यगत परिणाम प्रति सन्मुखपणा सो द्रव्यनिक्षेप हैं। जैसे इंद्र की मूर्ति बनावनेके अर्थि लाया जो पाषाणताके इंद्रकी प्रतिमाकी पर्यायप्रति सन्मुखपणा हैं। तातै तिस पाषाणकू द्रव्य इंद्र कहिये है। तथा देव पर्यायके सन्मुख जीवकू द्रव्यदेव कहिये है। तथा सम्यग्दर्शनादि परिणति प्रति सन्मुख भया जीवकू द्रव्य सम्यग्दर्शन कहिये। सो द्रव्यनिक्षेप। दोय प्रकार हैं। १ आगम द्रव्य निक्षेप २ नो आगम द्रव्यनिक्षेप। तहां कोऊ पुरुष जिसका निक्षेप करना होइ तिस वस्तूके कथनका आगम जो शास्त्र ताका जाननेवाला होय। परंतु तिस अवसर विषै उस शास्त्रका चिंतन-पठनादिकमें अनुपयुक्त (उपयोगरहित) हो तिसकू आगम द्रव्य निक्षेप कहिये।

जैसे कोऊ पुरुष सम्यग्दर्शनके कथन का, तथा सामायिक के कथनका वा जीवद्रव्यके कथनका शास्त्रकू। जाननेवाला हो, परंतु उस समय शास्त्रके कथनका पठन-चिंतन आदि व्यापार रहित-(अनुपयुक्त) हो अन्यव्यवहारमें उपयुक्त हो तिस कालमें उस पुरुषकू आगम द्रव्य सम्यग्दर्शन कहिये। वा आगम द्रव्य सामायिक वा आगम द्रव्यजीव कहिये। ऐसे आगम-द्रव्य निक्षेप कह्या। अव तो आगमद्रय निक्षेप तीन प्रकार है।

१ ज्ञायक शरीर २ भावि ३ तद्व्यतिरिक्त.। तिनमें ज्ञायक शरीर हू तीन भेद रूप है। १ भूत २ भावी ३ वर्तमान। तहां तिस आगमशास्त्र का ज्ञाताके शरीर पूर्वपर्यायमें था तिसकू छांडि आय सो भूत ज्ञायक शरीर है। अर जिस शरीरते सम्यग्दर्शनादिक आगम शास्त्रकू जाते है सो वर्तमान ज्ञायक शरीर है। बहुरि जिस आगम शास्त्रकू जानानेवाला शरीर धारणा करेगा सो भावी ज्ञायक शरीर है। तहां भूत ज्ञायक शरीर का भी तीन भेद है। – १ च्युत २ च्यावित ३ त्यक्त। जो शरीर अपनी आयुक्त अंत होतै परिपाकतै स्वयं छूटे सो च्युत है। अर जो कदलीघात समान विषभक्षण-करि, वा मारण-ताडन-त्रासनादिक वेदनाकरि तथा रूधिरका शरीरतै निकसने रूप रक्तस्रावकरि, तथा भयकरि तथा शस्त्रदिकनिका घात करि, तथा संक्लेश होने करि, उच्छ्‌वासके रुकने करि, आहारका, निरोध करि, ताका आयुकर्मके निषेक एकठे छूटनेकरि उदीरणा होकरि मरण भया सो च्यावित मरण हे। अर जो संन्यास धारण करि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तप आराधना कू आराधी त्याग व्रत-संयम सहित शरीर कूं त्यागा सो व्यक्त है। ऐसे ज्ञायक शरीरका स्वरूप कह्या।

अब आगमद्रव्यका पूजा भेद जो भावि सो कहिये है। जो सम्यग्दर्शनादिकका आगम शास्त्रका जाननेवाला शरीर आगे होयगा सो भावि नो आगम द्रव्य निक्षेप है। अब तद्व्यति–

रिक्त तो आगम द्रव्यनिक्षेपके २ भेद है। १ कर्म २ नोकर्म : तिनमें दर्शनमोहरुप कर्म प्रकृतिका उपशम-क्षय-क्षयोपशम होने योग्य रुप जो द्रव्यरुप कर्मवर्गणक सो नो आगम द्रव्य सम्यग्दर्शन का कर्म तद्व्यतिरिक्त है।

तथा सामायिक विषै लगावे तो चारित्रमोहका मंद उदय-अनुभागरुप द्रव्यकर्म सो सामायिक कर्म तद्व्यतिरिक्त है। तथा जीव विषै लगावे-तो ज्ञानावरणके क्षयोगशमरुप कर्म-परमाणू तिनकू जीव कर्म तद्व्यतिरिक्त कहिये। वहुरि तो सम्यग्दर्शनादि हीनेके वाह्य उपदेशादिक तथा समताभाव होनेके कारण जे वाह्यद्रव्य-एकांत स्थान-जिनमंदिर आदि, ते तद्व्यतिरिक्त नोकर्म हैं। ऐसे द्रव्यनिक्षेप कह्या।

वहुरि भावनिक्षेपके २ भेद है। १ आगमभाव निक्षेप २ तो आगम भाव निक्षेप। तहां जिस वस्तुका निक्षेप करिये तिसके कथनका आगमशास्त्रको जाननेवाला पुरुष जिस कालमें उस शास्त्रमे उपयुक्त हो, उपयोग लगी रह्या होय तिस पुरुषको आगम भावनिक्षेप कहिये। वहुरि जिस वस्तुका निक्षेप करिये तिस पर्यायरुप तिस कालमें वर्तमान परिणत होय सो नो आगम भावनिक्षेप है। (वर्तमान तत्पर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः) ऐसे चार निक्षेप कहे। इहां प्रयोजन ऐसा – जो लोकव्यवहारमें नामनिक्षेप-को ही भावनिक्षेप समझी जाय, नाम-स्थापना कू भावनिक्षेप जाने ताके व्यभिचार दोष आवे है। ताको दूरिकरि यथार्थ समझानेके अर्थि यह निक्षेप विधि है।

तहां द्रव्यार्थिकनयतै प्रधानकरि नाम-स्थापना-द्रव्य ये तीन निक्षेप है। अर पर्यायार्थिक नयकरि भावनिक्षेप हैं।

अव नामादिक निक्षेप करि नानाभेद रुप विस्तारे जीवादिक तिनका स्वरुपज्ञान काहेतै होई यातै सूत्र कहे है।

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

अर्थ– प्रमाणकरि अर नयकरि जीवादिक पदार्थनिका ज्ञान होय है। जीवादिक के यथार्थ स्वरुपका ज्ञान प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाणकरि तथा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय करि होय है। तहां प्रमाणके २ भेद है – १ स्वार्थप्रमाण २ परार्थप्रमाण १ स्वार्थ प्रमाण तो ज्ञानस्वरुप है। २ परार्थप्रमाण है वचन स्वरुप है। तिनमें चार ज्ञान तो स्वार्थप्रमाण है। अर श्रुतज्ञान ज्ञानरुप स्वार्थ और वचन रुप परार्थ की है। वहुरि श्रुतप्रमाणके विशल्प-भेद-है ते नय है। जे नय है ते प्रमाणकी सापेक्षारुप है। सापेक्ष नय सम्यक्नय है। निरपेक्ष नय मिथ्यानय है।

इहां प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक-परस्पर विरोधी उभयधर्मातमक-सामान्य विशेष धर्मात्मक है।

वस्तूका सामान्य धर्मं नित्य-एक-सत्‌रुप-अभेद-तन्‌रुप शुद्धरुप, होता है। वस्तूके विशेष धर्म (पर्यायधर्म)-असत्‌रुप होते है।

इहां नित्य-अनित्य आदि अनेक धर्मसहित वस्तु प्रमाणका विषयभावकू प्राप्त होय है। वहुरि काहू एक एक धर्मकी मुख्य वित्रक्षा लेय अविरोधरुप जाकरि साध्य पदार्थकू जानिये सो नय है। सकलादेश: प्रमाणाधीन:। विकलादेश: नयाधीन:। वस्तूके सकलधर्मको युगपत् ग्रहण करना प्रमाणका विषय है। वस्तूके विवक्षित एक एक धर्म को ग्रहण करना यह नयका विषय है।

नय है सो श्रुत प्रमाणके विकल्प है। अंश है। मतिज्ञान-अवधिज्ञान-मन:पर्ययज्ञान प्रमाणात्मक ही है। नयात्मक नही है। जातै वचनके निमित्ततै उपजा श्रुतज्ञान ताके ही नय विकल्प विशेष संभवे है।

वहुरि जो अधिगम है सो ज्ञानात्मक और वचनात्मक भेद करि दोय प्रकार है। प्रत्येक के प्रमाणात्मक-और नयात्मक भेद करि दोय प्रकार है।

तहां एक वक्तविषै अविरोधकरि एक धर्म के विधि निषेधतै सप्तभंग होय है। १ स्यात् अस्ति २ स्यात् नास्ति ३ स्यात् अस्ति-नास्ति ४ स्यात् अवक्तव्य ५ स्यात् अस्ति-अवक्यव्य ६ स्यात् नास्ति अवक्तव्य ७ स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य।

१ तहां वस्तु है सो स्वरुपचतुष्टचकरि अस्ति स्वरुप ही है। जैसे-घट है, सो अपने अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव करि अस्तिस्वरुप ही है। तहां गुण-पर्यायनिके समुदायरुप सो तो स्वद्रव्य है। वहुरि द्रव्यकी संकोचविस्तार रुप अवगाहना-द्रव्यका रहनेका स्वप्रदेशरुप स्थान वह स्वक्षेत्र हैं। द्रव्यका परिणमत्रका जो नियतक्रमवद्ध काल सो स्वकाल है। द्रव्य का नियत परिणमनरुप जो योग्यता रुप शक्ति सो स्वभाव है। ऐसे वस्तु अपने स्वतुष्टच करि सदा अस्तिस्वरुप ही है। यह प्रथम भंग है।

बहुरि जो वस्तु है सो परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल परभाव करि नास्ति स्वरुपही है। जैसे घट है सो पटादि परद्रव्यनिका चतुष्च करि नास्तिरुप ही है। जातै अपने स्वरुपका ग्रहण-एकत्व-अभिन्न-तादात्म्य और परस्वरुपका त्याग-विभक्त-पृथक्त्व सो ही वस्तूका वस्तूपणा है। जो आपविषै परका नास्तिपणा नाही होय तो घट-पटादिक सारा एकरुप संकट होय जाय। तातै परका नास्तिपणा सोही अपना अस्तित्व साधे है। ऐसा दूजाभंग है।

बहुरि वस्तुविषै स्वचतुष्चकरि अस्तिपणा और परचतुष्टचकरि नास्तिपणा ऐसे दोऊ धर्म परस्परविरोधी धर्म भिन्नभिन्न विवक्षासे युगपत् एककाल अविरोध रुपसे अविन्नभाव रुपसे सिद्ध होते है। वस्तुमें भिन्न कालमें क्रमसे रहते है ऐसा नही हैं। परंतु दोऊ धर्म एक कालमें

वचन करि कह्या जाय नाही। तातै क्रमकरि अस्ति-नास्ति ऐसा यह तीजा द्विसंयोगी भंग है।।

अर वस्तुमें अस्ति-नास्ति दोऊ धर्म युगपत् है। परंतु वचनमे युगपत् कहनेका सामर्थ्य नही है सो वस्तु कथंचित् अवक्तव्य है। ऐसा यह चौथा भंग हैं।

वहुरि वस्तु स्वचतुष्य की अपेक्षा अस्तिरुप है, अर युगपत् स्वचतुष्टच-परचतुष्टच की अपेक्षा अस्ति-नास्ति दोऊ धर्म युगपत् एककाल कह्या जाय नही, यातै वस्तु कथंचित् अवक्तव्य है। स्वचतुष्टच की अपेक्षा अस्ति और युगपत् स्व-पर चतुष्टच की अपेक्षा स्यात् अस्ति-अवक्तव्य मिलाकर द्विसंयोगी पांचमा भंग है।

वहुरि वस्तु क्रमकरि स्व-पर-चतुष्टच की अपेक्षा अस्ति-नास्तिरुप वक्तव्य हैं अर युगपत् स्व-पर-चतुष्टच की अपेक्षा अवक्तव्य है नातै क्रमकरि वक्तव्य अर युगपत् स्व-पर चतुष्टच की अपेक्षा अवक्तव्य ऐसा मिलकर स्थात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य यह त्रिसंयोगी सातमा भंग है। ऐसे विधि-निषेधकी अपेक्षासे सप्त भंग हैं।

इनमें अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन भंग तो असंयोगी भंग हैं। अस्ति-नास्ति अस्ति-अवक्तव्य और नास्ति अवक्तव्य ये तीन भंग द्विसंयोगी है। और अंतिम भंग अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य यह त्रिसंयोगी भग है।

वहां पहले तीन भंग तो वक्तव्य के भेद है। चौथा अवक्तव्य भंग है। अंतके तीन भंग अवक्तव्य के साथ संयोगरुप वक्तव्यके तीन भंग हैं। ऐसे ये सात प्रकार वस्तुके धर्म है।

वस्तुके अस्ति-नास्ति रुप वक्तव्य धर्म और अवक्तव्य रुप धर्म इन तीनक अपुनरुक्त भंग सातही होते है। कम अथवा जादा नाही संभवे है।

१, २, ३, (असंयोगी तीन)
(१+२), (१+३) (२+३) (द्विसंयोगी तीन)
(१+२+३) (त्रिसंयोगी एक)

ऐसे तीन सख्याके अपुनरुक्त सात ही भंग होते है। इसी को सप्तभंगी कहते है। इस सप्तभंगीका प्रयोजन - वस्तुका यथार्थज्ञान अर वस्तु की अर्थक्रियारुप प्रवृत्ति का निश्चय करना यही सप्तभगी कथन का प्रयोजन है।

वहुरि यहां 'स्यात्' पद है सो अनेकांत का सूचक है। स्यात् यह निपात अव्यय पद है। कथंचित् अर्थका द्योतक है। एक वस्तुमे वचनतै क्रमकरि एक एक धर्म कहने तै सर्वथा एकांत के अभिप्रायतै दोष दीखे। तहां स्यात्पद कहनेते विरोधादि दोषनिका परिहार होय है। स्यात् नाम कथंचित् का है। स्यात् शब्द अपनी विवाक्षित निश्चित विवक्षा सूचक है। तथा

अन्य विवक्षासे वस्तुमें विरोधी दूसरा धर्म भी है इसका सूचक है। तातै अनेकांतके प्रकाशनेको स्यात् शब्दका प्रयोग नितांन आवश्यक हैं। स्यात् पदतै सर्वथा एकांत पक्षका निराकरण हो है।

वस्तुस्वरुपके वाचक – वाक्य दो प्रकारके है। १ प्रमाणात्मक २ नयात्मक प्रमाणात्मक वाक्यमें उभय धर्मोंका कथन मुख्य विवक्षित होता है। नयात्मक वाक्यमें एक धर्मका कथन विवक्षित मुख्य और अन्यधर्मका कथन गौण अविवक्षित होता है। प्रमाणवाक्यमें दोनों धर्मोंको कथन क्रमसे करते समय 'च' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे– स्यात् अस्ति च स्यात् नास्तिच। नयवाक्यमें विवक्षित धर्मकी मुख्यता सूचक 'एव' शब्दका अवधारणात्मक प्रयोग सूचित किया जाता है।

जैसे वस्तु स्वचतुष्टच की अपेक्षासे स्यात् अस्ति एव परचतुष्टचकी अपेक्षासे स्यात् नास्ति एव।

इहां भाव ऐसा-जो वस्तुका स्वरुप अनेकांतात्मक है। तातै वस्तुके जनाने वाले निको स्यात् शब्द जानवे योग्य है।

प्रश्न– वस्तु सर्वथा अनेकांतात्मक ही हे ऐसा कहनेमे भी सर्वथा एकात आवे है। तव अनेकांत कैसे रह्या ?

उत्तर– हमारा अनेकान्त भी अनेकान्तात्मक है। कथंचित् एकांत कथंचित् अनेकांत स्वरुप है। प्रमाण वचन करि वस्तु अनेकांत स्वरुप है। नयवचनकरि वस्तु एकांत स्वरुप है। जातै एकांत और अनेकांत भी दोय प्रकार है। १ सम्यक् एकांत २ मिथ्या एकांत तथा १ सम्यक् अनेकांत २ मिथ्या अनेकांत। हेतु विशेषका सामर्थ्यकी अपेक्षातै प्रमाणकरि प्ररुपण किया पदार्थके एकदेश धर्मकू कहना सो सम्यक् एकांत है। एक धर्मका ही निश्चय कर अन्य धर्मका निराकरण रुप वचन सो मिथ्या एकांत है।

जातै नयकी अपेक्षातै वस्तूके विवक्षित धर्मका नियम करना, कथन करना सो सम्यक् एकांत है। वस्तुमें नित्य-अनित्य आदि अनेक परस्पर विरोधी धर्म है। तथापि द्रव्यार्थिकनय प्रधान करि वस्तु नित्य ही हैं, अनित्य नाही। पर्यायार्थिक नय प्रधान करि वस्तु अनित्य ही है, नित्य नाही। ऐसी नय विवक्षाकरि एक एक धर्मकी मुख्यता करि कथन करना सो सम्यक् एकांत है। अर नयकी विवक्षा रहित वस्तुमें सर्वथा एकही धर्मका सभ्दाव मानना मिथ्या एकांत है।

वहुरि अनेकांत भी दोय प्रकार है। १ सम्यक् अनेकांत २ मिथ्या अनेकांत एकही वस्तुमें अपना अपना प्रतिपक्षसहित अनेक धर्मका भिन्न भिन्न नय विवक्षासे युक्तिपूर्वक आगमतै अविरोधरुप निरुपण करना सो सम्यक् अनेकांत है।

तत् अतत् स्वभावकरि शून्य कल्पना करना सो मिथ्या अनेकांत हैं।

प्रश्न– अनेकांत परस्पर विरोधी नित्य-अनित्य आदि दोऊं पथकू कहे है तातै संशयका कारण है। विरोध आदि दोष आवे है। तातै प्रमाण नाही।

उत्तर– संशय तो जहां दोऊ कोटिका निर्णय नही होय तहां होय हैं। जैसे-कोऊ अंधकारका अवसर विषै दूरतै देखियो स्थाणु है कि पुरुष है। ऐसे दोऊ कोटिनिकू स्पर्श करनेवाला ज्ञान, दोऊनिकू नाही छांडै सो संशय ज्ञान है। जहां दोऊं पक्षका निश्चय नाही होय तहां संशय होय है। अनेकांत विषै दोऊ पक्षके विषय सुनिश्चित है तातै संशयका कारण नाही।

वहुरि जो दोऊ धर्मनिके विरोध होई तहां संशय होय है। जहां नयकी विवक्षातै दोऊ विरोधी धर्म अविरोध एकही वस्तुमें पाये जाते है तहां सशय कैसे ?

जैसे एक पुरुष विषै पिता-पुत्र-भ्राता-भगिनेय मातुल-स्वामी-सेवक आदि अनेक धर्म पुत्र-पितादिक की अपेक्षातै विरोधकू नही प्राप्त होय हैं। पुत्रकी अपेक्षा पिता ही है। पिताकी अपेक्षा वही पुत्र ही है। भाई की अपेक्षा भाई। वहणजा (भांजा) की अपेक्षा मामा, मामा की अपेक्षा भांजा, इत्यादिक अनेक धर्म एकही पुरुषविषै विरोधकू प्राप्त नही होय है। तातै संशय कैसे होय ? ऐसे अनेकांत स्वरुप जो जीवादिक तत्त्वार्थ तिनका ज्ञान प्रमाण-नय तैही होय है।

तातै प्रमाण-नयका अभ्यास करना। जातै इस कालमें भी परीक्षा मुख, प्रमेय कमल मार्तंड-प्रमेयचंद्रिका, प्रमाण-परीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाण मीमांसा, न्याय कुमुद चंद्रोदय, अष्टसहस्री, अप्तपरीक्षा, श्लोकवार्तिका राजवार्तिक, आदि अनंत ग्रंथ प्रमाणनय समझनेकू ही है।

ऐसे प्रमाण-नय-करि ज़ाणे जे जीवादिक तिनका जाननेका अन्य उपाय दिखावने कू सूत्र कहे है–

निर्देश स्वामित्व साधनाधिकरणस्थिति विधानत: ॥७॥

अर्थ– १ निर्देश २ स्वामित्व ३ साधन ४ अधिकरण ५ स्थिति ६ विधान इति छह अनुयोगनि करि भी सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादि– पदार्थनिका अधिगम होय है। १ तहां निर्देश-स्वरुपका कहना २ स्वामित्व-अधिपतिपणा ३ साधन-उत्पत्तिका कारण ४ अधिकरण-अधिष्ठान-आधार ५ स्थिति-कालमर्यादा ६ विधान-भेद प्रकार, . ऐसे ये निर्देशादिक कहे ते जीवादिक तथा सम्यग्दर्शनादिक जाननेका उपाय हैं। इनका संक्षेपतै उदाहरण-सम्यग्दर्शन उपरि कहे है। १ तत्वार्थका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है यह निर्देश हैं। २ सम्यग्दर्शन का स्वामी भव्य-संज्ञी पंचेद्रिय है। ३ सम्यग्दर्शन का साधन-अंतरंग तो दर्शन मोहका उपशम-क्षय-क्षयोपशम कारण है। वहिरंग साधन-जिनधर्मका श्रवण, जातिस्मरण, जिनविंवदर्शन आदि इनका विशेष वर्णन सर्वार्थसिद्धि टीकातै जानना ४ अधिकरण–अंतरंग अधिकरण तो आत्मा ही है। वहिरंग

अधिकरण-क्षेत्र त्रसनाडी है। ५ सम्यग्दर्शनकी स्थिति-उपशम सम्यक्त्व की वा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है। क्षायिक सम्यक्त्व की उत्कृष्टस्थिति संसारविषै तेतीस सागर अंतर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष घाटि दोय कोटिपूर्व अधिक हैं। जघन्य स्थिति-अंतर्मुहूर्तमे मुक्त होय है। मुक्त जीवके सम्यग्दर्शनकी स्थिति सादि अनंत काल है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति छासठि सागर प्रमाण है। जघन्यस्थिति अंतर्मुहुर्त है। ६ सम्यग्दर्शन सामान्य तें एक प्रकार है। निसर्गज-अधिगमज भेदते दोय प्रकार है। उपशम-क्षय-क्षयोपशम भेदते तीन प्रकार हैं। ऐसे यहां संक्षेपते कह्या। सो यह कथन १४ गुणस्थान, १४ मार्गणास्थान विषै सविस्तर सर्वार्थसिद्धि आदि शास्त्रनिमें कह्या तहांते जानना। तथा ऐसेही ज्ञान-चारित्र विषै तथा जीवादिक पदार्थनिविषै निर्देशादिक आगमके अनुसार जानना। ये निर्देशादिक कहे ते श्रुतप्रमाणके विशेष है। सो शब्दात्मक तथा ज्ञानात्मक दोऊ प्रकार जानना।

प्रश्न– वस्तूका स्वरुप तो अवक्तव्य है। वचन गोचर नाही। तातै निर्देश काहेका करिये ?

उत्तर– जो तू अवक्तव्य कहे है, सो ऐसे तेरे कहने ते वक्तव्यपना आवे है। जैसे कोऊ कहे मेरे मौनव्रत है ऐसे कहनेवालेका मौनव्रत काहे का ? तातै अवक्तव्यका एकांत करना युक्त नाही। तथा कोई स्वामित्व नाही माने है। ताकू कहिये-जो संबंध मानिये तो स्वामीपणा क्यों नही मानिये ? नही मानिये तो सर्व व्यवहारका लोण हो जाय।

वहुरि जो साधनकू नहीं माने, ताके इष्टतत्त्वकी सिद्धि नाही संभवै। वहुरि आधार-आधेय भाव द्रव्य-गुणादिकके प्रसिद्ध ही हैं। वहुरि स्थिति है सो भी प्रमाणसिद्ध है। जो वस्तूकू सदा क्षणभंगुर माने तो पुर्वापर जोडरुप प्रत्यभिज्ञान रुप व्यवहारका लोप हो जाय। ऐसे ही विधान कहिये प्रकार भी प्रमाण सिद्ध है। जो वस्तु सर्वथा एक प्रकार ही मानिये तो प्रत्यक्ष अनेक प्रकार दीखे है। ताका लोप कैसे करिये। प्रत्यक्षकू असत्यमाने तो शून्यताका प्रसंग आवे। तातै निर्देशादि करि जीवादि पदार्थनिका अधिगम करना युक्त है।

जीवादिकनिको जाननेका क्या कोई और अन्यभी उपाय है ऐसे पूछे, सूत्र कहे है–

सत्-संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-काल-अंतर-भाव-अल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

अर्थ– १ सत् २ संख्या ३ क्षेत्र ४ स्पर्शन ५ काल ६ अंतर ७ भाव ८ अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोग करि-केभी जीवादिक पदार्थनिका अधिगम होय है। १ तहां सत् का अर्थ अस्तित्व है। २ संख्या-भेद की गणना। ३ क्षेत्र वर्तमान निवास क्षेत्र ४ स्पर्शन-तीन कालमें विचरन करनेका क्षेत्र ५ काल-वस्तूके परिणामकी काल मर्यादा। ६ बहुरि अंतर विरहकाल कहिये। जो एक परिणामते दूसरे परिणाम जाय फेर तिसही परिणामकू आवे ताके बीच जेता काल रहे सो

विरहकाल है। ताकूं अंतर कहिये। भाव-उपशमादिक भाव है। ८ अल्पवहुत्व-परस्पर दूसरेकी अपेक्षा थोरा-घना-पनाका कहना। ऐसे इन आठ अनुयोगनि करि सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवादिक पदार्थनिका अधिगम जानना। इनका कथन १४ गुणस्थान १४ मार्गणास्थाननिमे सर्वार्थसिद्धि शास्त्रनिविषै विशेष कथन है, सो आगमतै अविरोधरुप जानना।

प्रश्न– इहां कोई अन्यमतवादी वस्तूका सर्वथा अभाव ही माने है। समस्त जगत् अविद्याकरि भासे हैं। जगत् कोई वस्तु नाही है। सर्व शून्य है। अवस्तु है।

उत्तर– जगत् शून्यका कू कहनेवाला पुरुष वा आगम सो सत् या असत्? यदि सत् है तो शून्य नाही ठहऱ्या। जैसे आपको सत् मान्या। तैसे परको भी सत् कहो। अर जो तुम शून्यता को कहनेवाला पुरुष वा आगम असत् कहो तो तुमारा वचन असत् हुआ। काहूके अंगीकार करने योग्य नाही। इस प्रकार 'सत्' कहनेते शून्यवादी-नास्तिक-वादीके पक्षका निराकरण किया।

कोई वस्तुको सर्वथा अभेदरुप कहे है, तिनका निषेध भेद न की गणनातै जानना।

वहुरि कोई वस्तूके प्रदेश अवयव नाही माने है। तिनका निषेध क्षेत्र कहनेते जानना।

वहुरि कोई वस्तुकू सर्वथा क्रिया रहित निष्क्रिय माने है तिनका निषेध स्पर्शन कहनेते जानना।

वहुरि कोई वस्तूका कदाचित् सर्वथा प्रलव होना माने है। तथा क्षणिक ही माने है। तिनका निषेध काल कहनेते होय है तथा केई वस्तूकू क्षणिक ही माने ह तिनका निषेध अंतर कहनेते होय है। तथा केई वस्तूकू एक ही माने है, तथा अनेक ही माने है। तिनका निषेध अल्प-वहुत्व कहनेते होय है।

इहां ऐसा जानना-जो वस्तु हैं सो अनेकान्तात्मक है। ताके द्रवा-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा विधि-निषेधतै प्रमाण-नय-निक्षेप-अनुयोगन की विधिकरि साधते संते यथार्थज्ञान होनेतै अधिगमन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होय है। ऐसे आदिमें कह्या जो सम्यग्दर्शन ताका लक्षण-उत्पत्ति-स्वामी-विषय-न्याय अर अधिगम जो जानना तिनका उपाय कह्या। अर सम्यग्दर्शनका ही संवंध करि जीवादिक तत्त्वनिका नामादिनिक्षेपत्रिका वर्णन किया।

अव सम्यग्ज्ञानके-भेदनिकू कहे है–

मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥९॥

अर्थ– मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल ये एक ही ज्ञानके पाच भेद अवस्था है। इनका विशेष कथन आगे होयगा। तथापि कछु इनका संक्षेप स्वरुप इहांभी लिखिये है।

१ जो पांच इंद्रिय और मन करि पदार्थकू जाने सो मतिज्ञान है।

२ मतिज्ञान करि निश्चय किया जो पदार्थ तिसकूं अवलंबन करि तिसही पदार्थ संबंधकू लीये अन्य कोई पदार्थ तिसकूं जाने सो श्रुतज्ञान है। अथवा इंद्रिय अर मनकरि निश्चय कीया जो यह घट है ऐसें तो मतिज्ञान भया। तिस घट की जाति के अनेक देशमे या अनेक कालमें उसने अकने वर्णरुप-धोला-काला-लाल-पीला-छोटा-वडा अनेक अवगाहनारुप वा सोनाका, रुपाका, लोहेका, काष्ठका, पाषाणका, चित्रामका, पीतलका, तांवाका इत्यादि अनेक प्रकारका पूर्वे नही देख्या, नही श्रवण कीया, नही चिंतवन में आया, ऐसा अपूर्व अनेक प्रकारके घटनिकूं देखते ही जास्ति जाय जी यह घट है। ऐसे एक घट नामा अर्थकू देखि, उसके सदृश-विसदृश अनेक घटनिकू जाने सो श्रुतज्ञान है।

अथवा जीव-अजीव पदार्थनिकूं इंद्रियकरि अर मनकरि ग्रहण कीया, वहुरि तिनहीकूं सत् संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-काल अंतर-भाव-अल्पवंहुत्व आदि प्रकार करि जाननेंमें समर्थ होय सो श्रुतज्ञान है।

अथवा घट ऐसे दोय अक्षर श्रवणकरि कर्णेंद्रिय द्वारै मतिज्ञान करि शब्दमात्र ग्रहण करे सो मतिज्ञान है। वहुरि इस घट शब्द श्रवणतै घट पदार्थ वाचा अर घटशद्व वाचक ऐसे वाच्यवाचक संबंधका संकेत करायनेका सामर्थ्य करि जल भरनेंकू यह समर्थ है ऐसा घटके अर्थक्रियाका प्रयोजनका ग्रहण करना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

वहुरि कोऊके शरीरकै पवनका स्पर्श भया तदा स्पर्शन-इंद्रिय द्वारा पवनका शीतस्पर्श जान्या सो तो मतिज्ञान है। फिर इस पवनका स्पर्शनेही ऐसा विचार भया तो यो पवन वायुके रोगी के रोगवृद्धीका कारण है। तथा इस पवनतै वर्षाका अभाव होयगा वा वर्षा आवेगी, अथवा इस जातिके वृक्ष फलेंगे फूलेंगे या वृक्षनकै फल-फूल नही उपजेंगे, वा पवनतै लोकनिके रोगकी वृद्धि होगी वा रोग घटि जायगा। इत्यादिक पवनका स्पर्शतैही अनेक प्रकारका ज्ञान होना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

ऐसें श्रुतज्ञानावरण के भेद जो इंद्रिय-अनिंद्रियावरण नामा कर्म के क्षयोपशमतै दोय प्रकार श्रुतज्ञान है। इहां ऐसा जानना-जो कर्णेंद्रिय विना अन्यइंद्रयनिके द्वारा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एकेंद्रियादि समस्त जीवनिके प्रवर्ते है। सो तो प्रमाणके कथनमें ग्राह्य नाही। ताका अधिकार नाही। अर जो श्रोत्रेंद्रियद्वारा शद्व श्रवणरुप मतिज्ञानके पीछे (पूर्वक) अक्षरके अर्थ जाननेरुप मनके द्वारा शास्त्रका ज्ञान होय सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान इहां प्रमाणमें प्रधान है। याकरि नाम सहित तत्त्वार्थनिका स्वरूप नीके जान्या जाय है। (३) बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये रुपी पदार्थका जो प्रत्यक्ष जाने सो अवधिज्ञान है। (४) बहुरि मनुष्य क्षेत्र प्रमाण पैतालिस लाख योजन प्रमाण घन प्रतर क्षेत्र विषै तिष्ठतें

जीवनिके मनविषै सरलता और वक्रतारुप चिंतवन किये जे रुपी पदार्थ तिनकू अवाधिज्ञानके जाननेते हू अनंतभाग सूक्ष्मताने लीये जाने सो मनःपर्याय– ज्ञान है। (५) वहुरि सर्वद्रव्य अर उनके त्रिकालवर्ती सर्व पर्याय इनको युगपत् प्रत्यक्ष जाने सो केवलज्ञान है। 'प्रमाणनयै रधिगमः' इस सूत्रमें प्रमाण-नय निकरि अधिगम होना कहा। तिनमें कितनेक अन्यमत वाले इंद्रिय और पदार्थ इनका संनिकर्षकु (संयोग) प्रमाण कहे है। इस हेतुतै अधिकारमें आये हुये जे मतिआदिक ज्ञान है तिनहीके प्रमाणपणाकी प्रकटताके अर्थी सूत्र कहे है –

तत्प्रमाणे ॥१०॥

अर्थ– तत् कहिये जो मति आदि पाच ज्ञान कहे तेही प्रमाण हैं। अन्य नाही है।

जे केई अन्यमत वादी संनिकर्ष आदिकू प्रमाण कह्यो है ते प्रमाण नाही है। जाते जो इंद्रिय अर पदार्थनिका स्पर्शनिकू संनिकर्ष कहिये हैं। तिनमें मन अर नेत्रइंद्रिय इनतै तो विषयभूत पदार्थनिका संनिकर्ष नाही प्रतीत होय है। अर जो संनिकर्षकू प्रमाण मानिये, तो सूक्ष्म पदार्थ-क्षेत्रसे दूरवर्ती पदार्थ, कालसे अंतरित पदार्थ तिनकू संनिकर्ष प्रमाण ग्रहण करनेकू समर्थ नही। जातै संनिकर्ष तो इंद्रिय अर पदार्थ भिडे-स्पर्शे तदि होय है। तदा सूक्ष्म-अंतरित-दूरवर्ती पदार्थ संनिकर्ष प्रमाणका विषय नाही ठहरै। तातै पूर्व कहे जे मति आदिक पाच ज्ञान है तेही प्रमाण है। ते प्रमाण प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद करि दोय प्रकार है। जे सामान्य-विशेषात्मक वस्तु है ते प्रमाणका विषय प्रमेय है।

वहुरि इन परोक्ष-प्रत्यक्ष भेदरुप प्रमाणके दोय भेद विषै समग्त (अन्यमत कल्पित समस्त प्रमाण भेद) गर्भित है। प्रमाणका फल अज्ञान नाश, (अज्ञानका अभाव होना) तथा हेय विषै त्याग भाव, उपादेयविषै प्रवृत्ति भाव तथा राग-द्वेषके अभावरुप परम उपेक्षाभाव माध्यस्थ भाव-समताभाव ते समस्त प्रमाणका फल है।

प्रश्न– इंद्रियजनित ज्ञान में कोऊ प्रकार वाधा आवे है, विपरीत भी जाने है, ताकू प्रमाण कैसे कहिये ?

उत्तर– जो सम्यग्ज्ञान है सो प्रमाण है। अर मिथ्याज्ञान है सो अप्रमाण है। इहांभी-मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अपने विषयनिमें हू एकदेश प्रमाण है। जैसे उगता चंद्रमा पृथ्वीसो लग्या निकट ही दीखे है। तहां चंद्रमाकी अपेक्षा प्रमाण है। पृथ्वीके लग्या निकटही दीखे सो अप्रमाण हैं। ऐसे एकदेश प्रमाण-अप्रमाण है। अपना विषय जेता है तितनेमे प्रमाण है। शेष अप्रमाण है। मति आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है। क्षयोपशम ज्ञानमें इस प्रकार एक देश प्रमाणता-अप्रमाणता संभवे है। जहां बाधा आवे तहां अप्रमाण है। जहां वाधा नही

तहां प्रमाण है। केवलज्ञान सर्वथा निर्बाध प्रमाण स्वरुप ही हैं इसके प्रति पक्षी कर्म नाही है।

प्रश्न– मति श्रुतज्ञानके प्रमाण-अप्रमाणका व्यवहार कैसे प्रवर्तेगा ?

उत्तर– जाका ज्ञान जिस प्रकरण विषै निर्बाध होय तहां वाकू प्रमाण ही कहिये। अन्य विषयमें कदाचित् अप्रमाण भी होई तो वाकी मुख्यता नही करे। ऐसे मुख्य-गौण की अपेक्षा व्यवहार वर्ते है। अर परमार्थतै समस्त बाधारहित केवलज्ञानी सर्वज्ञ ही जाने है। सर्वथा निर्बाध ज्ञान तो केवलज्ञान ही है।

अन्य वादीनिकरि कल्पित संनिकर्ष तथा इंद्रिय ते प्रमाण नाही है। वहुरि केई विशेष रहित केवल सामान्यकू तथा केई सामान्य रहित केवल विशेषकूं तथा केई परस्पर निरपेक्ष सामान्य अर विशेष दोनोंकू प्रमाणका विषय स्थापन करे है सो वास्तवम सामान्य तो विशेष विना अथवा विशेष सामान्य विना कहू है नाही। सो परवादीनि करि कल्पित प्रमाण तथा प्रमाणके विषयनिका निराकरण जैन शासनके न्याय ग्रंथनिमें है। प्रमाण का स्वरुप-संख्या-विषय-फल इनविषै अन्यथावाद का निराकरण अर स्वाद्वादमत करि प्रमाण-का यथावत् स्थापन इत्यादि विशेष कथन श्लोकवार्तिक-परीक्षामुख आदि न्याय ग्रंथनिमे है तहांते जानना। यहां सूत्रमें प्रमाण शब्दके द्विवचन कहने करि प्रमाण दोयही है ऐसा नियम क्रिया। परंतु दोय प्रमाण कैसे ? केई प्रत्यक्ष अर अनुमान ऐसे दोय प्रमाण माने है। केई अनुमान अर उपमान, केई अनुमान अर आगम, केई उपमान अर प्रत्यक्ष, केई उपमान अर आगम, केई आगम अर प्रत्यक्ष ऐसे दो प्रमाण माने है। तातै मत्यादिकनिके विपर्यय का प्रसंग आवे है। तिनका कहना बाधा सहित है। सो प्रमेयकमल मार्तंड-तथा प्रमेयचंद्रिकामें वर्णन कीया है। उनके कहे भेद जैन शासनमें कहे हुयं परोक्ष-प्रत्यक्ष भेदमें गर्भित होते है। वे दोय भेद कौन है इसके निश्चयके अर्थि सूत्र कहे है–

आद्ये परोक्षम् ॥११॥

अर्थ– पंच ज्ञाननिमें आदिके दोय मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान ये परोक्ष प्रमाण है। यहां आद्ये यह पद द्विवचन करिके कहा। तातै मति-श्रुत दोऊ ग्रहण करने। मति-श्रुत ये दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण है।

पर कहिये इंद्रिय अर मन तथा परका उपदेश तथा प्रकाश आदिक पर निमित्त की सहायता करि होय तातै परोक्ष कहिये। तथा पर प्रत्यय (अन्य ज्ञान-प्रत्ययांतर) इन करि यामें अंतर (व्यवधान) पडे है। परकी अपेक्षातै होय है। अर अविशद अस्पष्ट है यातै परोक्ष-प्रमाण है। इनके प्रत्यक्षपणा नाही हैं।

वहुरि स्मृति-प्रत्यभिज्ञान-तर्क अनुमान ये सब परोक्ष मतिज्ञानके भेद है। वहुरि इन विना जो चक्षुरादिक इंद्रियनितै वहु आदि पदार्थनिका जो अवग्रहादिरुप मतिज्ञान है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहियेे है। जातै है व्यवहारीजन इंद्रियज्ञानकोही प्रत्यक्ष कहे है। तथापि परमार्थतै विचारिये तो यह मतिज्ञान पराधीनपणातै परोक्ष ही है। आगे मतिश्रुत विना अन्य तीन ज्ञान प्रत्यक्ष है ऐसा सूत्र कहे है।

प्रत्यक्ष मन्यत् ॥१२॥

अर्थ— अन्यत् कहिये मति-श्रुत तै अन्य अन्य अवधि-मनः पर्यय-केवल ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो (अक्षणोति-व्याप्नोति-जानाति-इति अक्षः आत्मा) पदार्थोंको जो व्यापता है जानता है वह अक्ष है। अक्ष नाम आत्माका है। (अक्षं प्रति तत् प्रत्यक्षं) आत्माको ही प्रति जाका नियम है आत्माका ही आश्रय करि जो उपजे है, अन्यका सहायकी अपेक्षा नाही है। इंद्रिय प्रकाश उपदेशादिक की सहायविना ही विशेषसहित वस्तूका जाननेवाला जो स्पष्ट ज्ञान सो-प्रत्यक्ष प्रमाण है। तहां अवधि अर मनःपर्यय ज्ञान तो विकल प्रत्यक्ष है। अर केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अव परोक्ष प्रमाणका विशेष जाननेके अर्थि सूत्र कहे है।

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

अर्थ— मति-स्मृति-संज्ञा-चिन्ता-अभिनिबोध ये पांच ज्ञान अनर्थान्तर है। ये सब मतिज्ञानके ही भेद है। आदिविषै कहा जो मतिज्ञान ताहीके ये पर्यायवाचक नामांतर है। जातै ये सर्व ही मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम करि उपजा जो उपयोग ताके विशेषभेद है।

(१) मति— तहां मननं मतिः। मनन करना, चिंतन करना सो मति है।

(२) स्मृति— पूर्वे जो अवग्रह-इंहा-अवाय-धारणारुप अनुभवमे आया था उसका कालांतरमें 'वह' इस प्रकार तत् पना करि उल्लेख करनेवाला जो स्मरणरुप ज्ञान उसे स्मृति कहते है। जैसे-काहू पुरुषको पहले देखा था सो कालांतरमें उसकी याद आना कि 'वह देवदत्त' सो स्मृति है।

(३) प्रत्यभिज्ञान— वहुरि संज्ञा नाम प्रत्यभिज्ञान का है। वर्तमानमें कोऊ वस्तू कू देखि, पूर्वे देखा था ताका स्मरण पूर्वक जो संकलनात्मक जोडरुप ज्ञान वह प्रत्यभिज्ञान है। वह अनेक प्रकार है। जैसे— १) काहू पुरुष को देखिकरि उसका स्मरण पूर्वक यह वही देवदत्त हैं सो एकत्व प्रत्यभिज्ञान है। २) वहुरि काहूने वनविषै गवय (वन गाय) देखी तो पूर्वे गाममें देखि गो का स्मरण होई यो सदृश गवय है, ऐसा जो संकलनरुप ज्ञान सो सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है।

३) वहुरि भैसाकू देखिकर पूर्वे जो वलध (बैल) देखा था यह वह नहीं है, उससे विलक्षण हैं ऐसा जो संकलन रुप ज्ञान सो विलक्षण प्रत्यभिज्ञान है। ४) यह उसके सदृश नही हैं, उससे विसदृश्य है सो विसदृश्य प्रत्यभिज्ञान है। ५) वहुरि काहूकू निकट देखि करि अर काहूकू दूर देखिकरि यह इससे दूर हैं, अथवा वह इससे निकट था, अथवा यह उससे छोटा है, वह इससे वडा था इस प्रकार क्षेत्र-कालादिक की अपेक्षा अन्य-अन्य की अपेक्षा करि जो संकलनरुप ज्ञान सो प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है। इत्यादि प्रत्यभिज्ञान के अनेक भेद है सो सर्वही परोक्षप्रमाण है।

(३) चिंता– (तर्क) – (चिंतनं चिंता) लिंग की लिंगी के साथ साधन की साध्य के साथ अथवा कारण की कार्य के साथ जो व्याप्ति का ज्ञान सो चिंता या तर्क कहिये। (व्याप्तिज्ञानं तर्कः) इस चिंता ज्ञान को तर्क–ऊह ऐसे अपर एकार्थवाचक नाम है। जहां अन्यय या व्यतिरेक संबंध सार्वकालिक नियत होय सो व्याप्ति-ज्ञान है। व्याप्तिका अपर नाम अविनाभाव भी है। व्याप्ति के दो भेद है। १ अन्वय व्याप्ति २ व्यतिरेक व्याप्ति १ अन्वयव्याप्तिका दूसरा नाम तथोपपत्ति भी है। २ व्यतिरेक व्याप्तिका दूसरा नाम अन्यथा-अनुपपत्ति भी है। (सर्वोपसंहारवती व्याप्तिः) यह व्याप्ति-(व्याप्य-व्यापक संबंध) (सर्वदा-सर्वकालसंबंधी) अर सर्वत्र (सर्वत्र संबंधी) नियत-सुनिश्चित होती है।

१) (यत्सत्त्वे यस्य सत्त्वं अन्वयः) जिसके होनेपर जिसका होना अवश्यं-भावी नियत हैं सो अन्वयव्याप्ति हैं। (यदभावे यस्य अभावः) जिसके न होनेंपर जिसका न होना अवश्यभावी है नियत है सो व्यतिरेक व्याप्ति है। जैसे-अग्नि धूमका कारण है, धूम कार्य है। सो अग्निके होपनेर ही धूम का होना, कारण के होनेपर ही कार्यका होना सो अन्वय व्याप्ति है।

अग्निके न होनेपर धूमका न होना, कारणके न होनेपर कार्यका न होना सो व्यतिरेक व्याप्ति है।

ऐसा जो व्याप्तिज्ञान सो तर्क प्रमाण है।

(४) अभिनिबोध – अभि कहिये सन्मुख-लिंगादिक देखि, निबोध कहिये लिंगी का निश्चय करे सो अभिनिबोध कहिये। इसहीकू अनुमान भी कहिये है। (लिंगात् लिंगिनि ज्ञानं अनुमानं) अथवा (साधनात् साध्य विज्ञानं) जो लिंगसे लिंगीका ज्ञान होना अथवा साधन साधन कहिये हेतु तातै साध्य कहिये जो सिद्ध करने योग्य वस्तू ताका ज्ञान होना सो अनुमान प्रमाण है।

१ साध्य – जो इष्ट-अभिप्रेत हो, जो शक्य-अबाधित हो अर जो असिद्ध है सोही साध्य होय है। जो किसीभी प्रमाणकरि अबाधितपणा करि साधनेकू शक्य होय सो साध्य होय है। जामें साधने की योग्यता नाही तो साधनेकू शक्य नाही सो साध्य नाही। जैसे

आकाशका फूल साध्य नाही होय है। बहुरि जो वादी को अभिप्रेत-हो इष्ट हो सो ही साध्य होय है। जो अभिप्रेत नाही ऐसी अन्य वस्तू साध्य नाही होय है। तथा जो पहले सिद्ध होय ताकूं सिद्ध करना निष्फल हैं। जिसके कुछ संदेहादिक हो, जो पूर्वे ज्ञान न होय, जो अप्रसिद्ध होय, सो ही साधने योग्य है। ऐसें साध्यके सन्मुख जो लिंगादिक नियत साधन ताकरि साध्यका जो निश्चित ज्ञान होय जाकू अभिनिबोध कहिये। ऐसे स्मृति आदि चार ज्ञान कहे ते सर्व मतिज्ञान है सो परोक्षप्रमाण है। बहुरि आगम नामा परोक्षप्रमाण है सो श्रुतज्ञान है। अन्यमतवादी अर्थापत्ति-उपमान आदि अन्य प्रमाण भेद माने है ते सर्व मतिज्ञान में अंतर्भूत होय है।

आगे मतिज्ञान का स्वरुपका लाभविषै निमित्त क्या है ऐसा प्रश्न होतै सूत्र कहे है–

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥

अर्थ– तत् कहिये सो यतिज्ञान-इंद्रिय अर अनिद्रिय है निमित्त कहिये कारण जाके ऐसा है। पाच इंद्रिय अर मन इनके निमित्ततै मतिज्ञान होय होय है। अंतरंग निमित्त मतिज्ञानावरण कर्मका क्षमोपशम होतै बाह्य निमित्त इंद्रिय वा मनके निमित्ततै मतिज्ञान होय है।

जातै मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशतै जानने योग्य पदार्थ जाननेकी योग्यता-लब्धिरुप-शक्ति तो प्रकट भई परंतु इंद्रिय-मन रुप बाह्य निमित्त विना जाननेकू स्वयं समर्थ नाही होय है तातै पराधीनताकरि मतिज्ञान को परोक्ष कहियें है। पदार्थनिके जाननेकू कारण जे चिन्ह होय तिनकू इद्रिय कहिये। अथवा जो अदृश्य-गूढ है ताके अस्तित्व जानावनेका जो चिन्ह वह इंद्रिय है। इंद्रियनिकी प्रवृत्तितै आत्मा जाना जाय है। जातै इंद्र नाम संसारी आत्माका है। (इंद्रस्य लिंग इंद्रियं) पदार्थकू जाननेका जो आत्माका लिंग-साधन सो इंद्रिय है। अथवा इंद्र नाम नामकर्मका है। नामकर्मकरि रची ने इद्रिय है वहुरि अनिंद्रिय नाम मनका है। याकू अंतःकरण भी कहिये। यह अभ्यंतर इंद्रिय है।

प्रश्न– जो इंद्रिय नाही सो अनिंद्रिय कहिये। मन अनिंद्रिय कैसे?

उत्तर– इंद्रियका अभाव सो अनिंद्रिय ऐसा नही है। यहां (ईषदर्थे नञ् ईषद् अर्थमें नञ जानना। जैसे कन्याकू अनुदरा कहा, तहां जाके उदर नही सो अनुदरा ऐसा अर्थ नही लेना। जाके अन् कहिये ईषत, कृष-क्षीण, उदर हों ताकू अनुदरा कहिये है।

जातै अन्य इद्रियनि कै तो नियत स्थानका अर नियत विषयका नियम है। तैसा मन का कोऊ प्रगटस्थान नाही दीखे। तथा मनका नियत विषय नाही। तातै मन अनिंद्रिय कहावे है। अर गुण-दोष विचार-स्मरण-विचार-स्मरणविषे याके इंद्रियनिकी अपेक्षा नाही है। अर नेत्रादिकन की तरह मनका विकार वाह्य देखनेमें नही आवे है तातै अंतःकरण है।

आगे मतिज्ञानके भेद कहनेकू सूत्र कहे है –

अवग्रहेहावाय धारणाः ॥१५॥

अर्थ– १ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय ४ धारणा ये चार मतिज्ञान के भेद है। तहां इंद्रिय और पदार्थ योग्य स्थानमें रहनेपर जो सर्वप्रथम सामान्य विशेषात्मक वस्तूका सत्तासामान्य मात्र रुपसे ग्रहण होना सो दर्शन है। अथवा एक वस्तूको जानकर दूसरी वस्तूको जाननेके लिये जो ज्ञानकी चेष्टा-उत्साह-प्रयत्न उसको दर्शन कहते है। अथवा ज्ञानका अहंजानामिरुप जो स्व प्रतिभास उसका दर्शन कहते है। वह स्व सत्ता सव पदार्थोंकी सत्ता रुप निर्विकल्प महासत्तारुप होनेसे वस्तूकी विशेषसत्ता को ग्रहण न करते हुये (अविसेसिदूण) जो सामान्य विशेषात्मक वस्तूका जो सामान्य प्रतिभास रुपसे ग्रहण उसको दर्शन कहते है। इसके चार भेद है। १ चक्षुदर्शन २ अचक्षुदर्शन ३ अवधिदर्शन ४ केवलदर्शन। १ चक्षुदर्शन- चक्षुरिंद्रिय के द्वारा जो वस्तुका सामान्य सत्तामात्र ग्रहण 'कुछ तोभी हैं' इस प्रकारका जो सामान्यकार सत्ता मात्र ग्रहण उसको चक्षुदर्शन कहते है। २ अचक्षुदर्शन- चक्षुरिंद्रियके विना अन्य चार इंद्रियोमेसे किसी इंद्रिय द्वारा जो सत्तामात्र सामान्याकारग्रहण उसको अचक्षुदर्शनकहते है। ३अवधिदर्शन- अवधिज्ञान के पूर्व जो सामान्याकार दर्शन होता है वह अवधि दर्शन है। ४ केवलदर्शन- केवल ज्ञान के साथ वस्तूका जो सामान्याकाररुप और विशेषाकाररुप युगपत् ग्रहण होता है उसको केवल दर्शन कहते है।

सामान्याकार ग्रहणरुप दर्शन होनेके अनन्तर जो वस्तूके रुपादिक-संस्थानादिक विशेषाकार रुप आद्यग्रहण उसको अवग्रह कहते है। जैसे चक्षुरिंद्रियके द्वारा आंख खोलते ही जो प्रथम 'कुछ हैं' इस प्रकार सामान्याकार ग्रहण होनेपर 'यह प्रकाश हैं' या यह सफेद वर्णवाली वस्तु है, या यह ऊर्ध्वताकार वस्तु है ऐसा जो आद्यविशेष ग्रहण उसको अवग्रह कहते है। अवग्रह के दो भेद है। १ व्यंजनावग्रह २ अर्थावग्रह। १ व्यंजनावग्रह-व्यंजन कहिये अव्यक्त-अस्पष्ट ऐसा जो अवग्रहज्ञान उसे व्यंजनावग्रह कहते है। यह व्यंजनावग्रह चक्षु और मनके-शिवाय अन्य इंद्रियोंसे ही होता है। (न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां) चक्षु और मनके द्वारा व्यंजनावग्रह नहीं होता। केवल अर्थावग्रह ही होता है। अन्य चार इंद्रियों द्वारा प्रथम व्यंजनावग्रह होता है। तदनंतर अर्थावग्रह होता है। २) अर्थावग्रह– स्पष्ट अवग्रहज्ञान को अर्थावग्रह कहते है। यह अर्थावग्रह पांच इंद्रिय और मन इन छहो इंद्रियद्वारा होता है इसलिये अर्थावग्रह कें छह भेद हैं। व्यंजनावग्रह चक्षु और मन के विना चार इंद्रियोंसे होता है। इसलिये व्यंजनावग्रह के ४ भेद है।

२) ईहा– अवग्रह ज्ञानके वाद वस्तूका विशेषज्ञान होनेकी जो उत्कंठा-जिज्ञासा उसको ईहा कहते हैं जैसें-चक्षुरिंद्रिय द्वारा जो पहले पदार्थका सत्तामात्र सामान्य ग्रहण 'कुछ है' ऐसा ग्रहण हुआ सो चक्षुदर्शन है। इस वाद जो यह सफेद वर्णवाली कोई वस्तु है ऐसा विशेष

ग्रहण उसकों अर्थावग्रह कहते है। उसके अनंतर यह सफेद वर्णवाली वस्तु क्या यह ध्वजा है कि वकपंक्ति हैं ऐसी शंका उत्पन्न होती है। उस शंका को दूर करनेवाली जो जिज्ञासा यह बकपंक्ती होनी चाहिये अथवा यह ध्वजा होनी चाहिये इस प्रकार किसी एक कोटि-कै तरफ झुकनेवाली जो जिज्ञासा उसको ईहाज्ञान कहते है।

प्रश्न– ईहाज्ञान और संशय ज्ञान इनमे क्या भेद है ?

उत्तर– संयशज्ञानमें ,यह है कि वह है' इस प्रकार उभय कोटिको स्पर्श करनेवाला दोलायमान ज्ञान होता है। (उभय कोटि स्पर्शि ज्ञानं संशयः) ;(एकतर कोटिस्पर्शिज्ञानं ईहा) परंतु ईहा ज्ञानमें 'यह बकपंक्ती होनी चाहियें' इस प्रकार एक कोटिके तरफ झुकनेवाली जिज्ञासारुप ज्ञान है। इस प्रकार संशयज्ञान और ईहाज्ञान इनमें महान् अंतर है। संशयज्ञान अप्रमाण है। ईहाज्ञान प्रमाण है।

३) **अवायज्ञान–** ईहाजानके वाद जो पदार्थ जैंसा होय तामे तैसाही निर्णयात्मक यथात्म्य स्वरुप अवाय कहिये निश्चयरुप जो ज्ञान उसको अवाय ज्ञान कहते है। जैसे-उपरके दृष्टांत में बुगलांका ऊंचा नीचा आवना, पांखका हलावना इत्यादि चिन्ह विशेष करि निश्चय भया कि यह वगुलांकी पंक्ति ही है ऐसा निश्चयरुप जो ज्ञान अवाय ज्ञान है।

४) **धारणा** – अवायज्ञान करि जाका निश्चय कीया ताका ऐंसा दृढज्ञान होय जो कालांतरमे भूले नाही सो धारणाज्ञान है। आगे अवग्रहादि मतिज्ञानके भेद किनके होय इस हेतुतै सूत्र कहे है–

बहु बहुविध क्षिप्रानिःसृतानुक्त ध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥

अर्थ– वहु-वहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-धनुक्त-ध्रुव ऐ छह अर याके इतर-प्रतिपक्षी-अल्प-अल्पविध-अक्षिप्र-निःसृत-उक्त-अध्रुव ये छह ऐंसे वारह प्रकारके पदार्थनिका अवग्रहादि ज्ञान होय है। १) वहु- वहु शब्द यहां संख्यावाची तथा विपुल कहिये समूह वाचक है। जैसे वहुत गायनिमें यह खांडी, मुंडी, धवली, काली, कवरी इत्यादि अनेकनिके समूहकू ग्रहण करे सो वहु अवग्रहादिक है। २) वहुविध-जैंसे सेनामें हस्ती, घोडा, ऊंट, वलध, भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करना सो वहुविध अवग्रहादिक है। ३) क्षिप्र-शीघ्रतासे पडता जो जलका प्रवाहादिक ताका ग्रहण सो क्षिप्र ग्रहण है। ४) अनिःसृत-जलमे मग्न हस्ती या मनुष्य उसका ग्रहण सो अनिःसृत ग्रहण है। ५) अनुक्त– वचन ते कहे विना केवल अभिप्रायसे जानना सो अनुक्त ग्रहण है। ६) ध्रुव-वहुत कालतक जैंसा का तैसा निश्चल ग्रहण होय, या स्थिर पर्वतादिक का ग्रहण सो ध्रुव ग्रहण हैं। ७) एक घोडा-ऊट, बलध, मनुष्य आदि एक व्यक्तिका ग्रहण सो एक ग्रहण है। ८) एकविध-एक प्रकारका-एक जातिका अनेक वस्तूका ग्रहण सो

एकविध ग्रहण हैं। ९) अक्षिप्र- मंद गतिसे गमन करना हुआ हत्ती-अश्व आदिका ग्रहण सो अक्षिप्र ग्रहण है। १०) निःसृत- बाह्य निकला हुआ प्रकट हुआ वस्तूका ग्रहण सो निःसृत ग्रहण है। ११) उक्त- वचनतै कहा हुआ पदार्थका ग्रहण सो उक्त ग्रहण है। १२) अध्रुव-क्षण मात्र रहनेवाली बीजली आदिक वस्तूका ग्रहण सो अध्रुव ग्रहण है। ऐसे बारह प्रकारके वस्तूका अर्थावग्रह-ईहा-अवाय-धारणा ये छह इंद्रियोद्वारा (५ इंद्रिय अर १ मन) होते हैं इसलिये इनके (१२×६×४) सव भेद २८८ होते है। तथा व्यंजनावग्रह चक्षु अर मनके विना शेष चार इंद्रियों द्वारा होता है इसलिये उसके (१२×४) ४८ भेद। ये सब मिलके मतिज्ञानके ३३६ भेद होते है। ये वहु आदिक वारह प्रकार किनके है यह वतानेके लिये सूत्र कहते है-

अर्थस्य ॥१७॥

अर्थ- ये वहु आदिक वारह भेद कहे इंद्रियनिके विषयमे आवता जो पदार्थ ताके भेद है।

ये अवग्रहादिक ज्ञान व्यक्त पदार्थ के होते है कि किछु विशेषता है इस हैतुतै सूत्र कहे हैं-

व्यंजनस्यावग्रहः ॥१८॥

अर्थ- व्यंजन कहिये अस्पष्ट-अप्रकट शब्द आदिक वस्तूका केंवल अवग्रह ज्ञान ही होता है। ईहादिक नाही होय है। अव्यक्त पदार्थकें अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहते है। व्यक्त पदार्थके अवग्रह को अर्थावग्रह कहते है। जबतक पदार्थ अव्यक्त होता है. तवतक व्यंजावग्रह होता हैं। उसके वाद अर्थावग्रह होता है। अर्थावग्रह हुये विना ईहादिक नहीं होते। जैसे नवा माटीका सरावा विषै जलका कण क्षेपिये। तहां दोय-तीन कणकरि सिंचे वह जलकण स्पष्ट दीखे नाही। तेतै अव्यक्त है। तिनकू व्यंजन कहिये। बहुरि सो ही सरावा फेरि फेरि जलके कण सीचने पर मंदमंद गीला दीखे। तव वे जलकण व्यक्त होय। तैसे ही श्रोत्रादिक इंद्रियनिके द्वारा ग्रहण योग्य शब्दादिरुप परिणमे पुग्दलस्कंध दोय-तीन आदि समयविषै व्यक्त ग्रहण नाही होय है ततै तो व्यंजनावग्रह होय है। बहुरि फेरि फेरि तिनका होई तब ही अर्थावग्रह होय ईहादिक ज्ञान होते है। इस प्रकार अव्यक्त ग्रहण व्यंजनावग्रह अर व्यक्त ग्रहण को अर्थावग्रह कहिये।

व्यंजनावग्रह सर्व इंद्रियनिकें होनेका प्रसंग आवेगा, तातै जिन इंद्रियनितै व्यंजनावग्रह नही संभवे है तिनका निषेधके अर्थि सूत्र कहे है-

न चक्षुरनिंद्रियाभ्याम् ॥१९॥

अर्थ- चक्षुरिंद्रिय तथा अनिंद्रिय मन इनकें दोऊनिकरि व्यंजनावग्रह नाही होय है। सामर्थ्यसे इनके द्वारा अर्थावग्रह ही होता है। जातै नेत्रइंद्रिय अर मन ए दोऊ पदार्थनितै संनिकर्ष

होय करि नाहीं जाने है। अपने विषयकों दूरहीतै जाने है। यातै ये दोऊ अप्राप्यकारी है। जैसे नेत्र अपने मध्य तिष्ठता अंजनकू नाही जाने है। दुरि ही तिष्ठता पदार्थकू जाने है। अर मन है सोहू दूरि तिष्ठता पदार्थकू विचारमें ले है। ऐसे नेत्र अर मन ये दोऊ अप्राप्यकारी है।

प्रश्न– जैसे नेत्र इंद्रिय दूरितै जाने है, तैसे कर्ण इंद्रिय इ शब्दकू दूरिहीतै सुणै है। तातै कर्ण इंद्रियकू अप्राप्यकारी कहो।

समाधान– ऐसे नाही है। नेत्र अर मन विना शेष चार इंद्रियनिविषै जब अपना अपना विषय पदार्थ भिडै-संनिकर्ष होय तब ही ताकू जाने है। जैसे जिस ठिकानतै शब्द उपजे है तहांतै लगाय केतेक क्षेत्र पर्यंत के पुग्दल परमाणू शब्दरुप हो जाय है। (ध्वनि वाहक तार की तरह पुग्दल परमाणू शब्दकों प्रवाहित करते है) तहां कर्ण इंद्रिय के समीपवर्ती पुग्दल स्कंध शब्दरुप हो कर्णइंद्रियतै भिडे है, तव सुनिए है। ऐसें कर्णइंद्रिय प्राप्यकारी है। ऐसे ही घ्राण इंद्रियादिक जानने। गंधद्रव्य जहां तिष्ठे तहांतै लगाय केतेक क्षेत्रपर्यंतके पुग्दलस्कंध गंधरुप होंय नासिका इंद्रियतै भिडे है, तव सूंघिये है।

तातै नेत्र अर मन इन दोऊनिविना अवशेष चार इंद्रियनिकें व्यंजनावग्रह के वहु आदिक विषयनिकी अपेक्षा ४८ भेद होय है। नेत्र और मन विना शेष चार इंद्रियद्वारें अव्यक्त पदार्थनिका एक व्यंजनावग्रह ही होय है। अप्रकट पदार्थनिका प्रकट अर्थावग्रह हुये विना ईहादिक नाही होय है।

इस प्रकार व्यंजनावग्रहके चार इंद्रिय द्वारा (४×१२=४८ भेद) होय है। अर्थावग्रह-ईहादिक ज्ञान छह इंद्रियद्वारा होय है तातै ६×१२=७२ प्रकार अर्थावग्रह-७२ प्रकार ईहा ७२ प्रकार अवाय ७२ प्रकार धारणा ऐसे कुल ४८+२८८=३३६ मतिज्ञान के भेद हो है।

वहुरि इहां इंद्रियनिके प्राप्यकारी-अप्राप्यकारीपणाकी विशेष चर्चा-श्रोत्रादिक द्रव्यैंद्रियनिके आकार, रचना इंद्रियनिके विषयनिका क्षेत्र परिमाण, राजवार्तिक ग्रन्थमें विशेष वर्णन किया है तहांतै जानना।

वहुरि श्रोत्रइंद्रिय का आकार जवकी नालीसमान है। घ्राण इंद्रियका अतिमुक्तक चंद्रक तथा तिलके पुष्पसमान आकार है। रसना इंद्रियका खुरपा समान आकार है। स्पर्शन इंद्रिय सर्व अंगव्यापी है तातै याके अनेक आकार है। चक्षुरिंद्रियका मसूरके समान आकार है। ऐसे मतिज्ञानका स्वरुप कहा। आगे श्रुतज्ञान कहने योग्य है सो कहे है–

श्रुतं मतिपूर्वं व्द्यनेक द्वादशभेदं ॥२०॥

अर्थ– श्रुतज्ञान है सो मतिपूर्वक है। दोय भेद रुप है। १ अंगवाह्य २ अंगप्रविष्ठ।

उनमें १ अंगवाह्य अनेक भेद रुप है। २ अंगप्रविष्ठ बारह भेद रुप है।।

पहले मतिज्ञान होय है पाछै श्रुतज्ञान होय है। यह नियम है। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमें मूल अक्षर तो ६४ है। तिनमें ३३ व्यंजन हैं। और २७ स्वर है। ४ योगवाह है। ऐसे ६४ मूल अक्षर है। तिनिके संयोग जनित-द्विसंयोगी-त्रिसंयोगी-चतुसंयोगी इत्यादि चौसठ संयोगी पर्यंत अपुनरुक्त भंग समस्त भंग जोडिये तब- १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ एकठ्ठी संख्या प्रमाण होय है। एक कम द्विरुप वर्गधाराका छठा स्थान होय हैं।

१) २×२=४ २) ४×४=१६ ३) १६×१६=२५६

४) २५६×२५६=६५५३६ (पण्णठ्ठी) ५) ६५५३६×६५५३६=४२९४९६७२९६ (वादल)

६) वादाल × वादाल = एकठ्ठी

इतने अक्षरनिके अपुनरूक्त एकसे एक मिलै नाही ऐसे अक्षर जानने। ये समस्त श्रुतके अक्षर कहे। तिनको परमागम प्रसिद्ध जो मध्यमपद ताके अक्षरनिका प्रमाण १६३४ कोटी, ८३ लाख, ०७,८८८ इनिका भाग दीयें- ११२ कोठी, ८३ लाख, ५८,००५ ये तो अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञाननिके पदनिका प्रमाण है। वह तो द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान है। अर अवशेष अक्षर ८, ११, १८ १७५ अक्षर रहे ते अंगवाह्य श्रुतज्ञान है। अंगबाह्य श्रुतज्ञान के चौदह प्रकीर्णक, दश वैकालिक उत्तराध्ययन आदि भेद है।

वहुरि अंगप्रविष्ट के वारह भेद है।

१) आचारांग- (१८,००० पद) आचारांगका निरूपण है।

२) सूत्रकृतांग- (३६,००० पद) विनयादिक तथा धर्मक्रियाका निरूपण है।

३) स्थानांग- (४२,००० पद) जीवके स्थानोका निरूपण है।

जैसे- जीव चेतनासामान्य करि सव जीव एक प्रकार है।

सिद्ध- संसारी अपेक्षा दोय प्रकार है। संसारी जीव त्रस-स्थावर अपेक्षा दोय प्रकार है। स्थावर-विकलेंद्रिय-सकलेंद्रिय अपेक्षा तीन प्रकार है। इत्यादि स्थानका वर्णन है।

४) समवायांग- (१,६४,००० पद) द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा समानता का वर्णन है।

जैसे- १) द्रव्यकरि- धर्म-अधर्म द्रव्य समान हैं।

२) क्षेत्रकरि- मनुष्यक्षेत्र-प्रथमनरक इंद्रकबिल-प्रथमसर्ग इंद्रक विमान समान है।

टीप- (गो-जी ३५४ गाथा)

एकठ्ठच्चच य छस्सत्तयं च च य सुण्ण सत्त तियसत्ता।
खुण्णं णवपण पंच य एक्कं छक्केक्क गोंयपणगंच ।।३५४।।

३) कालकरि– उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी समान हैं।

४) भावकरि– केवलज्ञान-केवलदर्शन समान है।

५) व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग– (२,२८,००० पद) अस्ति-नास्ति आदि साठ हजार प्रश्न गणधर देव तीर्थंकर भगवान के निकट किए ताका वर्णन।

६ ज्ञातृधर्मकथा अंग– (५,५६,००० पद) तीर्थंकरनिके धर्म की कथा-जीवादिक पदार्थनिका स्वभाव का वर्णन गणधर प्रश्ननिके उत्तरका वर्णन।

७) उपासकाध्ययन अंग– (११,७०,००० पद) ग्यारह प्रतिमा-श्रावक के व्रत-शील आचार-क्रिया मंत्र- उपदेशादिक का वर्णन।

८) अंतकृद्दशांग– (२३,२८,००० पद) एक एक तीर्थंकर निके वारै दश दश महामुनि तीव्र उपसर्ग सहन करि कर्मनिका नाश करि संसारका अंत करते भये। तिनका वर्णन।

९) अनुत्तरोपपादक दशांग– (९२,४४,००० पद) एक एक तीर्थंकर निके वारै दश दश महामुनि धारे उपसर्ग सहकरि विजयादिक पाच अनुत्तर विमान मे उत्पन्न भये तिनका वर्णन।

१०) प्रश्न व्याकरण अंग– (९३,१६,००० पद) अतीत-अनागत काल संबंधी लाभ-अलाभ सुख-दुःख, जीवित मरण आदि शुभाशुभ प्रश्न ताके उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन– आक्षेपिणी-विक्षेपिणी-संवेदिनी निर्वेदिनी चार प्रकारकी कथाका वर्णन।

११) विपाकसूत्र अंग– (१ कोटि, ८४ लाख,००,००० पद) कर्मनिका बंध उदय सत्ता- तीव्र-मंद अनुभाग द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा करि वर्णन हैं।

१२) दृष्टिवाद अंग– (१०८ कोटि, ६८ लाख, ५६,००५ पद) ताके पांच भेद हैं--
१. परिकर्म २. सूत्र ३. प्रथमानुयोग ४. पूर्व ५. चुलिका

१) परिकर्म– ताके ५ भेद है।

१) चंद्रप्रज्ञाप्ति– (३६,००० पद) चंद्रमाका गमनादिक, तथा परिवार- आयु कालकी वृद्धि-हानि, देवी-वैभवादिक ग्रहणादिक का वर्णन।

२) सूर्यप्रज्ञाप्ति– (५.०३,००० पद) सूर्य की ऋद्धि-वैभव देवी परिवार ग्रहणादिक का वर्णन।

३) **जंबूद्वीप प्रज्ञाप्ति–** (३,२५,००० पद) जंबूद्वीपसंबंधी मेरु पर्वत क्षेत्र कुलाचल ह्रद-नदी इत्यादिक का वर्णन।

४) **द्वीपसागर प्रज्ञाप्ति–** (५२,३६,००० पद) समस्त दीप-सागर निका वर्णन, तहां तिष्ठते भवन व्यंतर-ज्योतिष्क निके आवास-जिन मंदिरका वर्णन।

५) **व्याख्याप्रज्ञाप्ति–** (८४,३६,००० पद) जीव-अजीव पदार्थनिके प्रमाण संख्याका वर्णन।

२) **सूत्र–** (८८,००,००० पद) मिथ्यादर्शनसंबंधी ३६३ मिथ्यावाद।

तिनका पूर्वपक्ष लेयकरि जीवपदार्थ आदि उपरि वर्णन– जैसे जीव अबंधक ही है। अकर्ता ही है। निर्गुण ही है। अभोक्ता ही है। स्वप्रकाशक ही है। परप्रकाशक ही है। अस्ति-रूप ही है। नास्तिरूप ही है। इत्यादि एकांत पक्षपात को दूरिकरि यथार्थ स्वरूपका वर्णन।

३) **प्रथमानुयोग–** (५००० पद) चोवीस तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती, नव-नारायण, नव प्रति-नारायण, नव वलभद्र, इन त्रेसठ शलाका पुरुषनिका वर्णन।

४) **पूर्व–** ताके चौदह भेद है।

१) **उत्पादपूर्व–** (१ कोटि पद) जीव पुग्दल कालादिक पदार्थनिका जिस कालमे, जिस क्षेत्रमे जैसे पर्यायनिकरी उत्पाद व्यय-ध्रौव्यादि हो है ताका वर्णन।

२) **अग्रायणी पूर्व–** (९६ लाख पद)सप्त तत्व, नवपदार्थ षट्द्रव्य, सुनय-दुर्णय आदिका वर्णन।

३) **वीर्यानुवाद पूर्व–** (७० लाख पद) आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, काल-वीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्य इंद्रादिकनिका ऋद्धि, नरेंद्र-चक्रवर्ती-वलदेवनिका वर्णन।

४) **अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व–** (६० लाख पद) जीवादिक वस्तुनिके स्व-परद्रव्य-क्षेत्र-काल भाव अपेक्षा करि अस्ति-नास्ति आदि विधि-निषेध करि सप्तभंग करि स्यात् शद्बकरि विरोध मेटनेरुप मुख्य गौण वर्णन है।

५) **ज्ञानप्रवाद पूर्व–** (१ घाटि १ कोटि पद) मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल इति पांच ज्ञाननिका कुमति-कुश्रुत-विभंग अवधिनिका स्वरूप-संख्या-विषय-फल निका वर्णन।

६) **सत्यप्रवाद पूर्व–** (१ कोटि ६ पद) वचन गुप्ति अर वचन वल के कारण अर द्वादश प्रकार भाषा, वक्ताके भेद वहुत प्रकार असत्यके भेद, दश प्रकार सत्यके भेदका वर्णन

७) **आत्मप्रवाद पूर्व–** (३६ कोटि पद) जीव नामक आत्मा पदार्थ है ताके कर्ता-भोक्ता

अनेक धर्मनिका निश्चिय व्यवहार अपेक्षा वर्णन है ।

जैसे– व्यवहारनय करि चार प्राण वा दश प्राण धारै हैं। निश्चयकरि चैतन्यप्राणकू धारै हैं । तीन काल विषै प्राण धारण किया, करै है, करेगा सो जीव है । व्यवहार करि शुभाशुभ कर्मका कर्ता है । निश्चयकरि निजपरिणतिका कर्ता है । व्यवहार करि सत्य-असत्य वचन का वक्ता है । निश्चय करि वक्ता नाही हैं । दोऊ नय निकरि बाह्य अभ्यंतर प्राण पाइये है। तातै यह प्राणी कहिये है । व्यवहारनय करि शुभाशुभकर्मका फल सुख-दुःख का भोक्ता है । निश्चयनयकरि निजस्वरूपकू भोगावे है तातै भोक्ता है। व्यवहारनयकरि कर्म-नोकर्मरूप पुग्दलनिकू पूरण-गलन करे है तातै पुग्दल हैं । निश्चयनयकरि कर्म-नोकर्म नाही है । दोऊनयनिकारी त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयको वेत्ति कहिये जानें है तातै वेदक कहिये है । वहुरि व्यवहारकरि अपने देह को वा केवल समुद्घात करि सर्व लोक को वेष्टि कहिये व्यापै है । निश्चयनय करि ज्ञानतै सर्व लोककू व्यापै है तातै विष्णू कहिये । यद्यपि व्यवहारकरि कर्म के वशतै संसार विषै भ्रमण करे है तथापि निश्चयनय करि सदा आत्मप्रदेशनिमें तिष्ठे है, अपने ज्ञान दर्शन स्वभावरूप ही करि परिणामे है तातै स्वयंभू कहिये । बहुरि व्यवहारकरि औदारिकादि शरीर याके है तातै शरीरी कहिये । निश्चयकरि शरीरी नाही है । अशरीरी है । अथवा ज्ञान शरीरी हैं । व्यवहारनयकरि मनुष्यादि पर्यायरूप परिणमे है तातै मनुष्य तिर्यंच देव कहिये है । निश्चयकरि मनुष्यादिरूप नाही होय है । सदा आत्मारूप ही रहे है । अथवा मनु कहिये ज्ञान तिसविषै वर्तै है तातै मानव कहिये । इत्यादि आत्माके स्वभावका कथन है ।

८) कर्मप्रवाद पूर्व– (१ कोटि ८० लाख पद) ज्ञानावरण आदि कर्मकी मूल प्रकृति इनका बंध-उदय-सत्ता-उदीरणा-उत्कर्षण-अपकर्षण-संक्रमण-उपशम-निधत्ति-निःकांचित अवस्था का वर्णन ।

९) प्रत्याख्यान पूर्व– (८४ लाख पद) नाम-स्थापना-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावतै आश्रयकरि आदि पुरुषके संहनन-वल आदिके अनुसार करि परिमित कालपर्यंत अथवा अपरमित-आम रणकालतक सावद्य वस्तूका त्याग-उपवास इनकी भावना पांच समिति, तीन गुप्तिका वर्णन है ।

१०) विद्यानुवाद पूर्व– (१ कोटि १० लाख पद) अंगुष्ठ प्रसेनादि ७०० अल्पविद्या-रोहिणी ५०० महाविद्या इनका स्वरूप-सामर्थ्य-साधनभूत मंत्र-यंत्रादिक अर सिद्ध भई विद्यानिक फल इनका वर्णन है । तथा अष्टांग निमित्त ज्ञानका वर्णन है ।

११) कल्याणवाद पूर्व– (२६ कोटि पद) तीर्थंकर-चक्रधर-बलदेव-वासुदेव इनके गर्भा-

तरणादि पंच कल्याणिक महोत्सव, पुण्यविशेषका हेतु षोडशकारण भावना, तपश्चरण तथा चंद्र-सूर्यादि ग्रह-नक्षत्रनिके गमन, ग्रहण, शकुन आदिका फल वर्णन है।

१२) **प्राणवाद पूर्व**– (१३ कोटि पद) अष्ट प्रकार वैद्यक चिकित्सा-भूतादिक व्याधि दूरि करनेका कारण मंत्र-तंत्रादिक-विष दूरि करनहारा गारुडविद्यादिक-तथा स्वरोदयादिक, दशप्राणनिके उपकारक-अनुपकारक द्रव्यनिका-गति-आदिकनिका वर्णन है।

१३) **क्रियाविशाल पूर्व**– (९ कोटि पद) संगीत शास्त्र छंद-अलंकार-आदि पुरुषकी ७२ कला अर शिल्पकला आदि चातुर्यता, स्त्रीनिका ६४ गुणनिका, गर्भाधानादि ८४ क्रिया, सम्यग्दर्शनादि १०८ क्रिया. देववंदनादिक २५ क्रिया निमित्त-नैमित्तिक क्रियाका वर्णन।

१४) **त्रिलोक बिंदु सार पूर्व**– (१२ कोटि ५० लाख पद) तीन लोक का स्वरुप, षड्विंशति परिकर्म, आठ प्रकार-व्यवहार गणित, चार प्रकार बीज गणित-मोक्षका कारण-भूत क्रिया-मोक्ष सुखका वर्णन है।

५) चूलिका – ताके ५ भेद है।

१) **जलगता** – (२ कोटि, ९ लाख, ८९, २०० पद) जलका स्तंभन करना, जलविषै गमन करना, अग्निका स्तंभन, अग्निप्रवेश, अग्निभक्षण इत्यादिके कारण रूप मंत्र तंत्रादिक का प्ररूपण है।

२) **स्थलगता** – (२ कोटि ९ लाख ८९,२०० पद) मेरुपर्वत-भूमि इत्यादिकनिमे प्रवेश करना-शीघ्र गमन करना, इत्यादि क्रियाके कारणभूत मंत्रतंत्र-आदिका प्ररूपण है।

३) **मायागता** – (२ कोटि ९ लाख ८९,२०० पद) मायामयी इंद्रजालादिक क्रिया के कारणरूप मंत्र-तंत्र आचरणादिका प्ररूपण है।

४) **रुपगता**– (२ कोटि ९ लाख ८९,२०० पद) सिंह-हस्ती घोडा-बैल-हरिण आदिके रूप पलटनेका कारण मंत्र-तंत्र तपश्चरणादिका प्ररूपण है।

५) **आकाशगता**– (२ कोटि ९ लाख ८९,२०० पद) आकाशमें गमनादिक का कारणभूत मंत्र तंत्र-तपश्चरण आदिका वर्णन है।

ऐसे अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानका वर्णन कहा।

अब अंगबाह्य श्रुतके ८ कोटि, ०१ लक्ष, ०८१७५ प्रमाण अक्षर रहे ताके चौदह प्रकीर्णक है।

१) **सामायिक**– नाम स्थापना-द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव करि षट् प्रकार सामायिक का वर्णन।

२) **संस्तव** – तीर्थंकरनिके पंचकल्याणक चौतीस अतिशय-अष्ट प्रात्तिहार्य परमऔदारिक दिव्य देह, समवसरण, धर्मोपदेश आदि तीर्थंकरनिके माहात्म्यका प्रकट करनेवाला स्तवन का वर्णन है।

३) **वंदना**– तीर्थंकर का आश्रयके अर्थि प्रतिमा चैत्यालय आदिका स्तवन-वंदनाका वर्णना-

४) **प्रतिक्रमण**– दैवसिक-रात्रिक-पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिक ऐर्यापथिक-उत्तमार्थ-कहिये संन्यास मरण अवसर विषै संपूर्ण पर्यायमें उपजे दोष तिनका निराकरण अर्थि प्रतिक्रमण ताका वर्णन है।

५) **विनय**– दर्शन-ज्ञान चारित्र-तप-उपचार ऐसें पाच विनयका वर्णन हैं।

६) **कृतिकर्म**– जिन पूजनादि क्रियाके विधानका वर्णन, अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु–जिनधर्म–जिनप्रतिमा, जिनवचन, जिनमंदीर, ये जे नव देवता तिनकी वंदनाके अर्थि तीन प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार शिरोनति, बारह आवर्त इत्यादि नित्य-नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है।

७) **दशवैकालिक**– साधुनिके आचारके गोचर आहार की शुद्धिका वर्णन है।

८) **उत्तराध्ययन**– चार प्रकारका उपसर्ग बावीस परिषह सहनेका विधान-इनका फलवर्णन है।

९) **कल्प्य व्यवहार**– साधुनिके योग्य आचरण विधान-अयोग्य सेवन होते प्रायश्चितका वर्णन है।

१०) **कल्प्याकल्प्य**– द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकै अनुकूल साधुके योग्य-अयोग्य आचरणका विधान है।

११) **महाकल्प**– उत्कृष्ट संहनन सहित जिनकल्पी साधुनिके द्रव्य-क्षेत्र-कालभावके योग्य त्रिकाल योगादिका आचरण वर्णन, स्थविरकल्पी साधुनिका दीक्षा-शिक्षा गणपोषण, आत्मसंस्कार-सल्लेखना-उत्तमार्थ स्थान गत उत्कृष्ट आराधनाका वर्णन हैं।

१२) **पुंडरीक**– चार प्रकारके देवनिमे उपजनेका कारण दान-पूजा, तपश्चरण-अकाम निर्जरा-सम्यक्त्व-संयम-आदिका वर्णन देवनिके उपपादस्थानका वैभव वर्णन।

१३) **महापुंडरीक**– इंद्र प्रतींद्रादिक में उत्पत्तिका कारण तपश्चरणादिक का वर्णन।

१४) **निषिधिका**– प्रमाद जनित दोष दूरि करनेके अर्थि प्रायश्चित्तादिक का वर्णन हैं।

ऐसे अंग प्रविष्ट अर अंगवाह्य श्रुतज्ञान है सो प्रमाण है। तहां वचनरूप शब्दात्मक

द्रव्यश्रुत है। सो ज्ञानस्वरूप भावश्रुतका कारण है। श्रुतज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है। सो द्रव्य-गुण-पर्यायके विशेषसहित सर्व पदार्थनिको केवलज्ञान की तरह सत्यार्थ प्रकाशे है। जैसा केवलज्ञान करि प्रत्यक्ष जाने तैसा ही श्रुतज्ञानकरि परोक्ष जाने है।

अव तीन प्रकारका कहा जो प्रत्यक्ष प्रमाण तिसमें अवधिज्ञान के दो भेद है। १ भव प्रत्यय २ गुण प्रत्यय। उसमे प्रथम भेद भवप्रत्यय का स्वामी कहे है-

भवप्रत्ययो ऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥

अर्थ-- देव अर नारकीनिके भवप्रत्यय अवधिज्ञान होय है। जातै अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय के क्षयोपशम होते संते यह अवधिज्ञान होय है। सो क्षयोपशम तो व्रत-नियम तपश्चरणतै होय है। अर देवनारकीनिके तो व्रत-नियम-तपश्चरणादिक है नही। तातै देव-नारकीनिके अपना देव-नारक का भव-पावना ही क्षयोपशमका कारण है। तातै भवप्रत्यय नामकं अवधिज्ञान देवनारकीहिके होय है। सो देशावधि है। देवनारकी निके अवधितै जानना समस्तनिके समान नही है। जैसा जैसा क्षयोपशम तैसा तैसा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादाम केई रूपी द्रव्यकू ही अवधितै जाने है। मिथ्या दृष्टिका अवधिज्ञान विभंगावधि कहावे है।

अव क्षयोपशम निमित्तक गुणप्रत्यय अवधिज्ञान कौनके हो है याका सूत्र कहे है-

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

अर्थ-- अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय का विशेष क्षयोपशम है निमित्त जाकू ऐसा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान षट् प्रकार है। सो शेष जो मनुष्य-तिर्यंच तिनके होय है। सो समस्त मनुष्य-तिर्यंचनिके नही होय है। सैनी-पंचेंद्रियके ही होय है।

अर सम्यग्दर्शनादिक निमित्तकूं होतैसंतै कोऊकै अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होतैं होय है। तातैं गुणप्रत्यय कहिए है। सो गुणप्रत्यय अवधि छह भेदरुप है। १ अनुगामी। २ अननुगामी। ३ वर्द्धमान। ४ हीयमान। ५ अवस्थित। ६ अनवस्थित। तहां जो अवधिज्ञान अपना स्वामी जीवकै साथिही गमन करै ताकूं अनुगामी कहिए। ताके तीन भेद है। १ क्षेत्रानुगामी। २ भवानुगामी। ३ उभयानुगामी।

तहां जिस जीवकै जिस क्षेत्रविषै अवधिज्ञान उपजा तिस जीवकूं अन्य क्षेत्रमै गमन करतै साथिही गमन करैं सो क्षेत्रानुगामी है। वहुरि जो परभवकूं गमनकरते जीवक परलोकपर्यंत अवधि जाय सो भवानुगामी है। वहुरि जो अवधि अन्य क्षेत्रविषैंभी साथि जाय अर अन्यभवविषैंभी साथि जाय सो उभयानुगामी है। बहुरि जो अवधिज्ञान अपना स्वामी जीवकै साथि गमन नही करै सो अननुगामी अवधि है। ताके तीन भेद है। १ क्षेत्राननुगामी।

२ भवाननुगामी। ३ उभयाननुगामी। तहां जो अन्य क्षेत्रविषै गमन करता जीवकै साथि न जाय सो क्षेत्राननुगामी है। वहुरि जो अन्य भवविषै गमन करता जीवकै साथि नही जाय सो भवाननुगामी है। वहुरि जो अन्यक्षेत्रविषै गमन करता जीवके साथि नही जाय वा परभवविषैभी साथि नही जाय सो उभयाननुगामी है।

वहुरि जो सम्यग्दर्शनादि गुणरूप विशद्धपरिणामनिकी वृद्धि होनेतै जिस प्रमाणको लीए उपज्या तातै वधताही चल्याजाय सो वर्धमान अवधिज्ञान है। वहुरि जो सम्यग्दर्शनादि गुणकी हानि अर संक्लेशपरिणामनिकी वृद्धिके योगतै जो ज्ञान घटताही जाय सो हीयमान अवधिज्ञान है। वहूरि जो अवधिज्ञान जेते परिणामको लीए उपजै तेताही रहै घटै वधै सो नही सो अवस्थित अवधिज्ञान है। बहुरि जो अवधिज्ञान जेते परिणामको लीए उपजै तातै घटैभी वधैभी। जैसे पवनका वेगकरि प्रेष्या जल वारवार हानिवृद्धिरुप होय तैसै अनवस्थित अवधिज्ञान है। ऐसै गुण-प्रत्ययदेशावधिज्ञान है ते छह भेदरुप है। अथवा प्रतिपाती अप्रतिपाती भेदसहित आठ भेदरूपभी है।

वहुरि आगमविषै देशावधि परमावधि सर्ववधि ऐमा भेद कह्या है। तिनमै देशावधि छह भेदरूप वा आठ भेदरुप जानना। अर परमावधि सर्वावधि केवलज्ञान उपजे तहांतांई अनुगामी हैही। अर परमावधि सर्वावधिका धारक अन्य भव नाही धारै तातै भवांतरकी अपेक्षा अननुगामी कहिए अर ए दोऊ अप्रतिपातीही है। केवलज्ञान उपजै तहांतांई छूटै नहीं। वहुरि परमावधि है सो वर्धमानस्वरूपही है हीयमान नाही। वहुरि परमावधि सर्वावधि है सो चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी संयमीमुनीहीकै होय हैं। अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनिकै नही होई। इनिकं देशावधिहीकी योग्यता है। बहुरि परमावधि सर्वावधि दोऊ गुणप्रत्ययही है। उत्कृष्ट संयमादि गुणनितैंही उपजै है। अर देशावधिज्ञान गुणप्रत्यय, भवप्रत्यय दोऊं प्रकार होय है। वहुरि जों भवप्रत्यय अवधिज्ञान है सो नारकीनिकै देवनिकै चरमभवधारक तीर्थंकरनिकै होय है। सो सर्व आत्माके प्रदेशनिमै तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशतै समस्त अंगतै उपजैहै। अर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है सो पर्याप्तमनुष्यनिकै तथा संज्ञीपंचेद्रिय पर्याप्ततिर्यंचनिकै उपजै है सौ नाभीकं ऊपरि शंख पद्म वज्र स्वस्तिक मत्स्य कलशादिक शुभचिन्हकरि सहित आत्माके प्रदेशनिमै तिष्ठता जों अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यांतराय तथा क्रर्मके क्षयोपशमतै उत्पन्न होय हैं। बहुरि अवधि नाम मर्यादका है सो ये अवधिज्ञान द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्याद लीए होय है सो इस द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाण गोमटसारतै वां राजवार्तिकतै जानना। ऐसे अवधिज्ञानका वर्णन कीया। अंव मनःपर्ययज्ञानका भेदादि कहनेकूं सूत्र कहैं है।

॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

अर्थप्रकाशिका—ऋजुमतिमनःपर्यय अर विपुलमत्तिमनःपर्यय ऐसै मनःपर्ययके दोय

भेद है। मन वचन कायका सरलपणाकरि मनमैं तिष्ठता रूपीपदार्थं तथा परके मनमैं तिष्ठता पदार्थकूं जाणै सो ऋजुमतिमनःपर्यय है। वहुरि सरल तथा वक्र रूप परके मनमै तिष्ठता रूपीपदार्थकूं जानै सो विपुलमतिमनःपर्यय हैं। देव मनुष्य तथा तिर्यंच इनि सवनिके मनविषै प्राप्तभया रूपीपुद्गलद्रव्य तथा संसारी जीवद्रव्य तिन समस्तनिकूं मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्ष जानै है।

तहां ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान तीन प्रकार है। १ सरलमनकरि कीया अर्थकूं जानै २ सरल वचनकरि कीया अर्थकूं जानै। ३ सरलकायकरि कीया अर्थकूं जानै ऐसें तीन प्रकार है। जैसे कोऊ पुरुष मनकरि कोऊ पदार्थको चिंतवन कीया तथा धर्मादिसंयुक्त वचन तथा लौकिकवचनकूं भिन्नभिन्न अक्षरनिकरि उच्चारण कीया तथा दोऊ लोकके कार्य प्रकट करनेकै अर्थि अपने अंग उपांगनिका पकटना खैंचना पसारणा इत्यादिक कार्यकी चेष्टाकरि अर फेरि लगतेही समयविषै वा वहुतकाल व्यतीत भए तिसके विस्मरण होनेतै तिसही अर्थके चिंतवन करनेकूं वा तिसही वचनके कहनेकूं वा कायकी चेष्टा करनेकूं समर्थ नही होय। तिस पदार्थकूं वचनकूं कायकी चेष्टाकूं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी पूछे वा नही पूछे समस्तकूं जो तुमन ऐसी विधकरि ऐसा पदार्थकूं चिंतवन कीया है वा कह्या है वा कायकरि कीया है। ऐसा जानना है। वा आपका तथा परका चितवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ अलाभादिकनिकूं जाणै है। चिंतवनादिकरि जिस अर्थकूं मन वचन कायकी चेष्टादिकनिमे जिस अर्थकूं प्रक कीया तिसहीकूं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान जाणै अर अप्रकटकूं नही जानै। कालकरि तो जीवोंका तथा आपका दो तीन भव तो जघन्यकरि जानै अर उत्कृष्ट सप्त अष्ट भव जानै। गमन आगमन करिकै अर क्षेत्रतै जघन्यकरि तीन कोश ऊपरी अर नवकोशकै अभ्यंतरही जानै। अर उत्कृष्टकरि तीन योजनकै ऊपरी अर नव योजनकै मांहि जानै।

वहुरि विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान सरल अर वक्र मन वचन कायके विषयतै छह प्रकार है। तथा आपका अर परजीवननिका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ अलाभादिक अव्यक्त मनकरि तथा व्यक्त मनकरि चिंतवन कीया वा नही चिंतवन कीया वा चिंतवन करैगा तिन सबनिकूं विपुलमतिज्ञानी जानै है। कालकरि जघन्य तो सात आठ भव जानै उत्कृष्ट असंख्यात भवगति आगतिकरि प्ररूपण करै। क्षेत्र थकी जघन्य तो तीन योजन उपरि नव योजना मांहि जानै उत्कृष्टकरि मानुषोत्तरपर्वतकै मांहि जानै बाहिरले पदार्थकूं नही जाने। अर गोमटसारके कथनमै पैतालीस लाख योजन घनरुप जाने है। ऐसै वर्णन कीया है जो पैतालीस लक्ष चोडा लंबा ऊंचा क्षेत्रमें वर्त्तते अर्थकूं जानै है। ऐसे दोय प्रकार मनःपर्यय ज्ञान वर्णन कीया तिनम परस्पर भेद दिखावनेकूं सूत्र कहे है।

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥

अर्थप्रकाशिका– विशुद्धिता अर अप्रतिपात इनि दोयविशेषनिकरि इनि दोऊनिमै

विशेष कहिए अधिकता है । मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं जो आत्माकी उज्वलता सो विशुद्धिता है । अर संयमपरिणामकी घटवारी हानिपना सो प्रतिपात है । अर जो प्रतिपात है नही होय सो अप्रतिपात है । तहां ऋजुमतिज्ञानतैं विपुलमतिमनःपर्ययकी विशुद्धिता अधिक है । अर ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी तो प्रतिपातीभी है छूटिभी जाय है । अर विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी अप्रतिपातीही है । विपुल मतिमनःपर्यय होय ताकै चारित्र वर्द्धमानही होय है । प्रतिपात नहीं होय है केवलज्ञानही उपजावै है । अर सर्वावधिज्ञानकरि जो कार्मणद्रव्यका अनंतमा भाग रूपी-द्रव्यकूं जानै है ताका अनंतमा भाग ऋजुमतिमनःपर्यय जाने हैं । अर ताका अनंतमाभागकूं विपुलमति जाने हैं । ऐसे ऋजुमति विपुलमति मनःपर्ययज्ञानमें विशेष जानना । अब अवधिज्ञान अर मनःपर्ययज्ञान इनमें काहेतें विशेष है इस हेतूतैं सूत्र कहे है ।

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययोः ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका–अवधिज्ञान अर मनःपर्यय ज्ञान इनि दोऊनिमें विशुद्धि क्षेत्र स्वामी अर विषय इनि च्यार भेदनितें भेद हैं। जातैं अवधिज्ञान जो रूपीद्रव्यकौ जाने है ताकैं अनंतभागभी सूक्ष्म रूपीद्रव्यकौं मनःपर्ययज्ञान जानैं है। तातैं अवधिज्ञानतैं मनःपर्ययज्ञान विशुद्ध है निर्मल है । बहुरि अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनालीपर्यंत है। अर विषयका क्षेत्र सर्व लोक है । अर मनःपर्ययज्ञान मनुष्यलोकहीमें उपजैं है । अर पैंतालीस लाख योजन घनरूपही याका विषयका क्षेत्र है । वहुरि अवधिज्ञान च्यारों गतिके सैनीपंचेंद्रियजीवनिके होय है । अर मनःपर्ययज्ञान गर्भमनुष्य कर्मभूमीके पर्याप्तनिकैंही उपजं । अर भावलिंगी संयमीनिकैंही उपजं अर संयमीनिमैंहू जे वर्द्धमान चारित्रहीमैं उपजै हीयमानमें नही उपजै । अर वर्द्धमान चारित्रके धारकनिमैंहू सप्तप्रकारकी ऋद्धिमैतैं एक दोय तीन इत्यादिक ऋद्धि उपजी आइ होय तिनकैंही मनःपर्ययज्ञान होय । ऋद्धिधारी विना नहीं होय । अर ऋद्धिधारी-निमैंहू केईकनिकैंही उपजै है । समस्त ऋद्धिधारीनिकैं नही उपजै है । वहुरि विषयकी अपेक्षा भेद है ताका सूत्र आगैं कहसी । ऐसें अवधि मनःपर्यय ज्ञानमें विशुद्धतादिकनितैं भेद दिखाया । अब केवलज्ञानका लक्षण कहनेका अवसरकूं उल्लंघनकरिकैं ज्ञाननिका विषयका नियमकूं कहै हैं जातैं केवलज्ञानका स्वरूप मोक्षतत्वका वर्णनरूप दशम अध्यायमें वर्णन करसी । अब मति-श्रुतज्ञानका विषयअर्थि सूत्र कहे है ।

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका– मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान इनि दोऊनिका विषयका नियम द्रव्यनिकें असर्वपर्यायनिविषै है । समस्तपर्यायनिकूं नहीं जाने है । इहां सूत्रमें विषय शब्द नही है सो "विशुद्धिक्षेत्र" इत्यादिसूत्रतै अनुवृत्ति आई है । सो जाननी । इहां "द्रव्येषु" ऐसा बहुवचनतैं जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाश ए समस्त द्रव्य ग्रहण करनें तिनके असर्वपर्याय कहिए

केईक पर्याय लेने सर्व पर्यायनिसहित इनका विषय नाही है। जातै एक एक द्रव्यके अनंत अनंत त्रिकालसंबंधी पर्याय है। इहां कोऊ कहै, धर्मास्तिकायादिक अमूर्तिक द्रव्य है सो मतिज्ञानका विषय कैसे होय। यातै सर्वद्रव्यनिविषै मतिज्ञान प्रवर्त्तै है ऐसे कहना अयुक्त है। ताकूं कहिए ए दोष नाही है। जातै अनिंद्रिय कहिए मन नामा अंतरंग करण है द्रव्यमन है तिसका अवलंवनका धारक नोइंद्रियावरणकर्मके क्षयोपशमरूप लब्धिपूर्वक उपयोग है। सो अवग्रहादिरूप पहलै उपजै है पाछै तत्पूर्वक श्रुतज्ञान सर्वद्रव्यनिविषै आपकै योग्य पर्यायनिविषै प्रवर्त्तै है ऐसा जानना। अव याकै अनंतर अवधिज्ञानका विषयनिबंध कहां है यातै सूत्र कहे है।

रूपिष्ववधेः ॥२७॥

अर्थ प्रकाशिका– अवधिज्ञानका विषयका नियम रूपीपदार्थनिविषै है। इहां सूत्रविषै विषयनिबंध शब्दकी अनुवृत्ति पहिले सूत्रमैं लेनी। तथा 'सर्वपर्यायेषु' इस पदकीहू पूर्वसूत्रतै अनुवृत्ति लेणी। वहुरि रूपी कहनेतै पुद्गलद्रव्य ग्रहण करना पुद्गलकीही कितनेक पर्यायनिकौ जानै है। वहुरि पुद्गलद्रव्यका संबंधसहित जीवद्रव्यहुकूं जानै हैं। मुक्तजीवकूं तथा अन्य अमूर्तिक पदार्थनिकै नही जातै है। अर क्षयोपशमकै योग्य सूक्ष्म स्थूल रूप परणए तथा दूर क्षेत्र वा निकट क्षेत्रमै वर्त्तते तथा अतीत अनागत वर्त्तमान कितनेक पर्यायसहित पुद्गलव्यको साक्षात् प्रत्यक्ष जाने है। अव मनःपर्ययज्ञानका नियम कहनेकू सूत्र कहे है।

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥

अर्थप्रकाशिका——जो रूपीद्रव्य सर्वावधिज्ञानका विषयपणाकरि कह्या तिसका अनंत-भाग करिए तिसका एकभागविषै मनःपर्ययज्ञान प्रवर्त्तै है। याका सामर्थ्य अति सूक्ष्मद्रव्य जाननेका है। इहां कोई कहै सर्वावधिका विषय तो परमाणुपर्यंतका है। अर ताका अनंतवा भागकू मनःपर्ययज्ञान जाने है। सो परमाणूमै अनंतवा भाग कैसे संभवै। ताका समाधान। एक परमाणूमै स्पर्श रस गंध वर्णके अनंतानंत अविभाग परिच्छेद है तिनके घटने वधनेकी अपेक्षा अनंतका भाग संभवै है। अव केंवलज्ञानका विषयनिबंध कहनेकू सूत्र कहे है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥

अर्थप्रकाशिका——केवलज्ञानके विषयका नियम सर्वद्रव्यपर्यायनिविषै है। एक एक द्रव्यनिके त्रिकालसंबंधी अनंतानंत पर्याय है। सो सर्वद्रव्य अर सर्वद्रव्यनिकी त्रिकालवर्ती अनंतानंतपर्यायनिकों अक्रमतै एकै काल प्रत्यक्ष केवलज्ञान जाने है। ज्ञानकी स्वच्छताविषै विना इच्छा सहजही सर्व ज्ञेय प्रत्यक्ष होई हैं। लोक अलोककू जाने है। अर केवलज्ञानमें शक्ति ऐसी है जो अनंतानंत लोक अलोक और होई तो उनहूकू जाननेकू समर्थ है। ज्ञाननिका

विषय तो कह्या अव एक आत्माविषै अपने निमित्ततैं उपजे ज्ञान युगपत् केतेक होय यातै सूत्र कहे है।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

अर्थप्रकाशिका– एक आत्मविषै एककालविषैं युगपत् एक वा दोय तीन च्यार ऐसें विकल्प रूप होय। जहां एक होय तहां केवलज्ञान होय। अर दोई होय तहां मतिज्ञान श्रुतज्ञान होय। तीन होय तहां मति श्रुति अवधि होय। अथवा मति श्रुति मनःपर्यय होय। च्यार होय तो मति श्रुत अवधि मनःपर्यय होय। च्यारिसिवाय नही होय। जातें केंवलज्ञान क्षायिक है। असहाय है। समस्त ज्ञानावरणके क्षयतें होय है। इहां क्षयोपशम ज्ञान कहांतें होय? इहां प्रश्न। जो क्षायोपशमिक ज्ञान तो क्रमवर्ती है। एक कालमें एकही ज्ञान प्रवर्त्तै है। ताका समाधान। जो ज्ञानावरणका क्षयोपशम होतें च्यार ज्ञानकी जाननशक्तिरूप लब्धि तो एक कालमें होय है। अर उपयोग इनिमें एक काल एक ज्ञानस्वरूपही होय है। तथापि इहां उपयोगके पलटनेकी शीघ्रतातें कालका भेद नही जान्या जाय है। अर सूक्ष्म काल भेद है ही। अव ये कहे जे मत्यादिक ते ज्ञाननामकरिही है, की अन्यथाभी है इस हेतुतें सूत्र कहे है।

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

अर्थप्रकाशिका– मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ए तीन ज्ञान है ते विपर्ययभी होय है। विपर्यय नाम मिथ्याका है। इहां सम्यक्ज्ञानका अधिकार है सूत्रमें च शब्द समुच्चयार्थ है। तातें मति श्रुत अवधि ए तीन ज्ञान विपर्ययभी है अर सम्यक्भी हैं। इहां कोऊ पूछें इनकें विपर्ययपणा काहेतें होय ताकूं कहिए है। मिथ्यादर्शनका उदयकरि सहित एक आत्मविषैं समवायसंबंधरूप एकता होतें विपर्यय होय है। कुमति कुश्रुत कुअवधि तथा याकूं विभंगभी कहिए। जंसे कटुकतुंवा गीरसहित होई तामें दुग्ध क्षेपिये तो कटुक हो जाय तैसे मिथ्यादर्शनका उदयसहित आत्मविषै भी ज्ञान होय सो मिथ्याज्ञान होय है। इहां विपर्यय कहनैतें मिथ्याज्ञान कह्या हैं। सो संशय अनध्यवसायभी लेना। तहां मति श्रुत ज्ञानही संशय विपयय अनध्यवसाय होतें कुमति कुश्रुत ज्ञान होय है। अर अवधिज्ञानमें संशय नही होय है कदाचित् अनध्यवसाय होय वा विपर्यय होय है तातें कुअवधि कहिए वा विभंग कहिए। अव कोऊ कहे है। मिथ्यादृष्टीकैंहू रूपादिक विषयका ग्रहणमै व्यभिचारका अभाव है। तातै विपर्ययपणाका अभाव है। जैसे सम्यग्दृष्टि मतिज्ञानकरिकै रूपरसादिकनिकूं ग्रहण करै हैं। तैसे मिथ्यादृष्टीहू मतिअज्ञान जो कुमतिज्ञान ताकरिकै रूपादिकनिकूं ग्रहण करै है। वहुरि जैसे घटादिकनिमें रूपादिकनिकूं श्रुतज्ञानकरि निश्चयकरै है परकूं उपदेश करै है। तैसेही कुश्रुतज्ञानकरि निश्चय करै परकूं उपदेश करै है। तथा जैसे अवधिज्ञानकरि रूपीपदार्थनिकूं निश्चय करै तैसें विभंगज्ञानकरिकैहू निश्चय करै है तातै विपर्ययपणा नहीं। ऐसी शंका होतै सूत्र कहै है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥

अर्थप्रकाशिका– मिथ्यादृष्टीकै विपर्ययज्ञान होय है सो सत्का तथा असत्का विशेषकू नही जाननेतै अपनी इच्छातै जैसेतैसे ग्रहणकरनेतै ऊन्मक्तकीनाई होय है। जैसे मदिरादिकतै उन्मत्त भया पुरुष अपनी इच्छातै जैसेतसे वस्तुको ग्रहण करे है। तैसे मिथ्यादृष्टीभी सत् असत्का विशेष जान्याविना अपनी इच्छातै ग्रहण करे है। सत् कहिए विद्यमान असत् कहिए अविद्यमान अथवा सत् कहिए भली असत् कहिए बुरी ऐसे सत् असत्का विशेषकू नही जानै। सत्को असत् कहै। तथा असत्कू सत् कहै अथवा कहूं सत्कू सत्भी कहे कहूं असत्कूं असत्भी कहे। ऐसै अपनी इच्छातै जैसेतैसे ग्रहणकरि कहै तहां विपर्ययज्ञान कहिए। जैसें मतवाला कोऊ कालमे माताकूं भार्या कहे। कोऊ कालमे भार्याकू माता कहे। कोऊ कालमें भार्याकू भार्याभी कहे। माताकू माताभी कहैं। ऐसें अपनी इच्छातैं मानैं अर निर्णय नही हैं। तहां जो जैसाकूं जैसाभी कहे तो ताकै सम्यग्ज्ञान नाही। जातैं वाकै निश्चयरूप निरधार करि जानना नही है। जातै मिथ्यादृष्टी घटपटादिक पदार्थनिकूं नेत्रादिककरि घटपटादिकही जानै है। अर सम्यग्दृष्टीहूं घटपटादिकनिकूं नेत्रादिकनिकरि घटपटादिकही जाने है। तोहू मिथ्यादृष्टीका घटकू घटरुप जानना मिथ्या है अर सम्यग्दृष्टीका घटकू घटरूप जाननां सम्यक् है। सोही दिखावै है।

यद्यापि नेत्रादिक इंद्रियनितै पदार्थका रूपादिक ग्रहण करना समान है। तोहु मिथ्यादृष्टीके कारणविपर्यय स्वरूपविपर्यय भेदाभेदविपर्यय ए तीन विपर्यय तो है ही प्रथम कारणविपर्ययकूं कहे है। घटादिकनिका रूप तो जैसे है तैसेंही जानैं है परंतु इनिका कारणमें मिथ्यादृष्टि विपरीत कल्पना करै है। ब्रह्माद्वैनवादी तो रूपादिकनिका कारण एक अमूर्तिक नित्य ब्रह्मही है। ब्रह्मतैं भएही मानें है। अर सांख्यमती रूपादिकनिका कारण एक अमूर्त्तिक नित्य प्रकृतिहीकूं कहे है। जो रूपादिक एक प्रकृतिहीतैं उपजैं है। वहुरि नैंयायिक वैंशैषिकमति पृथ्वीआदिके परिमाणुनिमैं जातिभेद माने है। तिनमैं पृथ्वीविषैं तो स्पर्श रस गंध वर्ण च्यार गुण माने है। जलविषैं स्पर्श रस वर्ण तीन गुणही माने हैं। गंध नही मानै है। वहुरि अग्निविषै स्पर्श वर्ण दोय माने है रस गंध नही माने है। अर पवनविषैं स्पर्शगुणही माने है रस गंध वर्ण नही मानैं है। तातैं पृथ्वी जल अग्नि पवन ए च्यार अपनी अपनी जातिके न्यारे न्यारे स्कंधरूप कार्यकूं उत्पन्न करे है। अर बौद्ध है ते पृथ्वीआदि च्यार भूत कहे हैं। अर इनिके स्पर्श रस रूप गंध च्यार भौतिक कर्म हैं। इनि आठनिका समुदायरूप परमाणु होय है। वहुरि चार्वाकमतवाले पृथ्वीके परमाणूनिके तो काठिन्यादि गुण अर जलके परमाणूनिके द्रवत्वादि गुण अर अग्निके परमाणूनिके उष्णत्वादि गुण अर पवनके परमाणूनिके ईरणत्वादि गुण है ते भिन्नभिन्न परमाणु पृथ्वीआदिक भिन्न स्कंधरूप उपजावे है। ऐसे तो घटपटादि पदार्थनिके

कारणनिविषैं विपर्ययपणा माने है।

बहुरि स्वरूपविपर्ययकू कहे है। केई इनि समस्त पदार्थनिके स्वरूपविषैंभी भेद माने है। केतेक तो रूप रसादिककौ निरंश निर्विकल्प मानें हैं। इनिमें अभेद नही माने है। तथा केतेक कहे है जो रूपादिक वाह्यवस्तु हैही नही रूपादिकनिकैं आकार परणया ज्ञानही है। तिस ज्ञानका आलंवनरूप वाह्यवस्तु नाही। कोऊ सर्वथा नित्यही माने है कोऊ अनित्यही माने है। ऐसे मिथ्यादर्शनके उदयतें वस्तुका स्वरूपमें विपर्यय माने है।

बहुरि भेदाभेद विपर्यय माने हैं। ते केई तो कारणतैं कार्यको भिन्नही माने हैं। तथा द्रव्यतैं गुणकूं भिन्नही माने है। तथा कारणतैं कार्यकूं सर्वथा अभिन्नही माने हैं। तथा समस्त द्रव्यनीको व्रह्मतैं अभिन्न माने हैं। इत्यादि भेद अभेदका सर्वथैकांतका पक्षपाती भेदाभेदविपर्यय माने है ऐसे मिथ्यादृष्टीके जाननेविषैं विपरीतता पाइए हैं। तैसेही संशय अनध्यवसायहू होय है जहां शरीरादिक तथा रागादिक परद्रव्यमे अर ज्ञानदर्शनादिरूप आत्मस्वभावमे स्वपरकी निर्णय नही जो मैं ज्ञानादिक रूपहूकी रागादिकरूप हौ ऐसा संशयज्ञान है। वहुरि केईनिकं धर्म अधर्ममैं संशय है। केईनिकै सर्वज्ञके अस्तित्वनास्तित्वविषैं संशय है। केईनिके परलोकका अस्तित्वनास्तित्वमै संशय है। बहुरि केईनिकै सर्वही तत्वविषैं अनध्यवसाय है काहां करैं काहेतैं निर्णय करैं हेतुवादरूप तर्कशास्त्र है ते तो कहूं ठरहै नाही। अर आगम है ते भिन्न भिन्न वस्तुके रूपकूं कहे है कोऊ कछू कहे कोऊ कछू कहे परस्पर बात मीलैं नही। अर कोऊ समस्तका ज्ञाता सर्वज्ञ वा कोई मुनि प्रत्यक्ष दीखे नाही जो ताके वचन प्रमाण करिए। अर धर्मका स्वरूप यथार्थ सूक्ष्म है सो कैसे निर्णय होय। तातैं जो वडा जिस मार्ग चले आये तैसे चलता प्रवर्त्तना ठीक है। निर्णय होता नाही ऐसे अभिप्रायकूं अनध्यवसाय कहिए है। ऐसे संशय विपर्यय अनध्यव्यवसाय होय है। तहां अवधिज्ञानविषै विपर्यय देशावधिही होय हैं। परमावधि सर्वावधि मनःपर्यय है ते केवलज्ञानकी ज्यो सम्यक्स्वरूपही है विपर्ययरूप नाही होय है। ए ज्ञान सम्यक्दर्शनविना होय नाही। ऐसे प्रमाण अप्रमाणका भेद दिखावनेकें अर्थि विपर्ययज्ञानका स्वरुप कह्या। अव प्रमाणके अनंतर कहे जे नय तिनका निर्देश करनेकूं सूत्र कहे है।

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

अर्थप्रकाशिका— नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत। ऐसे ये सात नय है। इनि नयनिका सामान्यस्वरूप अर विशेषस्वरूप कहने योग्य हैं इनिका सामान्यस्वरूप ऐसा। जो वस्तु अनेक धर्मरूप है तहां काहू एक धर्मकी मुख्यता लेय अविरोधरूप जाकरि साध्य पदार्थकूं जानिए सो नय है सोही ग्रंथनिमे कह्या है।

गाथा – णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि उच्चदे अत्थं ॥
तस्सेव विवक्खादो णत्थिविवक्खा हि सेसाणं ॥ १ ॥

अर्थ– नानाधर्मनिकरि युक्तहूं अर्थकूं नयके वशतैं एकरूपकरि कहिए है। जातैं तिस एकधर्म्मके कहनेकीं इच्छा है अन्य शेष धर्मनिके कहनेकी इच्छा नाही है। वहुरि कहे जे सप्तनय तिनका विशेष ऐसा है सो कहे है।

जे द्रव्य है ते तीन कालके पर्यायनितैं अन्वयरूप है जोडरूप है। द्रव्य है ते भूतपर्यायनितैं वर्त्तमानपर्यायनितैं अर भविष्यत्पर्यायनितैं भिन्न नही है। तातैं जो अतीतपर्यायनिमें वर्त्तमानवत् संकल्प करे अर आगामीपर्यायमेभी वर्तमानवत् संकल्प करे अर वर्तमानपर्यायनिमें जो पर्याय निष्पन्न कहिए पूर्ण भया तथा अनिष्पन्न कहिए परिपूर्ण नही भया ताकूं निष्पन्नरूप संकल्प करे ऐसे ज्ञानकूं तथा वचनकूं नैगमनय कहिए है। वहुरि जो समस्तवस्तुनिकूं तथा समस्तपर्यायनिको संग्रहरूपकरि एकस्वरूप कहे सो संग्रहनय है वहुरि जो अनेकप्रकार भेदकरि व्यवहरण करे भेदैं सो व्यवहारनय है।

वहुरि जो सरल सुधा वर्त्तमान पर्यायमात्रको ग्रहण करे सो ऋजुसूत्र है सो सूक्ष्म स्थूल भेदकरि दोय प्रकार हैं। बहुरि लिंग, संख्या, साधन, काल, उपसर्ग इत्यादिकमैं जो व्यभिचार ताकों दूरिकरनेविषैं तत्पर सो शब्द नय है। बहुरि एक शब्दके अनेक अर्थ है तिनमे सो कोऊ एक प्रसिद्ध अर्थकों ग्रहणकरि तिसहीको कह्या करे सो समभिरुढनय है।

वहुरि वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यताकरि नाम होय सो तिसही क्रियारूप जिस काल परिणमे ताकौ तिस नामकरि कहे है सो एवंभूतनय है। ऐसे ए सात नय है। इनिका उदाहरण कहिए है।

तहां नैगमनयके तीन भेद है। अतीतकालमे जो वस्तु भई ताके वर्त्तमानकी ज्यो कहै। तथा भविष्यत्कालसंवंधीको निपज्या वर्त्तमानज्यो कहे। वहुरि जो वस्तु करनेका आरंभ कीया अर कछु निपज्या कछु नहीं निपज्या ताकौं निपज्याही कहना सो वर्त्तमाननैगम है। जैसे कोऊ भात पाचाइबेकी सामग्री भेली करै था तिसकूं काहूने पूछी तूं कहां करे है। तव वाने कह्या में भात पचाऊहू। तहां भातपर्याय तो प्रकट नहीं भई अर भात पचाई वाके अर्थि इंधन मेले है वा जलभरे है तोहू नैगमनयतैं भविष्यत्पर्यायमे वर्तमान का संकल्प करे सो नैगमनय है। बहुरि नैंगमनयके अन्यप्रकारभी तीन भेद है। १ द्रव्यनैगम २ पर्यायनैगम ३ द्रव्यपर्यायनैंगम। सो इनका स्वरूप अन्यग्रंथनितैं जानना।

वहुरि सामान्यरूप जो ग्रहण तिसकूं संग्रह कहिए। जैसे सर्वद्रव्य है सो सत्तालक्षणसंयुक्त है। तथा जीववस्तु चित्तसामान्यकरि एक है। तथा अजीवसामान्यकरि जीवद्रव्यविना पंचद्रव्य अजीव है। तथा पुद्गलसामान्यकरि समस्त पुद्गल एकद्रव्य है। इत्यादि जानने।

बहुरि संग्रहनयकरि ग्रहणकीये जे वस्तु तिनका विधिपूर्वक व्यवहरण कहिए भेदरूप करना सो व्यवहारनय है। जैसे सत् कह्या सो सत् ते द्रव्यभी है गुणभी है कोनकूं ग्रहण करिए तातैं सत्का व्यवहारनयकरि भेदकरे तदि व्यवहार प्रवर्त्तै। सामान्य सत्मात्र कहनेतैंही व्यवहार नही प्रवर्त्तै। तथा द्रव्य ऐसे कहतैंहू व्यवहार नही प्रवर्त्तै है। तातैं व्यवहारका आश्रय करिए तदि द्रव्य दोय प्रकार हैं। जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य। ऐसे जीवद्रव्यमेभी व्यवहार-नयकरि देव नारकादि भेद होय है। तथा जीवका संसारी मुक्त ऐसे दोय भेद होई है। तथा अजीवके पुद्गलादि पांच भेद होई है। तथा पुद्गल हैं ते अणु स्कंध ऐसे दोय प्रकार है। तथा स्कंध अनेक प्रकार है इत्यादि अनेक प्रकार भेद करता चल्या जाय जहां फेर भेद नही होय तहां ताई व्यवहारनय हैं।

बहुरि दो अतीत अनागत कालसंबंधी पर्यायनिकूं छांडि वर्त्तमानका जो एकसमय तिस समयवर्त्ती पर्यायकू ग्रहण करनेवाला ऋजुसूत्रनय है। जातैं वर्त्तमानपर्यायकी जघन्यस्थिति समयमात्रही है। वस्तु है। सो समय समय परिणमै है। सो एकसमयवर्ती पर्यायकू अर्थपर्याय कहिए। सो अर्थपर्याय है सो ऋजुसूत्रनयका विषय है तिसमात्रही वस्तुकौ कहे है। बहुरि घडी मुहूर्त्तादिक कालकौभी व्यवहारमें वर्त्तमान कहिए है। सो तिस वर्तमानकालस्थायी पर्यायकूंभी साधै तथा स्थूलऋजुसूत्रसंज्ञा है। जैसे मनुष्यादि पर्याय है सो अपने आयुपरिमाण रहे हैं। ऐसे स्थूलअपेक्षा वर्त्तमानपर्यायका ग्रहणकीया सो स्थूलऋजुसूत्रनय है। ऐसे ऋजुसूत्रनय है

आगे शब्दनयकूं कहिए है। लिंग संख्या साधन इत्यादिकका व्यभिचारकू दूरि करनेविषै तत्पर सो शब्दनय है। तहां जो स्त्रीलिंगविषै पुरुषलिंग कहना जैसे तारका शब्द तो स्त्रीलिंग है ताकूंही स्वाति ऐसा पुरुषलिंग कहना। अर पुरुषलिंगविषै स्त्रीलिंग कहना जैसे अवगम ऐसा पुरुषलिंग है ताकू विद्या ऐसा स्त्रीलिंग कहना। बहुरि स्त्रीलिंगविषै नपुंसकलिंग कहना जैसे वीणा ऐसा स्त्रीलिंग है ताकू अतोद्य ऐसा नपुसकलिंग कहना। बहुरी नपुसक लिंगविषै पुरुषलिंग कहना जैसे द्रव्य ऐसा नपुंसकलिंगकू परशु ऐसा पुरुषलिंग कहना। बहुरि एकही वस्तुकू तीनू लिंग कहना ऐसे तो लिंगव्यभिचार हैं वा एकवचनकू द्विवचन बहुवचन कहना बहूवचनकू एक वचन कहना। ऐसें संख्याव्यभिचार है।

बहुरि मध्यपुरुषकी क्रिया कहने योग्यमें प्रथमपुरुष वा उत्तमपुरुषकी क्रिया कहना सो पुरुषव्यभिचार हैं। बहुरि कालव्यभिचार जैसे "विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता" याका अर्थ ऐसा जो विश्व समस्तलोक ताकू जो देखताभया सो याकै पुत्र होंसी। इहां जो विश्वकू देखतभया यो तो अतीतकालवाचक शब्द हैं। अर होसी सो आगामिकालवाची तथा होणहार था सो हो गया। इहांभी होणहार तो आगामिकालकू कहे हैं। अर होगया यो अतीत कालकू कहे हैं। ऐसे कालव्यभिचार भया। बहुरि आत्मनेपदीकू परस्मैंपद भया ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकू व्यवहारनय अन्याय माने हैं। तथापि शब्दनयका एही विषय हैं। जो जैसा शब्द कहैं तैसाही अर्थमें भेदरूप मानै इस शब्दनयतै समस्तविरोध मीटे हैं।

आगें समभिरूढनयका लक्षण कहे है। तहां जैसे गोशब्द है सों गमनादि अनेक अर्थविषै प्रवर्त्तै है तोहू मुख्यताकरि गौ नाम वलध पशूका ग्रहण कीया। ताकों चालता बैठतां सोवतांभी समस्तलोक गौही कहे है। सो समभिरूढनय है।

आगे एवम्भूतनयकूं कहै है। जिस कालमे जो क्रिया करता होई तिस कालहीमें ताकूं तिस नामकरि कहे सो एवम्भूतनय है। जैसे देवनिके पतिकूं परमैश्वर्यपणानै जिस कालमे प्राप्त होई तिस कालहीमें इंद्र कहे। पूजन अभिषेकादि करतेकूं इंद्र नही कहे। तथा जिस कालमे शक्तिरूपक्रियाकूं करे तिस कालमें शक्र कहे अन्यकालमें नाही कहे। ऐसे सप्तनय जानने। पूर्वपूर्वनयके आगे आगे अनुकूलविषय है। वा इनका उत्तरोत्तर अल्पविषय है।

वहुरि संक्षेपतै द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे दोय नय है। तहां द्रव्य है मुख्य प्रयोजन जाका सो द्रव्यार्थिक कहिए है। अर पर्याय है प्रयोजन जाका सो पर्यायार्थिक है। तहां नैगम संग्रह व्यवहार इनिकूं तो द्रव्यार्थिकनय कह्या है। ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवम्भूत ए पर्यायार्थिक नय है। वहुरि कोऊ पूछें जो निश्चय व्यवहार दोय नय प्रसिद्ध सुनिए है तिनका. स्वरूप कैसे हैं। तहां कहिए है। जो पदार्थके निजस्वरूपकौ मुख्य करे सों निश्चय कहिए है। तिस निश्चयनयके द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय भेद है जातै वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायरूपही है। ए दोऊ नय तत्वका स्वरूप है सत्यार्थ है अर व्यवहारनय है सो उपनय है। जहां अन्य पदार्थके भावको अन्यविषै आरोपण करे तथा परनिमित्ततै भए जे नैमित्तिक भाव ताकूंही वस्तुका निजभाव कहे। तथा आधारआधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतै आरोपण कीजिए सो इत्यादिक व्यवहारनय है। तथा एकदेशमें सर्वदेशका उपचार करे। तथा कारणविषै कार्यका उपचार करे इत्यादि सर्वही व्यवहार कहावे है।

वहुरि व्यवहारनयके तीन भेदभी कह्या हैं। सद्भूतव्यवहार। असद्भूत व्यवहार। उपचरितव्यवहार तिनमें जीवकौ रागादि भावकर्मका कर्त्ता कहिए सो सद्भूतव्यवहारनय है। जातै जीवके सत्तामें ए रागादिपर्याय है। वहुरि जीवको ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म वा देहादिक नोकर्म तिनका कर्त्ता कहिए सो असद्भूतव्यवहारनय है।

वहुरि जीवकौ घटपटादि पुद्गलका कर्त्ता कहिए सो उपचरितव्यवहारनय है। जातै जहां मुख्यवस्तु जो नही होई अर निमित्तके बसते अन्यद्रव्य अन्यगुण अन्यपर्यायनिका अन्यद्रव्य गुणपर्यायनिविषै आरोपण करना सों उपचार है। जैसे किसीका वालककै क्रूरपणा शूरपणा देखीकरिके कह्या जो यो वालक सिंह है सो वालक सिंहवत् तीक्ष्णनख कपिलनयनादिरूप तो है नहीं परंतु क्रूरपणा शूरपणा देखी सिंह कह्या सो उपचार हैं याहीकूं व्यवहारभी कहिए है। तोहू व्यवहारनय सर्वथा असत्य नहीं है जो व्यवहारकूं सर्वथा असत्यार्थही कहे है तो एकेंद्रिया-दिक जीवकूं व्यवहारनयकरि जीव कह्या है सो व्यवहार सर्वथा असत्यही होइ तो

जीवहिंसादिकका कहना असत्य होय जाय। जातैं निश्चयनयकरि तो जीव नित्य है अविनाशी है याकी हिंसा नही होय तो समस्तव्यवहारका लोप हो जाय तातैं व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है। वहुरि कह्या जो निश्चयनय सोभी शुद्धनिश्चय अशुद्धनिश्चय दोय भेद है। तहां जीवकूं मतिज्ञानादिकका कर्त्ता कहिए सो अशुद्धनिश्चयनय है। तथा शुद्धज्ञानदर्शन जो केवलज्ञान केवलदर्शन तिनका कर्ता आत्माकूं कहिए सो शुद्धनिश्चयनय है। जातैं निश्चयव्यवहार दोऊनयनिकों यथार्थपने जानि अंगीकार करना योग्य योग्य है। सो इस गाथाविषैं कह्या है।

जइ जिणमये पवज्जह। ता मा ववहारणिच्छयं मुयह।
एवकेणविणा छिज्जई। तित्थं अण्णेण पुण तच्चं॥१॥

अर्थ– भो ज्ञानीजनहो जो जिनमतमैं प्रवर्त्तीहो तो व्यवहारनिश्चयकों मतीछांडो। जो निश्चयनका पक्षपाती होइ व्यवहारनयकूं छांडोगे तो रत्नत्रयस्वरूप धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिका अभाव होयगा अर जो व्यवहारनयका पक्षपाती होय निश्चयनयकूं छांडोगे तो तत्वके शुद्धस्वरूपका अभाव होयगा तातैं पहले तो निश्चयव्यवहार दोऊनिकूं जानना पछै यथायोग्य अंगीकार करना पक्षपाती नही होना। निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका व्यवहाररूप श्रद्धानकरना युक्त है। एकहीका श्रद्धान एकांतमिथ्यात्व है। जिनशासनके वेत्ता हटग्राही नही होइ है। जातैं जिनमतका कथन अनेक प्रकार है अविरोधरूप है।

वहुरि नयनिके वहुत भेद है। तथा नयनकी शाखा उपशाखा वहुत विस्ताररूप है। ए नयनिके भेद काहैतैं होय है जातैं द्रव्य अनंतशक्तिकों लीए है तातैं एक एकशक्तिप्रति भेदरूप भये वहुत भेद होय है। तहां नय मुख्यगौणपणाकरि परस्पर सापेक्षारूप भये संते अधिगमका कारण है। वस्तु है सो अनेकधर्म स्वरूप है। एकस्वभाव अनेकस्वभाव भेदस्वभाव अभेदस्वभाव चेतनस्वभाव अचेतनस्वभाव मूर्त्तस्वभाव अमूर्त्तस्वभाव शुद्धस्वभाव अशुद्धस्वभाव अंतरंगत्व वहिरंगत्व हेतुत्व अहेतुत्व अपेक्षत्व इत्यादि सविरूद्ध अविरूद्धरूप अनेकधर्म है। येसें अनेकधर्मरूप वस्तु है सो तिनके अधिगमका उपाय प्रमाणनय है। प्रमाणनयके जानेविना जे पुरुष वस्तुके स्वरूपको साधनेका अधिकारी वनैं है ते अज्ञान है। तिनके अधिगम नाही होय है। अन्य मतका सिद्धांत एकांतपक्षकरि दूषित है। अर जिनमतके सिद्धांत सर्वत्र स्याद्वदकरि व्यापक है। जातैं वस्तुकै अनेकधर्मस्वरूपपना है। जहां कोऊ एकधर्मके कहनेकी इच्छाकरि एकधर्मकी तो विवक्षा करें अन्यधर्मके कहनेकी विवक्षा नाही करे तहां ऐसा तो नाही जो अन्यधर्मका अभावही है अन्यधर्मका अभाव तो नही करे है इहां तो प्रयोजनके आश्रय एकधर्मकी मुख्यताकरि कहे है जो अवशेष अन्यधर्मनिकी विवक्षा नही करे तो ताका लोप नाही करिसके है। तथा सापेक्ष कहिए अपेक्षासहित होय सो सुनय हैं। अर प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा अभाव माने है सो दुर्नय है नयाभास है।

ऐसे इस अध्यायमे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकत्रताकूं मोक्षमार्ग कह्या। वहुरि

सम्यग्दर्शनका लक्षण कह्या । वहुरि सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति दोय प्रकार कहि सम्यग्दर्शनके विषयभूत सप्ततत्व कहे । बहुरि तत्वनके स्थापनको व्यवहारका व्यभिचार मेटनेके नाम-स्थापनादि च्यार निक्षेप कहे । वहुरि प्रमाणनयनिकरि सम्यग्दर्शनादिकनिका तथा तिनके विषय जीवादिकतत्वनिका ज्ञान होय है । वहुरि निर्देश स्वामित्वादिक छह अनुयोगनिकरि तथा सत्संख्यादिक अष्ट अनुयोगनिकरि तत्वार्थनिका अधिगम कह्या वहुरि मत्यादि पंच ज्ञानके भेद कहि फिरि मतिज्ञानके अवग्रहादि भेद कहि तीनसे छत्तीस भेद कहि श्रुतज्ञानका स्वरूपभेद कह्या । वहुरि अवधिज्ञानका स्वरूप दोय सूत्रनिमे कह्या । वहुरि मनःपर्ययज्ञानका भेदस्वरूप कहि अवधि मनःपर्ययका विशेष कह्या । आगे पांचू ज्ञानका विषय तीन सूत्रमे कहि अर एक जीवके एक काल च्यार तांई ज्ञान होय ऐसा कहि वहुरि मति श्रुत अवधि विपर्ययभी होय है ऐसा कहि ताका कारण कह्या । वहुरि नैगमादि सप्त नयकी संज्ञा कही ।

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं नयनां चैव लक्षणम् ।।
ज्ञानस्य च प्रमाणत्वमध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ।।१।।

अर्थ– ऐसे इस प्रथम अध्यायमे ज्ञानका अर दर्शनका तो स्वरूप वर्णन कीया अर नयनिका लक्षण कह्या अर ज्ञानके प्रमाणपणा कह्या ।।६९।।

।। इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।।

ऐसे तत्त्वार्थका है अधिगम जातें ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तिसमे प्रथम अध्याय समाप्त भया ।

दोहा– है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम सवसुखदाय । मोक्षशास्त्र मंङलमय, नमो प्रथम अध्याय ।।१।।

प्रथम अध्याय समाप्तः



।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

– दोहा –

राजैं सहजस्वभावतैं । तजि परभाव विभाव ।।
नमो आप्तके परमपद । प्रकटैं शुद्धस्वभाव ।।१।।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य
स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ।। १ ।।

अर्थप्रकाशिका– औपशमिक । क्षायिक । मिश्र । औदयिक । पारिणामिक । ए जीवके पांच भाव है । ते जीवके निजतत्व है । जैसे मलिनजलके विषैं कतकादिद्रव्यका मिलापतैं कर्दम मल तो नीचे बैठीजाय है जल उज्वल होयजाय हैं तैसे कारणके वशतैं प्रतिपक्षी कर्मकी शक्तिका उदय नहीं होना आत्माकी विशुद्धिता होना सो उपशम भाव है । बहुरि जैसे कतकद्रव्यके संबंधतैं जाका कर्दम तो नीचे बैठीगया अर जल ऊपरि निर्मल हो गया तिस जलकूं अन्य पवित्र उज्वल भाजनमे धारणकीया कर्दम निकासि दूरि डारि दीया तिस जलमें अत्यंत उज्वलता रहे है तैसे प्रतिपक्षी कर्मका अत्यंत अभाव होतासंता आत्माके भावनिमें अत्यंत विशुद्धिता होना सो क्षायिकभाव है । बहुरि जैसे प्रक्षलनिके वसते मांचणेंको दूनिमे मदशक्तिका कुछ क्षीणपणा कुछ अक्षीणपणा प्रकट होय हैं तैसे क्षयोपशमरूप कारणके वशतैं प्रतिपक्षी कर्मके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदय नहीं होना सोही उदयाभाव क्षय अर उपरितन निषेकनिका सत्तामे उपशम रहना अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होना सो क्षायोपशमिकभाव हैं याहीकूं मिश्र कहिए है । बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप निमित्तके वशतैं विपच्यमान कर्मका फल प्रकट होना अपना रस देना सो उदय है । उदयतैं भाव होय सो औदयिकभाव है । बहुरि जहां कर्मकी

अपेक्षा नही द्रव्यका आत्मस्वरूपही आत्मपरिणामही जाकूं निमित्त होय सो पारिणामिकभाव हैं। ऐसे ए जीवके पांच भाव कहे। अव इन पंचभावनके भेद कहनेकूं सूत्र कहे है।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थप्रकाशिका– औपशमिकभाव दोय प्रकार है। क्षायिक नव प्रकार है। मिश्र अठारह प्रकार है। औदयिक इकवीस प्रकार है। पारिणामिक तीन प्रकार है। ऐसे पंचभावनके त्रेपन भेद है। अव उपशमभावनिके दोय भेदनिकूं कहे है

सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

अर्थप्रकाशिका– उपशमसम्यक्त्व अर उपशमचारित्र ऐसे उपशमभाव दोय प्रकार है। तहां अनंतानुबंधी क्रोधमानमायालोभ ऐ चारित्रमोहकी च्यारों अर मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्व ऐ तीन प्रकृति दर्शनमोहनीकी ऐसें सप्तप्रकृतिनका उपशम होनेतें उपशमसम्यक्त्व होय है अर समस्त चारित्रमोहनीयकर्मके उपशमतें उपशमचारित्र होय है।

कोऊ पूछे अनादिमिथ्यादृष्टीभव्यके कर्मके उदयकरि कलुषता होतसंते सप्तप्रकृतिनका उपशम होना कैसें होय। ताका उत्तर कहे है। जो काललब्ध्यादिकनिकी अपेक्षातें सप्तप्रकृतिनका उपशम होय है। सो कौनके होय, सो कहे है। नरकादि च्यारोगतिहीमे अनादिवासादि मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त गर्भज मंदकषायका धारक ज्ञानोपयोगी जागृत अवस्थ मे करणलब्धिविषै उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण ताका अंतसमयविषै प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहण होय है। इहां ऐसा जानना जो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानतें छूटि उपशमसम्यक्त्व होय ताका नाम प्रथमोपशमसम्यक्त्व है। अर उपशमश्रेणी चढतें जो क्षयोपशमसम्यक्त्वतें जो उपशमसम्यक्त्व होय ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व होनेके पहिले मिथ्यादृष्टिगुणस्थानविषै पंच लब्धि होय हैं। १ क्षयोपशमलब्धि। २ विशुद्धिलब्धि। ३ देशनालब्धि। ४ प्रायोग्यतालब्धि। ५ करणलब्धि। ऐ पंचलब्धि है। तिनमें च्यार तो लब्धि भव्यके वा अभव्यके दोऊनिका हो जाय है परंतु करणलब्धि भव्यहीके वा सम्यक्त्व होनेका नियमतेही होय है। सातिशयमिथ्यादृष्टिके जव करणलब्धि होय है तदि सम्यक्त्वके उपजनेका नियम है। अर सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवाला करणानिके सन्मुख होय तदि चारित्रमोहनिका उपशमावनेका वा क्षपावनेका नियम है। तहां जिस कालमे ज्ञानावरणादिक अप्रशस्तप्रकृतिनिका समूहका अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति समय समयप्रति अनंतगुणांघटता अनुक्रमकरि उदय होय जो प्रथमसमयमें रस दीया, तिसमें दूजे समय अनंतगुणां घटता, तातैं तीसरे समय अनंतगुण घाटि, ऐसे समय समयप्रति अनंतगुण घाटीरूप उदय होय तिस कालमें क्षयोपशमलब्धि होय है।

बहुरि जो क्षयोपशमलब्धिके प्रभावतै जीवके सातावेदनीयादि शुभबंध करनेकूं कारण धर्मानुरागरूप शुभपरिणामनिकी प्राप्ति सो विशुद्धिलब्धि है ।। २ ।। बहुरि जो षड्द्रव्य नवपदार्थनिके उपदेश करनेवाले आचार्यादिकनिके संगमका लाभ होना तथा तिनके उपदेशकी प्राप्ति होना तथा तिनका उपदेश्या पदार्थके धारनेकी प्राप्ती सो तीसरी देशनालब्धि है । अर जहां नरकादिकविषै उपदेश देनेवाला नाहीं तहां पूर्वभवविषै धाऱ्या हुवा तत्वार्थके संस्कारका बलतै सम्यग्दर्शनकी प्राप्ती जाननी ।। ३ ।।

बहुरि तीनलब्धिसंयुक्त जीव सो समय समय विशुद्धताकरि वर्द्धमान होत संते आनेतैं प्रथमसम्यक्त्व उपजै हैं । अर तेरमा स्वर्गलोकनै आदिकरि उपरिम ग्रैवेयकनिपर्यंत देवनिके एक देवऋद्धिदर्शनविना तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै है । अर नव अनुदिश अर पंच अनुत्तर-वासी देव हैं ते पूर्वजन्मतेही सम्यक्त्व लीए उपजै है । वहां मिथ्यादृष्टीनिका उत्पादही नहीं है। बहुरि अष्टाविंशतिप्रकार मोहनीयका उपशम होनेतें उपशमचारित्र होय है । सो उपशमचारित्र ग्यारमे गुणस्थानमेंही होय है । अब नवप्रकारके क्षायिकभाव कहनेकूं सूत्र कहे है ।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ।।४।।

अर्थप्रकाशिका— केवलज्ञान । केवलदर्शन । क्षायिकदान । क्षायिकलाभ । क्षायिकभोग । क्षायिकोपभोग । क्षायिकवीर्य । बहुरी चकारकं कहनेतै ज्ञायिकसम्यक्त्व । क्षायिकचारित्र ए नव क्षायिकभाव है ।

तिनमें ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मके अत्यत क्षय होंनैतै ज्ञानदर्शन क्षायिक होय है । अर दानांतराय नाम कर्मके अत्यंतक्षयतै अनंतप्राणीनिके उपकार करनेंवाला दिव्य-ध्वनिकूं आदि लेय क्षायिक अभयदान होय है। बहुरि लाभांतरायका अत्यंतक्षयतै केवलाहारक्रियाकरि रहित भगवान् केवलीकै शरीरमें बलाधानका कारण अर अन्यमनुष्यनितै असाधारण परमशुभ सूक्ष्म नोकर्मपुद्गल समय समयप्रति संबंधकूं प्राप्त होय है । तिन पुद्गल-नितै औदारिक शरीरकी किंचित् ऊन कोटीपूर्ववर्षनिकी स्थिति रहै है । सोही क्षयिक लाभ है। बहुरि भोगांतरायके अत्यत अभावतै अतिशयवान् पंचवर्णके सूगंधपुष्पनिकी वर्षा तथा चरणार-विंदकें नीचै दोयसें पचीस कमलनिकी रचना तथा सुगंधधूप मंद सुगंधपवन इत्यादिक अनेकविशेषनिकों लीए क्षयिक भोग है । बहूरि उपभोगांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतै सिंहासन छत्रत्रय वीजना अशोकवृक्ष प्रभामंडल अतिगंभीर देवदुंदुभी इत्यादि विभूति प्रकट होय ते क्षायिक उपभोग है ।

बहुरि वीर्यांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतै अनंतवीर्य प्रकट होय हैं । बहुरि मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्त्व अर अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इनि सातप्रकृतिनिका अत्यंत अभावतै क्षायिकसम्यक्त्व प्रकट होय है । बहुरि समस्तचारित्रमोहके अभावतै क्षायिकचारित्र

प्रकट होय है। ऐसे अरहंत नाम परमात्माके क्षायिकदानादि कहे ते शरीरनामकर्म वा तीर्थंकर प्रकृतिकी सापेक्षातैं कहना जानना। इहां कोऊ कहे जो सिद्धभगवानकेभी अभयदानादिकका प्रसंग आवै है। ताकों समाधान। जो दानादिक लब्धिका प्रतिपक्षी जो अंतरायकर्म ताके अभावतैं शक्ति तो प्रकट हैही, परंतु शरीरविना तिनकीं प्रवृत्ति होय नहीं, तातैं ऐसा जानना जो परम उत्कृष्ट अनंतवीर्य अव्यावाध स्वरूपकरिही तिनकी तहां प्रवृत्ति है। जैसे केवलज्ञान रूपकरि तीनलोकके तीनकालके अनंन द्रव्य गुण पर्यायनिकें युगपत् ग्रहण करनेका आयुकर्मविना अन्य सप्तकर्मनिकी अंत:कोटाकोटीसागरमात्रस्थिति अवशेष राखै। अर घातियानिका लता दारुरूप अर अघातियानिका निंव कांजीरूप द्विस्थानगत अनुभाग इहां अवशेष रहे तदि प्रायोग्यतालब्धि है। अर घातियानिका अस्थिशैलरूप अघातियानिका विषहालाहलरूप अनुभाग नही होय तदि प्रायोग्यलब्धि है। बहुरि संक्लेशी संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तके संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध अर उत्कृष्टस्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्व, अर विशुद्धक्षपकश्रेणीकै मांहि संभवता ऐसा जघन्य स्थितिबंध अर जघन्य स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्व, इनिकों होतें जीव प्रथमो-पशमसम्यक्त्वकूं नही ग्रहण करे है। जातै जघन्य स्थितिबंधादिक करनेवाला जीव तो पहली सम्यग्दृष्टि है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव सो पहली सम्यग्दृष्टी हैं। प्रथमोपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव सो विशुद्धिताकी वृद्धीकरि वधता प्रायोग्यलब्धिका प्रथमसमयतै लगाय पूर्वस्थितीकै संख्यातवैं भागमात्र अंत:कोटाकोटिसागरप्रमाण आयुविना सात कर्मनिकी स्थितिबंध करै है। वहुरि चोतीस बंधापसरण करे है। तिनका विशेषकथन लब्धिसार नाम ग्रंथमें जाननां।

वहुरि पंचमी करणलब्धि तिसका काल अंतर्मुहूर्त्त है। तिसमे अध:करण १, अपूर्वकरण २, अनिवृत्तिकरण ३, ऐसे तीन करणपरिणामकषायनिकी मंदताके चढते परिणाम है सो इनिका सविस्तरकथन है। अर तिनका गुणश्रेणीनिर्जरा १, गुणसंक्रमण १, स्थितिखंडन १, अनुभागखंडन १ इत्यादिक आवश्यकनिका होना इत्यादि कथनी लिखें ग्रंथ वहुत होजाय, तातैं सविस्तर जाननेका इच्छुक श्रीलब्धिसारजीतें जानहू। अव इहां प्रयोजन ऐसा, जो इस अनिवृत्तिकरणका अंतसमयविषै मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीका उपशम होय तदि उपशमसम्यक्त्व प्रकट होय है। एसे चारित्र मोहके उपशमावनेतै उपशमचारित्र होय है यो उपशमसम्यक्त्व चारूंही गतिमें उपजै है अर पर्याप्तअवस्थामेंही उपजें हैं। तिनमें नारकीनिके पर्याप्त अवस्थामेहूं अंतर्मुहूर्त पछै उपजै हैं। तिनमे तीन पृथ्वी पर्यंतके नारकीनिके तो तीन करण करिही उपजे है। केईकनिकै जातिस्मरणकरिके केईकनिके धर्म श्रवणकरिकें केईनिकै वेदनिका अनुभवकरिकै सम्यग्दर्शन उपजै है। वहुरि तिर्यंच पंचेद्रिय पर्याप्तके उपजै तो जन्म लीएतै पृथक्दिवस उपरांति उपजै पहली नदीं उपजै। सो समस्तही द्वीपसमुद्रनिविषैं जातिस्मरण धर्मश्रवण तथा जिनविंव-दर्शन इन तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै है।

अर मनुष्य पर्याप्तनिमैंहू अवस्थाहीमे उपजे अर अष्टवर्षप्रमाण अवस्थाके उपरीही

उपजै पहली नही उपजे । तिनके जातिस्मरण तथा धर्मश्रवण तथा जिनबिंबदर्शन इन तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै । वहुरि देवपर्याप्तनिकैं अंतर्मुहूर्त्तकें उपरि उपजै तिनमे भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी अर सहास्रारपर्यंत द्वादश स्वर्गकें कल्पवासीनिकें जातिस्मरण धर्मश्रवण तथा जिनमहिमादर्शन अर अन्य देवनिकी ऋद्धिकें देख सामर्थ्यकरिही अनंतवीर्यकी प्रवृत्ति होय हैं, तैसे यह भी जानना । दश प्रकारके क्षयोपशमभाव कहनेकूं सूत्र कहै है ।

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसँयमासँयमाश्च ।।५।।

अर्थप्रकाशिका— मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ऐसे च्यार प्रकार ज्ञान । अर कुमति कुश्रुत विभंग ऐसे तीन प्रकार अज्ञान । अर नेत्रइंद्रियद्वारे पदार्थकी सत्तामात्रका ग्रहण सो चक्षुर्दर्शन । अर अन्य च्यार इंद्रियद्वारै पदार्थका सामान्यसत्तामात्रका ग्रहण सो अचक्षुर्दर्शन है । अर अवधिद्वारे सामान्यग्रहण सो अवधिदर्शन ऐसे तीन दर्शन । बहुरि अंतरायकर्मके क्षयोपशमतैं दान लाभ भोग उपभोग वीर्य ऐसे पंचलब्धि अर वेदकसम्यक्त्व अर सरागचारित्र अर संयमासंयम याकूं देशव्रतभी कहिए ऐसे ए अठारह भाव अपने प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमतैं होय है । तातैं ये अष्टादश प्रकार क्षायोपशमिक भाव हैं । अव इकवीस प्रकार औदयिकभाव कहनेकूं सूत्र कहे है ।

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासँयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ।।६।।

अर्थप्रकाशिका— गति च्यार भेदरूप, कषाय च्यार प्रकार, लिंग जो वेद सो तीन प्रकार. मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक, असँयम एक, असिद्धत्व एक, लेश्या छह ऐसे एकविंशातिभेदरूप औदयिकभाव है । गति च्यार हैं ते नरक तिर्यंच मनुष्य देव गतिनाम नामकर्मके उदयतैं होय है । वहुरि चारित्रमोहका भेद जो कषायवेदनीय ताका उदयतैं आत्माके क्रोधादिरूप कलुषपणाका उपजना सो क्रोध मान माया लोभ ऐसे च्यार प्रकार कषाय है । जातै आत्मानै "कषन्ति" कहिए घातै विनाशैं तातै इनिकूं कषाय कहिए । इनिका अनंतानुबंधी । अप्रत्याख्यानावरण । प्रत्याख्यानावरण । संज्वलन ऐसे भेद हैं ।

वहुरि वेद नामा जो मोहनीयका भेद ताके उदयतै लिंग होय है । सो लिंग दोय प्रकार । एक द्रव्यलिंग । दूजा भावलिंग । तिनमे द्रव्यलिंग जो योनी मेहनादिक ते तो नामकर्मका उदयकरि होय है । तिनका तो इहां भावनीके कथनमे अधिकारही नही है । इहां आत्मपरिणामका कथन है । तातै भावलिंग जो स्त्री पुरुष नपुंसकनिके परस्पर रमणेकी अभिलाषारूप भाव वेद है । सो चारित्रमोहका भेद जो नोकषाय ताका भेद जे स्त्री पुरुष नपुंसक नामा वेदकर्म ताके उदयते स्त्रीलिंग पुरुषलिंग नपुंसकलिंग ऐसे तीन लिंग औदयिकभाव हैं ।

वहुरि दर्शनमोहके उदयते तत्त्वार्थनिका अश्रद्धानरूप परिणाम सो मिथ्यादर्शन नाम औदयिकभाव है । वहुरि ज्ञानावरण कर्मकें उदयते जो नही जानपना सो अज्ञान नाम औदयिकभाव है । वहुरि चारित्रमोहके उदयतै प्राणनिका घात अर इंद्रियनिके विषय इनिमे विरक्तता नहीं सो असँयतभाव औदयिक है । अनादिकर्मसंबंधके संतानकरि पराधीन जो आत्मा ताकै सामान्यकर्मका उदय होते असिद्धत्वभाव औदायिक है । वहुरि कषायनिका उदयकरि रंजित जो योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है । ते कृष्ण । नील । कापोत । पीत । पद्म । शुल्क ऐसे षट्प्रकार है । इहां आत्माके परिणामनिके अशुद्धताकी प्रकर्षताकी अपेक्ष करि कृष्णादिकशब्दनिका उपचार कीया है ।

इहां प्रश्न– जो उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगीजिनके शुक्लेश्या आगममे कही है । अर इन गुणस्थाननिमे कषायकरि अनुरंजित जोग नही है, तातै औदयिक कैसे कहोहो एवा लेश्याही कहोहो । ताका समाधान । जो कषायनिका अभाव होतेभी जो लेश्या कही सो पूर्वभावप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि कही । जो येही जोग पूर्वै कषायांकरि अनुरंजित था, तदि लेश्याथी । अव इनि गुणस्थाननिमें कषायनिका तो अभाव भया परंतु जोग वैही पाइए है । जो जिन उर्पार पूर्वै कषायनिका रंग था, तातै उपचारते औदयिक लेश्या कही । जैसे कसुंभकरि रंग्या वस्त्र धोयडारे तोहू कुसुंभल कहिए । तैसें कषायनिका रंग दूरि भएहू लेश्या कहिए है । अर अयोगीभगवानके योग नहीं तातै लेश्यारहित कह्या है ।

इहां कोऊ प्रश्न करे । अन्यप्रकृतिनिके उदयते जो भाव होय है ते औदयिकभावनिमें क्यों नहीं कहे ? जैसे अज्ञान औदयिक है तैसे अदर्शनभी औदयिक है । तथा निद्रानिद्रादिक औदयिक हैं । वेदनीयका उदयते सुख दुःखहू औदयिक है । हास्यादिक षट् नोकषायभी औदयिक है । आयुका उदयतै भवधारणहू औदयिक है । गोत्रकर्मके उदयतै उच्च नीच गोत्रहू औदयिक है । नाम कर्मके उदयते जात्यादिक औदयिक है । इनिका सूत्रमें ग्रहण नहीं कीया, तातै औदयिकका न्यूनलक्षण कह्या । ताका समाधान । जो इन भावनेही गर्भित जानना । शरीरादिक जे पुद्गलविपाकी तिनका तो इहां जीवके भाव कहनेमें अधिकारही नहीं । अर जाति आदिक जीवविपाकीगतिमें गर्भित जाननी ।

वहुरि दर्शनावरणका उदयभी मिथ्यादर्शनमें गर्भित कीया है । जातै दर्शनसामान्यका आवरणतै अतत्वश्रद्धानका नामभी मिथ्यादर्शन है अन्यथा देखनेका नामभी मिथ्यादर्शन है । वहुरि हास्यादिक है ते वेदके सहचारी है । तातै वेदमे गर्भित भये । बहुरि वेदनीय आयु गोत्रका उदयभी अघाति है, सो गतिमें गर्भित जानने । अव जो पारिणामिक भाव तीन प्रकार कह्या तिनका भेदस्वरूप कहनेकूं सूत्र कहे है ।

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥

अर्थप्रकाशिका— जीवत्व। भव्यत्व। अभव्यत्व। ए तीन अन्य द्रव्यतैं असाधारण जीवकै पारिणामिकभाव है। जातैं ए तीनभाव कर्मके क्षय क्षयोपशमादिककी अपेक्षारहित है यातैं परिणामिक है। इहां कोऊ कहे आयुकर्मका उदयतैं जीवै तीनै जीव कहिए है। अनादि पारिणामिक नाही है। ताकूं कहे है। जो ऐसे नही है, जातैं आयुकर्म तो पुद्गलद्रव्य है। जो पुद्गलद्रव्यका संबंधतैंही जो जीवत्व होय तो धर्मादिकनिकैंहू जीवत्वभाव हो जाय। तथा आयुविना सिद्धनिके अजीवपणाका प्रसंग आवे। तातैं जीवत्व नाम चैतन्यपणाका है सो जीवत्व पारिणामिक हैं।

वहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणामकरि होनेयोग्य होय सों भव्य है। अर रत्नत्रयरूप होनेकी योग्यता जाकै नही सो अभव्य है। कोऊ या कहे जो अनंतकालमे भी नहीं सिद्ध होसी सो अभव्यतुल्य भया तातैं अभव्यही है। अर जो भव्य है सो समस्तसिद्ध होसी तदि आगले कालमें जगत् भव्यनिकरि शून्य होसी सो नही है। जैसे सुवर्णकी खानिमें जो कनक-पाषाण अनंतकालमेभी सुवर्ण नहीं होय तो ताकै अंधकपाषाणपणा तो नही होयगा, कनकपाषाणही रहेगा। वाह्य कारण मिलजाय तो सुवर्ण निराला होजाय अर मैल कीट न्यारा होजाय। अर अंधकपाषाणमैंभी सुवर्ण है परंतु कोऊ ऐसी वाह्यसामग्रीही नही जो सुवर्ण न्यारा करे। ऐसें भव्यके अनंतकालपर्यंत मोक्ष होंनेकै योग्य सामग्री नहीं मिले तो अभव्य नहीं हो जायगा। ऐसे ए तीन भाव जीवके परिणामिक कहे है।

इहां प्रश्न। जो अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व इत्यादिकभावभी पारिणामिक है तिनका भी इस सूत्रमें ग्रहण कीया चाहिए। ताका उत्तर। जो इनिका ग्रहण नही चाहिए। अथवा चशब्दकरी ग्रहण कीयाभी है। फेरि पूछै जो कीया है तो तीनको संख्या विरोधी जाय है। तहां कहिए। जो ए असाधारण जीवके भाव पारिणामिक तीनही है। वहुरि अस्तित्व आदि है ते जीवकेभी है अजीवकेभी है तातैं साधारण है। यातैं चशब्दकरि न्यारे ग्रहण कीजिए।

इहां पांच भाव कहे तहां औपशमिकभाव हैं सोभी क्षायिकभाव कीज्यों शुद्ध है। तथापि क्षायिकभाव है सो प्रतिपक्षी कर्मके अत्यंतक्षयतैं परमशुद्धस्वरूप अक्षयानंत आत्मस्वभाव प्रकट है। वहुरि क्षयोपशमभावविषै प्रतिपक्षी कर्मका सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तो उदयाभाव क्षय कहिए उदयरूप रस दीएविना क्षय होना सो तो क्षय है। अर आवली उपरि उदय होनेंयोग्य जे उपरितन निषेक तिनका सत्तामै अवस्थितिपणा सो उपशम अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय सो क्षयोपशम होतैं जो भाव सो क्षायोपशमिकभाव है। वहुरि गति कषाय आदिक आत्माकै औदयिकभाव है ते कर्मनिके उदयके वशतैं है ए नैमित्तिकभाव हैं आत्माका स्वभाव नाही है विभावरूप है। वहुरि पारिणामिकभाव है ते आत्मद्रव्यका स्वतःस्वभावपरिणाम हैं यामै अन्य कारण नाहीं। इहां पंचभावस्वरूप जीवतत्वका निर्देश कीया सो कर्मबध उदय अनुदय

निर्जरा आदिकी सापेक्षातै आत्माकी अनेक अवस्थारूप परणति है। ऐसे सात सूत्रनिकरि जीवके पंचभावनिका कथन कीया।

वहुरि इहां जीवके पांच भाव कहनेतै वेदांतमती आनंदमात्र ब्रह्मका रूप माने है। तथा सांख्यमती पुरुषका स्वरूप चैतन्यमात्र माने है। आत्माको एकांतकरि शुद्धही माने है ऐसे अनेक प्रकार माने है। तिनका इस भावनकें कथनकरि निराकरण भया। जातै सर्वथा शुद्धही होय तो संसार बंध मोक्षका उपाय आदिकका कथन सर्व मिथ्या ठहरे। वहुरि स्याद्वादी जे पंचभावरूप जो आत्माकूं कहे है तातै नयके आश्रयते समस्त कहना कथंचित् प्रकारकरि सिद्ध होय है। तातै जीवका स्वरूप पंचभावरूपही प्रमाणसिद्ध है।

वहुरि इहां कोक तर्क करे जो जीवके पंचभावका कथन नाहीं वने है जाते आत्मा तो अमूर्तिक है। ताकूं कहिए है। जो आत्मा एकांतकरि अमूर्तिकही नही है कथंचित् अमूर्तिक है, कथंचित् मूर्तिक है, कर्मबंधनरूप पर्यायकी अपेक्षाकरि देखिए तो अनादिकालतै कर्मपुद्गलनिसो एक होय रह्या हैं, कोई कालमे कर्मतै भिन्न हुवा नहीं तातै संसारी आत्मा मूर्तिक है अर आत्माका शुद्धस्वरूपकी अपेक्षा देखिए तो यद्यपि क्षीरनीरज्यों कर्मपुद्गल अर आत्मा एक होरह्या है तोहू अपना चैतन्यस्वभावकरि भिन्न ही है। पुद्गलमय कदाचित् नही होय, तातै अमूर्तिक हैं। इहां कोऊ फेरि पूछै जो संसार अवस्थामें आत्मा कर्मपुद्गलनितै एक होरह्या है तो आत्माका अस्तित्व कैसे जान्या जाय। ताकूं उत्तर कहे है। बंधपर्यायकी अपेक्षातै आत्माकै पुद्गलतै एकपणा होतैंहू लक्षणके भेदतै आत्मा अर कर्मपुद्गल भिन्न जानेजाय है फेरि पूछे है। जो आत्मा पुद्गलनितै एक होरह्याहूं जातै भिन्न जाननेमे आवै ऐसा लक्षणही कहो। ऐसा प्रश्न होतै सूत्र कहै है।

उपयोगो लक्षणम् ॥८॥

अर्थप्रकाशिका– उपयोग है सो जीवका लक्षण हैं। सो उपयोग कहा है सो कहे है। जातै चैतन्य है सो आत्माका स्वभाव है। तिस चैतन्य स्वभावकूंही जो कहै ऐसा आत्माका परिणाम कहिए परिणमन परिणति ताकूं उपयोग कहीए है जेसे कटक कुंडल मुद्रिकादि विकार है सो सुवर्णस्वभावकूं कहनेवाला सुवर्णहीका परिणमन है, तैसे इंद्रिय अनिंद्रियादिकनिकै द्वारे जो परिणति है सो सव उपयोगही है। तथा घटपटादिकनिकै आकार वा सुखदुःखादिरूप परिणमन सो समस्त उपयोगही है। जो उपयोग है सो जिवका निर्बाध लक्षण है। दूषणरहित है। जातै अव्याप्त अतिव्याप्त असंभवी इन तीन दूषणनिसहित जो लक्षण होय सो सदोषलक्षण होय है। तिनमे जो लक्षण लक्ष्यका एकदेशमें व्यापै समस्तलक्ष्यमे नही व्यापे सो तो अव्याप्तदोष है। जंसे गौका लक्षण सावलेयपणा कह्या सो सावलेयपणा कोईक गौमे वर्तै है समस्त गोमात्रकूं भिन्न दिखावनेवाला यह लक्षण नहीं, तातै लक्षण अव्याप्तदोषसहित भया।

इहां सावलेयपणा कहां है सो कहे है । कोऊ वलधके पीठ उपरि जीभसी लंबी होय है, ताकूं सावलेय कहिए है, ताकूं नाद्याभी कहे है। बहुरि जो लक्षण लक्ष्यमेभी व्यापै अर अलक्ष्यमेभी व्यापै सो अतिव्याप्तदूषण है, जैसे गोका लक्षण सींगसहितपणा कहना सो श्रृंगसहित तो भैसा मींढा अनेक होय है । वहुरि जो लक्षण लक्ष्यमे संभवैही नहीं सो असंभवी दोष है । जैसे मनुष्यका लक्षण विषाणी कहिए श्रृंगवाला कहना सो मनुष्यके श्रृंग संभवेही नहीं, सो असंभवदोष है ।

जातै यो उपयोग लक्षण है सो समस्त जीवनिमे पाइए है कोऊ जीवमात्र उपयोगरहित नाही, तातैं लक्षणके अव्याप्तदोष होय नाही है । वहुरि उपयोग है सो जीवविना अन्य द्रव्यनिमे नही पाइए है तातैं अतिव्याप्त दोषसहित नाही। वहुरि उपयोग लक्षण समस्तजिवनिमे संभवे है । प्रत्यक्षादिप्रमाणकरि वाध्या नही जाय है तातै असंभवदोष सहित नही है । वहुरि औरहू दृष्टांत जानना । जैसे आत्माका लक्षण अमूर्तत्व कहना सो अमूर्तिकपणा तो आकाशादि अन्यद्रव्यमेहू पाइए है यातै लक्ष्यअलक्ष्य दोऊनिमें व्यापनेते अतिव्याप्तदोषसहित लक्षण भया । वहुरि आत्माका लक्षण रागादिमत्व कहिए तो रागादिमानपणा समस्तआत्मामे नहीं । सिद्ध भगवान् रागादि रहित है । यातै लक्ष्यका एकदेशमे व्यापनेतैं लक्षण अव्याप्तदोषसहित भया । वहुरि लक्ष्यतै विरोधी लक्षण सो असंभवी हैं । जैसे आत्माका जडत्व लक्षण कहना सो संभवे नहीं । तातैं अतिव्याप्त अव्याप्त असंभव इन तीन दोषरहित आत्माका उपयोगलक्षगही सत्य है। अव उपयोगका भेद कहनेकूं सूत्र कहे है ।

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥

अर्थप्रकाशिका– सो उपयोग दोय प्रकार है । एक ज्ञानरूप । एक दर्शनरूप । तिनमे मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ए पांच ज्ञान अर कुमति कुश्रुत विभंग ए तीन अज्ञान । अथवा मतिअज्ञान श्रुनअज्ञान विभंग अज्ञान इनिके नाम ऐसेहू है । ऐसे अष्टप्रकार ज्ञानोपयोग कह्या । अर चक्षुर्दर्शन । अचक्षुर्दर्शन । अवधिदर्शन । केवलदर्शन । ए च्यार दर्शनोपयोगके भेद कहै ।

इहां पूछै, जो, दर्शनज्ञानविषै भेद कहां है। ताका उत्तर। साकार अनाकारके भेदतै भेद है । जहां पदार्थका सामान्य सत्तामात्र ग्रहण होय सो दर्शन है । जातै पदार्थके अर इंद्रियनिके संबंधके अनंतरहि वस्तुका आकारादिविशेष ग्रहणमे नहीं आवे तातै दर्शन निराकार है। अर जो आकारादिविशेषकूं जाने सो साकारज्ञान है । अर छद्मस्थके तो दर्शनपूर्वकही ज्ञान होय है । अर केवली भगवानके दर्शन ज्ञान युगपत् होय है । वहुरि दर्शन ज्ञान इन दोऊ उपयोगनिमें ज्ञान प्रधान है । तातै सूत्रमे पहिले ज्ञान कह्या है ।

इहां कोऊ प्रश्न करे जो अवधिज्ञान जैसे अवधिदर्शनपूर्वक होय है, तैसें मनःपर्यय

ज्ञानहू मनःपर्ययदर्शनपूर्वक होना चाहिए। ताका उत्तर। आगममैं ऐसे कह्या है जो मनःपर्यय-दर्शनावरणकर्म है नाहीं। आगममें दर्शनावरणकर्मचतुष्टयहीको उपदेश्या है। तातैं आवरणका अभावतैं ताका क्षयोपशमकाहू अभाव हैं, तातैं मनःपर्ययदर्शनोपयोगकाहू अभाव जानना।

वहुरि इहां ऐसा उपदेश जानना। जो मनःपर्ययज्ञान है सो अपना विषयविषैं अवधिज्ञानज्यो संमुखकरि नही प्रवर्त्तै है। तो कैसे प्रवर्त्तै है सो कहे है। अपना मन है सो परके मनकी प्रणालिकाकरि अतीत अनागत अर्थनिकूं चिंतवन करे है परंतु देखे नही है। तैसे मनःपर्ययज्ञानीहू भूत भविष्यत् पर्यायनिकूं जाणै है अर देखे नही है। अर वर्त्तमानपदार्थहू मनका विषयमें विशेषाकार करिकेही प्राप्त होय है। सामान्यपूर्वक प्रवृत्तिका अभाव है तातैं मनःपर्ययदर्शनोपयोग नही है। ऐसे दोय सूत्रकरि कह्या जो उपयोगका लक्षण सो जीवके शरीरतैं भेदकूं साधे है। जैसे उष्ण जलमें द्रवपणा अर उष्णपणा जल अग्निका भेदकूं साधे है। अथवा जैसे सोनेरूपेका एकपिंड होय तहां पीतथा स्वेतता तथा गुरुपणा हलकापणा है सो सुवर्णरूपाके भेदको साधे हैं। तैसे इहांहू जीवपुद्गलके लक्षण भेदकरि भेद जानना। अव समस्तजीवनिमें साधारण जो उपयोग ताकरि सहित जे जीव है ते दोय प्रकार है।

संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

अर्थप्रकाशिका-- जीव है ते संसारी वहुरि मुक्त ऐसे दोय प्रकार है। संसरणं संसारः। ऐसी संसारशब्दकी निरुक्ति है। "संसरणं" कहिए परिभ्रमणरूप होय सो संसार है। याहीकूं परिवर्त्तन कहिए है। सो परिवर्तन पंचप्रकार है। तहां कर्मनोकर्मरूप पुद्गलनिका ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण सो द्रव्यपरिवर्त्तन है। वहुरि क्षेत्र कहिए आकाशके सर्वप्रदेशनिविषैं उत्पत्तिमरणरूप परिभ्रमण सो क्षेत्रपरिवर्त्तन है। वहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके समयनि-विषैं उपजनेविनसनेरूप परिभ्रमण सो कालपरिवर्त्तन है। वहुरि त्यौंही भव कहिए नारकादि सर्व भवनिका आयुके भेदनिविषैं उत्पत्ति मरण परिभ्रमणरूप सो भवपरिवर्त्तन है। वहुरि भाव कहिए अपने कषाययोगनिके स्थानरूप जे भेद जघन्य मध्यम उत्कृष्ट कर्मनिकी स्थितिबंधरूप तिनका पलटनेरूप परिभ्रमण सो भावपरिवर्त्तन है। मिथ्यात्वकरि सहित जीव भाव संसारविषैं भ्रमता सर्व प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशबंधके जे स्थान है ते सर्वही पाए। ए पंच परिवर्त्तन है। इनिका कथन विस्तारसहित अन्य शास्त्रनिविषैं कह्याही है। विस्तारतैं जाननेका इच्छूक तिन ग्रंथनितैं जानहूं। अर संक्षेपतैं नवम अध्यायमें लिखेंगे तहांतै जाननां। ऐसे पंचप्रकार संसारते जीव रहित भए ते मुक्तजीव कहिए मुक्तजीव ते संसारपूर्वक होय है, तातैं संसारीनिका प्रथम ग्रहण जानना। अव संसारीजीवनिके भेद कहनेंकूं सूत्र कहे है।

समनस्काऽमनस्काः ॥११॥

अर्थप्रकाशिका– संसारी जीव है ते मनसहित वा मनरहित दोय प्रकार है। जे जीव

मनसहित है ते संज्ञी है। मनरहित होय ते असंज्ञी है। जो हितमें प्रवर्त्तनेकी अहितमे प्रवृत्तिका निषेधकी शिक्षा ग्रहण करे सो संज्ञी हैं। वहुरि जो हस्त पाद चामठी लाठी इत्यादिक उठावने-रूप क्रियाकूं होतेही ऐसे ग्रहण करे जो ये हमारे देवेगा मारेगा इत्यादि क्रियातैं आपके सुख दुःखादिककूं जाने। वा जाकूं उपदेश लागे बुलाया आजाय, घेऱ्यां चल्याजाय सो संज्ञी है। अर जाके शिक्षा क्रिया उपदेश आलापका ग्रहण नहीं होय सो असज्ञी है।

जो मन है सो द्रव्यभावके भेदकरि दोय प्रकार है। तहां जो हृदयस्थानविषै अष्ट-पांखडीका फुले कमलके आकार सूक्ष्म पुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठे है सो तो द्रव्यमन है। वहुरि द्रव्यमनके पुद्गलनिके अभ्यंतर मन अनिंद्रियावरणकर्मका क्षयोपशमसहित अंगुलके असंख्यांतवे भाग जे आत्माके प्रदेश ते भावमन है। वहुरि समनस्क शब्दके पूज्यपणाते सूत्रमें पहिले ग्रहण किया है। जाते मनसहित जीवके गुणदोषनिका विचारसहितपणा है, मनरहितके नहीं, तातैं समनस्ककूं सूत्रमें प्रथम ग्रहण कीया। आगे संसारीजीवका अन्यहू भेद कहनेकूं सूत्र कहे है।

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

अर्थप्रकाशिका– संसारी जीव है ते त्रस और स्थावर ऐसे दोय हैं। जीव विपाकी त्रसनाम कर्मके उदयते त्रस होय है। जीव विपाकी स्थावरनामकर्मके उदयते स्थावर होय है। कोऊ कहे जो चलन हलन करे सो त्रस है अर अतिशयकरि तिष्ठते स्थावर है। ऐसे निरुक्ति करिए है। ताकूं उत्तर कहे है। जो चलन हलन अपेक्षाही त्रस होय तो गर्भमें तिष्ठते अंडेनिमे तिष्ठते वा मूर्छित सुप्त भयभीत ए हलनचलनरहित हैं। इनके त्रसपणाके अभावका प्रसंग आवेगा। तथा पवन अग्नि जल इनिके एकदेशतैं अन्यदेशांतरमें प्राप्ति होना देखिए है तिनके त्रसपणाका प्रसंग आवेगा। तातैं त्रसस्थावरपणा चलने तिष्ठनेकी अपेक्षा नहीं है। त्रस अर स्थावर नामा नामकर्मकी अपेक्षातैं है। इस सूत्रमेहू त्रसशब्दके पूज्यपणातैं प्रथम ग्रहण कीया है। अब स्थावरनिका बहुत भेद नहीं है यातैं आनुपूर्व्वीकूं उल्लंघनकरि स्थावरके भेद कहनेकूं सूत्र कहे है। जाते लौकिकमेहू सूचीकडाहन्याय प्रसिद्ध है। जो कडाहमी घडना होय अर सूईमी घडनी होय तो पहली सूई घडदे कडाह पछै घडै। अल्प भेद स्थावरनिकूं कहे है।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

अर्थप्रकाशिका– पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ये स्थावर नामकर्मके उदयके वसते पंच स्थावर हैं। ए पंच स्थावर तिनके इंद्रियप्राण। कायवलप्राण। उछ्वास प्राण। आयुप्राण। ऐसे ए च्यार प्राण होय है। इहां ऐसा विशेष जानना। जो यद्यपि आत्मा केवलज्ञानस्वभाव है। तथापि ज्ञानावरणकर्मके वेढनेते ज्ञानका अपकर्ष न होनेतैं सूक्ष्मनिगोदी या लब्धपर्याप्तजीवके अक्षरके अनंतवे भाग ज्ञान रही जाय है। उस ज्ञानके आवरण नही है। जो उस पर्यायज्ञानकेहू आवरण होय तो आतमा जडरूप होजाय तदि आत्माका अभाव होजाय। सो द्रव्यका अभाव

होय नहीं, तातैं पर्यायज्ञान निरावरण है याका आवरण होय तो फिर पर्यायका पलटनाही नहीं होय, तदि समस्त जीव निगोदांते नहीं निकसीसके ।

अव त्रस कोंन है यातैं सूत्र कहे है ।

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका– द्वींद्रियकूं आदि लेय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसे त्रस जीव है । तहां द्वींद्रियके छह प्राण है । तिनमे स्पर्शन रसन दोय इंद्रिय अर कायवल वचनवल आयु स्वासोश्वास ऐसे छह प्राण है । तींद्रियके घ्राणइंद्रियकरि अधिक सात प्राण है । वहुरि चोंद्रियके चक्षुइंद्रियकरि अधिक आठ प्राण है । वहुरि पंचेंद्रियतिर्यंचनिविषै असंज्ञीके कर्ण इंद्रियकरि अधिक नवप्राण है । वहुरि सैनी पंचेंद्रियके मनकरि अधिक दशप्राण है । अब इंद्रियनिकी गणनाका निश्चयके अर्थि सूत्र कहे है ।

पंचेन्द्रियाणि ॥१५॥

अर्थप्रकाशिका– इंद्रियनिकी संख्या पांचही जाननी । केई अन्यमती हीनाधिक संख्या कहे सो अयुक्त है । वहुरि ए इंद्रिय है ते अपने अपने विषयके ज्ञान उपजावनेविषै कोऊ किसीके आधीन नाही जुदे जुदे एक एक इंद्रिय परकी अपेक्षारहित है । अहमिंद्रनकी ज्यो आप आपके समस्तही स्वाधीन है ईश्वरताकों धरे है । वहुरि अपने अपनें विषयकूं अंगिकार करे हैं । अव इद्रियनका भेद कहनेकूं सूत्र कहे है ।

द्विविधानि ॥१६॥

अर्थप्रकाशिका– जे इंद्रिय कहे ते द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियकरि दोय प्रकार है । अव द्रव्येंद्रियका स्वरूपका ज्ञानके अर्थि सूत्र कहे हैं ।

निर्वत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

अर्थप्रकाशिका– निर्वृत्ति अर उपकरण ऐसे द्रव्येंद्रिय दोय प्रकार है । कर्मकरि जो रची वा उत्पन्नकरि सो निर्वृती कहिए । सो निर्वृतिहू दोय प्रकार है । एक अभ्यंतरनिर्वृति । एक वाह्यनिर्वृति । तिनमें उत्सेधांगुलके असंख्यातवे भागप्रमाण जे विशुद्ध आत्माकें प्रदेश तिन प्रदेशनिकी जो नेत्रदिक इंद्रियनिका आकार वा प्रमाण वा स्थानरूप जो रचना सो अभ्यंतर-निर्वृत्ति है । वहुरि तिन आत्मप्रदेशनिके उपरि इंद्रियनामका धारनेवाले प्रतिनियतस्थान लिए नामकर्मके उदयकरि इंद्रियव्यवस्थाकूं प्राप्त भया जो पुद्गलसमूह सो वाह्यनिर्वृत्ति है ।

भावार्थ - जैसें नेत्रइंद्रियमे नेंत्रइंद्रियावरणकर्म अर वीर्यांतरायकर्मका क्षयोपशमसहित आत्माकें प्रदेश मसूरकें आकार रचनारूप होय तिष्ठे है सो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है । अर तिस अभ्यंतर

इंद्रियाकार परिणतिरूप आत्माप्रदेशविषै नामकर्मका उदयकरि नेत्रइंद्रियाकार पुद्‌गलसमूह तिष्ठे सो वाह्यनिर्वृत्ति है। ऐसेंही कर्णइंद्रियावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमसहित आत्माके प्रदेश जवकी नालीके आकार होय तिष्ठै सो आत्मप्रदेशनिकी रचना अभ्यंतरनिर्वृत्ति है। अर ताके उपरि नामकर्मके उदयते कर्णइंद्रियका जवकी नालीके आकार होय पुद्‌गलसमूह तिष्ठे सो वाह्यनिर्वृत्ति हैं। वहुरि जो निर्वृत्तिका उपकार करनेवाला पुद्‌गलसमूह सो उपकरण है। ताकेहू वाह्य अभ्यंतरकरि दोय भेद है। ऐसेही समस्त इंद्रिनियके द्रव्येंद्रियपणा जानना। अव भावइंद्रियनिका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहे है।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥

अर्थप्रकाशिका– लब्धि और उपयोग ऐसे भावेंद्रियहू दोय प्रकार है। जाकूं होतैं आत्मा द्रव्येंद्रियकी रचनाप्रति प्रवर्त्तनकरे ऐसा ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशमविशेषताकूं लब्धि कहिए। वहुरि कर्मका क्षयोपशमरूप लब्धिके निमित्तते आत्माका विषयप्रति परिणमन होना सो उपयोग हैं। जैसे किसी जीवके सुननेकी शक्ति है, परंतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन सो अन्य हो जायगा, अन्यविषयनिमे लगि रह्या है तो सुने नाहीं। वहुरि कोऊ जान्या चाहे अर क्षयोपशमशक्ति नाही तो जानि नहीं सके, तातै लब्धि अर उपयोग दोऊ मिले विषयका ज्ञानकी सिद्धि होय हैं। आवरणकर्मका क्षयोपशमते जो आत्माके विशुद्धता सो शक्ति है। तिस क्षयोपशमशक्तिहीकूं लब्धि कहिए है। अर आत्मा ज्ञेयपदार्थके सन्मुख होय तासूं जुडै सो उपयोग है। ऐसे भावेंद्रियका स्वरूप कह्या। अव कही जे इंद्रिय तिनकी संज्ञा अर आनुपूर्वीके जनावनेकूं सूत्र कहे है।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

अर्थप्रकाशिका– स्पर्शन। रसन। घ्राण। चक्षुः। श्रोत्र। ए पांच इंद्रियनके नाम है। वीर्यांतराय मतिज्ञानावरणका क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामककार्म उदयका लाभ वा आलंवनतै आत्मा जाकरि विषयकों स्पर्शै ताकूं स्पर्शन कहिए। ऐसेही जाकरि अपने विषयकों आस्वादे ताकूं रसन कहिए। जाकरि गधग्रहण करे ताकूं घ्राण कहिए। जाकरि अवलोकन करे ताकूं चक्षु कहिए। जाकरि श्रवण करे ताकू श्रोत्र कहिए। ऐसे ए पांच इंद्रिय है। इहां समस्तशरीरमे व्यापीपणातै स्पर्शनका आदिमे ग्रहण कीया। अथवा समस्त संसारनिके स्पर्शनइंद्रिय पाइए है तातै स्पर्शनका आदिमे ग्रहण कीया। तिन पाछै रसन घ्राण चक्षु इनका ग्रहण क्रमते कीया सो ए इंद्रिय जीवनिके क्रमतेही होय है। जातै बेंद्रियजीवके स्पर्शन रसनही होय अन्य दोय नहीं होय। त्रींद्रियके स्पर्शन रसन घ्राण एही तीन होय अन्य येरफेर नही होय। चौंद्रियके स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु इन च्यारहीका ग्रहण होय अन्य नही होय। श्रोत्रइंद्रिय पंचेंद्रियहीके होय अन्यके नहीं होय। इनि इंद्रियनिमे श्रोत्रइंद्रियके वहु उपकारीपणो है। जातैं

श्रोत्रइंद्रियका वलतैं उपदेश श्रवण करिकेही हितकी प्राप्ति अहितका त्यागके अर्थि आदर करिए है। वहुरि आत्मा पहली श्रोत्रइंद्रियद्वारे उपदेश श्रवण करिकेहीं वक्तापणाप्रति व्यापार करे है अव इन इंद्रियनका विषय दिखावनेकूं सूत्र कहै है।

स्पर्शरसगन्धवर्णशद्बास्तदर्थाः ॥२०॥

अर्थप्रकाशिका– स्पर्शनइंद्रियका विषय स्पर्श है। रसनाइंद्रियका विषय रस है। घ्राणइंद्रियका विषय गंध है। चक्षुइंद्रियका विषय वर्ण है। श्रोत्रइंद्रियका विषय शद्ब है। ऐसे पांच इंद्रियनिके पंच विषय है। अपने अपने विषयकूंही ग्रहण करे है अन्य इंद्रियका विषयकूं अन्य इंद्रिय नही ग्रहण करे है। तहां जाकूं स्पर्शिए अथवा जो स्पर्शन सो स्पर्श हैं। वहुरि जाकों अस्वादीए अथवा जो स्वादमात्र सो रस हैं। वहुरि जाकों सुंघिए अथवा सूंघना सो गंध है। वहुरि जाकूं देखिए सो वर्ण है। सुणीए अथवा शब्दरूप होय सो शब्द हैं। ए इंद्रियनके विषय जानने। अव इहां कोऊ कहे जो मन है ताका अवस्थान नाही तातैं यो इंद्रिय नही है। ऐसे मनके इंद्रियपणाका निषेध कीया। परंतु यो मन उपयोगकों उपकारक हैं वा नही है। तदि कहे जो, मन तो उपकारीही है। जातैं मनविना इंद्रियानिका विषयनिमे अपना प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है। फिरी कोऊ कहे जो मनके इंद्रियनिका सहकारीपणामात्रही प्रयोजन है कि अन्यभी है। ऐसे पूछतैसंते सूत्र कहे है।

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥

अर्थप्रकाशिका– अनिंद्रिय जो मन ताका विषय श्रुत कहिए श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है सो विषय हैं। श्रुतज्ञानका विषय जो पदार्थ सो श्रुत है, सो श्रुत मनका विषय हैं। प्राप्त हुवा हैं श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम जाके ऐसा आत्माके श्रवणकीए अर्थका विचारनेमें मनका अवलंवन-करि प्रवृत्ति होय है जातैं कर्णइंद्रियकरि श्रवणमात्र कीया सो तो मतिज्ञान है। तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है। अव आदिकेविषै ग्रहणकीया जो स्पर्शनइंद्रिय ताका स्वामी-पणाका निश्चयके अर्थि सूत्र कहे है।

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

अर्थप्रकाशिका– पृथ्वीकायकूं आदि लेय वनस्पतिपर्यंतनिके एक स्पर्शनइंद्रियही है। अव अन्य इंद्रियनिका स्वामीपणा दिखावनेकूं सूत्र कहे है।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

अर्थप्रकाशिका– कृम्यादिकनिमे एकएक इंद्रिय वधती जानना। लट संख जोक इत्यादिकनिके स्पर्शन रसन घ्राण ए तीन इंद्रिय है। वहुरि भ्रमर मक्षिका टीडी डांस मछर

पतंग इत्यादिकनिके स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु ए च्यार इंद्रिय है। बहुरि मनुष्य मत्स्य गौ सर्प हंस इत्यादिकनिके पांचूंही इद्रिय हैं। संसारीजीव इंद्रियद्वारे तो वर्णन कीया। अब मनद्वारे वर्णन करनेकूं सूत्र कहे है।

संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥

अर्थप्रकाशिका— जे मनसहित जीव है ते संज्ञी है जाके ऐसा विचार होय जो यो हित है, यो अहित है इस हितकी प्राप्तिमें अर अहितका निषेधमें यो गुण है अर यो दोष है। वा शिक्षा क्रिया आलापका ग्रहण करनेरूप संज्ञा जाके होय सो संज्ञी है। ऐसे मनसहित संज्ञी हैही मन-रहितही हैं। अर पंचेंद्रियनिमे देव नारकी मनुष्य तो संज्ञीही है इनमे असंज्ञी नही होय है। अर पचेंद्रिय तिर्यंचनिमे जे मनसहित है ते संज्ञी है। अर जे मनरहित है ते असंज्ञी है। यद्यपि संज्ञीनिमेहू गर्भअवस्थामें अंडामे शयन कर ताकै मूर्छितकें शिक्षा क्रिया आलापादिग्राहीपणा नही है तथापि मनका सद्भावते संज्ञीही होय है। अब कहे हैं, जाका पूर्वशरीका तों अभाव हो गया अर नवीन शरीरका ग्रहणके अर्थि सन्मुख जो मनरहित आत्मा ताकै कर्मका आस्रव काहेते होय। ऐसे पूछे सूत्र कहे है।

विग्रहगतौ कर्मयोगः ।२५॥

अर्थ— विग्रह जो नवीनदेह ताकै अर्थि जो गमन ताकै विषै कार्मणयोग है। विग्रह नाम देहका है ताके अर्थि जो परभवकूं गमन करे ताकौ विग्रहगति कहिए। अथवा "विरुद्धों ग्रहः विग्रहः"। विग्रह नाम रोकनेकाहू है। याही ते पुद्गलका ग्रहण होतेहू नोकर्मपुद्गलनिके ग्रहणका निरोध है।

भावार्थ— जीव मरणकरि नवीन शरीर ग्रहण करनेकूं गमन करे हैं तदि एक अथवा दोय तथा तीन समय काल लागे है। तिस कालमे कर्मपुद्गलनिका समयप्रवृद्ध तो ग्रहण होय हैं। अर नोकर्मपुद्गल नही है ग्रहण होय हैं। बहुरि कार्मणशरीरको कर्म कहिए। तिस कार्मण-शरीरद्वारे आत्माके प्रदेशनिका सकंप होना सो कार्मणयोग है। सो समस्तकर्म ग्रहण करनेका बीज है। अब कहे है जो जीव पुद्गल गमन करे सो आकाशके प्रदेशनिकी पंक्तिका क्रमरूप गमन करे है कि और तरह करे है यातै सूत्र कहे है।

अनुश्रेणिगतिः ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका— जीवनिका तथा पुद्गलनिका गमन आकाशके प्रदेशनिकी श्रेणीरूपही होय हैं। विदिशारूप गमन नही होय हैं। जीवनिके मरण होते जो नवीन शरीरके अर्थि गमन होय सो आकाशके प्रदेशनिकी श्रेणी पंक्तिरूप उर्ध्व अधः वा तिर्यक् गमन होय है। आकाशके

प्रदेशनिकी सूधी विषैंही गमन होय है। विदिशानिमे गमन नाही है। अर पुद्गलकी शुद्ध परमाणु अतिशीघ्र गमनकरि एक समयमे चोदहराजू गमन करे सो सूधाही गमन करे है।

इहां कोऊ पूछै, जो जीवका तो अधिकार है, इहां पुद्गलनिका ग्रहण कैसे कीयां। ताका उत्तर। जो, इहां गमनका ग्रहण है सो गमन जीवकेभी है पुद्गलकेभी होय है, तातै दोऊनिका ग्रहण कीया है। इहां ऐसा विशेष जानना। जो मरण होतें नवीनशरीरकै अर्थि गमन करे, तिस कालमें आकाशके प्रदेशनिकी सूधी पंक्ती रूपही गमन करनेका नियम है अन्य अवसरमें नही। अर पुद्गलनिकेहू जो लोककाअंतपर्यंत गमन करनेका अवसरविषैंही अनुश्रेणीगतिका नियम है अन्य अवसरमे श्रेणीरूप गमन करनेका नियम नही है। अब मुक्तजीवनिकी गति विशेष कहनेकूं सूत्र कहे है।

अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

अर्थप्रकाशिका– मुक्तजीवनिकी गति व वक्रतारहित होय हैं। मुक्तजीव श्रेणीवद्ध गतकरि एक समयमें सूधा सातराजू ऊंच गमनकरि सिद्धक्षेत्रमै जाय तिष्ठैं हैं इहां कोऊ कहै, सूत्रमें मुक्तजीवका नाम विनाकह्या मुक्तजीवका ग्रहण कैसे कीया। ताका उत्तर। अगिले सूत्रमें संसारीका ग्रहण हैं यातें इस सूत्रमें विनाकह्या मुक्तका ग्रहण करना। संसारीजीवका परलोककें अर्थि गमन मुक्तजीववत् सरलगति है कि मोडाकरि गमन हैं यातें सूत्र कहे है।

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

अर्थप्रकाशिक– संसारी जीवकी गति च्यार समय पहली मोडासहित है। एक वा दोय वा तीन मोडारूप है। विग्रह कहिए मोडा लेय सो एक वा दोय वा तीन मोडातांई लेवे। संसारीजीवनिके सरलगति तो एकसमयरूप है। जानें सरलक्षेत्रमें उपजनेका कर्मबंध कीया होय ताका तो एक समयमेंही उत्पत्तियोग्य स्थानमें उपजना होय है। जाके एक वक्रता जामें आवे ऐसा क्षेत्रमें उपजनेका कारण कर्मबंध कीया होय ताका दूजे समयमें उत्पन्न होना होय है। अर जो दोय वक्रताकरि उत्पत्ति स्थानमें उपजे ताके तीजै समयमें उत्पन्न होना होय है। बहुरि जाका तीन वक्रता करि उत्पत्तिस्थानमें उपजना होय ताका चौथे समयमे उत्पन्न होना होय है। जो गति इषु कहिए वाण ताकी ज्यो सरल होय सो एकसमयरूप इषुगति है। वहुरि जामे एकवक्रता सो पाणिमुक्ता नामा गति दोय समयमे होय है। वहुरि जामे लांगल जो हल ताकी ज्यों दोय वक्रता होय सो लांगलिका नाम गति तीन तीन समयमें होय है अर जाकी गोमूत्रिका ज्यों तीन वक्रतारूप गति होय सो गोमूत्रिका नाम गति च्यार समयरूप होय है। सूत्रमें च शब्द कह्या ताकरी संसारीजीवकी विग्रह जो वक्रगतिभी है अर वाणकी ज्यों इषुगतिभी है। बहुरि वक्रता जो मोडा ताकरि रहित गतिका कितना काल है ऐसे पूछें सूत्र कहे है।

एकसमयाविग्रहा ॥२९॥

अर्थप्रकाशिका– नाही है मोडा जामे ऐसी अविग्रहगति है सो एकसमयका कालमात्र है। याहीकूं ऋजुगति कहिए है। बहुरि जौ पुद्गलपरमाणूहू सूधा गमन करे तो अधोलोकते ऊर्ध्वलोकपर्यंत एकसमयमे शीघ्र गमनकरि चोदह राजू पहूचै है। अब विग्रहगतिमें आहारक अनाहारकका नियमके अर्थि सूत्र कहे है।

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥

अर्थप्रकाशिका-- विग्रहगतिविषै एक समय वा दोय तथा तीन समय अनाहारक है। नोकर्मवर्गणाका आहार नाही है। तहां औदारिक वैंक्रियिक आहारक ए तीन शरीर तथा छह पर्याप्तके योग्य पुद्गलवर्गणाका ग्रहण सो आहार हैं। अर शरीररके योग्य पुद्गलवर्गणाका नहीं ग्रहण करना सो अनाहारक है बहुरि कर्मवर्गणाका ग्रहण तो जेते कार्मणशरीर रहे तैसेहू वाही करे है। जो एक मोडा लेय उपजे सो एक समय अनाहारक है। बहुरि दोय मोडाकरि उपजै सो दोय समय अनाहारक है। अर जो तीन मोडा लेय उपजै सो तीन समय अनाहारक है। ऐसे गमनविशेषका निरूपण छह सूत्रनिकरि कीया। अब जो नवीन शरीर ग्रहण करे तिस शरीरकी रचनाका प्रकारके अर्थि सूत्र कहे है।

सन्मूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

अर्थप्रकाशिका– जो नवीन शरीर धारे है ताका जन्म तीन प्रकार है। एक सन्मूर्छन जन्म। एक गर्भज जन्म। एक उत्पाद जन्म। तहां जो आपके योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावके विशेषतै तीन लोकमें उर्ध्व अधःतिर्यक् सर्वतरफतै पुद्गलनिका ग्रहणकरि देहके अवयवनिकी रचना होना देहका बनना सो सन्मूर्च्छन जन्म है। बहुरि जो स्त्रीके उदरविषै माताका रुधिर पिताका वीर्यका गरण कहिये मिश्रित होना मिलना सो गर्भ है। अथवा माताकरि ग्रहणकीया हुवा आहारका गरण कहिये अंगीकार करना सो गर्भ है। बहुरि जाविषै प्राप्त होयकरि उपजे ऐसा देव नारकीनिके उपजनेका स्थान सो उपपाद है। ऐसे संसारीजीवनिके जन्मके तीन प्रकार कह्या। अब तीन प्रकार जन्मके उपजनेके योनि तिनका विकल्प कहनेकूं सूत्र कहे है।

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

अर्थप्रकाशिका– सचित्त। शीत। संवृत। बहुरि इतर कहिए इनतै उलटा जे। अचित्त। उष्ण। विवृत। बहुरि तीनूहीका मिश्र ऐसे योंनिके नव भेद है। तहां जों जींवके उपजनेका योनिरूप पुद्गलसमूह चेतनासहित होय सों सचित्तयोनि है।

अर जीवके उपजनेके अचेतनपुद्गल होय सो अचित्तयोनि है। बहुरि जीवकी पर्याय

उपजनेका सचित्त अचित्त दोऊरूप स्थान होय सो मिश्रयोनि है। बहुरि योनिके शीतस्पर्शरूप पुद्गल होय सो शीतयोनि है। बहुरि उष्ण पुद्गल उपजनेका होयसो उष्णयोनि है। बहुरि शीत उष्ण दोऊ मिले पुद्गलरूप योनि होय सो मिश्रयोनि है। बहुरि योनिके पुद्गल प्रकट नही दीषै टके होय सो संवृतयोनि है। अर जिस योनिस्थानके पुद्गल उघडे हुए प्रकट होय सो विवृतयोनि है। बहुरि कुछ ढके कुछ उघडे होय सो मिश्रयोनि है।

इहां कोऊ पूछें योनि अर जन्मविषै भेद कहा है सो कहें है। आधारआधेयका भेदतै भेद हैं। इहां योनि तो आधार है अर जन्म आधेय है। जातै सचित्त आदि योनिके आधार आत्मा सन्मूर्छनादि जन्मकरि शरीर आहार इंद्रियादिकके योग्य पुद्गल ग्रहण करे है। तहां देव नारकीनिके तों अचित्तयोनिही है। बहुरि गर्भजन्मविषै सचित्त अचित्त दोऊरूप मिश्रयोनि है। बहुरि सन्मूर्छनविषै सचित्त अचित्त अर मिश्र ए तीन प्रकार योनि होय हैं। बहुरि देव अर नारकीनिके सीत अर उष्ण ए दोय योनि है। बहुरि गर्भजन्मके भेदविषै अर सन्मूर्छनजन्मके भेदविषै सीत उष्ण मिश्र ए तीन योनि है। इहां और विशेष कहै है। जो तेजस्कायिक जीवनिविषै उष्णही योनि है। बहुरि देवनारकी एकेंद्रिय संवृतयोनिही है। विकलेंद्रिय विवृतयोनिही है। अर गर्भजनिके संवृत विवृत दोऊरूप मिश्रयोनि हैं। बहुरि सन्मूर्छन पंचेद्रिय है ते विकलेंद्रियवत् विवृत्तयोनिमे उपजै है। इहां ऐसा जानना। जो जीवनिके उपजनेका आधारभूत पुद्गलस्कंधका नाम योनि है ताके सामान्यपने नव भेद है। विस्तारकरि तिसका चोरासीलक्ष भेद है। सो इन नवभेदनिहीके विशेष है ते प्रत्यक्षज्ञानीनिके ज्ञानरूप दिव्यचक्षुकरि दीखे है। अर अन्य छद्मस्थके आगमकरि जाननेमे आवे है। अब इनी नवयोनिके भेदनिमे तीन प्रकारका जन्मनिविषै प्राणीनिका उपजनेका नियम दिखावनेकूं सूत्र कहे है।

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भ ॥३३॥

अर्थप्रकाशिका– जरायुज। अंडज। पोत। ए तीन प्रकारके प्राणीनिके जन्म गर्भही है। जो जालकीज्यों प्राणीका आच्छादन जिसमे मांस रुधिर व्याप्त होरह्या सो जरायु है। जरायुमे उपजे ते जरायुज हैं। बहुरि माताका रुधिर पिताका वीर्यही गोलसा होजाय ऊपरी कठिन कठिन नखकी त्वक्समान सो अंड है। अर अंडामे उपजै सो अंडज है। जाके ऊपरी कुछहू आवरण नहीं। आवरणविनाही जाका परिपूर्ण अवयव होय योनितै निकसतैंही चलनवलनादि सामर्थ्य होय सो पोत है।

बहुरि सूत्रमे जरायुजका आदिमें ग्रहण कीया सो जरायुज प्रधान हैं। जातै अंडजनितें अर पोतनितै असाधारण भाषा अर अध्ययनादिक जरायुजनिमे देखिए है। अर चक्रधर वासुदेवादि व महाप्रभाववानहू जरायुजनिमेही उपजें है। अर मोक्षभी जरायुजनिहीके होय है। मनुष्य वृषभादिक जरायुज है। हंस कपोतादिक अंडज है। सिंहव्याघ्रादिक पोत है। इन

तीनोंनिके जन्म गर्भतेही है। अब उपपादजन्म कोनकोनके है यातै सूत्र कहे हैं।

देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥

अर्थप्रकाशिका— देवनिके अर नारकीनिके उपपाद जन्म है। च्यार प्रकारके देवनिका अर नारकींनिका उपपाद जन्म कह्या सो देवनिके तो प्रसूतिस्थानमें शुद्ध सुगंध कोमल संपूटकै आकार शय्या है। तिसमे उत्पन्न होय अंतर्मुहूर्त्तमे परिपूर्ण यौवनवान हुवा जैंसे कोऊ शय्यामे सूता जागृत होय आनंदसहित बैठिए होय है तैंसे देवनिका उपपादजन्म होय है। अर नारकीनिके उत्पन्न होनेके विलनिकी छातिनिविषै मधुछताकी ज्यों अधोमुख उष्ट्रमुखादिकके आकार छोटेमुखनिके उत्पत्तिस्थान है तिनमे नारकी उपजि अधो मस्तक ऊंचे पगतैं महाउष्मादिक वेदनाते निकसि विलाप करता भूमिविषै पडें है। ऐंसे देवनारकीनिके उत्पत्तिके स्थान उपपाद है तहां ही देवनारकीनिका जन्म है। अब अन्य जीवनिके कौन जन्म है याते सूत्र कहे है।

शेषाणां सन्मूर्च्छनम् ॥३५॥

अर्थप्रकाशिका— गर्भजन्मवाले मनुष्य तिर्यंच अर अन्य उपपादजन्मवाले देवनारकी इनतै जे शेष एकेंद्रियादि जो इंद्रिय तांई तथा केई पंचेंद्रिय तिर्यंच इनिके सन्मूर्छनजन्म है। अब तीन प्रकार जन्मके धारक जे प्राणी तिनके शुभ अशुभकर्मके फल भोगनेके आंधार कौन शरीर है? ऐसे प्रश्न होतै सूत्र कहे है।

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीरराणि ॥३६॥

अर्थप्रकाशिका— औदारिक। वैक्रियिक। आहारक। तैजस। कार्मण। ए पंच प्रकार शरीर कर्मके फल भोगनेके आधार है। जो उदार कहिए स्थूल होय सो औदारिक है। वहुरि एक अनेक सूक्ष्म स्थूल हलका भारी इत्यादिक विकारके योग्य होय सो वैक्रियिकशरीर है। वहुरि जो सूक्ष्मपदार्थका निर्णयके अर्थि वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेके अर्थि वा संयमके परिपालनके अर्थि प्रमत्तगुणस्थानधारी रचै सो आहारकशरीर है। बहुरि देहमें तेजका निमित्त सो तैजशरीर है। वहुरि ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मनिका समूहरूप कार्मणशरीर है। ऐसे शरीरके भेद पांच कहे। अब कोऊ कहे जैसे जैसें औदारिकका ग्रहण इंद्रियनिकरि होय है तैंसे वैक्रियिकादिकनिका ग्रहण काहतें नहीं होय यातें सूत्र कहे है।

परं रंप सूक्ष्मम् ॥३७॥

अर्थप्रकाशिका— औदारिकतै अगिले अगिले शरीर सूक्ष्म है। औदारिकशरीरतै वैक्रियिक सूक्ष्म है। यातै आहारक सूक्ष्म है। यातै तेजस सूक्ष्म है। यातै कार्मण सूक्ष्म। ऐसे उत्तरोत्तर सूक्ष्म है। इहां कोऊं कहे जो परैपरै सूक्ष्मशरीर कह्या तो परैपरै प्रदेशनिते हीन

होनेका प्रसंग आया । इस दोषके दूरि करनेकूं सूत्र कहे है ।

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥

अर्थप्रकाशिका– इहां प्रदेशशब्दका अर्थ परमाणू है । ए कहे जे शरीर ते तैजसतैं पहलि कहे । ते असंख्यांत असंख्यात गुणाकाररूप परमाणुका पिंड है । औदारिकशरीरके जेते परमाणू है तिनतैं असंख्यातगुणे वैक्रियिकशरीरविषैं परमाणु हैं । वैक्रियिकके परमाणुतैं असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे आहारकविषैं है । इहां कोऊ आशंका करे जो परैंपरैं शरीरनिमें असंख्यातगुणे परमाणु हैं तो परैंपरैं महान् स्थूलपणाका प्रसंग आया, परैंपरैं सूक्ष्मपणा कहां रह्या ताकूं कहे है । जो, स्थूलपणा नाही आवै है । रईका समूह अर लोहका पिंडकी ज्यों बंधनका विशेष है । यातैं वहुत परमाणुपिंडहू सूक्ष्म परिणमैं है । अवपू छै है जो तैजम पहली तो ऐसा प्रमाण कह्या तो तैजस कार्मणका प्रदेश सन्मान है, कि कुछ विशेष हैं यातैं सूत्र कहे है ।

अनन्तगुणे परे ॥३९॥

अर्थप्रकाशिका– आहारकशरीरके परमाणुतैं तैजसविषैं अनंतगुणे परमागु है । तेजसतैं कार्मणविषैं अनंतगुणे परमाणु है । इहां कोऊ कहे तंजसकार्मणदेहसहित आत्माका वहु कठोरतातैं वांछितगमन जो अपने जानेयोग्य क्षेत्रप्रति गमन नहीं होता होयगा । शल्यकी ज्यों रुकता होइगा ताका निराकरण करनेकूं सूत्र कहे हैं ।

अप्रतिघाते ॥४०॥

अर्थप्रकाशिका– तैजस कार्मण ए दोऊ शरीर अन्य मूर्तिमान पुद्गलादिकनिकरी नही रुके है । जैसे अग्निके परमाणुनिका सूक्ष्म परिणमनतैं लोहका पिंडहूमें प्रवेश हो जाय है । तैसे तैजस कार्मण दोऊ शरीर वज्रमय पटलादिकनिमेहू नही रुकै है । इहां कोऊ कहे की जो वैक्रियिक आहारकहू सूक्ष्म परिणमनतैं काहू करि नही रुकै है । इनिहुकूं अप्रतिघात कहो । ताकूं कहे है । ऐसे नही है । इहां सर्वलोकमे नही रुकनेकी अपेक्षा अप्रतिघात कह्या है । अर वैक्रियिक आहारक सर्व लोकक्षेत्रमें अप्रतिघात नाही । जातैं आहारक शरीरका गमन तो अढाई द्वीपपर्यंतही है । अर मनुष्यनिकैं ऋद्धितैं प्राप्तभया वैक्रियिक मनुष्यलोकपर्यंतही गमन करिस केहै । अर देवनिका वैक्रियिक शरीर है सो त्रसनालीपर्यंतही गमन करिसकै है । अधिक क्षेत्रमें गमन नाहीं है । तातैंसर्व लोकमैं अप्रतिघात तो तैजस कार्मणही है । इनि शरीरनिका ओरहू विशेष कहनेकूं सूत्र कहे है ।

अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥

अर्थप्रकाशिका– आत्माकै तैजस कार्मणका संबध अनादितै है । औदारिक वैक्रियिक आहारक जैसे कदाचित् संबंधरूप होय है । कवही कोऊ शरीर होइ कवहू कोई होय तैसे नाही हैं। तैजस कार्मण ए दोऊ शरीर तो सर्व अवस्थामे संसारका क्षयपर्यंत सदाही रहे है । इस सूत्रमे च शब्द है सो विकल्प अर्थमें है । तातै कथंचित् सादिसंबंध है । तहां कार्यकारणरूप बंधसंतानकी अपेक्षा तो अनादिसंबंधरूप हैं । अर पुरातन अनंत परमाणु समयसमय निर्जरै है अर नवीननवीन अनंत परमाणु संचयरूप होय है । अैसे विशेषकी अपेक्षा सादि संबंध है बीजवृक्षकी ज्यों जाननां । जिनके मतमें शरीरका संबंध सादिही है वा अनादिही है अैसा पक्षपाततैं तिनके अनेक दोष आवे है ।

जो आत्माकै शरीरका संबंध सादिही मानै तो शरीरका संबंध पहली आत्मा अत्यंत शुद्ध ठहऱ्या तव नवीन शरीरका संबंधका निमित्त कोऊ नही रह्या तव विनानिमित कैसे होय। अर शुद्ध जीवकैहू निमित्तविनाही शरीरका संबंध होइ तो मुक्तजीवनिके हू शरीरका संबंध होनेका प्रसंग आवै तव मुक्तात्माका अभावका प्रसंग भया । वहुरि एकांतकरि जीवकै शरीरका संबंध अनादिही है ऐसी कल्पना करे तो ऐसेहू जाकै अनादिपणा है ताका अंत नही होय है । आकाशकी ज्यों कार्यकारणका अभावतैं मोक्ष होनेका अभावका प्रसंग आवेगा । तातैं शरीरका संबंध कथंचित् सादि है कथंचित् अनादि है। अव इहां पुछं है जो तैजस कार्मण दोऊ शरीर कोऊ कोऊ जीवकैही होय है कि सर्वके होय है इस नियमके अर्थि सूत्र कहे हैं ।

सर्वस्य ॥४२॥

अर्थप्रकाशिका– इहां सर्व शद्व निर्विशेषवाची है यातैं तैजस शरीर अर कार्मण शरीर ए दोऊ समस्त संसारी जीवनिकै होय हैं । जो ए दोऊ शरीर नही होय तदि संसारीपणोही नही होय । अव औदारिकादिक शरीरनिकरि समस्त संसारीजीवनिके संबंधका प्रसंग आया । तातैं जितने शरीर एककालविषैं संभवैं तिनके दिखावनेकूं सूत्र कहे है ।

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

अर्थप्रकाशिका– तिस तैजस कार्मण दोऊ शरीरनकूं आदि देयकरि एक जीवके एक कालविषै दोय शरीरभी होय तीनभी होय च्यारितांई होय । अैसे भाज्यरूप करना एक कालविषै पंच शरीर नही होय । तहा जीवकै विग्रहगतिमें तो तैजस कार्मण ए दोय शरीरही होय हैं । अर मनुष्य तिर्यंचनिकै विग्रहगतिविना अन्य अवसरमे औदारिक तेजस कार्मण ए तीन शरीर जानना । अर देव नारकीनिकें वैक्रियिक तेजस कार्मण अैसे तीन शरीर जानना । अर कोऊ प्रमत्तगुणस्थानधारी मनुष्यके औदारिक आहारक तैजस कार्मण ए चार शरीर जानना। अथवा कोई मनुष्यकें औदारिक वैक्रियिक तैजस कार्मण अैसेभी चार शरीर होय हैं । वैक्रियिक

अर आहारककैं युगपत् संभवनेका असंभव है यातैं युगपत् पंच शरीर नहीं होय है। फेरिहू तिन शरीरिनका विशेष जनावनेकूं सूत्र कहे हैं –

निरुपभोगमन्त्यम् ।।४४।।

अर्थप्रकाशिका– अंतका कार्मण शरीर है सो उपभोगरहित है। तहां इंद्रियद्वारकरि शब्दादिकका ग्रहण सो उपभोग हैं। उपभोगका अभाव सो निरुपभोग है। सो कार्मणशरीर निरुपभोग हैं। विग्रहगतिमे इंद्रियकी उपलब्धि होतेहू द्रव्येंद्रियकी रचनाको अभाव है यातै शब्दादिक विषयका अनुभवका अभावतै कार्मण शरीर निरुपभोग है। इहां कोऊ तर्ककरे जो तेजसभी निरुपभोग है ताकूंभी कह्या चाहिए। ताका समाधान। तैजस शरीर योगका निमित्तभी नहीं है याते तैजस शरीर निरुपभोग हैही यातै याकूं सूत्रमे नहीं कह्या यों तो विनाकह्याहि निरुपभोग है। तैंजस कार्मण शरीरकै अंगोपांगभी नाही है यातै वचनका बोलना सुनना इत्यादिक नाहीं। तातै ए दोऊही शरीर निरुपभोग है अन्य शरीर उपभोगसहित है। ये जे पंच शरीर कहे तिनका जन्मका नियम कैसे है यातैं सूत्र कहे हैं –

गर्भसन्मूर्च्छनजमाद्यम् ।।४५।।

अर्थप्रकाशिका– सूत्रके क्रमतैं जो आदिविषै कह्या औदारिक शरीर सो गर्भते उपजै तथा सन्मूर्च्छनजन्मतैं उपजै है। जो गर्भते उपजै वा सन्मूर्च्छनतैं उपजै सो सर्व औदारिक शरीर जानना। अव औदारिकके अनंतर जो वैक्रियकशरीर ताके जन्मका नियम कहनेकूं सूत्र कहे है –

औपपादि वैक्रियिकम्कं ।।४६।।

अर्थप्रकाशिका– वैक्रियिकशरीर है सो उपपादजन्मविषै उपजै है। देवनारकीनिकैं वैर्क्रियिक शरीर है सो उपपाद जन्मविषैही उपजे है। अव इहां ऐसी आसंका उपजै है जो औपपादिक जन्मविना वैक्रियिक शरीर नहीं उपजता होयगा। यातै सूत्र कहे है –

लब्धिप्रत्ययं च ।।४७।।

अर्थप्रकाशिका– वैक्रियिकशरीरके उपजनेकूं ऋद्धिहू कारण है। तपका विशेषतै ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है। लब्धि जाकूं प्रत्यय कहिए कारण होय सो लब्धि प्रत्यय है सो तपके प्रभावतै उपपादिकनिविना मनुष्यनिकैहू होय है। अर तिर्यंच निहूकै विक्रिया होय है। अब पूछे हैं जो लब्धिप्रत्यय वैक्रियिकशरीरही है कि औरभी है? यातैं सूत्र कहे है –

तैजसमपि ।।४८।।

अर्थप्रकाशिका– तैजसशरीरहू लब्धितैं उपजै है। इहां अपि शब्दकरि लब्धि प्रत्ययका संबंध करना सो तैजसभी लब्धिप्रत्यय होय है ऐसा जानना। इहां विशेष जो तैजसके दोय भेद है। एक निःसरणस्वरूप। दूसरा अनिःसरणस्वरूप। तहां निःसरणतैजस शुभाशुभभेदकरि दोय प्रकार हैं। तिनमें जो तपश्चरणकें धारक मुनिके कोऊ क्षेत्रमे रोग मारी दुर्भिक्षादिककरि लोकनिकूं दुःखी देखी जो करुणा अत्यंत उपजि आवै तदि दक्षिणस्कंधमैते तैजसपिंड नीकलिकरि द्वादश योजनप्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटी आत्मामें प्रवेश करे सो शुभतैजस है। अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपरि अत्यंत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतैं वामस्कंधतैं सिंदूरसमान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माका प्रदेश निकलै सो आदिमें तो सूच्यंगुलकै असंख्यातवैं भाग प्रमाण अर अंतपर्यत क्रमतैं वधता काहलकै आकार निकसि द्वादश योजनप्रमाण समस्त जीवपुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमैं प्रवेशकरि मुनिकूं दग्ध करे है सो मुनी तो नरककूं प्राप्त होय है। ऐसा तो निःसरणस्वरूप तैजसशरीर हैं। अर अनिःसरणस्वरूप समस्तसंसारीजीवनिकै देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धि प्रत्यय नहीं है। अव वैक्रियिकके अनंतर कह्या जो आहारक शरीर ताका स्वरूपका निर्द्धारके अर्थि सूत्र कहै है–

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।।४९।।

अर्थप्रकाशिका– यो आहारक शरीर है सो शुभ है, विशुद्ध है, व्याघातरहित है सो प्रमत्तसंयतमुनिहीके होय हैं। चंद्रकांतमणिसमान श्वेतवर्ण एकहस्तप्रमाण उच्च समचतुरस्रसंस्थान अतिसुंदर अंगोपांगकूं धरे, शुभरूप सप्तधातु उपघातुरहित परमनिर्मल आहारकशरीर हैं। आहारकशरीर अन्य पर्वत वज्रादिककरि रूके नही। अन्य किसीको आप रोके नही तातै अव्याघात है। आहारक शरीर प्रमत्तसंयमीमुनीके उत्तमांग जो मस्तक तातै उत्पन्न होय है। सो कदाचित लब्धिविशेषका सद्भाव जाननेंके अर्थि कदाचित् सूक्ष्मपदार्थका निर्णयके अर्थि तथा तीर्थगमन संयमकी रक्षाके अर्थि केवली भगवानके निकट जाय सूक्ष्मपदार्थका निर्णयकरि अंतर्मुहुर्त्तमे उलटा वाहुडी संयमीका देहमे आत्मप्रदेश प्रवेश करे है। इहां ऐसा जानना जो आहारक शरीर रचनेकूं प्रमत्त होय है प्रयत्तसंयमी मुनीहीके होय हैं।

इहां इतना विशेष और जानना। जो देवनिके वैक्रियिकशरीर अनेक होय है। जो स्वर्ग लोकमे तो देव विद्यमान रहे अर विक्रियाकरि अन्यशरीर होय अन्य क्षेत्रमे जाय है। तथा तैजसशरीर द्वादश योजन जाय है। सो इनि शरीरमे आत्मा तो जिसका देहमेतै निकस्या सोही प्रमत्तसंयतमे आहारक शरीर दुरि क्षेत्र विदेहादिकनिमे जाय है तथा आत्मा हैं। जैसे कोई सामर्थ्यका धारक देव अपना एक हजार रुप कीए परंतु उन हजार देहनिमें अपनेही आत्माके प्रदेश हैं। वीचीमे सुच्यंगूलके असंख्यातवें भागप्रमाण देवके अर वैक्रियकशरी-के तांतूकीज्यों जोड बंधि रह्या है। जातै आत्माका खंड तो होय नही आत्माके असंख्यात प्रदेश है

ते एक तरफ वा अनेक तरफ कार्मणशरीरसहित निकसे है जहां मूल शरीर है तहांताई सूक्ष्म प्रदेशनिका वन्या रहे है। वैक्रियिकशरीर मूल है ताका काल तो जघन्य दश हजार वर्ष है। उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अपर्याप्त अवस्थाका अंतर्मुहूर्तकालकरि ऊन है। अर उत्तर वैक्रियिक देहका काल जघन्य तथा उत्कृष्ट अंर्मुहूर्तही है अर जो तीर्थंकरके जन्ममे वा नंदीश्वरादिकनिके जिनायतननिकी पूजाकू जाय है तहां वारंवार विक्रिया कर्‍या करे है। ऐ चोदह सूत्रनकरि पंच शरीरनिका निरूपण कीया। इनि पंच शरीरनिके परस्पर संज्ञा स्वलक्षण स्वकारण स्वामित्व सामर्थ्य प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन काल अंतर संख्या प्रदेश भाव अल्प वहुत्व इत्यादिकनितै विशेष है सो आगमतै जानना। अव लिंगका नियमके अर्थि सूत्र कहे हैं–

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

अर्थप्रकाशिका– नारकी जीव तथा सन्मूर्च्छन जीव ए नपुंसकलिंगी ही होय है। अव जहां अत्यंत नपुंसकलिंगका अभाव तिनका प्रतिपादनके अर्थि सूत्र कहे है–

न देवाः ॥५१॥

अर्थप्रकाशिका– देव है ते न नपुंसकलिंग नही है। देवगतिविषै पुरुषवेद तथा स्त्रीवेद दोय वेदही पाई है। इनमें नपुंसक नही होय हैं। वहुरि इहां प्रसंग पाइए तो विशेष अर और जानना। जो भोगभूमिमें उपजे तथा म्लेंछखंडके स्त्रीपुरुष दोयही वेदनैं धारण करे है इनिमें नपुंसक नहीं उपजे है। अव अन्यजीवनिके अर्थि सूत्र कहे हैं–

शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥

अर्थप्रकाशिका– नारकी देव तथा सन्मूर्च्छन इन विना अवशेष रहे जे गर्भज तिर्यंच और मनुष्य ए तीनूं वेदसहित है। स्त्रीलिंग पुरुषलिंग नपुंसकलिंग ए तीन पाईए है। सो लिंग सामान्य दोय प्रकार है। एक द्रव्यलिंग एक भावलिंग तहां द्रव्यलिंग तो नामकर्मका उदयते भया ऐसा योनि स्तन तथा मेहन वा डाढी मुंछ आदिक शरीरके आकार विशेष है। अर भाववेद है सो चारित्रमोहनीयका भेद जो नोकषाय नामा जो वेदकर्म ताके उदयते विकाररूप आत्माका परिणाम है। इहां स्त्रीवेद तो अंगारेकि अग्नीज्यौं कामकरि व्हकव्हकाट करे है। अर पुरुषवेद तृणानिकी अग्निज्यौं अतिमंद कामकरि व्याप्त है। अर नपुंसकवेद ईटनिके पकजावेकी अग्निज्यौं सास्वता प्रज्वलित कामकी तीव्रतासहित है। अव ए चतुर्गति-संवंधी प्राणीनिके अपनां अपनां पूर्वै आयु बंधनकिया ताकूं परिपूर्णा भोगिकरि नवीन शरीरकूं धारण करे है की ओर तरेहू है यातैं सूत्र कहे है–

औपपादिकचरमोत्तमदेहाः संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

अर्थप्रकाशिका— औपपादिक कहिए देव नारकी वहुरि चरमोत्तमदेह कहिए चरम-शरीरी अर उत्तम देहका धारी ऐसे तद्भवमोक्षगामी अर असंख्यात वर्षनिका आयुका धारक भोगभूमिमें उपजे जीव ए सर्व अनपवर्त्यायु कहिए परिपूर्ण आयुकरि मरण करे है। इनका आयु विष शस्त्रादिकके निमित्ततैं नहीं छीदे हैं। इनिका ए नेम है अन्यका नियम नाही है। सोही कहिए है। इनके सिवाय कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकि आयुकी स्थिति घटैभी हैं। याका उदाहरण—जैसे कोऊ जीव मनुष्य आयुकी स्थिति सौवर्षप्रमाण पूर्वजन्ममे वांधी मनुष्य उपज्या। तहां जो पूर्वै आयुकर्मकी पुद्गलवर्गणाके जितने परमाणु बंधनकीए थे ते समस्त सो वर्षके जितने समय होय है तितने समयनिमे गुणहानिके विभागतै निषेक रचना भई सो मनुष्यपर्यायमे एक एक निषेक उदय आय निर्जरे है। सो क्रमतै जो एक एक समयमे आयुका निषेक निर्जरे तदि तो सौवर्षमें पूर्ण होय। परंतु वावन वर्षपर्यंत तो समयसमय एकएक निर्जऱ्या अर पाछें कोऊ अन्य संक्लिष्ट कर्मके उदयते तथा वाह्य विषमक्षणते तथा तीव्रवेदना शस्त्रघात रक्तक्षय अतिशय अन्नजलका अवरोध श्वासोच्छ्वासका निरोध इत्यादिक कारणतै अडतालीस वर्षके निषेक एकठे अंतर्मुहूर्त्तमे निर्जरीजाय उदीरणा होय विनसी जाय। ऐसे कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका भुज्यमान आयुका उदीरणा होय है। तदि आयुकी स्थिति छटी शीघ्र मरण होय है। जैसे आम्रफल वा फणसफल पालविषे शीघ्र पकैं, तथा आला वस्त्र घामके निमित्ततै शीघ्र सूकै तैसे जानना।

वहुरि च्यार प्रकारके देव अर नारकी अर उत्तम मध्यम जघन्य तीनूं भोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंच वा कुभोगभूमिया इनिकी तथा तद्भवमोक्षगामी तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिकनिकी भुज्यमान आयुकी स्थिति पूर्वोक्त कारणनकरि छिदै नाही। कोऊ पूछें जो पूर्वोक्त कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका आयु घटना होय है तैसे इहां आयुका वधनाभी होता होयगा। ताका समाधान। जो भुज्यमान आयुका वधना संभवे नहीं। जाते आयुबंधैं है सो पूर्वजन्मके त्रिभागमे ही आयुकर्मके परमाणूनिका आस्त्रव आय बंध होनेका जिनागममे नियम है तातै भुज्यमान आयु वधे नहीं है।

ऐसे इस अध्यायमे जीवतत्वका निरूपण है। तहां प्रथमही जीवके उपशमकादि पंच भाव कहे तिनके त्रेपन भेद सात सूत्रमे कहे। आगे जीवका प्रसिद्ध धर्म देखि उपयोगको लक्षण कह्या ताके भेद कहे। आगे जीवके भेद कहे तहां संसारी अर मुक्त संसारोंमें संज्ञी असंज्ञी त्रस स्थावर त्रसके भेद द्वींद्रियादिक पंचेंद्रियतांई कहे। वहुरि पांच इंद्रियके द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियकरि भेद नाम विषय कहे। वहुरि एकेंद्रियादिक जीवनिकैं इंद्रिय पाइए तिनका निरूपण अर संज्ञीजीव कोन वहुरि परभवको जीव गमन करे ताका गमनका स्वरूप कह्या। आगे जन्मके भेद योनिके भेद अर गर्भज कैसे उपजै देव नारकी कैसे उपजें सन्मूर्छन कैसे उपजें ताका निर्णय है। आगे पंच शरीरनिके नाम कहि अर तिनका सूक्ष्म स्थूलका स्वरूप कहि अर ए कैसे उपज

तिनका निरूपण कीया। आगे वेद जिनके जैसा होय ताको कहिकरि जिनके उदयमरण तथा उदीरणामरण होय तिनका नियम कह्या।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अर्थ– ऐसे तत्वार्थका है अधिगम जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं दूसरा अध्याय पूर्ण भया ॥२॥

– दोहा –

है जातै तत्त्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ॥
मोक्षशात्र मंगलमय। नमो द्वितीय अध्याय ॥२॥

द्वितीय अध्याय समाप्तः

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

आगे तिसरा अध्यायका प्रारंभ करे है।

– दोहा –

अधो मध्य ऊरध सकल। जीवनिवास सुदेखि।
कह्यो बचन वृषपूर जिन। ज्ञानविरागविशेष ॥१॥

अव जीवतत्वका वर्णनमे जीवनिका आधारविशेषका प्रतिपादनमे अधोलोकका वर्णनके अर्थि सूत्र कहे है –

रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो
घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥१॥

अर्थप्रकाशिका– रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंकप्रभा धूमप्रभा तमःप्रभा महातमःप्रभा ए सात भूमि नीचे नीचे तीन वातवलय अर आकाश इनिके आश्रय तिष्ठे है तहां ते समस्त पृथ्वी तो घनोदधि वातवलयके आधार है। अर घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयके आधार है। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलयके आधार है। अर तनुवातवलय है सो आकाशके आधार है। अर आकाश आपहीके आधार है। जातै आकाश सबतै बडा है याते याके अन्य आधारकी कल्पना नहीं है। बहुरि रत्नप्रभा नाम पृथ्वी है सो एक लक्ष ऐसी हजार योजनकी मोटी है। तिसके मोटाईके स्कंधमे तीन विभाग है। तिसमे सोलह हजार योजन मोटा उपरिका खरभाग है। तिसमे चित्रा वज्रा वैडूर्य इत्यादिक हजारहजार योजनकी

मोटी सोलह पृथ्वी है । ऐसे सोलह हजार योजन मोटा ऊपरिका खरभाग वर्णन कीया ।

वहुरि ताके नीचे पंकभाग है सो चोरासी हजार योजन मोटा है । अर ताके नीचे असी हजार योजनका मोटा अब्बहुल भाग है तिनमे खरपृथ्वीका उपरला नीचला एकएक हजार योजन छांडिकरि मध्यकी चोदह हजार मोटी अर एक रज्जुप्रमाण चौडी लंबी पृथ्वीविषै तो किंनर किंपुरुष महोरग गंधर्व यक्ष भूत पिशाच इन सप्तप्रकार व्यंतरदेवनिका अर नाग विद्युत् सुपर्ण अग्नि वात स्तनित उदधि द्वीप दिक्कुमार ऐसे नव प्रकारके भवन वासिनिके आवास है अर पंकभागविषै असुर कुमार अर राक्षसनिके आवास है । अर अब्बहुल भागविषै प्रथम नरक है तिसमें नारकी दुःखित हुए वसैं है । ऐसे प्रथम पृथ्वीकी मोटाई एक लक्ष असी हजार योजनकी कही ।

वहुरी एक रज्जुप्रमाण अंतर छांडी नीचे दूसरी शर्करापृथ्वी हैं तिस दूसरी पृथ्वीकी मोटाई वत्तीस हजार योजनकी हैं । वहुरी एक राजू अंतराल छोडी तीसरी पृथ्वी अठाईस हजार योजनकी मोटी है । वहुरी एक राजू प्रमाण अंतराल छांडी चोवीस हजार योजन मोठी चोथी पृथ्वी है । वहुरी एक राजू प्रमाण अंतराल छोडी वीस हजार योजन मोटी पंचमी पृथ्वी है । वहुरी एक राजू अंतराल छांडी सोलह हजार योजन मोठी छठी पृथ्वी है । वहुरी एक राजू अंतराल छांडी अष्ट हजार योजन मोठी सप्तमी पृथ्वी है ऐसे पृथ्वी पृथ्वीप्रति सामान्यपने एकएक राजूका अंतर है । ऐसे छहूं अंतरालके छह राजू भए । वहुरि सप्तम पृथ्वीके एक राजू नीचे अधोलोकका अंत है । वहुरि इन सांतो पृथ्वीनिकी चोडाई लंवाई लोकका अंतपर्यंत जाननी । वहुरि जिस पृथ्वीका जैसा नाम है तैसीही ताकी प्रभा है । अव इहां जे सात पृथ्वी कही तिनमें नारकीनिका आवास सर्वत्र है कि कोऊ कोऊ स्थानमे है इसका निर्द्धार करनेकूं सूत्र कहे है–

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्त्राणि पंच चैव यथाक्रमं ।।२।।

अर्थप्रकाशिका– तिन रत्नप्रभादिक भूमिनिविषै नरकनिकी इस प्रकार संख्या है । प्रथम पृथ्वीके अव्वहुलभागविषै तीस लाख नरक है । दूजी पृथ्वीविषै पचीस लक्ष अर तीसरी पृथ्वीविषै पंदरह लक्ष अर चौथी पृथ्वीविषै दश लक्ष अर पांचमी पृथ्वीविषे तीन लक्ष अर छठ्ठी पृथ्वीविषै पांच घाटी एक लक्ष अर सातमी पृथ्वीविषै पांच । एते नरक कहिए विल है । अनुक्रमकरि सातों पृथ्वीनिका जोड चोरासी लाख विल है । तेई नरक है । ते विल गोल त्रिकोण चौकोर इत्यादिक अनेक आकार रूप केई विल संख्यात योजनके है । केई असंख्यात योजनके चौडे लंवे हैं । वहुरि विलनके परस्पर वरावर अंतराल विषै तथा ऊपरी नीचे हरेक तरफ पृथ्वीस्कंध है । जैसे ढोल जामीनविषै गाडदे जव ढोलके सव तरफ पृथ्वी रहे । अर ढोलकी पोलारीसमान नारकीनिके विल है । तिन एकएक विलविषै संख्यात असंख्यात नारकीं वसे है ।

प्रथम पृथ्वीका अब्वहुलभागविषै तेरह प्रस्तर है। अर दूजीपृथ्वीविषै ग्यारह प्रस्तर है। तीजी पृथ्वीविषै नव प्रस्तर है। चौथी पृथ्वीविषै सात प्रस्तर हैं। अर पंचमी पृथ्वीविषै पंच प्रस्तर हैं। अर छठ्ठी पृथ्वीविषै तीन प्रस्तर है। अर सातमी पृथ्वीविषै एकही प्रस्तर है। ते समस्त प्रस्तर नीचे नीचे है। तिन प्रस्तरनिविषैं इंद्रक। श्रेणीवद्ध। प्रकीर्णक। ऐसे तीन प्रकारके विल है। तहां प्रस्तरके मध्य तो एकएक इंद्रकविल है। अर इंद्रककी चार दिशा चार विदिशानिविषै पंक्तिरूप विल है ते श्रेणीबद्ध है। वहुरि दिशाविदिशानिके आठ अंतरालविषैं जहां तहां विल है ते प्रकीर्णक है। ऐसे तीन प्रकार विल कहे। तहां प्रथम प्रस्तरके श्रेणीवद्ध विल चारो दिशानिविषै प्रत्येक उनचास उनचास हैं। अर चारों विदिशानिविषै प्रत्येक अडतालीस अडतालीस विल है। तहां प्रथम प्रस्तारके आठ दिशानिके श्रेणीवद्धका जोड तीनसें अठयासि विलनिका है। आगे नीचेनीचे एकएक प्रस्तारप्रति चारों दिशानिमें अर चार विदिशानिप्रति एकएक श्रेणीवद्ध विल घटते घटते है। यातै एकएक प्रस्तारप्रति आठआठ विल घटती होय है। ऐसे एकएक दिशाप्रति तथा विदिशाप्रति एकएक श्रेणीवद्ध विल घटतें गुणचासमा प्रस्तर सप्तम नरकका है। तामें दिशानिमें एकएक श्रेणीवद्ध विल विदिशामें बिलका अभाव ऐसे पांचही विल हैं। अव इहां समस्त गुणचास प्रस्तरनिके श्रेणीवद्ध विलनिका जोड नव हजार छसें च्यारि होय है। अर इंद्रक विलक गुणचासही है। अव शेष तीयासी लाख निवै हजार तीनसे सैंतालीस प्रकीर्णक विल है।

वहुरि उनचास इंद्रक कह्या ताका विस्तार ऐसा जानना। जो प्रथम इंद्रक पैंतालीस लक्ष योजनके विस्तारकूं धरे है। सो अढाई द्वीपकी वरावर सूधीमें नीचे है। आगे नीचे समान अनूक्रमकरि घटता अंतका उनचासमां इंद्रक एक लाख योजन चौडा है। ऐंसे गुणचास इंद्रक तो समस्त संख्यात योजनके है। अर श्रेणीवद्ध समस्त असंख्यात योजनके है। बहुरि प्रकीर्णक बिल केई संख्यात योजनके विस्तार लीए है। केई विल असंख्यात योजनके विस्तारतै है। अव सीमांतादिक नरकविषै पापकर्मके वशतै प्रगट होता प्राणीनिका कहा लक्षण है इस हेतूतै सूत्र कहे है--

नारका नित्याशुभतरलेश्याः परिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥३॥

अर्थप्रकाशिका-- इनि बिलनिविषै नारकी जीव है ते सदा अशुभतर लेश्या अशुभपरिणाम अशुभदेह अशुभवेदना अशुभविक्रिया सहित है। नारकीनिके अशुभकर्मका उदयकरि अत्यंत अशुभलेश्यादिकही पाइओ है। पहिली दूजी पृथ्वीके नारकीनिके तो कापोतलेश्याही है। वहुरि तीजी पृथ्वीके नारकीनिके उपरले विलनिके नारकीनिके कापोत नीचलेनीके नील लेश्या है। चतुर्थ पृथ्वीके नारकीनिके नील लेश्या है। पांचमीवाले ऊपरिकेनिकें नील है। नीचलेनीकै कृष्ण है। छठ्ठीवालेनिके कृष्णही है। सातमी पृथ्वीवालेनिके परमकृष्ण है। ऐसे नीचेनीचे अधिक अशुभलेश्या है। अर नारकीनिका स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका परिणमन

जे परिणाम तेहू क्षेत्रका विशेषतैं अत्यंत अशुभ है। अंग उपांग वर्ण स्पर्श रस गंध शब्द अशुभ हैं। हुंडकसंस्थानी हैं। जैसे कोऊ पक्षीका केश पांख उडीजाय तिस समान तिनके शरीरकी आकृति है। महाक्रूर भयके कारण जिनका दर्शन है। जिनकी वैक्रियिक शरीर है तोहू मल मूत्र कफ रुधिर नशा जाल राधि व मन सिडवाहुवा मांस केश हाड चाम औदारिक देहसंबंधी है। तिनतैंहूं अत्यंत अशुभ नारकीनिके वैक्रियिक पुद्गल है।

प्रथमपृथ्वीविषै तेरवा पटलमें नारकीनिका देहकी ऊंचाई सात धनुष्य तीन हाथ छ अंगुळ प्रमाण है। वहुरि नीचेनीचे पृथ्वीपृथ्वीप्रति दुनादुना शरीरकी उंचाईका प्रमाण जानना। ऐसे होते इनकी सप्तम पृथ्वीविषैं शरीरकी उंचाई पांचसे धनुष्य प्रमाण हो है। वहुरि तिनके अभ्यंतर तो असाता वेदनीयका उदय अर वाह्य उष्ण शीतकी तीव्र वेदना है। तहां पहली पृथ्वीतें लेय चौथी पृथ्वीगिड्डापर्यंत तो समस्त विल उष्णही हैं। वहुरि पांचमी पृथ्वीविषै तीन लक्ष विल है तिनका च्यार भाग कीजे तहां तीन भागके सवादोय लक्ष विल तो अति उष्णरूपही है। अर चौथा भागके पचेत्तर हजार विल अति शीतरूप है वहुरि छवीं सातमी पृथ्वी विषै शीतही वेदना है। ऐसे तो शीतकी उष्णकी अतिवेदना है। वहुरि नानाप्रकारकी रोग वेदना तथा क्षुधा तृषाको वेदना है अर क्षेत्र महा दुर्गंध है। एसे अतिवेदना है। तथा तिनकै क्रूर सिह व्याघ्रदिरूपही अशुभ विक्रिया होय है। ऐसें नारकीनिके लेश्या परिणाम देह वेदना विक्रिया नित्य अशुभही होय हैं। अव कहे है जो नारकी निकै शीतउष्णजनितही दुःख है की और प्रकारभी होय हैं यातैं सूत्र कहे है–

परस्परोदीरितदुःखा ॥४॥

अर्थप्रकाशिका– नारकी जीव परस्परहू दुःख उपजावे है। जैसे श्वान है ते कारण-विनाही जातिस्वभावकृत वैरकरि महानिर्दयी भए संते परस्पर भक्षण मारण छेदनादिककरि परस्पर दुःखनिकूं उपजावे है। तैसें नारकीहू भवप्रत्यय अवधिज्ञानकरि मिथ्यादर्शनका उदयकरि विभंगावधिज्ञानतें दुःखके कारणनिनैं दूरिहीते जानि परस्पर दुःख उपजावे हैं। तथा निकट प्राप्तभए नारकी परस्पर अवलोकनमात्रतेही कोपाग्निकरि प्रज्वलित होय है। अर आपहीकरि विक्रियाकरि कीए खड्ग भाला छुरी मुग्दरादि आयुधनीकरि तथा सिंहव्याघ्रसर्प्पादिरूप धारणकरि परस्पर छेदन भेदन मारणादिकरि दुःखकी उदीरणा करे है। तथा क्रोधके भरे वचननिके घातकरि महान् वैर उपजाय करे हैं। अर जिनका देह परस्पर घातकरि खंडखंड होजाय तोहू पारकीज्यों मिलजाय है आयु पूर्णभये विना मरणकूं नहीं प्राप्त होय है। स्थिति-पर्यंत वहुत दुःख भोगवै है। अव नारकीनिकें इतनेही दुःखउत्पत्तिका कारण है कि औरहू है यातैं सूत्र कहे है–

संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥५॥

अर्थप्रकाशिका– संक्लेशपरिणमन करि सहित जें असुरकुमार देव तेहू तीसरी पृथ्वी-पर्यंतके नारकीनिके दुःखकी उदीरणा करावै है। केई अंबा वरीष जातिके असुरकुमार देव तें तीजी पृथ्वी ताई जाय दुःख उपजावें है। नारकीनिमें परस्पर कलह उपजावें है। इहां कोऊ पूछें उनके कहां प्रयोजन है ताकूं कहिए है। जैसे इहां कोई बलध मिंढा भैंसा कूकड तीतर इत्यादिकांने लडाय कलह देखि हर्षं माने हैं। तैसेहीं दुष्ट असुरके परिणाम जानने। तथा तप्त लोहमय रसका पावना अग्निरूप तप्तायमान लोहमयं स्तंभनितैं अलिंगन करावना कूट शाल्मलीवृक्ष उपरि चढावना उतारना लोहमय घनानिका घात करना वसोनितें छीलना तप्ततेल सींचना लोहमय कडाहोनिमे पकावना शांडमैं भुसलनां घाणीनिमैं पीलना शूली चढावना शूलनिते वीधना करोतनित चीरना अगारनिमें लोटना व्याघ्र सिंह रीछ स्वान स्याल स्याली मार्जार न्योल्या सर्प्प उंनर काक गीध कंक घूघू शिखरा इत्यादिकनिकरि बांधा करनेकरि तथा तप्तवालुकामे विचरण असिपत्रवनमे प्रवेशन वैतरणीनिमज्जनादिकरीं महादुःखं उपजारना इत्यादि परस्पर दुःख उपजावे है। परतु आयुका अंतविना मरण नहीं होय है। अव नारकीनिका आयुका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहे हैं–

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः ।।६।।

अर्थप्रकाशिका– नारकी जावनिका आयु पहली पृथ्वीविषै एक सागरका है। दूजी पृथ्वीविषै तीन सागरका आयु है। तीजी पृथ्वीविषै सात सागरका आयु है। चोथी पृथ्वीविषै दश सागरका आयु है। पंचमी पृथ्वीविषै सतरह सागरका आयु है। छठ्ठी पृथ्वीविषै बाईस सागरका आयु है। सप्तमी पृथ्वीविषै तेतीस सागरका आयु है। ऐसे सातों पृथ्वीविषै नारकीजीवनिकी उत्कृष्ट स्थिति है। अैसे पृथ्वीप्रति नारकीनिकी उत्कृष्टी स्थिति सामान्यकरि कही। बहुरि इन सात पृथ्वीनिविषै गुणचास प्रस्तर है। तहां प्रस्तरप्रस्तरप्रति नारकीनिका आयुका प्रमाण तथा प्रमाण तथा शरीरका प्रमाणका विशेष है। ते अन्य ग्रंथनिते जानने। नारकीनिका उपजनेका विरहकाल अैसा जानना। प्रथम पृथ्वीमे उत्कृष्ट विरह चोईस मुहूर्त्तका। दूजा पृथ्वीविषै सप्त दिनरात्रीका। तीजीमें अेक पक्षका। चतुर्थमे अेक मासका। पंचमीमे दोय महीनाका। छठ्ठीमे च्यारि मासका। सप्तमीमे छ मासका उपजनेका विरहकाल है। जैसे प्रथम पृथ्वीमे असंख्यात नारकी है तिनमे नवा नारकीका जन्म चोईस मुहुर्त्तमे किसोका होयही होय।

अब कौन पृथ्वीताई कौन जीवका उपजनेका नियम है सो कहे है। तहां असैनी पंचेंद्रिय जीव जो नरकायु वांधे तो प्रथम पृथ्वीविषैही उपजै। द्वितीयादिकनिमे उपजने योग्य कर्म नही बांधे है। वहुरि सरीसृप है ते प्रथम द्वितीय दोय पृथ्वीपर्यंतही जाय। भेरुंडादिक पक्षी तीजी पृथ्वीपर्यंत जाय आगे नहीं जाय। विषधर सर्प च्यार पृथ्वीसिवाय

नही जाय। सिंह पंचमी पृथ्वीताई जाय उपजै मनुष्यिणी छही पृथ्वीपर्यंतही जाय। अर मत्स्य अर मनुष्य सप्तम पृथ्वीपर्यंत उपजै। वहुरि नारकी देव भोगभूमियां अेकेन्द्रिय विकलत्रय अे जीव मरीकरी नरकमे नही उपजें अैसा नियम हैं। अव नरकतें निकसी कौन पर्यायमे जन्म पावे सो कहे है। नरकते निकस्या जीव मनुष्य तिर्यंचगतिविषैं कर्मभूमिका सैनीं पंचेंद्रिय पर्याप्त गर्भजही होय।

भोगभूमींमे तथा असंज्ञी लब्धिपर्याप्त सन्मूर्छनमे नहीं उपजै। तथा नरकते निकस्या जीव वलिभद्र नारायण प्रतिनारायण चक्रवर्ती इनका पद नहीं पावे। वहुरि तीसरी पृथ्वीतांईका निकस्या केचित् तीर्थंकरपदधारक होय तो होजाय। वहुरि चौथी पृथ्वीतांईका निकस्या केचित निर्वाणगमन करै हैं। पांचमी ताईका निकस्या केचित महाव्रत धारण करे है मोक्षगमन होय है। छठ्ठी ताईका निकस्या केचित संयमासंयम देशचारित्र ग्रहण करे है। अर सप्तमी पृथ्वीका निकस्या क्रूर तिर्यंचही होय मनुष्य नही होय ऐंसे सप्तभूमिका विस्तारकूं धरे जो अधोलोक ताका वर्णन तो किया। अव तिर्यग्लोक कह्या चाहिए यातैं स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यंत तिर्यक्प्रचयरूप अवस्थित असंख्याते द्वीपसमुद्र है तिनका नामनिर्द्देशादिके अर्थि सूत्र कहे है–

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।।७।।

अर्थप्रकाशिका– जंबूद्वीपादिक द्वीप अर लवणोदादिक समुद्र ए शुभनामके धारक असंख्यात द्वीप समुद्र है। तहां प्रथम तो जंबूद्वीप अर लवणसमुद्र। अर दूजा धातकीखंडद्वीप कालोदधिसमुद्र। तीजा पुष्करवरद्वीप पुष्करवरसमुद्र। आगे जैसा द्वीपका नाम तैसा समुद्रका नाम जानना। चौथा वारुणीवर द्वीप। पांचमा क्षीरवरद्वीप। छठ्ठा घृतवर। सातमा क्षौद्रवर। आठमा नंदीश्वरवर। नवमा अरुणवर। दशमा अरुणभासवर। ग्यारमा कुंडलवर। तेरमा रुचकवर। चोदमा भुजंगवर। पंद्रमा कुशवर। सोलमा क्रौंचवर। इत्यादि स्वयंभूरमणपर्यंत एकराजूके विस्तारमे अढाई उद्धारसागरप्रमाणके जते समय होय तितने असंख्याते द्वीपसमुद्र है। अव इन द्वीपसमुद्रनिका विस्तार रचना संस्थान इत्यादिकका विशेषका प्रतिपादनके अर्थि सूत्र कहे है–

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।।८।।

अर्थप्रकाशिका– जो प्रथमद्वीपको विस्तार है तातैं दुणें विस्ताररूप प्रथमसमुद्र है। तातैं दुणा विस्ताररूप द्वितीयद्वीप हैं। तातैं दुणा विस्ताररूप द्वितीयसमुद्र है। ऐसे पूर्वपूर्वकूं वेढे दुणेंदुणें विस्तार लीए वलय कहिए कंकण तथा कडाकी आकृति लिएं द्वीपसमुद्र हैं। आदिमे जंबूद्रीपका विस्तार तातैं दुणा लवण समुद्र चौडा है। तातैं दुणा धातकीखंड द्वीप है। तातैं दुणा कालोदधि समुद्र है। तातैं दुणा पुष्करवर द्वीप है। ऐसेही द्वीपतैं दुणा चौडा समुद्र हैं समुद्रतैं दुणा चौडा अगिला द्वीप है। याही अनुक्रमते स्वयंभूरमण समुद्रपर्यंत असंख्यात द्वीप

असंख्यातही समुद्र है। वहुरि जंबूद्वीपको लवणोदधि समुद्र वेढे है। लवणोदधिकूं धातकीखंडद्वीप वेढे है। धातकीद्वीपको कालोदधि समुद्र घेरे है ऐसे समस्त द्वीपसमुद्रनिकी रचना है। आगे पूछे है जंबूद्वीपका ठिकाना आकार विस्तारका परिणाम कह्या चाहिए जातैं अगिले द्वीपसमुद्रनिकाभी विस्तारादिकका ज्ञान होय है। ऐसे पूछे सूत्र कहे हैं–

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अर्थप्रकाशिका– पूर्वैं कहे जे द्वीपसमुद्र तिनके बीच जंबूद्वीप है सो सूर्यमंडलके आकार है। ताकै बीचि नाभिकीज्यों मेरुपर्वत है। अर एकलक्ष योजन प्रमाण चौडा है। अर तीन लक्ष सोला हजार दोयसे सत्ताईस योजन तीन कोस एकसो अठाईस धनुष्य साडा तेरह अंगुल कुछ अधिक प्रमाण परिधि जंबूद्वीपकी है। वहुरि इस जंबूद्वीपके चौगिरद अष्ट योजन ऊंची अर अर्ध योजनकी नीवसहित वेदी है सो नीचे वारा योजन मध्यमे अष्ट योजन उपरि चार योजन चौडी है वज्रमय मूलमें वैडूर्यमणिमय है अत जाका अर सर्वरत्नमय है मध्य जाका ऐसी वेदी है। ताके पूर्वादिक चार दिशानिमे विजय वैजयंत जयंत अपराजित नामधारक च्यार महान द्वार हैं। ते द्वार च्यार योजन चौडे लंबे है अष्ट योजन ऊंचे है। तिनमे विजय वैजयंत द्वारके गुण्यासी हजार वावन योजन पोगाच्यार कोश वत्तीस धनुष्य सवातीन अंगुल कुछ अधिक अंतराल है। ऐसेही अन्यद्वारनकेहू परस्पर अंतर है। वहुरि यो जंबूद्वीप है सो जंबूवृक्षसहित है। उत्तरकुरु भोगभूमिमें ईसानकोणमे अनादिनिधन पृथ्वीकायरूप अकृत्रिम परिवारके वृक्षनि सहित जंबूवृक्ष है। अर तैसेही देवकुरु भोगभूमिमें नैऋतकोणाविषैं शाल्मली-वृक्ष है। अब इस जंबुद्वीपविषैं षट्कुलाचलनिकरि विभागने प्राप्त भए सप्तक्षेत्र तिनके नाम कहे है–

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

अर्थप्रकाशिका– तिस जंबूद्वीपविषैं भरत। हैमवत। हरि। विदेह रम्यक। हैरण्यवत। ऐरावत ए सप्तक्षेत्र है। तिनमें हिमवान् पर्वतके अर पूर्व दक्षिण पश्चिम इन तीन वोंडी समुद्रके मध्य भरतक्षेत्र जानना योग्य है। तिस भरतक्षेत्रके मध्य पूर्वपश्चिमलंबा विजयार्द्धपर्वत है। सो पचीस योजन ऊंचा अर पचास योजन चौडा अर सवाछह योजन नीवकों धरे है। अर श्वेतवर्ण है। अर पूर्वपश्चिम अपनी कोटी तिनकरि पूर्वपश्चिमका समुद्रकू स्पर्शे है याते समुद्रपर्यंत लंबा है। वहुरि इस पर्वतके भूमिसुं दशयोजन ऊंचा जाइए तदि दश योजन चौडी पर्वतसमान लंबी दोय विद्याधरनिके वसनेकी श्रेणी हैं। तिनमें दक्षिणश्रेणीविषैं तो रथनूपुरादिक पचास नगरी है। अर उत्तरश्रेणीविषैं चक्रवालादिक साठी नगरी है। तिन नगरीनिमे प्रज्ञप्त्यादिक विद्याके धरनहारे विद्याधर वसै है। तहांसे दश योजन ऊंचा जाईए तहां दश योजन चौडी पर्वतसमान लंबी दोय श्रेणी है। तिनमैं व्यंतरदेव वसे है। शक्रके सोम यमक वरुण वैश्रवण नाम लोकपालनिके

आभियोग्य व्यंतरदेवनिके निवास है।

वहुरि पंच योजन ऊंचा जाईए तहां पर्वतका शिखरतल है सो दश योजन चौडा पर्वतसमान लंबा है तिस उपरि सवाछह योजन ऊंचा पूर्वदिशामे सिद्धायतन कूट है तिस सिद्धायतन कूटपरि पद्मवेदिकाकरि वेष्टित उत्तरदक्षिण एक कोश लंवा अर पूर्वपश्चिम आधा कोश चोडा कुछ घाटि ए कोशप्रमाण उंचा अरहंत भगवानका आयतन मंदिर है। पूर्व उत्तर दक्षिण तीन द्वारनकरि युक्त है। तिस सिद्धायतनकूटतैं पश्चिमकी तरफ अष्ट अन्य कूट है। तिनकीहूं ऊंचाई चौडाई सिद्धायतनकूटसमान है। तिनमें व्यंतरादिदेवनिके निवास है। अर इस विजयार्द्ध पर्वतके दोऊ तरफ भूमिऊपरि अनेक फल फूलनिकरि मंडित पद्मवेदीकरि संयुक्त वनखंड है। तिस पर्वतके नीचे तमिस्रा अर खंडप्रपाता नामसहित दोय गुफा है। दक्षिग उत्तर पर्वतकी चौडाईसमान पचास पचास योजन लंबी है। अर पूर्वपश्चिम द्वादश योजन चौडी अष्टयोजन ऊंची है अर तिन गुफानिके सवाछह योजन चौडा एक कोश मोटा अष्टयोजन उंचा वज्रमय कपाटयुगल है। अर हिमवान्पर्वततैं पडी जे गंगा सिंधू नदी ते इनही गुफाद्वारकी देहलीनीचे होय निकसि करिके दक्षिण भरतमें आय भरतक्षेत्रका छह विभाग करि समुद्रमें प्रवेश करे है। विजयार्द्धके उत्तर तीन खंड अर दक्षिग तीन खंड है। तहां दक्षिणके तीन खंडनिका मध्य एक आर्यखंड है। अन्य पंच म्लेंच्छखंड है। अर विजयार्द्धके उत्तरका मध्यखंडके मध्यप्रदेशमे एक वृषभाचल नाम पर्वत है सो योजन ऊंचा गोल आकार है। या ऊपरि चक्रवर्ती अपना नाम लिखे है। या प्रकार छह खंड रूप भरतक्षेत्र है। वहुरि तैसेंही यथासंभव ऐरावत क्षेत्र जानना।

वहुरि हैमवत, हरि, रम्यक, हैरण्यवत, इन च्यारों क्षेत्रनिमें एकएक नाभिगिरि पर्वत है। ते गोल उंचे एक हजार योजन है। तहां क्षेत्रके मध्यप्रदेशमें नाभिज्यो जानने। ऐसे छह क्षेत्र तो कहे। अव निषध अर नील कुलाचलके मध्य विदेहक्षेत्र है जिस विषै योगीश्वर आत्मध्यानकरि देहरहित होय है, तातैं विदेह ऐसा सार्थक नाम है। इस क्षेत्रमे सास्वतो मोक्षमार्ग प्रवर्त्तै है। ताका विशेषज्ञानको हेतु क्षेत्रनिका विभागादि लिखिए है। तहां ऐसा जानना। जो सुदर्शन मेरु है सो भद्रसालवनके मध्यविषै है। सो भद्रसालवन, पूर्व पश्चिम वावनहजार योजन लंवा है। तिसके बीच दश हजार योजन चौडा गोल सुदर्शन नाम मेरु है। ताकी पूर्वदिशामे अर पश्चिमदिशामे वाईस वाईस हजार योजनका चौडा भद्रसाल नाम वन है। ताहीकी पूर्वदिशामे पूर्वविदेह है अर ताकी पश्चिमदिशामे पश्चिमविदेह है। तहां पूर्वविदेहके मध्य होय सीतानदी पूर्वसमुद्रकूं जाय है। तिसकरि सीताके उत्तर दक्षिण रूप पूर्वविदेहमै दोय भाग भए। तिन दोऊ दीशामैंही रचना समान है। इतनां विशेष जो दक्षिणके विदेहनके अंतमे निषध नामा कुलाचल है। अर उत्तरमे नीलाचल है।

अब सीता नदीकी उत्तरकी तरफकी रचना कहिए है। भद्रसालकी वेदीतैं लेय देवरण्यकी वेदीतांई पूर्वविदेहका क्षेत्र है। तहां च्यार वक्षार पर्वत है ते नीलकुलाचलतैं लेय सीतानदीके तटकौ प्राप्त ऐसे उत्तर दक्षिण लंबे है। इन वक्षारगिरिनिकी उंचाई कुलाचलके निकट च्यारसे योजन अर क्रमते वधती सीताके तटकने पांचसे योजन है तहां सीताकी तरफही याउपरि जिनभवन हैं। या प्रकार च्यार वक्षारगिरि जानने। तिन वक्षारगिरनिके बीचबीच तीन विभंगानदी है। ते विभंगानदी नीलकुलाचलतैं निकसी सीताविषे जाय मिली है। ऐसेही सीतानदीकी दक्षणकी तरफहू च्यार वक्षार तीन विभंगानदी अर दोऊ तरफ अंतविषै वेदी इन नवनिकै बीच आठ विदेह क्षेत्र है। अर सोही दिखाईए है। पूर्व भद्रसालकी वेदी ताकें आगे विदेह ताकैं आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे विभंगा ताकै आगे विदेह ताके आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे विभंगा ताके आगें विदेह ताके आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे विभंगा ताकै आगं विदेह ताकें आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे देवरण्यकी वेदी ऐसे चार वक्षार तीन विभंगा एक भद्रसालवनकी वेदी एक देवारण्यकी वेदी इनि नवनिके बीची आठ विदेह ऐसे सीतानदीके दोऊ तटसंबंधी सोलह विदेह छह विभंगानदी आठ वक्षार गिरि जानने। अब इनका प्रमाण ऐसे। तीन विभंगानदी प्रत्येक सवासे सवासे योजन चौडी। अर वक्षार गिरि चार प्रत्येक पांचसे पांचसे योजन चौडा। अर आठ विदेहक्षेत्र प्रत्येक बाईससे वारह योजन साढातीन कोश प्रमाण चोडे है। इनि सवनिका जोड वीस हजार अठहतरि योजन होय है। भद्रसालकी वेदीतैं लेय देवारण्यकी वेदीतांई एता पूर्वविदेह है।

वहुरि पश्चिमकी रचनाभी पूर्ववत् जाननी। तहां सीतोदानदी पश्चिमविदेहके बीचि होइ पश्चिमसमुद्रमें जाय है। ताकरि सीतोदाके उत्तर दक्षिण रूप पश्चिमविदेहमे दोय भाग भए। तहां दोऊ दीस रचना समान है। इनिका प्रमाणभी पूर्ववत् है। तीन विभंगानदी चार वक्षारगिरिं आठ विदेह क्षेत्र। इनि सवनिका जोड वीस हजार आठहतरि योजन हैं। इहां पश्चिम भद्रसालकी वेदीते लेय भूतारण्यकी वेदीतांई एता पश्चिमविदेह है। अर जैसा पूर्वविदेहका अंतमे समुद्रमे उनतीससे वाईस योजनका देवारण्य वन है। तैसेही पश्चिम विदेहका अंतमे उनतीससे वाईस योजनप्रमाण भूतारण्य नामा वन है। वहुरि भद्रसालवन मेरुसहित अर दोऊं तरफका विदेह अर देवारण्य भूतारण्य ए दोऊ वन इन सवनिका जोड एक लक्ष योजनाप्रमाण जानना। वहुरि सोलह तो पूर्वविदेह अर सोलह पश्चिम विदेह ऐसे सव वत्तीस विदेहक्षेत्र है। तहां क्षेत्रनके मध्य पूर्वपश्चिम लंवा एकएक विजयार्द्धपर्वत है।

वहुरि नीलाचल निषधाचलते निकसी एकएक विदेहमें दोयदोय नदी विजयार्द्धपर्वतके नीचे होय सीतासीतोदामें जाय मिले है। तातै एकएक विदेहमे छहछह खंड भए है। तहां कुलाचलकी तरफ तीन खंडनिके मध्य बीचले खंडमे वृषभाचल है वहुरि सीता वा सीतोदाके दोऊतरफ तीन खंडनिके मध्य बीचला आर्यखंड है अन्य पांच म्लेंच्छखंड है। बत्तीस विदेह-

क्षेत्रनिमे चोसठी नदी है। तिनमे नीलाचल तैं निकसी वत्तीस नदी तो गंगासिंधु ऐसे नामकूं धारे है। अर निषधकुलाचलतैं निकसी वत्तीस नदी रक्ता रक्तोदा नामकूं धारे हैं। या प्रकार विदेहक्षेत्र है।

वहुरि इहां अन्य विशेष लिखिए है। सुदर्शन मेरुकी च्यार विदिशपिविषैं च्यार गजदंत पर्वत है। तहां ईशानदिशाविषैं मौल्यवान् गजदंतपर्वत है। ताका वैडूर्यमणीकासा वर्ण है। अर अग्निविदिशाविषैं श्वेत रूपाके वर्ण सौमनस गजदंतपर्वत है। अर नैऋत्यविषैं तप्तसुवर्ण विद्युतत्प्रभगजदंत है। अर वायुविदिशाविषैं सुवर्णवर्ण गंधमादन गजदंतपर्वत है। ते गजदंत मेरुते लेय नीलाचल निषधाचलते जाय लगे हैं तीस हजार दोयसे नव योजन कुछ अधिक इनिकी लंवाई है। अर इनकी उंचाई मेरुके निकट पांचसे योजन उंचा है। अर कुलाचलनके निकट चारसे योजन प्रमाण है। ऐसे सेरुते चार विदिशानिविषैं चार गजदंतपर्वत कहे।

वहुरि सुदर्शनमेरु है सो चित्रापृथ्वीविषैं हजार योजन याकी नीव है तहां तो दश हजार निवे योजन अर दश योजनके ग्यारवे भागप्रमाण चौडा है। वहुरि अनुक्रमते घटता घटता समभूमीविषैं दश हजार योजन चौडा है। अर अंतविषैं एक हजार योजन चोडा है महासोभायमान एक लक्ष योजनप्रमाण उंचा है। तहां एक हजार योजन तो चित्रा पृथ्वीविषैं नीव है। अर समभूमीविषैं चोगिरद जो भद्रसालवन तातैं अनुक्रमतैं घटता पांचसें योजन उंचा चढी चारों तरफ पांचसे योजन चौडी कटनी है। तिस कटनीविषैं चारों तरफ नंदनवन है। वहुरि ताके उपरि ग्यारह हजार योजन तो समान चौडाई लिए पर्वत उंचा गया है। अर ग्यारह हजार योजन उपरि साढा इक्यावन हजार योजनक्रमतैं घटता घटता साढा वासठी हजार योजन उंचा चढीए तहां पांचसे योजन सर्व तरफ चोगिरद कटनी है। तिस कटनीविषैं सर्व तरफ सौमनस नामा वन है। वहुरि तहांतैं ग्यारह हजार योजन उंचा समान प्रमाण लीए है वहुरि क्रमते पचीस हजार योजन घटाय है। सो छत्तीस हजार योजन ऊंचा चढिए तहां च्यारसें चोराणवे योजन चौडी चोगिरद कटनी है तिस विषैं पांडु नाम वन है। तिसके बीची नीचे वारह योजन चौडी ऊपरि क्रमते घटी च्यार योजन चौडी रही ऐसी च्यालीस योजन ऊंची वैडूर्य मणिमयी चूलिका है। ऐसे च्यार वन मेरुके है तिनकी दिशाविषैं च्यारि जिनमंदिर हैं सो च्यारो वनविषैं सोलह जिनमंदिर है।

अर नंदनवन अर सौमनस वन इन दोऊ वनविषैं सोलह सोलह वावडी हैं। तें मिष्टजलकरि पूरित अतिमनोहररूप हैं। वहुरि पांडुकवनविषैं महासुंदर च्यारि शिला हैं। तिन उपरि तीर्थंकर प्रभूके जन्माभिषेकका सिंहासन है। पूर्वविदेह अर पश्चिमविदेह अर भरत ऐरावत इन च्यार क्षेत्रनिमे उपजे तीर्थंकरनिका जन्माभिषेक मेरुका पांडुकवनकी शिलाविषैं इंद्रादिकनिकरि करिए है।

अव कीछु अन्य विशेष लिखिए है। मेरुपर्वत है सो समस्त क्षेत्रतैं उत्तरदिशामे है। जातै आगमविषै सूर्यको उदयकी अपेक्षा पूर्वादिकदिशा कही है। पूर्वविदेह क्षेत्रमे सूर्यका उदय नीलाचल ऊपरि दीखै है। अर निषधाचलऊपरि अस्त होता दीखे है। तातैं पूर्वदिशामें नील-पर्वत है। अर पश्चिम दिशामे निषधपर्वत है। अर दक्षिणमें समुद्र है। उत्तरमे मेरु है। वहुरि पश्चिमविदेहमे निषधपर्वततै सूर्यका उदय है। अर नीलपर्वत उपरि अस्त होय हैं। तातैं निषधाचल तो पूर्व है। अर नील पश्चिम हैं। अर दक्षिणमें समुद्र है। अर उत्तरमें मेरु है। वहुरि उत्तरकुरुभोगभूमीमे गंधमादन गजदंत ऊपरि सूर्यका उदय है। अर माल्यवान् गजदंत-उपरि अस्त होय है। वहुरि देवकुरु भोगभूमिमे सौमनस गजदंत ऊपरि सूर्यका उदय है। अर विद्युत्प्रभ गजदंतउपरि सूर्यका अस्त है। तातै सौमनस पूर्व है। अर विद्युत्प्रभ पश्चिम है। अर निषध दक्षिण है। अर मेरु उत्तर है। या प्रकार च्यारों तरफते मेरुगिरि उत्तरमे जानना। सो इनका विस्तारकथन तथा विदेहक्षेत्रका अनेक विशेषवर्णन राजवार्तिकग्रंथतै जानना। अव जिन क्षेत्रनिका विभाग भया वे कौन है अर कैसे तिष्ठे है इस हेतुते सूत्र कहे है—

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥

अर्थप्रकाशिका— तीन भरतादिक क्षेत्रनिके विभाग करनेवाले पूर्वपश्चिम लंबे ऐसे हिमवान् महाहिमवान् निपध नील रुक्मी शिखर ए छह कुलाचल पर्वत क्षेत्रनिका विभाग धारण करे है। तातै इनकी वर्षधर संज्ञा है। भरतक्षेत्र अर हैमवत क्षेत्र अर इन दोऊंनिकीं सीमा-विषं पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा सौ योजन ऊचा पचीस योजन भूमीविषै नीव जाकी ऐसा हिमवान नामा पर्वत हैं। सो भरतक्षेत्रकी चौडाईते दूणां एक हजार वावन योजय अर एक योजनका उगणीसभागमें वारह भाग प्रमाण चौडा है। बहुरि तिस हिमवान पर्वतके पैलीतरफ पूर्वपश्चिम लंवा दक्षिणउत्तर चौडा हैमवत क्षेत्र है। सो इकवीससे पांच योजन पांच कलाका चौडा हैं। इस विषै मनुष्यनिका शरीर एक कोश ऊंचा दोय होय है एक दिनके अंतरालै आवला प्रमाण आहार करे है। कल्पवृक्षनिके दोय नानाप्रकारके भोग भोगवे है विनयवान मंदकषाय है।

वहुरि यातै परे महाहिमवान पर्वत हैं सो पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा है। याका वियालीसे दश योजन दश कला प्रमाण चौडा विस्तार है। दोयसे योजन ऊंचे है। यातै परे हरिक्षेत्र चौरासीसे इकवीस योजन एक कलाका चौडा है। पश्चिमसमुद्रपर्यंत लंवा है। इस विषै मनुष्यनिका दोय कोश प्रमाण ऊंचा काय है दोय पल्यका आयु है। दोय दिन व्यतीत भए वहेडा प्रमाण आहार ले है। याते परे सोल्ह हजार आठसे बीयालीस योजन दोय कला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा च्यारिसे योजन ऊंच निषधपर्वत है याते परे तेतीस हजार

छसै चोरासी योजन च्यार कला प्रमाण विदेहक्षेत्र हैं। पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा है। याते परे सोलह हजार आठसे बीयालीस योजन दोयकला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिमसमुद्रपर्यंत लंवा च्यारिसे योजन ऊंचा नीलपर्वत है। यातैं परे आठ हजार च्यारसे इकईस योजन एककला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा रम्यकक्षेत्र है। यामे मनुष्यनकी हरिक्षेत्रवत रचना है। याते परे च्यार हजार दोयसे दस योजन दश कलाका चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा दोयसे योजन ऊंचा रुक्मी पर्वत है। याते परे दोय हजार एकसो पांच योजन पांच कलाप्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा हैरण्यवत नाम क्षेत्र है। यामें मनुष्यनिकी हिमवतक्षेत्रवत रचना है। याते परे एक हजार बावन योजन बारह कला प्रमाण चौडा सौ योजन ऊंचा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंवा शिखरीपर्वत है। याते परे ऐरावत नामा क्षेत्र भरत-क्षेत्रवत है। ऐंसे षट्कुलाचलनकरि क्षेत्रनिका सात विभाग होय है। तिन षट्कुलाचलनिका वर्णविशेष प्रतिपादनके अर्थि सूत्र कहे है–

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥

अर्थप्रकाशिका– हिमवान पर्वत सुवर्णमय कहिये पीतवर्णका है। महाहिमवान पर्वत रूप्यमय है। निषधपर्वत तरुणसूर्यके समान तप्तसुवर्णमय है। नीलपर्वत नीलवर्णका है। रुक्मिपर्वत रजतमय कहिये शुक्लवर्ण है अर शिखरीपर्वन हेममय कहिये पीतवर्णका है ऐसा जानना। अव इन पर्वतनिका औरभी विशेष स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहे है–

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥

अर्थप्रकाशिका– नानाप्रकारके वर्ण अर प्रभावादिकनिकरि सहित जे मणि तिनकरि इन कुलाचलनिके पसवाडे विचित्र है। वहुरि मूलते लेय ऊपरितांई समान चौडे है। वहुरि सुगंधपुष्पादिकनिके धारक नानाप्रकारके उत्तम वृक्षनिकरि सोभासहित है। सर्वही पर्वतनिके दोऊ पार्श्वनिविषै वेदी है। अव इन पर्वतनिके ऊपरि तिष्ठते ऱ्हदनिके कहनेकूं सूत्र कहे हैं–

पद्ममहापद्मतिगंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ऱ्हदास्तेषामुपरि ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका– हिमवान कुलाचल उपरि पद्म ऱ्हद है। महाहिमवान उपरि महा-पद्म है। निषध उपरि तिगंछ ऱ्हद है। नीलउपरि केसरि ऱ्हद है। रुक्मी उपरि महापुंडरीक ऱ्हद है। शिखरीके उपरि पुंडरीक ऱ्हद है। ऐसें छह कुलाचलनि ऊपरि छह ऱ्हद कहे। अब इन ऱ्हदनिके आकारविशेष कहनेकूं सूत्र कहे है–

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ऱ्हदः ॥१५॥

अर्थप्रकाशिका– इनमें प्रथम जो पद्म नामा ऱ्हद है सो पूर्वपश्चिम एक हजार

योजन लंवा है। अर दक्षिण उत्तर पांचसे योजन चौडा है। वज्रमय याका तल है। वहुरि अनेक प्रकारके मणि तथा सुवर्ण तथा रजत तिनकरि विचित्र इनका तट है। वहुरि च्यार द्वारनकरि सहित न्हदसमान लंबी चौडी अर्द्धयोजन ऊंची पांचसे धनुष चौडी रूपमयी याके वेदी है। च्यारूतरफ बनखंडकरि मंडित है। स्फटिकमणिसमान स्वच्छ गंभीर अक्षय जलकरि भऱ्या है अव तिसका ऊंडापना कहनेकूं सूत्र कहे है–

दशयोजनावगाहः ॥१६॥

अर्थप्रकाशिका– पद्मन्हदकी ऊंडाई दशयोजनकी है।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

अर्थप्रकाशिका– तिस पद्मन्हदमें एक योजनप्रमाण चौडा लंवा कमल है। ताके एक कोस लंबो पत्र हैं। अर दोय कोश चौडी बीचिमें कर्णिका है। अर जलतलते दोय कोश ऊंचा याका नाल है। अर दोय कोश मोटे पत्र है। याका वज्रमय मूल है। अरिष्टमणिमय कंद है। रजतमणिमय मृणाल है। वैडूर्यमणिमय नाल है। सुवर्णसमान पत्र है। तप्तसुवर्णसमान केसर है। नानामणिकरि विचित्र सुवर्णमय कर्णिकायुक्त कमल है। तिस कमलकी ऊंचाईते अर्द्धउच्चताके धारक एकलक्ष चाळीस हजार पंद्रह याके परिवारके कमल है। तिन परिवारके कमलनिमे श्रीदेवीके परिवारके देवनिके वसनेके महेल मकान है। अव अन्य न्हदनिका प्रमाण तथा कमलनिका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहे है–

तद्द्विगुणद्विगुणा न्हदाः पुष्कराणि च ॥१८।

अर्थप्रकाशिका– पहिले न्हदते तथा कमलते दूनेदूने लंबाई चोडाईरूप अगिले अगिले न्हद तथा कमल जानने। तहां पद्मन्हदते सर्वप्रकार दूना महापद्म न्हद है। अर महापद्म न्हदते दूना तिगंछ न्हद है। ऐसे तीन न्हद कहे तैसेही प्रमाण लीए उत्तरके तीन न्हद है। इन न्हदनिकी लंवाई चोडाई ऊंडाई दक्षिणके तीन न्हदनीके समान उत्तरकेनिके जाननी। अर इनि न्हदनिमें जे कमल है तेहू दूणा प्रमाणकूं लीए है। पद्म न्हदमे एक योजनका कमल कह्या तातै दूणा महापद्म न्हदमें कमल है सो जलतलतै दोय कोश ऊंचा है। अर दोय कोश लंबा पत्र है। अर एक योजन मोटा पत्र है। अर एक योजनकी कमलके बीचि कर्णिका है। अर ताके परिवारके कमल पद्मन्हदसमानही एक लाख चालीस हजार पनरा है। विस्तार दूणा है। यातै तिगंछ न्हदका प्रमाण तथा कमल विस्तार दूणा है। अर उत्तरका इन तीन न्हदनिके तुल्य है। अव इनि न्हदनिके बीचि कमलनिमे निवास करनेवाली देवी है तिनके नाम आयु परिवारके जनावनेकूं सूत्र कहे है–

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥

अर्थप्रकाशिका– जे ह्रदनिविषै कमल कहे तिनमे छह देवी क्रमते वसनेवाली है। तिन ह्रदनिमें कमल है ते वनस्पतिकाय नहीं हैं। पृथ्वीकाय रत्नमय है। कमलनिके आकार है। तिन कमलनिकी कर्णिकाके मध्य अतिनिर्मल उज्वल महल है। तिन महलनिमे निवास करनेवाली अनुक्रमते श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी है नाम जिनके ऐसी देवी वसे है। तिनका एकएक पल्यका आयु है। अर तिस वडे कमलके परिवारके कमल है तिन विषै तिन देवीनिके सामानिक जातिके परिषद जातिके देव वसे है। अव जिन नदीनिकरि क्षेत्रनिमे विभाग भया तिनके नाम कहनेकूं सूत्र कहे हैं–

गंगासिन्धूरोहिद्रोहितास्य हरिद्धहरिकान्तासोतासोतासीतोदाना–रीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥

अर्थप्रकाशिका– इनि छहो ह्रदनिते निकसि सप्तक्षेत्रनिविविषै गमन करे ऐसी चोदह महानदी है। तिनके नाम गंगा सिंधु रोहित रोहितास्या हरित हरितकांता सीता सीतोदा नारी नरकांता सुवर्णकला रूप्यकूला रक्त रक्तोदा। ए चोदह नदी छहों ह्रदनिते निकसी है तहां पहला पद्मह्रद अर छवा पुंडरीक ह्रद इनतै तीनतीन नदी निकसी है। अर च्यार ह्रदनिते दोयदोय नदी निकसी है। अव इन नदीनिका दिशाप्रति गमनका नियम कहे है।

द्वयोर्द्वयो पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥

अर्थप्रकाशिका– दोयदोयमैते जे पहिले नामकरि कहि ते पूर्वसमुद्रकूं जाय है। एक एक क्षेत्रविषै दोयदोय नदी अनुक्रमते गई है। तहां दोयदोयमें जे पहिलें नामकरि कहि जे गंगा रोहित हरित सीता नारी सुवर्णकूला रक्ता ए सात नदी पूर्वसमुद्र प्रति गमन करे है। अन्य सप्तनदीनिका गमन जणावनेकूं सूत्र कहे है–

शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

अर्थप्रकाशिका– दोयदोयमे जे पाछे कही ते पश्चिमसमुद्रमे गमन करे है। सिंधू। रोहितास्या। हरित कांता। सीतोदा। नरकांता। रूप्यकुला। रक्तोदा। ए सात नदी पश्चिमसमुद्रमे गमन करे है। इहां ऐसा विशेष जानना। जो च्यार तोरणद्वारसहित जो पद्मह्रद ताका पूर्वतोरणाद्वारकरि गंगा नाम नदी निकसी पांचसे योजन तो पूर्वसन्मुख जाय अपना प्रवाहकरि गंगा नाम कूटने स्पर्शनकरि तथा त्रिलोकसारजीमें कहे है जो आधा योजन गंगाकूटते उली-तरफतेही दक्षिणकूं मुडीकरि पांचसे तेईस योजन अर एक योजनका उगणीस भागमें छ भाग प्रमाण पर्वत उपरि दक्षिण सन्मुख आय अर सवाछह योजन चौडी अर आध कोश ऊंडी ऐसी सो

योजनतै कुछ अधिकप्रमाण हिमवान् पर्वततै गोमुख सियाका प्रनालिकातै हिमवान् पर्वततै पचीस योजन परै दश योजन मोटी काहलाकार धारा भरतक्षेत्रमे पडी सो तहां एकसाठी योजन चौडा लंवा गंगा नाम कुंड है।

ताकी दशयोजनप्रमाण ऊंडाई है वज्रमय जाका तल है तिस कुंडमें साढादश योजन ऊंचा अष्ट योजन चौडा लंवा एक द्वीप हैं तिस द्वीपऊपरि श्रीदेवीका गृहप्रमाण महलकरि मंडित श्री श्रीदेवीका मंदिर है तिम मंदिर ऊपरि कमलासन सिंहासन ऊपरि परमशांतस्वरूप जिनेंद्रका प्रतिविंव विराजे है तिस प्रतिविंव ऊपरि हिमवान पर्वतते पडिकरि तिस कुंडके दक्षिणतोरणद्वारकरिके निकसि सो सवाछह योजन चौडी अर्ध योजन ऊंडी क्रमकरि विस्तारकूं प्राप्त होती भुजगवत कुटिलगामिनी खडप्रपातनाम विजयार्द्धकी गुफाकरि विजयार्द्धकै नीचै गमन करि विजयार्द्धकूं व्यतीतकरि दक्षिणसन्मुख होय दक्षिणभरतका मध्यमे जाय पूर्वसन्मुख मोडा खाय सवा योजन ऊंडी साडावासठि योजन चौडा विस्तारकरि मागधद्वारकरि लवणसमुद्रमे प्रवेश करे है।

वहुरि तिसही पद्मन्हदके पश्चिम तोरणद्वारकरि निकसि गंगाकी ज्यो पांचसे योजन हिमवान् पर्वत ऊपरी सूधी जाय सिंधूकूटते दक्षिणसन्मुख मुडी गंगाकी ज्यों सिंधूकुंडमे पडि तामिस्रागुफाकरि विजयार्द्धकूं छांडि पश्चिमसन्मुख होय दक्षिणभरतके अर्द्धतै प्रभासतीर्थद्वारकरि लवणसमुद्रमे प्रवेश करै है। याका कुंडादिककी स्वामिनी सिंधूदेवी है। वहुरि तिसही पद्मन्हदके उत्तरतोरणद्वारकरि रोहितास्या नाम नदी निकसी सो दोयसे छिहत्तरी योजन अर छह कला ता उत्तरके सन्मुख हिमवान् पर्वतऊपरी गई फेरि साढा द्वादश योजन विस्तार अर एक योजन ऊंडी सौ योजन कुछ अधिक लंबी हिमवत् क्षेत्रमे एक सौ वीस योजनप्रमाण विस्तीर्ण अर वीस योजन ऊंडा वज्रमय तलसहित कुंड है, तामे सोल्ह योजन चौडालंवा साढा वारह योजन ऊंचा द्वीप है ता ऊपरि श्रीदेवीका ग्रहप्रमाण मंदिर तादिषै जिनप्रतिविंव ऊपरि रोहितास्या नामा नदी पडिकरि तिस कुंडका उत्तरतोरणद्वारतै निकसी उत्तरसन्मुख शब्दवद्वैताढचपर्वतकी अर्द्ध प्रदक्षिणा देय अर अर्द्धयोजनपरेसूं मूडि पश्चिमसन्मुख जाय पश्चिमलवणसमुद्रमे प्रवेश करे है। सो या नदीनिकसी तहां तो साढा वारा योजन चौडी एक कोश ऊंडी है। अर समुद्रमे प्रवेश कीया है तहां एकसो पचीस योजन चौडी अर अढाईयोजन ऊंडी है। ऐसे ए तीन नदी हिमवान् पर्वततै निकसी है।

बहुरि ऐसेही महापद्म न्हदके दक्षिणतोरणाद्वारतै निकसी रोहित नदी सो सुधा दक्षिण-सन्मुख होय हैमवत् क्षेत्रमे पडी पूर्वसमुद्रको जाय है। बहुरि महापद्म न्हदके उत्तरद्वारतै निकसी हरिकांतानदी हरिक्षेत्रमे होय पश्चिमसमुद्रमें प्रवेश करे है। बहुरि तिगंछ न्हदके दक्षिणतोरण द्वारतै निकसी हरित् नदी हरिक्षेत्रमे होय पूर्वसमुद्रको जाय है। बहुरि तिगंछ न्हदके उत्तर-

तोरणद्वारतैं निकसी सीतोदा नाम नदी सो देवकुरुक्षेत्रमे पडी मेरूके सन्मुख जाय दोय कोशतैं ही मेरु टली मेरुकी अर्द्ध प्रदक्षिणा देय विद्युत्प्रभ गजदंतकी गुफामें प्रवेशकरि पश्चिमविदेहके मध्य होय पश्चिम समुद्रमें गमन करे है। वहुरि फेरि न्हदके दक्षिणतोरणद्वारतैं निकसी सीता नाम नदी उत्तरकुरुभोगभूमिमे पडि मेरुके सन्मुख जाय आधयोजनतैं मेरुकी अर्द्धप्रदक्षिणा देय माल्यवान गजदंतके नीचे होय पूर्वविदेहमे होय पूर्वसमुद्रमे प्रवेश करे हैं। बहुरि फेरी न्हदके उत्तरतोरणद्वारतैं निकसी नरकांता नदी रम्यकक्षेत्रके मध्य होय पश्चिम समुद्रमें जाय है।

वहुरि महापुंडरीक न्हदके दक्षिणतोरणद्वारतैं निकसी नारी नाम नदी रम्यकक्षेत्रमे होय पूर्वसमुद्रमे प्रवेश करै हैं। वहुरि महापुंडरीक न्हदके उत्तरतोरणद्वारतैं निकसी रूप्य-कूलानदी है सो हैरण्वतक्षेत्रमे होय पश्चिमसमुद्रको जाय है। अर पुंडरीक न्हदके दक्षिण-तोरणद्वारतैं निकसी सुवर्णकूलानदी हैरण्यवतक्षेत्रमे होय पूर्वसमुद्रको जाय है। वहुरि सोही पुंडरीक न्हदके पूर्वतोरणद्वारतैं निकसी रक्ता नाम नदी सो शिखरीपर्वतउपरी पांचसे योजन सुधी जाय वहुरि उत्तर सन्मुख होय ऐरावतक्षेत्रमें पडी गंगानदीकीज्यों पूर्वसमुद्रमे गमनकरे हैं। वहुरि पुंडरीक न्हदके पश्चिमतोरणद्वारकरि निकसी रक्तोदा नाम नदी सिंधुनदीकीज्यों पश्चिमसमुद्रमें प्रवेश करे है।

इन सर्वनदीके दोऊ तटानिविषैं सुंदर फलपुष्पादियुक्त नानाप्रकारे वृक्षनिका वन है। अब इन नदीनिका निकसना अर परनाली होय पडना अर चौडाई ऊंडाई अर दिनकुंडनिके द्वीपनऊपरि पडी तिन कुंडनिका द्वीपनका विस्तार अर मूलतैं निकसी तहांका विस्तार ऊंडाई अर समुद्रमे मिली तहांकी चौडाई ऊंडाईका विस्तार विदेहके मध्य प्राप्तहुई सीतासीतोदा नदी-पर्यंत दूनादूना जानना। इहां जुदाजुदा तथा और विशेषवर्णन ग्रंथ वधनेके भयते नही लिखा है। ऐसें सात क्षेत्रनिमें चोदह नदी है। तहां हिमवत। हरि। रम्यक। हैरण्यवत। इनि च्यार क्षेत्रनकै मध्यविषैं च्यार नाभिगिरि है। अर विदेहक्षेत्रके मध्यमेरुही नाभिगिरि है। जिन क्षेत्रनमें दोयदोय नदी हैं ते तो नाभिगिरिके सन्मुखजाय आधआध योजन उरे तैं मुडी नाभिगिरिकी तथा मेरुकी अर्द्धप्रदक्षिणा देय समुद्रमें गमन करे है। ऐसे पांच क्षेत्रसंबंधी दश नदी जाननी अर भरतऐरावतविषैं नाभिगिरि नाही है। तहां संबंधी च्यार नदीनिका प्रवाहादिक समान है। अव इन नदीनिका परिवार कहनेकूं सूत्र कहे है—

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥

अर्थप्रकाशिका— गंगा सिंधु नदी चोदहचोदह हजार परिवारकी नदीनिकरि सहित समुद्रमें मिले है। अर आगे आगे रोहितरोहितास्याकी अठाईसअठाईस हजार परिवारकी नदी है। हरितहरिकांताकी छपनछपन हजार परिवारकी नदी है। सीताकी परिवार नदी चोरासी हजार है। अर इतनीही सीतोदाकी परिवारनदी जाननी। अर ऊत्तरक्षेत्रनिविषैं दक्षिणके क्षेत्रनिसमान जाननी। अव कहे जो भरतादिक क्षेत्रनिका तुल्य विस्तार है की विशेष है तातैं सूत्र कहे है—

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षड्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥

अर्थप्रकाशिका- भरतक्षेत्र है सो पांचसे छब्बीस योजन अर एक योजनका उगणीस भागमें छह भागप्रमाण दक्षिण उत्तर विस्तार है । अन्य क्षेत्रनिका विस्तार विशेषकी प्रतिपत्तिके अर्थि कहे है ।

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका- तिस भरतक्षेत्रतै कुलाचल तथा क्षेत्र दूनादूना विस्ताररूप विदेह-क्षेत्रपर्यंत है । तहां भरतक्षेत्रतै दूना चोडा एक हजार बावन योजन बारहकलाका हिमवान् पर्वत है । हैमवतक्षेत्र इकईससै पांच कला है । महाहिमवान् कुलाचल च्यार हजार दोयसै दश योजन दश कलाका है । हरिक्षेत्र आठ हजार च्यारसे इकईस योजन एक कला है । निषध-कुलाचल सोलह हजार आठसै बीयालीस योजन दोय कला है । विदेहक्षेत्र तेतीस हजार छसै चोरासी योजन च्यार कला है । ऐसें विदेहपर्यंत दूनादूना विस्तार है । आगे उत्तरके कुलाचल क्षेत्रादिकनिका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहे है-

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका- उत्तरके ऐरावतादिक नीलपर्यंत भरतादिक दक्षिणके क्षेत्रनकरि तुल्य जानने योग्य है । अब कहे है जो भरतादिक क्षेत्रनिमें मनुष्यादिकनिके सुखदुःखानिकनिका अनुभवादिक तुल्य है कि कुछ विशेष है । यातै सूत्र कहे है ।

भरतैरावतयोर्वृद्धिन्हासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥

अर्थप्रकाशिका- भरत ऐरावत इन दोय क्षेत्रनिविषै उत्सर्पण जो वढना अर अवसर्पण जो घटना इनि रूप जो छह काल तिनकरि मनुष्यादिकनिके आयुका प्रमाण कायका प्रमाण भोग उपभोग सम्पदा वीर्य बुद्ध्यादिकनिका वढना घटना होय है । उत्सर्पिणीमें दिनदिन वधे है । अवसर्पिणीमें घटे है । तहां अवसर्पिणी तो सुखसुखमा १, सुखमा २, सुखमदुःखमा ३, दुःखम-सुखमा ४, दुःखमा ५, अतिदुःखमा ६, ऐसे छहं प्रकार है । अर उत्सर्पिणीहु अतिदुःखमा १, दुःखमा २, दुःखमसुखमा ३, सुखमदुःखमा ४, सुखमा ५, सुखमसुखमा ६, ऐसे छह प्रकार है । अवसर्पिणीका प्रमाण दशकोडाकोडीसागरका है । सोही उत्सर्पिणीका प्रमाण दश-कोडाकोडीसागरका है । ए दोऊ मिले हुये कल्पकाल है । तहां सुखमसुखमा च्यार कोडाकोडीसागरप्रमाणका है इसकी आदिमे मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिका मनुष्यकै तुल्य है । तिसकी क्रमतै हानी होतै दूजा काल सुखमा नामा तीन कोडाकोडीसागरका प्रवर्तै है । तिस कालकी आदिमें मनुष्य हरिवर्षके मनुष्यसमान है । मध्यभोगभूमिका रचना इस कालमें है ।

तिसकी क्रमतें हानी होतैं सुखमदुःखम नामा तीजा काल दोय कोडाकोडीसागरका प्रवर्त्तै है। तिस कालकी आदिमें मनुष्य जघन्यभोगभूमिकीज्यों हैंमवतक्षेत्र ताके मनुष्यनिकरि तुल्य होय है। तिस कालकी क्रमतैं हानी होतैं दुःखमसुखमा नामा चौथा काल प्रवर्त्तै है। याका बीयालीस हजार वर्ष घाटी एक कोडाकोडीसागर प्रमाण काल है। तिसकी आदिमें मनुष्य विदेहनिके मनुष्यनिके तुल्य है। तिसकालकीहू क्रमतैं हानी होतैं दुःखमा नामा पंचम काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्त्तै है। इस कालकूं क्रमतैं व्यतीत होतें अतिदुःखमा नामा इकईस हजार वर्षका प्रवर्त्तै है।

प्रथम कालकी आदीमें मनुष्यनिका आयु तीन पल्यका अनुक्रमतै घटता अंतमें दोय पल्यका है। द्वीतीय कालका आदिमें आयु दोय पल्यका अंतमें अनुक्रमते घटतै एक पल्यका है। तृतीय कालकी आदिमे आयु एक पल्यका अंतमें घटतै घटतैं एक कोटी पूर्वका है। चतुर्थ कालकी आदिमे एक कोटी पूर्वका अंतमें अनुक्रमतें एकसोवीस वर्षका पंचमकालकी आदिमें मनुष्यनिका आयु एकसोवीस दर्षका अंतमें क्रमते घटता वीस वर्षका हैं। छठ्ठा कालकी आदिमें मनुष्यनिका आयु वीस वर्षका अंतमें क्रमतैं घटता पनहरवर्षका हैं। ऐसे मनुष्यनिका छह कालसंवंधी उत्कृष्ट आयु कह्या।

वहुरि मनुष्यनिका शरीरकी ऊंचाई प्रथमकालकी आदिमे तीन कोस अंतमें दोय कोस। द्वितीयकालकी आदिमें दोय कोश अंतमं एक कोश। तृतीय कालकी आदिमें एक कोश अंतमें पांचसे धनुष्य ऊंचा है। चतुर्थ कालकी आदिमें पांचसें धनुष्य अंतमें सप्त हस्त ऊंचा है। पंचमकालकी आदिमें सप्त हात ऊंचा अतमें दो हस्त ऊंचा है। छठा कालकी आदिमें दोय हस्त ऊंचा अंतमें एक हस्त ऊंचा है। ऐसे छह कालमें शरीरकीं उंचता कही। प्रथम कालमें मनुष्यनका वर्ण ऊगता सूर्य समान हैं। दूजामें पूर्णमासीके चंद्रमासमान है। तृतीय कालमें हरित श्यामवर्ण है। चतुर्थकालमें पंचवर्ण है। पंचमकालमें कांतिहीन मिश्र पंचवर्ण है। छठामैं धूमवत स्यामवर्ण हैं। ए छह कालमें शरीरका वर्ण कह्या।

अव इनके आहार कहे हैं। प्रथम कालमें तीन दिन गए चौथे दिन वदरीफलके प्रमाण आहार ग्रहण करे है। द्वितीय कालमें दोय दिन गए पीछै वहडा प्रमाण आहार ग्रहण करे है। अर तृतीय कालमें एक दिन गया पछै आवला प्रमाण भोजन करे है। अर चतुर्थकालनें रोजीना एकवार। पंचम कालमें वहुतवार अर छठा कालनें अतिप्रवुरवृत्तिकरि भोजन करे है। ऐसे मनुष्यनिके छह कालमें आहारको क्रम कह्यो।

अर तीजा कालतांई इस भरतक्षेत्रमें भोगभूमि प्रवर्त्तै है। अर चतुर्थ पंचम कालमें कर्मभूमि प्रवर्त्तै है। अर अवसर्प्पिणीका पंचमकलाका तीन वर्ष साढा आठ महीना अवशेष रहे कल्कीका निमित्ततै प्रभातकालमें धर्मका नाश होयगा मध्यान्ह कालमै राजाका नाश होयगा अर अपराण्ह कालमें अग्निका नाश होयगा। तीठा पाछै छठा कालमें मनुष्य नग्न

रहेंगे मत्स्यादिकनिका आहार करेंगे। जातै पुद्गलनिका लूखापणातैं तो अग्निका नाश होयगा। अर मुनि श्रावकादिकका अभावतै धर्मका नाश होयगा। अर असुरपतिका कोपतै राजाका नाश होयगा। ऐसे दुखम जो पंचमा काल ताका स्वरूप कह्या।

अव अतिदुःखमा नाम छठा काल एकवीस हजारपर्यंत प्रवर्त्तैका। इस कालमें मनुष्य नरकतिर्यंच गतीके आएही उपजै है। अर नरक तिर्यंचगतिहीमें जाय उपजै है। अर इस छठे कालमें मनुष्य मत्स्यादिकनिका आहार करे है नग्न रहे है। तिस छठा कालका अंतमें आर्यखंडमें संवर्त्तक नाम पवन चलै है। सो पवन पर्वत वृक्ष भूम्यादिकको चूर्ण करती दिशाका अंततांई आर्यखंडमें परिभ्रमण करे हैं। तिस पवन करि आर्यखंडके जीव मरणको प्राप्त होय है। अर कितनेक विजयार्द्धके वा गंगासिंधुकी वेदीके निकटवर्त्ती मनुष्य तिर्यंच जीव विजयार्द्धके वा गंगासिंधूकी वेदीके क्षुद्रविलनिमें प्रवेश करे है। अर कितनेक देव विद्याधर दयावान होय मनुष्य युगलादि वहुत जिवनितै विल गुफादिकनिमें प्रवेश करावे है। ऐसे छठा कालका अंतमे सात सात दिन पर्यंत पवन अतिशीतल क्षार विष कठोर अग्निरज धूम इनकी उणचास दिनपर्यंत वृष्टि होय है। तदि तिन वर्षानिकरि अवशेष जन नष्ट होय है। अर विषकी अर अग्निकी वर्षाकरि पृथ्वी एकयोजनपर्यंत नीचातांई कालका प्रभावतै चूर्ण होय है। इसकूं प्रलयकाल कहे है। और जो एकांती महाप्रलय माने है सो नही जानना।

वहुरि उत्सर्पिणीकालका प्रवेश होय है। तिसका प्रथमकालकी आदिमें मेघवर्षै है। ते सातसात दिन पर्यंत जल दुग्ध घृत अमृत रसानै वर्षै है। तदि तिन वर्षानिकरी भूमि उष्णता छांडि सचिक्कणता कांतिमानतातैं धारण करे है। अर वल्ली वृक्ष औषधादिक प्रगट होय है तदि नदीतीर गुफादिकमे तिष्ठते जीव भूमिका शीतल सुगंधगुणकरि खैंचे हुए निकसिकरि क्रमतैं भूमिविषै विचरेंगे ते नग्न रहेंगे मृत्तिकाका आहार करेंगे। ऐसे उत्सर्पिणीका प्रथमकाल इकईस हजार वर्ष प्रमाण व्यतीत होय चुकै तदि उत्सर्पिणीका दुःखमा नाम द्वितीय काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्त्तै है। तिस द्वितीय कालका एक हजार वर्ष वाकी रहे सोलह कुलकर होय है। ते कुलकर कुलका आचार अग्निसे अन्नादिक पकावना इत्यादिक क्रिया प्रगट करे है। वहुरि वियालीस हजार वर्ष घाटि एक कोडाकोडीसागरप्रमाण तीसरा काल प्रवर्त्तै है। तिसमें तीर्थंकरादिक तरेसठिशलाका पुरुष प्रगट होय है। वहुरि उत्सर्पिणीका चौथा कालमें जघन्यभोगभूमि, पांचमामें मध्यभोगभूमि, छठामें उत्कृष्टभोगभूमि ऐसे उत्सर्पिणीका छह काल। वहुरि अवसर्पिणीका पहला दूजा तीजामें भोगभूमि, चोथामै, पांचमामें कर्मभूमि, छठामें प्रलय ऐसे शुक्लपक्ष कृष्णपक्षकीज्यौं निरंतर प्रवर्त्तै है। अव कहे है अन्य भूमिविषै कैसी अवस्थिति है यातै सूत्र कहे हैं--

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

अर्थप्रकाशिका— तिन भरत ऐरावत क्षेत्रनतैं अन्य जे क्षेत्र हैं ते अवस्थित है।

जैसीकी तैसीही रचना रहे है। जैसे भरत ऐरावत क्षेत्रमें काल पलटै है। आयुकायादिक घटैं वधे है। तैसे नहीं घटें वधै है। अव अन्यक्षेत्रनिमें आयु अवस्थित कैसे रहे है यातै सूत्र कहे है–

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरुवका: ॥२९॥

अर्थप्रकाशिका– हैमवत क्षेत्रनिका मनुष्यनिका एक पल्यका हैं। हरिक्षेत्रके मनुष्यनिका आयु दोय पल्यका है। देवकुरुके मनुष्यनका आयु तीन पल्यका है। इन तीन भोगभूमिमें कायका प्रमाण एक कोश दोय कोश तीन कोश ऊंचा है। अर आहार जघन्य भोगभूमिमें एकदिनके अंतर। मध्यमें दोय दिनके अंतर। उत्कृष्टमें तीन दिनके अंतर है। इनिके मल मूत्र पसेवादिक नही है। रोग नहीं मरणके अवसरमें वेदना नहीं। पुरुषकूं उवासी स्त्रीकूं छिंक मरणसमयमें आवे है। अन्य वेदना नही होय है। वालवृद्धपणाका क्लेश नहीं है। व्रतसंयम नहीं है। केईकनिकै सम्यक्त्व होय है। कलहादिक दुख नहीं है। पृथक्त्व अपृथक्त्व दोऊ प्रकारकी विक्रिया करे है। मरण भए पछे देह कपूरवत विलाय जाय है। मरे पीछे सम्यग्दृष्टी तो सौधर्म ईशान स्वर्गमें देव होय है। मिथ्यादृष्टि भवनत्रिकमेंहू उपजै है। परस्पर ईर्षा वैरभावरहित है। तिर्यंच है ते च्यार अंगुल ऊंचे महामिष्ट तृण अमृत समान भक्षण करे है। जहां तावडा शीत गरमी आताप नहीं। मणिमयी भूमिका है। वर्षा नहीं होय है। जहां स्वामी सेवक नहीं। छह कर्मके क्लेशकरि जीविका नहीं है। कल्पवृक्षनिके दीए मनोवांछित भोजन वस्त्र आभरण वाहन महल पात्र वादित्र समस्त भोग उपभोग सामग्री भोगैं है। व्यभिचारादिक निंद्यकर्म जहां नहीं है। विकलत्रयादिक जीव नही है। जहां तिर्यंच महाभद्रपरिणामी वैरविरोध-रहित स्थलचर नभचरहि है। जलचर नहीं है। ऐसें भोगभूमिका वर्णन कीया। अव उत्तरक्षेत्रनिकी अवस्थितिकं अर्थि सूत्र कहे है–

तथोत्तरा: ॥३०॥

अर्थप्रकाशिका– जैसे दक्षिणके क्षेत्रनिकी रचना हैं तैसेही उत्तरके क्षेत्रनिमे है। तहां हैरण्यवतकी रचना हैमवतक्षेत्रकं तुल्य है। अर रम्यक्षेत्रकी रचना हरिक्षेत्रके तुल्य है। अर उत्तरकुरुकी रचना देवकुरुके तुल्य है। ऐसे उत्कृष्ट मध्यम अर जघन्य इन तीन भोगभूमिका दोयदोय क्षेत्र है। पंचमेरुसंवंधी तीस भोगभूमी है। अव विदेहकी अवस्थिति कहनेकूं सूत्र कहे है।

विदेहेषु संख्येयकाला: ॥३१॥

अर्थप्रकाशिका– पंचमेरुसंबंधी पांच विदेहक्षेत्रनिविषै मनुष्यनिका आयु संख्यात वर्षका है। तहां दु:खमसुखम कालकी आदिमें जो रीत है सो सास्वती रहे है। अर मनुष्यनका पांचसे धनुष्यनका काय है। नित्य आहार करे है। उत्कृष्ट आयु कोडीपूर्वक है। जघन्य आयु

अंतर्मुहूर्त्तका है। इहां पूर्वका प्रमाण ऐसा जानना। चोरासी लक्ष वर्षका एक पूर्वांग होय है। चोरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होय है। सो कर्मभूमिमें उत्कृष्ट आयु कोडीपूर्वकी है। अव आगे कह्या जो भरतक्षेत्रका विस्तार ताकूं प्रकारांतरकरि कहे हैं।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥

अप्रर्थकाशिका— जम्बूद्वीप एकलक्ष योजन प्रमाण है ताका एकसों निवै भागकी जेतामें एकभागमात्र भरतक्षेत्रका विस्तार है। पूर्वें जो भरतक्षेत्रका पांचसौ छवीस योजन छ कला प्रमाण विस्तार कह्या सो जम्बूद्वीपका लक्ष योजन क्षेत्रमें ऐसे वटवारा है। भरतकी एक शलाका। हिमवानपर्वतका विस्तार दोय शलाकामें हैं हिमवन क्षेत्रका च्यार। महाहिमवतका आठ। हरिक्षेत्र सोळह भागमैं हैं निषधाचल वत्तीस भागमें हैं। विदेही चोसठि भागमे हैं। नीलाचळ पर्वत वत्तीसमे। रम्यक सोलहमें रुक्मीपर्वत आठ भागमे। हैरण्यवत क्षेत्र चारि भागमे शिखरीपर्वत दोय भागमे। ऐरावतक्षेत्र एकभागमे। ऐसे एकसोनिवै विभाग जानने।

अव इस जंबूद्वीपकूं वेढे लवणनामा समुद्र है। सो समभूमिविषै है। याका विस्तार दोय लाख योजनका सर्वतरफ हैं। अर इस समुद्रकी ऊंडाई दोऊ तटनिविषै तो मांशीकी परसमान है। फिर अनुक्रमतें ऊंडाई बधी है सो पिच्याणवे अंगुल गए एक अंगुलकी ऊंडाई है। अर पिच्याणवै हस्त गए एक हस्तप्रमाण ऊंडा है। पच्याणवे योजन गये एक योजन ऊंडा है। ऐसेही तटतें पच्याणवै हजार योजन दूरि गये एक हजार योजनका ऊंडा हैं। जहां हजार योजन ऊंडा है तहां दश हजार योजनके विस्ताररूप रह्या तितनीही जलकी चौडाई है। ऐसे तौ नीचे क्रमतें दोऊ तटनीतें ऊंडाई वधी हैं सो दोऊ तटनितै पच्याणवे हजार योजन गए हजार योजनका ऊंडा है तहां दश हजार योजनकी चौडाई है।

वहुरिं समभूमितै दोऊतरफ जलकी उंचाई वधी है। सो दोऊ तटनितै पच्याणवे हजार योजन गए सोलह हजार योजन ऊंचा है। जळ है तहां दश हजार योजनकी चौडाई है। यवनिकी राशीकी ज्यों याका ऊंचा जल है। यातै लवणसमुद्रका मृदंगका संस्थान है। जैसे मृदंगका एक विभाग लंवा ऊंचा होय एक विभाग छोटा होय है। अर जैसे मृदंग बीचिमैंतै चौडा होय नीचे उपरि दोऊ तरफ क्रमतै घटताघटता होय दोऊ मुखकी चौडाई समान होय। तैसे समुद्रहू बीचि दोय लक्ष योजन प्रमाण चौडा अर नीचे क्रमते घटता हजार योजन ऊंडा गया तहां दश हजार योजनका चौडा हैं। अर ऐसेही उपरि क्रमते घटता घटता सोलह हजार योजन उंचा समभूमितै गया तहां जल दश हजार योजनका चौडा है। सो पूर्णमासीके दिन तो समभूमितै जल सोलह हजार योजन उंचा होय है। अर उपरि दश हजार योजन चौडा विस्तार होय हैं। फिर पडिवाके दिनतें लगाय दिनदिनप्रति तीनसे तेतीस योजन अर एक

योजनका तीजा भाग प्रमाण उच्चताकरि घटता जाय है सो अमावसीके दिन ग्यारह हजार योजन समभूमितें ऊंचा जल रहिजाय है। इस सीवाय घटैनही तहां जलकी चौडाईका प्रमाण गुणहतरि हजार तीनसें पचेतरि योजनप्रमाण रहे हैं। फिर शुक्लपक्षकी पडिवातें जलकी ऊंचाई तीनसे तेतीस योजन, एक योजनका तीजा भाग नित्य वधै है। सो पूर्णिमा पर्यंत पंद्रह दिनमे पांच हजार योजन वधै तदि सोलह हजार योजन उंचा होय है। अर उपरि दश हजार चौडाई होय है। सो इहां जलके घटने वधनेका ऐसा हेतु जानना। जो लवणसमुद्रके मध्यभागका परिधिके अभ्यंतर पृथ्वीमे खाडेसमान एक हजार आठ पातालकलश हैं तहां चारो दिशानिमे एक एक लक्ष योजनके ऊंडे च्यार पाताल कलश है। तिनकी ऊंडाई रत्नप्रभा पृथ्वीका पंकभागतांई है। वहुरि च्यारों विदिशानिविषे दश हजार योजन ऊंडा च्यार अन्य कलश है। वहुरि इन आठो कलशनिके आठ अंतराल, तिन एक एक अंतरालविषे एकसो पचीस एकसो पचीस अन्य छोटे कलश है। ऐसे आठ अंतरालनिके एक हजार कलश है। ते एक हजार योजनकी ऊंडाई लिए है। ऐसे समस्त कलश एक हजार आठ है।

वज्रमय इन पातालनिकी सर्व तरफ भीति है। तिन भितनिकी मोटाई दिशानिके पातालनिकी पांचसे योजनकी। विदिशानिकेकी पचास योजनकी अंतरालके हजारकी पांच पांच योजन मोटी है मृदंगके आकार है। सो इनकी उंचाईके प्रमाण मध्यस्थानकी चौडाई है। अर पींदा अर मुख अपनी उंचाईके दशवे भाग है। दिशानिके चार कलशनिकी उंचाई अर मध्यकी चौडाई लक्ष लक्ष योजनकी हैं। अर मध्यमेंसू अनुक्रमतै नीचे उपरि दोऊ तरफ घटता गया है सो पींदा अर मुख प्रत्येक दश हजार योजनका चौडा है। अर विदिशाके चार प्रत्येक उंचे दश हजार योजन है अर मध्यमे उदरहूं दश हजार योजनका है। बहुरि मध्यतै नींचे वा उपरि क्रमसें घटता एक हजार योजन चौड हैं। अर आठ अंतरालनमें तिष्ठते एक हजार कलश, एक हजार योजन ऊंडे अर मध्ममें चौडे है। अर मध्यते उपरि नीचे घटे है सो पींदा अर मुख एकसो योजन प्रमाण है। वहुरि इन समस्त एक हजार आठ कलशनिकी अपनी अपनी ऊंचाईका तीन तीन भाग करिए तहां नीचला त्रिभागविषै तो पवन है। अर मध्यका त्रिभागविषे जल अर पवन दोऊ है। अर उपरला त्रिभागविषे केवल जलही भऱ्या है। तहां शुक्लपक्षमें तो पातालनिका मध्यभागविषे पवन वधे है सो दिनप्रति जल ऊंचा वधै है। अर कृष्णपक्षमे पवन नीचे बैंठे है ताते जल दिनप्रति घटि है। ऐसे लवणसमुद्रका वर्णन है।

वहुरि ए पाताल कलश लवणसमुद्रहीमे है। अन्य समस्तसमुद्रनिमें नही है। अर समभूमिसे लवणसमुद्रकाही जल उंचा है अन्य समुद्रनिका जल समभूमिते उंचा नही है वरावरी है। वहुरि अन्य समस्तसमुद्र एक हजार योजनके उंडे दोऊ तटनिते समान उंडाई है। वहुरि लवणसमुद्रका जल लवणसमान क्षाररसमय है। अर कालोदधि अर पुष्कर अर अंतका स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रनिका जल है सो जलके स्वादरूपही है। अर चौथा वारुणीवरका जल

मदिराका रसरूप है। पांचमा क्षीरवरसमुद्र दुग्धके स्वादरूप है। अर छठा घृतवार घृतके स्वादरूप है। ऐसे सात समुद्र तो भिन्न स्वादरूप कहे। अर इनतैं अन्य असंख्यात समुद्रहै तिनके जल इक्षुरसके समान स्वाद है। वहुरि कच्छमच्छादिक जलचर जीव है ते लवणसमुद्र अर कालोदधिसमुद्र अर स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रनिमेही है। अन्य असंख्यात समूद्रनिमे नही है। अर समस्तसमुद्र हजार योजनप्रमाण समान ऊंडे है। अव आगे लवणोदधिके अनंतर धातकीखंड नाम दूसरा द्वीप है तहां संबंधी रचना कहनेकूं सूत्र कहे है।

द्विर्द्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

अर्थप्रकाशिका– धातकीखंडद्वीपविषैं भरतादिक्षेत्र दोयदोय हैं। धातकीखंड नाम दूसरा द्वीप है सो लवणसमुद्रतैं कडाकीज्यौं वेढीकरि च्यार योजन चौडा तिष्ठे है। जो जम्बूद्वीप-समान खंड करिए तो लवणसमुद्रका चोईस होय धातकीखंडका १४४, कालोदधिका ६७२, पुष्करका २८८०, ऐसे विस्तार जानना। ताकी दक्षिणउत्तरदिशामे दोय इष्वाकार पर्वत है। द्वीपप्रमाण च्यारि लाख योजन लंवे है। ते लवणोदधि कालोदधिकी वेदीकूं स्पर्शे है। ते इष्वाकार च्यारसे योजन ऊंचे है। सौ योजन ऊंडे हैं। एक हजार चोडे है। तिनकरि द्वीपमें दोय भाग भया। तहां पूर्वभागके मध्य विदेहविषैं अचल मेरु है। सो इन मेंरुगिरिनिकी प्रत्येक एक हजार योजन नीव अर चौरासी हजार योजन उच्चता है। तहां समभूमिविषैं तो भद्रसाल वन है। तातैं पांचसे योजन ऊपरि नंदनवन अर साढे पचपन हजार योजन ऊपरि सोमनसवन अर अठाईस हजार योजन ऊपरि पांडुक वन ऐसें च्यार वन है। ऐसें दोय मेरुपर्वत इनकी चूलिका चालीस योजन ऊंचीपनाके वर्णे है।

वहुरि इन दक्षिण इष्वाकारते लगाय दोय तरफ भरतक्षेत्र है। वहुरि हिमवान्पर्वत इत्यादि ऐरावतक्षेत्र है। ऐसे चोदह क्षेत्र वारह कुलाचल है। इनकी रचनाका दृष्टांत ऐसा है जैंसें पृथ्वी ऊपरि गाडीकी पह्या धरि देखिए तिस पह्याका आरसमान कुलाचल पर्वत तिष्ठै है। ते पर्वत दोउ तरफ सर्वत्र समान चोडे है। अभ्यंतर लवणोदधिके निकट अल्प चोडे है। ऐसें तहां क्षेत्र कुलाचल तिष्ठैं है। वहुरि तहां भरतक्षेत्रका मध्यविस्तार वारह हजार पाचसे इक्याशी योजन अर एके योजनका दोयसें वारह कला करिए तिनमे छत्तीस कला प्रमाण है। अर आगे हैमवत हरि विदेह पर्यंत क्षेत्रनिका चोगुणाचोगुणा विस्तार है। वहुरि उत्तरके क्षेत्र कुलाचल है ते दक्षिणकेनिके समान है। ऐसें धातकी खंड नामा दूसरा द्वीप है। ताके उत्तरके कुरुक्षेत्रविषैं परिवारके वृक्षनिसहित धातकीवृक्ष है ताकरि सोभित है।

पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

अर्थप्रकाशिका– पुष्करार्द्धद्वीपविषैंभी त्यौंही भरतादिक दोयदोय क्षेत्र तथा कुलाचल है। इहांहू दक्षिण उत्तर दिशाविषैं दोर इष्वाकारपर्वत है। एक एक हजार योजन चौडे है।

अर च्यारसें योजन ऊंचे है। अर आठ लाख योजन लंबे है। कालोदधि अर मानुषोत्तरकी वेदीतांई है तातै द्वीपमे दोय भाग भया तहां पूर्व तो मंदरमेरु है। अर पश्चिम विद्युन्माली मेरु है। दोऊ तरफ क्षेत्र कुलाचलनिकी रचना है। पुष्करार्द्धके भरतक्षेत्रका मध्यविस्तार त्रेपन हजार पांचसें बारह योजन अर एक योजनका दोयसें बारह भाग करिए तिनमें एकसो निव्याणवें भाग अधिक है। वहुरि इन च्यार मेरुगिरनिका प्रमाण समानरूप हैं। वहुरि कुलाचल तथा वक्षारगिरि तथा नदी है तिनकी चौडाई जंबुद्वीपतै दूनी धातकीद्वीपविषै है। अर धातकीद्वीपतै दूनी चौडाई लीए पुष्करार्द्ध विषै हैं। परंतु ए समस्त पर्वत उच्चताकरि जम्बूद्वीपके पर्वतनिकी ऊंचाईकरि समान है, अधिक उंच नाही। वहुरि धातकीसे पुष्करार्द्धमे क्षेत्रनिकी वाह्य चौडाई अभ्यंतर चौडाईते अधिक है। याहीते तहांके गजदन्त पर्वत है ते दोय अधिक लंबे है। अर दोय अल्प लंबे है। ऐसे प्रत्येक च्यारो मेरुसंबंधी जानने। धातकीद्वीप तथा पुष्करार्द्धविषै प्रत्येक चौदह क्षेत्र बारह कुलाचल दोय इष्वाकार सहित अठाईस स्थान रूप च्यारो तरफ रचना है। सो सर्वस्थाननिके चौडाईका अंक जोडी द्वीपकी परिधि जानिजाय है। वहुरि इस पुष्करार्द्धमें उत्तर कुरुक्षेत्र विषे परिवारवृक्षनिसहित पुष्कर नामा वृक्ष है सो अपने परिवारके वृक्षनिकरि शोभित है। याहीतै पुष्करार्द्ध ऐसी सार्थक संज्ञा है। बहुरि पुष्क-रार्द्धद्वीपके बीचही बीचि वलयावृत्तिरूप चौफेर सुवर्णवर्ण मानुषोत्तर नामा पर्वत है सो सतरहसे इकईस योजन उंचा है। अर एक हजार वाईस योजन मूलविषै चौडा है। अर चारसे तेतीस योजन एक कोश याकी पृथ्वीविषै नीव हे। सातसे तेईस योजन याका मध्यविस्तार है। चारसे चोईस योजन याका ऊपरि विस्तार है। अर मनुष्यलोककी तरफ भींतिसमान सपाट सूधा है। अर वाहिरकी तरफ मूलतै उपरि उपरि क्रमहानिकरि अल्प चौडा है। सो याकी कृति अर्द्ध यवराशीके समान है। वहुरि पुष्करार्द्धकी चौदह नदी निकसनेकी पर्वतके नीचे गुफा है। इस पुष्करार्द्धके मध्यविषै मानुषोत्तर पर्वतका पतनकरि अर्द्धद्वीप वाह्य रह्या तातै पुष्करार्द्ध ऐसी संज्ञा कहिए है। जो क्षेत्र पर्वतादिकनिकी रचना है सो अर्द्धपुष्करद्वीपमेही है, समस्त पुष्कर-द्वीपमे नही है यातै सूत्र कहे है–

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

अर्थप्रकाशिका– मानुषोत्तर पर्वतके मांही अढाई द्वीपहीमे मनुष्य है। जंबूद्वीप धातकीद्वीप अर लवणोदधि समुद्र अर आधा पुष्करद्वीप पर्यंतही मनुष्य है। अढाईद्वीप वारै ऋद्धिधारी तथा विद्याधरनिका गमन नही है। उपपादसमुद्घात वा मारणांतिकसमुद्घात विना अन्यका गमन नही है। वहुरि ऐसेही द्वीपतैं समुद्र दूना समुद्रतै द्वीप दूना ऐसे दूणां दूणां विस्तार रूप होतैंही अष्टमा नंदीश्वर नामा द्वीप है। ताकी चौडाई एकसो तरेसठि कोडि चौरासी लाख योजन प्रमाण है। अर दोय हजार वहतरि कोडि तेतीस लाख चोपन हजार एकसो निवे योजन अर एक कोशतै कुछ अधिक इस द्वीपकी परिधिका प्रमाण है।

इस द्वीपका अतिमध्यभागविषै च्यारै दिशानिविषैं च्यार अंजनगिरीनाम पर्वत है। अंजनवर्ण श्याम है। सो एक हजार योजन तिनकी भूमिविषै नीव हैं। अर समभूमितै चौरासी हजार योजन उंचे है। अर तिनका मूलमें मध्यमे अर अग्रभागमे समानविस्तार लीएं चौरासी हजार योजनही उच्चता के समान चौडे हैं। ढोल के आकार है। तिनकी च्यारों दिशानिमे एक लक्ष योजन क्षेत्र छांडि एक एक अंजनगिरिकी च्यार दिशामे च्यार वावडी है। ते एक लक्ष योजन लंबी अर चौडी अर हजार योजन ऊंडी चोकोर है। ऐसे च्यार अंजनगिरि संबंधी सोलह बावडी है। इनि वावडीके च्योगिरद चार वन है। अशोकवन, सप्तपर्णवन, चंपकवन, आम्रवन, ते च्यारो वन वावडीसमान एक लक्ष योजन लंबे है। अर पचास हजार योजन चौडे है। बहुरि तिन वावडीनिके मध्यविषै एक एक दधिमुख नाम पर्वत है। ते हजार योजन भूमिमे नींवसहित है। अर दश हजार योजन ऊंचा तथा मूलमें मध्यमें ऊपरि समान विस्तार लिए दश हजार योजनका चौडा है। गोल है ढोलके आकार है। सुवर्णमय है। तिनके उपरिम भाग श्वेत रूपामय है। याहीतैं इनिकूं दधिमुख संज्ञाकरि कहिए है।

ऐसे सोलह दधिमुख पर्वत हैं। वहुरि इन एकएक वावडीकी च्यारों कोणनिकै समीप च्यारि रतिकर पर्वत है। ते एक हजार ऊंचे अर मूलमें मध्यमे उपरिम भागविषै सर्वत्र एक हजार योजनके विस्तार चौडे है। अढाईसें यौजनकी पृथ्वीविषै नीव है। ढोलके आकार है। सुवर्णमणिरूप है। ऐसे चोसठी रतिकर हैं। तिनमे अभ्यंतर कोणमे तिष्ठतै बत्तीस रतिकर पर्वतविषै देवनिके क्रीडा करनेके स्थान है। अर वाह्य दोयदोय कोणनिमें तिष्ठते तिनि उपरि अरिहंत भगवानके आयतन है। ऐसेही च्यार दिशानिके च्यार अंजनगिरि अर सोलह दधिमुख अर बत्तीस रतिकरनिके उपरि मध्यभागविषै जिनमंदिर है। ऐसे नंदीश्वरद्वीपमे बावन जिनमंदिर हैं।

आगे नवमां अरुणवर अर दशमा अरुणभास द्वीपसमुद्र है। वहुरि ग्यारमा कुंडलवर-द्वीप है। ताका मध्यविषै कुंडलगिरि पर्वत चौफेर द्वीपका अर्द्धभागकूं वेढे वलयाकार सुवर्णवर्ण पचहतरी हजार योजन ऊंचा है। मूलमें दश हजार दोयसे बीस योंजन चौडा है। ऊपरि च्यार हजार दोयसे चालीस योजन चौडा है, ताकी च्यारों दिशामें च्यार जिनमंदिर है, कुंडलवर-द्वीपको वेढे कुंडलवर समुद्र है। वहुरि बारमा संखवर नामा द्वीपसमुद्र है। आगे तेरमा रुचकवर नाम द्वीप है। ताका मध्यविषै वलयाकार चौगिरद रुचक नामा पर्वत है सो सुवर्णवर्ण है चोरासी हजार योजन ऊंचा है। चोरासी हजार योजनही नीचे ऊपर मध्यमें बराबर समान चौडा है। तिस गिरिके ऊपरि च्यारों दिशानिमे च्यार जिनमंदिर है। बहुरि इस पर्वत ऊपरि अनेक कूट है। तिनमे अनेक देवीनिका निवास हैं। ते देवी तीर्थंकरप्रभूनको गर्भजन्मकल्याणकमे माताकी अनेक प्रकारकरि सेवा करे है। आगे कहे जे मानुषोत्तरके अभ्यंतर मनुष्य ते दोय प्रकार है यातै सूत्र कहे हैं–

आर्या म्लेंछाच्च ॥३६॥

अर्थप्रकाशिका— आर्य अर म्लेंच्छ इस भेदतैं दोय प्रकार मनुष्य है। ते आर्य दोय प्रकार है। ऋद्धिप्राप्त आर्य अनृद्धिप्राप्त आर्य। तिनमे ऋद्धिप्राप्त आर्य तो जिनकें अष्टप्रकार ऋद्धिनिमैंते कोऊ ऋद्धि ऊपजी ते ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। अर जिनको ऋद्धि नहीं उपजी ते अनुद्धिप्राप्त आर्य है।

तिनमें अनृद्धिप्राप्त आर्यके पंच भेद है। १ क्षेत्रआर्य २ जातिआर्य ३ कर्मआर्य ४ चारित्रआर्य ५ दर्शनआर्य। तहां काशी कोसलादि आर्यदशनिविषै उपजे ते क्षेत्रआर्य है। इक्ष्वाकुंवश भोजवंशादिकविषै उपजे ते जातिआर्य है। वहुरि कर्मआर्य तीन प्रकार है। सावद्यकर्म आर्य। अल्पसावद्यकर्म आर्य। असावद्यकर्म आर्य तहां सावद्यकर्मार्य छह प्रकार है। असि, मसि, कृषि, विद्या. शिल्प, वाणिज्य, जे खड्गादिक आयुध धारणकरि जीविका करे सो असिकर्म आर्य है। वहुरि द्रव्यका आवंदि अर खरच लिखनेमें निपुण ते मसिकर्म आर्य हैं। आलेख्य गणितादिक वहत्तरि कलामे प्रवीण ते विद्याकर्मार्य है। वहुरि धोबी, नाई, कुंभार, लुहार, सुनार, इत्यादिक शिल्पकर्म आर्य है। वहुरि चदनादि गंध घृतादि रस धान्य कर्पासव-स्त्रादिक मुक्ताफल मणिक्यादिक नानाप्रकार द्रव्यनिके संग्रह करनेवाले वहुत प्रकार वाणिकर्म आर्य है। ए छहू अविरतमें समर्थपणातै सावद्यकर्म आर्य हैं। अर विरताविरतपरिणत जे श्रावक ते अल्पसावद्य कर्मार्य है। अर सकलसंयमी जे साधु ते असावद्यकर्म आर्य हैं।

वहुरि चारित्र आर्य दोय प्रकार है। अभिगतचारित्रार्य। अनभिगतचारित्रार्य। विना-उपदेशही चारित्रमोहका उपशम क्षय क्षयोपशमतैं आत्माकी उज्वलतातैंही चारित्रपरिमाणकूं ग्रहण करे ऐसे उपशांतकषायगुणस्थान धारनेवाले तथा क्षीणकषायी ते अभिगनचारित्रार्य है। वहुरि अंतरंगमै चारित्रमोहके क्षयोपशमतैं वाह्यके उपदेशके निमित्तते संयमरूप परिणाम धारे सो तो अनभिगत चारित्रार्य है। वहुरि दर्शनआर्य दशप्रकार है। तिनका आज्ञामार्गादि दश भेद हैं। ऐसे तो अनृद्धिप्राप्तार्य पंचप्रकार कह्या

अव ऋद्धिप्राप्तार्य अष्ट प्रकार है। वुद्धि क्रिया विक्रिया तप बल औषध रस क्षेत्र ए भेद है। तिनमे वुद्धिऋद्धि अष्टादश प्रकार है। केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान, वीजवुद्धि, कौष्ठवुद्धि, पदानुसारिणी, संभिन्नश्रोतृत्व दूरादास्वादनसमर्थता, दूरदर्शनता, दूर-स्पर्शनसमर्थता, दूरघ्राणसमर्थता, दूरश्रोतृसमर्थता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टांगनिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रमणत्व, प्रत्येकबुद्धता, वादित्व, तहां केवलज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान इनिका स्वरूप तो पहिले अध्यायविषै वर्णन है तहांते जानना। वहुरि जैसे संवारे क्षेत्रविषै कालादिककी सहायतै बोया एक वीज अनेक कोटी बीजका देनेवाला होत है। तैसे नोइंद्रियावरण अर वीर्या-तरायके क्षमोपशमकी अधिक्यता होते एक बीजपदकूं ग्रहणकरनेतै अनेकपद अनेक अर्थका

जानना सो बीजबुद्धिऋद्धि हैं। वहुरि जैसे कोष्ठाध्यक्षकरि कोष्ठमे स्थापे न्यारेन्यारे प्रचुरधान्य बीजादिक ते वहुतकालतक जितनेके तितने धरे रहे हैं घटे वढें नही परस्पर मिले नहीं जिस कालमे संभाले तिसकालमे तैसेही पावे तैसेही परके उपदेशकरि ग्रहण कीए जे वहुत शब्द अर्थ बीज तिनका बुद्धिमे जैसेके तैसे अवस्थान रहे। एक अक्षर तया अर्थ घटै वधै नहीं आगे पाछै अक्षर होय नहीं सो कोष्ठबुद्धिऋद्धि हैं।

वहुरि जो ग्रंथकी आदिका वा मध्यका वा अंतका एकपदपरतैं श्रवणकरि समस्तग्रंथ वा अर्थका निश्चय करना सो पदानुसारित्वर्द्धि है।६। वहुरि चक्रवर्त्तीका कटक वारह योजन लंवा नव योजन चौडा पडे है। तिस विषै गज घोडा उंट बल धनुष्यादिकनिके नाना-प्रकारके अक्षर अनक्षरात्मक एके काल जानै युगपत् उपजें शब्दनिकूं तपोविशेषकें बलका लाभतैं सर्व जीवके प्रदेशविषै श्रोत्रेंद्रियावरणकर्मका क्षयोपशम होय तातैं भिन्नभिन्न श्रवण करे सो संभिन्न श्रोतृत्व नाम ऋद्धि हैं।७। वहुरि तपके विशेषकरि प्रकट भया जो असाधारण रसनेंद्रिय श्रुतज्ञानावरणवीर्यांतरायके क्षयोपशम अंगोपांगनामकर्मका जाके उदय ऐसा मुनिके रसनाका विषय नव योजनप्रमाण ताके वाह्यतैं रसका स्वादके जाननेका सामर्थ्य सो दूरा-स्वादनसामर्थ्य नाम ऋद्धि है। ऐसेही स्पर्शनेंद्रिय तथा घ्राणेंद्रिय चक्षुरिंद्रिय श्रोत्रेंद्रिय इनके विषयके क्षेत्रतैं वाह्य वहुत क्षेत्रके गंध स्पर्श शब्दके जाननेका सामर्थ्य होय सो ऋद्धि है तातैं पांच इंद्रियसंबंधी पांच ऋध्दिए भई।१२। वहुरि महारोहिणि आदिक विद्यादेवता तीनवार आवे अर प्रत्येक अपनां अपनां स्वरूप सामर्थ्यं प्रकट करे ऐसी वेगवान विद्यादेवतानिका लोभादिककरि जिनका चारित्र चलायमान न होय ते दशपूर्वरूप दुस्तरसमुद्रके पार प्राप्त होय तिनके दशपूर्वित्व-ऋध्दि है। १३। अर संपूर्ण श्रुतकेवलीपणो सो चतुर्द्दशपूर्वित्वर्ध्दि है।

वहुरि अंतरिक्ष भौम अंग स्वर व्यंजन लक्षण छिन्न स्वप्न नाम धारक अष्टांगनिमित्त-ज्ञान है। वहुरि सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्रनिका उदय अस्तादिक देखि अतीत अनागत फलका कहना सो अंतरिक्ष नामा निमित्तज्ञान है। वहुरि पृथ्वीकी कठोरता कोमलता सच्चिकणता रूक्षतादिक देखि विचार करवेकरि वा पूर्वादिकदिशामे सूत्र पडते देखिकरि हानिवृद्धि जयपराजय इत्यादिक जानना। तथा भूमिमे तिष्ठते सुवंण रूप्यादिकका प्रकट जानना सो भौम नामा निमित्तज्ञान है। वहुरि अंग उपंगादिकके दर्शन स्पर्शनादिक करि त्रिकालभावी सुखदुःखादिकका जानना सो अंग नाम निमित्तज्ञान है। अर अक्षर अनक्षररूप तथा शुभ अशुभके श्रवणकरि इष्टानिष्ट-फलका प्रकट करना सो स्वर नामा निमित्तज्ञान हैं। वहुरि शिर मुख ग्रीवादिक विषे तिल मुसल सण इत्यादि लक्षण के देखनेकरि त्रिकालसंबंधी हिताहितका जानना सो व्यंजन नामा निमित्तज्ञान है। वहुरि श्रीवृक्ष स्वस्तिक भृंगार कलश आदि चिन्ह शरीरविषे देखनेते तीन कालके विषे पुरूषके स्थान मान ऐश्वर्यादिक विशेषकूं जाने सो लक्षण नाम निमित्तज्ञान है। वहुरि वस्त्र शस्त्र छत्र उपानत् अशन शयनादिकविषे देव मनुष्य राक्षसादिककरि तथा शस्त्रकं-

टकमुखी आदिककरि छेदे गए होय तिनके देखनेते त्रिकाल संबंधी लाभ अलाभ सुख दुःखका जानना सो छिन्ननिमित्तज्ञान है। वहुरि वात पित्त श्लेष्म दोषकरि रहित पुरुषके पश्चिमरात्रिविषैं चंद्रमा सूर्य पृथ्वी पर्वत समुद्रका मुखमे प्रवेशादि करे सो तो शुभस्वप्न है। अर घृत तैलकरि अपना देहके लिप्तता तथा खर उष्ट ऊपरि चढि दक्षिणदिशामे गमन इत्यादिक अशुभस्वप्न तिनका दर्शनते आगामी कालमे जीवन मरण सुख दुःखादिकका प्रकट करनेवाला स्वप्न नामा निमित्तज्ञान है। ए अष्टप्रकार निमित्तज्ञानका ज्ञाता होय सो अष्टांगनिमित्तज्ञ नामा ऋध्दि है। १५।

वहुरि कोऊ अतिसूक्ष्म अर्थका स्वरूपका विचार जैसा होय तिसमें चौदह पूर्वके धारिही निरूपण करि सके अन्य नहीं करि सके ऐसे सूक्ष्म अर्थका जो संदेहरहित निरूपण करै सो प्रकृष्टश्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमते प्रकट भई जो प्रज्ञाशक्ति तातैं प्रज्ञाश्रमणत्व ऋध्दिका धारक है। १६। वहुरि परके उपदेशविनाही अपने शक्तिके विशेषतैं ज्ञानसंयमके विधानविषै निपुणता होय सो प्रत्येकबुध्दता है।१७।

वहुरि इंद्रभी आय वाद करे तो ताकूं निरुत्तर करदे अर आप नहीं रुकै वादिकें छिद्रकूं जाणि ले सो वादित्वर्ध्दि होय है। ऐसे अठारह प्रकार बुध्दिऋध्दि है। वहुरि विक्रियर्ध्दि दोय प्रकार हैं। एक आकाशगामित्व, एक चारण, तहां चारणर्ध्दि अनेक प्रकार है। तह जलऊपरि भूमिकीज्यौं चरणनिका उठावना मेलना इत्यादिककरि जलकायकें जीवनिकैं वाधा नही उपजै सो जलचारण है। वहुरि भूमितैं च्यार अंगुल ऊंचे आकाशविषैं जंघा उठाय शीघ्रतातैं वहुत सैकडा योजन गमन करनेमे समर्थ सो जंघाचारण है। ऐसेही तंतुचारण पुष्पचारण पत्रचारण श्रेणीचारण अग्निशिखाचारण इत्यादिक चारणार्ध्दि है। ते पुष्पफलादिक ऊपरि गमन करतेंहु पुष्प फल अंकुर पत्र अग्नि इत्यादिकनिके जीवनकैं वाधा नही होय ते समस्त चारणार्ध्दि हैं। वहुरि पर्यंकासन बैठा कायोत्सर्गकरि खडेते पगके उठावने मेलने विना आकाशमें गमन करनेमे कुशल ते आकाशगामित्वऋध्दिके धारक है।

वहुरि विक्रियर्ध्दि अनेक प्रकार है। अणिमा महिमा लघिमा गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व अप्रतिघात अंतर्धान कामरूपित्व इत्यादिक विक्रियर्धि हैं। तहां अणुमात्र शरीर करना सो अणिमा ऋध्दि है। तहां कमलके छिद्रविषै प्रवेशकरि तहां बैठी चक्रवर्तिकी विभूति रचे ऐसा सामर्थ्यं है।१। वहुरि मेरुतैंभी महान शरीर करनेका सामर्थ्य सो महिमा ऋध्दि है।२। वहुरि पवनतैंहू लघुतर शरीर करनेका सामर्थ्य सो लघिमा ऋध्दि है।३। वज्रतेहू अतिभारी शरीर करनेका सामर्थ्यं सो गरिमा ऋध्दि है। ४। वहुरि भूमिमें तिष्ठीकरि अंगुलीके अग्रकरी मेरुका शिखर तथा सूर्यविमानादिक स्पर्शनेका सामर्थ्य सो प्राप्ति ऋध्दि है।५। वहुरि जलविषै भूमीकीज्यौं गमनका सामर्थ्य अर भूमिविषै जलकीज्यों उन्मज्जन निमज्जन करनेका सामर्थ्य सों प्राकाम्य ऋध्दि है।६। वहुरि त्रिलोकका प्रभुपणा रचनेका सामर्थ्य सो ईशित्व ऋध्दि है।

–७, बहुरि देव दानव मनुष्यादिकनिके वशीकरण करनेका सामर्थ्य सो वशित्व ऋध्दि हैं–८ बहुरि पर्वतादिकनिके मध्य आकाशकीज्यौं गमनागमन करनेका सामर्थ्य सो अप्रतिघात नामा ऋध्दि है–९, अदृश्य होनेकी सामर्थ्य सो अंतर्धान ऋध्दि है–१०, वहुरि युगपत अनेंक आकार रूप करनेका सामर्थ्य सो कामरूपित्व ऋध्दि है। ऐसे अनेक प्रकार विक्रियर्द्धि है।

बहुरि सप्त प्रकार शुध्दि है। तहां जो एक उपवास वा वेला तेला पंचोंपवास पक्षोपवासादिकनिमैते कोऊ योगका आरंभ भया तो मरणपर्यंत उतना उपवासनतै हीन पारणा नही करै। वहुरि कोऊ कारणतै अधिक उपवास होजाय तो वातें मरणपर्यंत कमती उपवासकरि पारणा नही करे। ऐसा सामर्थ्य प्रकट होना सो उग्रतत ऋध्दि है–१, वहुरि महान उपवासादि करतैहू मन वचन कायका वल वधताही रहै। दुर्गंधरहित मुख रहैं। अर कमलादिककी सुगंधवत् सुगंध निस्वास नीसरै। अर शरीरकी महान दीप्ति होजाय सो दीप्तितप ऋध्दि है–२ वहुरि तप्तायमान लोहके कडाहमें पडा जलके कणकीज्यौं आहार सूकी जाय मल रुधिरादिक रूप नाही परिणमे ऐसे आहार करतैहू जिनकै निहार नही होय सो तप्तऋध्दि हैं–३, वहूरि सिंहनिक्रीडितादि महानतपके करनेमें तत्पर सो महातप ऋध्दि है–४, बहुरि वात पित्त श्लेष्म सन्निपाततैं उपज्या ज्वर कास स्वास नेत्रशूल कोढ प्रमेहादिक अनेक प्रकारके रोग जिनकरि संतापित है देह जिनका तोभी अनशन कायक्लेशादिक तपतैं नही छूटते अर भयानक स्मशान पर्वतके शिखर गुफा दराडा कंदरा शून्यग्रामादिकविषैं दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाचनिके प्रवर्तै वेतालरूप विकार होतैहू अर कठोर स्थालनिनीके रुदन तथा निरंतर सिंह व्याघ्रादिक दुष्ट जीवनिके भयानक शब्द जहां निरंतर प्रवर्त्तै ऐसे भयंकर स्थाननिविषै निर्भय भए वसे सो घोरतप ऋद्धिका प्रभाव है–५, वहुरि पूर्वें कहे रोग तिनकरि युक्त हुए अर अतिभयंकर स्थानमें वसतेहू तपके योग वधावनेमैं तत्पर सो घोरपराक्रम ऋद्धिकै धारक है।६। वहुरि वहुत कालतें ब्रह्मचर्यके धारक मुनिनकै अतिशय रूप चारित्रमोहनीय कर्मका क्षयोपशमतैं नष्ट भए है खोटे स्वप्न जिनके ते घोरब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक है।७। ऐसे सप्त प्रकार तपशुद्धि है। इनिके स्मरणमात्रतै कोटच विघ्न विनाशनैं प्राप्त होय अप्रमाण शक्तिके धारक होय हैं।

वहुरि पंचमी मन वचन कायके भेदकरि वलर्द्धि तीन प्रकार है। वहुरि मनःश्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमका प्रकर्ष होतैं अंतर्मुहूर्त्तमें समस्त श्रुतका अर्थका चिंतवनका सामर्थ्य जिनकै होय ते मनोवलर्द्धिके धारक है। वहुरि मनइंद्रियावरण अर जिव्हाश्रुतावरण वीर्यांतरायके क्षयोशमके अतिशय होतैं अंतर्मुहूर्त्तमें सकलश्रुतके उच्चारण करनेंका सामर्थ्य होय वा निरंतर उच्च स्वरतैं उच्चारण करतेहूं स्वेद नहीं उपजै अर कंठ स्वरभंग नही होय सो वचनवल ऋद्धि है।२। बहुरि वीर्यांतरायका क्षयोपशमतै असाधारण कायका बल प्रकट होतै मासिक चातुर्मासिक वार्षिक प्रतिमायोग धारतैंहू शरीर खेदरूप नहीं होय सो कायवल ऋद्धि है।३। ऐसे तीन प्रकार वलर्द्धि कही।

वहुरि आगे अष्टप्रकार औषधर्द्धि कहे हैं। आमर्ष, क्ष्वेल, जल, मल, विट्, सर्वौषधि, अस्याविष, दृष्टचविष, तहां असाध्यभी रोग होय तो जिनके हस्तचरणादिकके स्पर्श होतेंही सर्व रोग जाय सो आमर्षौषधि ऋद्धि है।१। वहुरि जिनका थूंक लाल कफादिकनिके स्पर्शतेंही रोग मिटिजाय सो क्ष्वेलौषधिऋद्धि है।२। वहुरि जिनके देहका पसेवरजके स्पर्शतै रोग मिटिजाय सो जल्लोषधिऋद्धि है।३। वहुरि जिनके कर्ण दंत नासिका नेत्रनिका मलही समस्त रोगनके निराकरण करनेकूं समर्थ होय सो मलौषधिऋद्धि है।४। वहुरि जिनका विट जो मल तथा मूत्रही औषधरूप होय सो विडौषधिऋद्धि हैं।५। वहुरि जिनका अंग उपांग नख दंत केशादिकही स्पर्श भए समस्त रोगनकूं हरे सो सर्वौषधिऋद्धि है।६। वहुरि तीव्र जहरका मिल्याहुवा आहार जिनके मुखमें प्राप्तभया विषरहित होजाय तथा जिनके वचनतैंही विषकरि व्याप्त जीवनिका विष मिटिजाय ते आस्याविषर्द्धिके धारक है।७। बहुरि जिनके देखनेथकी महान् विषधारी जीवनिका विष जाता रहे। तथा काहूके जहरकी लहरी चढी होय तिनका विष उतरीजाय सो दृष्टचविषर्द्धिके धारक है।८। ऐसे अष्टप्रकार औषधर्द्धि कह्या।

वहुरि सप्तमी रसर्द्धि है सो छह प्रकार है। जो प्रकृष्ट तपके बलका धारक योगी कदाचित् क्रोधि होयकरि कहै जो तूं मरिजा तो तत्काल विष चढिकरि मरिजाय सो आस्यविषर्द्धि है।१। वहुरि कदाचित् क्रोधरूप दृष्टिकरि देखै तो विष चढिकरि मरिजाय सो दृष्टिविषर्द्धि है।२। ऐसी सामर्थ्य तोऊ वीतरागी मुनी क्रोधदिककूं नहीं प्राप्त होय है। वहुरि जिनका हस्तमें प्राप्तभया विरसहू भोजन क्षीररसरूप होय परिणमनमै तथा जिनका वजन दुर्बलनकौ क्षीरकीज्यौं पुष्ट करैं क्षीररसर्द्धि है।३। तैसेंहीं मिष्टरसरूप परिणमनेतै मधुस्रावी है।४। तैसेही घृतरसरूप परिणमनेतै घृतस्रावी है।५। तैसेही अमृतरसरूप परिणमनेते अमृतास्रावी ऋद्धि हैं।६।

वहुरि क्षेत्रर्द्धि दोय प्रकार है। एक अक्षीणमहानसर्द्धि अर एक अक्षीणालयर्द्धि। जिनको अक्षीणमहानस ऋद्धि प्राप्तभई है ऐसें मुनीनिकरी भक्षणकिया हुवा अन्नमेंते उस दिन चक्रवर्त्तीकी सेनाभी भक्षण करै तोहूं वह अन्न क्षीण नही होय सो अक्षीणमहानसर्द्धि है।१। जिस मंदिरमे मुनि वास करते है वह मंदीर छोटा होय तो भी उसमें सर्वदेव सर्वमनुष्य सर्वतिर्यंचहू उस कालमे परस्पर वाधारहित तिष्ठै है सो अक्षीणालयर्द्धि है.। ऐसे आर्यनिके भेद कहे।

वहुरि म्लेंछ दोय प्रकार है। अंतर्द्वीपज।१। अर कर्मभूमिज।२। तहां अंतर्द्वीपज है ते लवणसमुद्रकी आठ दिशा अष्टदिशानकै बीच अष्ट अंतरालमे सोलह तो ए है। अर हिमवान् शिखरी कुलाचल अर दोय विजयार्द्ध इन च्यार पर्वतनिके दोऊ ओरके अष्ट अंतके विषै आठ ऐसे चोईस अंतर्द्वीप है। ते जंबूद्वीपकी वेदीतैं च्यारो दिशानिमै तिर्यक् पांचसै योजन समुद्रमें जाय तहां सौ योजनके विस्तार लीए च्यार दिशाके द्वीप है। अर च्यार विदिशाके वेदीतै

पांचसे योजन परै द्वीप है ते पचावन योजनके विस्तार है। अर आठ दिशानके अंतरालके द्वीप है ते लवणसमुद्रकी वेदीतैं पांचसे पचास योजन परै जाइए तहां पचास योजनकं विस्तार है। अर पर्वतके अंतके अष्ट द्वीप है ते लवणसमुद्रकी वेदीतै छसै योजन दूर है। अर पचीस योजनके विस्तार है। तिनमे पूर्वदिशाके द्वीपमें एक जंघावाले एकटंगे ऊपजै है। पश्चिम दिशाके द्वीपमे पूछवाले मनुष्य उपजै हैं। उत्तर दिशाके द्वीपविषै वचनरहित गूंगा उपजें है। दक्षिणदिशाविषै सिंगवाले मनुष्य उपजै है। च्यार विदिशाके द्वीपनिविषै क्रमतें सूसासमान कर्णवाले अर शाकल-समान कर्णवाले अर कर्णप्रावरण कहिए एककानकूं विछायले एक कानकूं ओढी ले ऐसें अर लंवकर्ण ऐसे ऊपजैं है।

वहुरि अष्ट अंतर्दिशानिमें घोडाकासा मुख सिंहकासा मुख भैसाकासा मुख सूरकासा मुख व्याघ्रसारिसा मुख घुगूसारिसा मुख वानरसारिसा मुख ऐसे मनृष्य उपजै है। वहुरि शिखरीपर्वतके अंतकै सन्मुख द्वीपनमें मेघसारिसे विजुलीसारिसे है। अर हिमवानपर्वतके दोऊ अंतविषै मत्स्यमुख कालमुख मनुष्य है। वहुरि विजयार्द्धपर्वतके दोऊ अंतविषै हस्तीसमान मुख अर दर्पण समान मुखवाले मनुष्य है। बहुरि दक्षिणविजयार्द्धके उभय अंतरविषै गौसमान मुख अर मीटासमान मुखके धारक है। वहुरि इनमें एक जंघावाले इकटंगे हैं ते मृत्तिका जो मांटी ताका आहार करे है। अर गुफानमें वसैंहै। अर अन्य है ते वृक्षनके फल फूलनका आहार करे है। अर वृक्षनिकैं नीचे बसें है। अर समस्त अंतर्द्वीपके मनुष्यनिका एक पल्यका आयु है। वहुरि ते चोवीस अंतर्द्वीप जलतैं एक योजन ऊंचे है। जैसे लवणसमुद्रमें अंतर्द्वीप अडतालीस है दोऊ तटसंबंधी तैसेंही कालोदधिसमुद्रमे अडतालीस जानना। ऐसे समस्त छिनवैं अंतर्द्वीपनिमें कुभोगभूमिया मनुष्य हैं। वहुरि कर्मभूमिके म्लेंछ शक यवन शवर पुलिंदादिक अनेक जाति है। वहुरि एकसो सत्तरि कर्मभूमिके क्षेत्र है तिनमै एकसो सत्तरी तो आर्यखंड है। अर आठसै पचास म्लेंछखंड हैं तिनके निवासी म्लेंछही है। अव कर्मभूमि कौन है इस प्रश्नतें सूत्र कहे है—

भरतैवरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

अर्थप्रकाशिका— पांच भरतक्षेत्र पांच ऐरावतक्षेत्र अर देवकुरु उत्तरकुरु विना पांच विदेहक्षेत्र इनिमैं कर्मभूमि है। जातैं पंचमेरुसंबंधी पंच भरत पंच ऐरावत अर पंच विदेह है। तिनमें विदेहके एक मेरुसंबंधी बत्तीस भेद है तातैं विदेहसहित एकसो साठि क्षेत्र है। ऐसें सव मिलि कर्मभूमिके एकसो सत्तरी क्षेत्र है। अर एक मेरुसंबंधी हिमवत् हरिक्षेत्र रम्यकक्षेत्र हैरण्यवतक्षेत्र अर देवकुरु उत्तरकुरु ऐसें छह भोगभूमि है। सब भोग-भूमि पंचमेरु संबंधी तीस हैं तिनमें दश जघन्य दश मध्यम दश उत्कृष्ट है। तिनमें दशप्रकारके कल्पवृक्षनिकरि दीए भोगभोगते सुखरूप तिष्ठे है। अब कोऊ पूछें जो कर्म-

भूमिके एकसो सत्तरी क्षेत्र कहे सो कर्मका आश्रय तो तीन लोकका क्षेत्र है इनिकूंही कर्मभूमिका क्षेत्र कैसे कह्या। ताकूं कहिए है। जो सप्तम नरक पहूंचनेका पापकर्म अर सर्वार्थसिद्धि जावनेका शुभकर्म इनक्षेत्रविषै ही उपार्जन होय है। तथा असि मषि कृषि शिल्प वाणिज्य पशुपालन ए छह कर्मभी इनि क्षेत्रनिविषैही है तथा देवपूजा गुरुउपासना स्वाध्याय संयम तप दान ए छह प्रकार प्रशस्तकर्म इनि क्षेत्रनिविषैही है। तातै इनकूं कर्मभूमि कहिए है। अब समस्तभूमिविषै मनुष्यनिकी स्थितिके जनावनेकूं सूत्र कहे हैं–

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्त्ते ॥३८॥

अर्थप्रकाशिका– मनुष्यनिकी उत्कृष्ट स्थिती तीन पल्यकी हैं जघन्य अंतर्मुहूर्त्तकी है। मध्यके अनेक भेद है। मुहूर्त्तका प्रमाण दोय घडीका है। अर दोय घडीके अभ्यंतर होय सो अंतर्मुहुर्त्त है। अव पल्यका कहां प्रमाण है तातै प्रकरण पाय प्रमाणकी विधका प्ररूपण करे है। तहां प्रमाण दोय प्रकार है। एक लौकिक दूजा अलौकिक। तहां लौकिक मान छह प्रकार है। मान, उन्मान, अवमान, गणितमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमान, ऐसे छह प्रकार है। तिनका दृष्टांत कहिए है। पाईमाणि इत्यादिकरि अन्नादिकका प्रमाण करिए सो पाईमाणीकूं मान कहिए। वहुरि तुला जो कांटा ताखडी इत्यादिककरि प्रमाण करिए ताकूं उन्मान कहिए। बहुरि हस्तकी चलू इत्यादिकरि प्रमाण करिए सो अवमान है। वहुरि एक दोय तीन च्यार इत्यादिकरि प्रमाण करिए सो गणितमान है। वहुरि गुंज रती मासा तोला इनिकूं प्रतिमान कहिए। वहुरि तुरंग घोडादिकनिका मोल सो तत्प्रतिमान कहिए। ऐसे लौकिक मान छह प्रकार कह्या। वहुरि लौकिकमानकूं अन्य प्रकारहूं कहे है। तिनमे गज हस्तमापा इत्यादिकनिकूं करि मापा अवमान है।

वहुरि मल्लनका शरीरका वल वा तिर्यंचनिका बलका हीन अधिक प्रमाण कहना सो प्रतिमान है। तथा मणिमाणिक्यादिकनिकी दीप्तिकरि मोलका प्रमाण करिए जो इस मणिकी इती दीप्ति है वा इस रत्नकी दीप्ति जितने क्षेत्र ऊपरि व्यापै तितना प्रमाण सुवर्णका पुंज याका मोल है। तथा इस रत्नके स्पामीके जितना धनकरि संतोष आजाय तितनाही याका मोल है। ऐसेही इस घोडेकी ऊंचाई जितनी तितना प्रमाण सूवर्णका ढेर पुंज देना याको यो मोल है। इत्यादिक औरहूं तत्प्रतिमान जानना। वहुरि लोकोत्तर मान द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदतै च्यार प्रकार है। तहां जघन्य द्रव्यका प्रमाण परमाणु है अर उत्कृष्ट समस्तद्रव्यका समुदाय है। अर क्षेत्रमानविषै जघन्य तो आकाशका एक प्रदेश है उत्कृष्ट समस्त आकाश है। अर काल-प्रमाणविषै जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन कालके समयनिका समूह है। पुद्गलका परमाणू मंदगतिकरि एक आकाशके प्रदेशतै दूजे प्रदेशमें जाय जहां जेता वार लागै सो ताकूं समय कहिए है। सो कालका अतिसूक्ष्मताको धरैं है। वहुरि भावनाविषै जघन्य सूक्ष्मनिगोदिया लब्धिअपर्याप्तकका अक्षरके अनंतवें भाग पर्याय नाम ज्ञान है। अर उत्कृष्ट जिनेन्द्रभगवानका

केवलज्ञान है अर जघन्य अर उत्कृष्टके मध्य बीचके जितने भेद है तितने मध्यममानके है।

बहुरि द्रव्यमान दोय प्रकार है। एक संख्यामान अर दूजा उपमामान। तिनमे संख्यामान के तीन भेद है। संख्यात, असंख्यात, अनंत। तिनमे संख्यात तो एक प्रकार अर असंख्यात तीन प्रकार है। १ परितासंख्यात, २ युक्तासंख्यात, ३ असंख्यातासंख्यांत। वहुरि अनंतहू तीन प्रकार हैं। १ परीतानंत, २ युक्तानंत, ३ अनंतानंत। ऐसे सप्त भये। इनके प्रत्येत जघन्य मध्य उत्कृष्ट भेद करिये तव इकईस भेद संख्याप्रमाणके भये। तहां संख्यातका प्रमाण जाननेके अर्थि जम्बूद्वीपप्रमाण लक्ष योजन चौडे लंबे अर गोल अर एक हजार योजन ऊंडे ऐसें च्यार कुंड कल्पना करिये। तिनके नाम ऐसे है। १ अनवस्थाकुंड, २ शलाकाकुंड, ३ प्रतिशलाकाकुंड ४ महाशलाकाकुंड। तिनमे अनवस्थाकुंडकूं सिरसूंनिकरि भरीये अर उपरि शिखा चढाईए। तिस शिखासहित कुंडमे केती सरसूं मावै सो प्रमाण कहे है। लक्षयोजन प्रमाण कुंडका जो एक योजन ऊंडा एक योजन चौडा एक योजन लंवा चौकोर खंड करिए तो ७५००००००००००० सात लाख पचास हजार कोटी खंड होय। सो इस लक्ष योजनके कुंडमे सरसुं भरिये तो केती मावै सो कहे है। इस एक योजनके पांचसे व्यवहार योजन होय है। अर एक योजनके चार कोश होय है। एक कोशके दोय हजार धनुष्य होय है। एक धनुष्यके च्यार हजार हात होय है। एक हस्तके चोईस अंगुल होय। एक अंगुलके आठ यव होय एक यवकी आठ चौकोर सरस्यूं होय। ए समस्त राशि धनरूप है सो इनका तीन तीन जायगां मांडि परस्पर गुणाकार करना। जैसे जो क्षेत्र च्यार कोंश लंवा च्यार कोश चोडा च्यार कोश उंचा होय ताका एक कोश चोडा एक कोश लंवा एक कोश ऊंचा खंड करिये तो च्यारके अक्षरको तीन जायगां मांडि परस्पर गुणिये तो चोसठी खंड होय। ऐसे तीन तीन जायगां मांडि परस्पर गुणाकार कीये चौकोर सिरसूं होय तिस नव चौकोर सरस्यूंकी गोल सोलह सिरसूं होय है।

ऐसे करतै जम्बूद्वीपसमान जो कुंड ताकौ विषै इतने अंकप्रमाण सिरसूं मावे है। १९७९१२०९२९९९६८०००००००००००००००००००००००००००००००००। बहुरि इस कुंड उपरि जो शिखा जाय है सो परधिके ग्यारवे भाग प्रमाण ऊंची जाय है। तिस शिखाकी सिरसूंका प्रमाण ऐसा जानना। १७९९२००७४५४५१६३२३६३६३५३५३५३५३५३५३५३५३५३५३५३६ $\frac{४}{११}$ अब कुंडकी सिरसूंका प्रमाण अर शिखाकी सिरसूंका प्रमाण मिलाइए है सो एता होय है। १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ एता प्रमाण अनवस्थाकुंडकी सिरसूंका भया।

एकवार अनवस्थाकुंड पूर्ण भऱ्या तब अेक सिरसूं शलाका नाम दूसरा कुंडविषै क्षेपी। वहुरि तिस अनवस्थाकुंडके मध्यवर्ती जे समस्त सिरसूं तिनकौ मति कहिये। बुद्धिका विचार तिहकरि गृहण करे अथवा देव ग्रहण करिकै अेक द्वीपविषैं अेक समुद्रविषैं बहुरि अेक द्वीपविषै अेक समुद्रविषै ऐसे सरसों क्षेपतै जहां परिपूर्ण होय तिह द्वीपसो वा समुद्रसो लगाय पहिली

भयें जे द्वीप वा समुद्र जम्बूद्वीपपर्यंत तिन सवनिका प्रमाणके समान अर ऊंडा हजार योजनका ऐसा कुंड करना सो कुंड तिन पूर्वोक्तप्रकार गोल सिरसूंनिकरि भरना तदि शलाका कुंडमे एक सिरसूं और नाखणी। फिर उस अनवस्थकुंडकीहू सिरसूं आगलें द्वीपसमुद्रनिमे अेक अेक क्षेपतै उस कुंडकी सिरसूंभी जिस द्वीप वा समुद्रमें पूर्ण होजाय तितना द्वीपसमुद्रप्रमाण कुंड अेक हजार योजन ऊंडा फिर शिखासहित सिरसूंकरि भरना तदि तीजी सिरसूं शलाका कुंडमे फेर क्षेपिये ऐसे करते करते अनवस्थाकुंडका प्रमाण वधता वधता जाय अर अेक अेक अनवस्थाकुंड भरणेंकी समस्यारूप अेक अेक सिरसूंनिका प्रमाण कह्याथा तितने कोश लंबा च्यार कोश चौडा च्यार कोश ऊंचा होय ताका अेक कोश चौडा अेक अनवस्था कुंड होजाय तदि शलाकाकुंड शिखासहित भरिजाय तदि अेक सिरसों प्रति शलाकाकुंडविषै क्षेपिये। वहुरि तिस शलाकाकुंडकू रीता करी पूर्वोक्तप्रकार करिही वधता वधता व्यासकौ लीये अनवस्थाकुंड करी करी भरीये तव अेक अेक सिरसो शलाकाकुंडविषै गेरिये ऐसे करते करते दुसरी बारभी शलाकाकुंड भरै तव अेक सिरसो और प्रतिशलाका कुंडमे तिक्षेपण करना। ऐसेही अेक अेक बार शलाकाकुंड रीता करी करी भरीये तव अेक सिरसो प्रति शलाकाकुंडविषै क्षेपते जाईये ऐसे प्रतिशलाकाकुंडभी भरीजाय तव अेक सिरसों महाशलाकाकुंडमे क्षेपिये।

वहुरि तिस प्रतिशलाकाकुंडकूं रीताकरी पूर्वोक्तप्रकार अनवस्थाकुंडनिके भरणकरी तो शलाकाकुंडकौ अर शलाकाकुंडनिके भरणकरी प्रतिशलाकाकुंडकौ अेक अेक वार भरी अेक अेक सिरसों महाशलाकाकुंडमे गेरते जाईये ऐसे जव महाशलाकाकुंड भरीजाय तिह कालविषैं चारोंही कुंड भरिजाय है। तहां जो अंतका अनवस्थितकुंडविषैं जेते प्रमाण लीये सिरसो शिखासहित भरे गये तिह प्रमाण जघन्यपरीतासंख्यात जानना।इसमे अेक घटाय उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण जानना। अव जघन्य परीतासंख्यातकौ अेक अेक करीं विरलन नाम जुदा जुदा विखेरीये। अर तिस परीता संख्यातकौ अेकअेक उपरी देय परस्पर गुणन करीये जो महाराशी उपजै सो जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण उपजै है। जैसे च्यारकों विरलन करिये तब च्यार जायगां मांडिये। १, १, १, १। तिसके ऊपरी च्यारकौ दीजिये। $\overset{४}{१}$, $\overset{४}{१}$, $\overset{४}{१}$, $\overset{४}{१}$। इनकौ परस्पर गुणन करिये तव दोयसे छपन होय। ऐसेही जहां जघन्य परीतासंख्यातकौ अेकअेक जुदा करिये अर तितनेही प्रमाण जघन्य परीता संख्यातकी राशिकौ परस्पर गूणे जो महाराशि होय सो जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होय है। यहुही आवलीका प्रमाण हैं।

जातै जघन्य युक्तासंख्यात समयनिके समूहकूं आवली कहे है। इसमे एक घटाईये यहु उत्कृष्ट परीतासंख्यात जानना। वहुरि जघन्ययुक्तासंख्यातके प्रमाणकौ जघन्य परीतासंख्यात करीही गुणीये तदि जघन्य असंख्यातासंख्यात जानना। इसमे अेक घटाईये सो उत्कृष्ट युक्तासंख्यातका प्रमाण है।

अव जघन्य असंख्यातासंख्यातकी तीन राशिरूप स्थापन करिये तहां विरलनराशिकूं तों

अेक अेक भिन्न भिन्न वखेरिये अर तिस अेक अेक ऊपरी दोय राशी मांडी परस्पर गुणन करिये जव समस्त राशिका गुणन हो चुके तदि शलाका राशिमहसूं अेक घटादीजिअे। जैसे च्यारि प्रमाणराशिकौ शलाका विरलन देय तीन जायगां स्थापन करिये तहां विरलन राशिकौ अेकअेक वखेरिए उपरि देय राशिकौ- ४, ४, ४, ४ च्यार जायगां विरलन तथा ताकै ऊपरि देय परस्पर गुणिए तव दोयसे छपन्न होय। तदि शलाका राशि च्यारिकीमैंतै एक घटाइए तदि शलाकामे तीन रह्या। वहुरि दोयसै छपन्नकौं दोयसें छपन्न जायगां वखेरिए अर दोयसे छपन्न दोयसे छपन्न जायगां परस्पर गुणि तव जो महाराशि उपजै तदि शलाकाराशिमै ते एक ओर घटाइए। तदि शलाकाराशिमें दोय रहे। फेरि जो महाराशि उपजी ताकौ विरलन करि तीतनीही जायगां तिस महाराशिको परस्पर गुणन करिए तदि जो महाराशि उपजै तदि शलाकाराशि दोय था तामैं एक ओर घटाइए शलाका राशिमैं एक रह्या। अर जो महाराशि उपजै ताकों विरलन करि ताकैं ऊपरि तितनीही देय राशिस्थापन करि परस्पर गुणन कीए जो महाराशि होय सो च्यारकी राशिका शलाकात्रयका प्रमाण होय है। ऐसे जघन्य असंख्यातासंख्यातकौ शलाका विरलन देय रूप स्थापन करि विरलन देयका अनुक्रमकरि शलाकाराशि संपूर्ण होजाय जव जोक्यूं महाराशि उपजै ताकों फेरि शलाका विरलनदेय रूप स्थापनकरि विरलनकूं वखेरी देयराशिकूं देयशलाकाराशिमैतैं एकएक घटाता जाइए तदि दूजीवारहू शलाका पूर्ण होजाय तदि जो महाराशि आवै सो तिस प्रमाण तीसरा शलाका विरलनदेयका क्रमकरि शलाका पूर्ण होय। ऐसे शलाकात्रय निष्ठापन हुवा पाछै जो क्यूं महाराशि उपजै मध्यम असंख्यातासंख्यातप्रमाण तिस विषै धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य एक जीवद्रव्य अलोकाकाश लोकाकाश इन च्यारौंनिका प्रदेशनिका प्रमाण अर लोकाकाशके प्रदेशनिका प्रमाणतैं असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिजीवनिका प्रमाण वहुरि तातैंहू असंख्यात गुणा प्रत्येकवनस्पति-जीवनिका प्रमाण ऐसे छह राशि मध्य असंख्यातासंख्यातप्रमाणविषै मिलाइ दीजिए तिनकूं मिलाए जो असंख्यातासंख्यातरूप प्रमाण होय ताका फिर शलाकात्रय स्थापन करना।

ऐसे एकवार वा दोय वार वा तीन वार शलाका विरलनदेयके क्रमकरि शलाकात्रय पूर्ण होजाय तदि जो मध्यम असंख्यातासंख्यातकी जो महाराशि उपजै तिस विषै उत्सर्पिणी अवसर्प्पिणी मिलकरि भया जो कल्पकाल ताका समय अर तातैं असंख्यात लोकगुणा स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान तातै असंख्यात लोक गुणा अनुभागबंधाध्यवसायस्थान तातै असंख्यातलोकगुणां योगनिके उत्कृष्ट अविभागप्रतिच्छेद ए च्यार राशि प्रक्षेपण करिए। अब एहू च्यार राशिको मिलाए जो प्रमाण भया ताकौ पूर्वोक्त प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करिए ऐसे करतै जो प्रमाण होय सो जघन्यपरीतानंत जानना। यामै एक घटाइए सो उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रमाण जानना। वहुरि तिस परीतानंतकौ एकएक करि विरलन करि एकएक प्रति तिसही जघन्य-परीतानंतकौ देइ तिनकौ परस्पर गुणं जो महाप्रमाण होय सो जघन्य युक्तानंत जानना सो यहू

अभव्यसमान हैं। अभव्यजीवनिका एता प्रमाण है यामैं एक घटाए उत्कृष्ट परीतानंत होय है।

वहुरि जघन्य युक्तानंतका वर्ग करिए जघन्य युक्तानंतको जघन्य युक्तानंतकरि गुणिए तदि जघन्य अनंतानंत होय है यामै एक घटाय उत्कृष्ट युक्तानंत होय हैं। वहुरि जघन्य अनंतानंतके प्रमाणकौ पूर्वोक्त शलाकात्रय नष्टापक करिए। विरलन देयके अनुक्रमकरि एक शलाका दोय शलाका वा तीन शलाका पूर्ण करि जो मध्य अनंतानंतरूप महाराशिएभया तिसमें अे तीन राशिका प्रक्षेप करिए। जीवराशिकै अनंतवै भाग सिद्धराशिका प्रमाण अर तातै अनंतगुणा पृथिव्यादिचतुष्टय अर प्रत्येकवनस्पति अर त्रसराशि इन तीन राशिकरि न्यून संसारीजीवनिकी राशि सोही निगोदराशि हैं। अर तातैं प्रत्येक वनस्पतिकरि अधिक जो निगोदराशि सोही वनस्पतिराशि। वहुरि जीवराशितै अनंतगुणा पुद्गलराशि अर तातै अनंतगुणा कालके समयनिका प्रमाणरूप कालराशि। तातै अनंतगुणा अलोकाकाशके प्रदेशनिका प्रमाण रूप अलोकाकाशराशि। अे छह अनंत रूपराशि मिलावना। इनि छहों राशिकौ मिलाये जों राशि भया ताकौ पूर्वोक्तप्रकार शलाकाविरलनदेयके क्रमकरि वर्गित संवर्गित करि वहुरि दूजा तीजा शलाका पूर्ण करि जो मध्य अनंतानंत प्रमाण भया तामैं धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यके अगुरुलघुगुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाये।

वहुरि इस राशिकौ शलाकात्रय पूर्ववत् निष्टापन करिये जो कोऊ मध्य अनंतानंत प्रमाण भया तिसकूं केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनिमें घटाये जो केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद रहै तिनमे ज्यूंका त्यूं पूर्वोक्तराशि मिलाइये सो उत्कृष्ट अनंतानंत हैं। यामैं अेक घटेतांई मध्य अनंतानंत है। जातैं उत्कृष्ट अनंतानंत केवलज्ञानप्रमाण है। अर जो केवलज्ञानके विभागप्रतिच्छेदनिमे पूर्वोक्तराशि घटाये विना मिला दोजिये तो केवलज्ञानतें अधिकप्रमाण होजाय सो है नाहीं तातैं घटाय मिलाया है। ऐसे संख्याप्रमाणके इकवीस भेद वर्णन कीये। इहां और जानना।

उपमा प्रमाण

श्रुतका संख्यात विषय हैं। अवधिका असंख्यात विषय है। केवलज्ञानका अनंत विषय है। अव अष्टप्रकार उपमाप्रमाणकूं संक्षेपकरि कहे है। पल्य १। सागर १। सुच्यंगुल १। प्रतरांगुल १। घनांगुल १। जगत्श्रेणी १। जगत्प्रतर १। घनलोक १। ऐसे अष्टप्रकार उपमाप्रमाण है। अव पल्यके जाननेका विधान कहे है। पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य १। उद्धारपल्य १। अद्धापल्य १। तिनमे पहली व्यवहारपल्यका प्रमाणकूं कहे है। अेक योजन चौडा अेक योजन ऊंडा नीचा अक योजन लंवा ऐसा गोल वडा योजनप्रमाण खाडा करना। तिसमे सातवा जन्मयुक्त जो उत्तम भोगभूमिका गाडर ताके जन्मतै सप्तदिनमाही गृहे जो रोम तिनके अग्रभाग तिनकरि खाडा भरिये। सो अेसा जानना। चौडाई अेक योजनकी ताका वर्ग करिये ताकूं दश गुणाकरि ताका वर्गमूल काढिये सो सूक्ष्मपरिधि कहिये तारतम्यपरिधि होय है। सो इहां अेक योजनका वर्गहू अेक भया $3\frac{1}{6}$ ताकूं दशगुणां कीये दशभया दशका वर्गमूल तीन अर अेकका छठाभाग भया याकूं समच्छेद विधानकरि जोडे उगणीसका छठा भाग

भया $\frac{१९}{६}$ ऐसे इस अेक योजनप्रमाण कुंडका सूक्ष्म परिधिका प्रमाण होय है। वहुरि विष्कंभका चौथाभागतै परिधिकौ गुणे क्षेत्रफळ भया $\frac{१९}{२४}$ वहुरि याके वेधनो ऊंडाई एक योजनप्रमाण तिंहकरि गुणेंभी तितनाहीं भया ऐसे इस कुंडका घनरूप समस्त सूक्ष्मक्षेत्रफळ उगणीसका चोवीसमा भाग प्रमाण भया।

वहुरि वहु कह्या जो प्रमाणयोजनरूप सूक्ष्मक्षेत्रफळ ताके व्यवहारयोजनादि कैसे करने सों कहे है। एक प्रमाण योजनरूप क्षेत्र ताके पांचसे व्यवहारयोजन होय है। इहां घनरूप क्षेत्रका गुणाकार भागहारहू घनरूपही होय है। जातै एक प्रमाणयोजनकी लंवाईमे पांचसे खंड भया। अर लंवा एक एक खंडका पांचसे चौडाईमे खंड भया वहुरि इन खंडनिका एकएकका पांचसे पांचसे ऊंचाईमे खंड भया। यातै तीन जायगां मांडिए तदि गणोहुए व्यवहार योजन होय।

वहुरि एक व्यवहारयोजनका सात लाख अडसठि हजार अंगुल अर एक अंगुलके आठ यव अर एक यवके आठ तिल एक तिलके आठ लीख एक लीखके आठ कर्मभूमीयाके रोम एक कर्मभूमियाके रोम एक कर्मभूमियाके रोमका आठ जघन्यभोगभूमियाके रोम एक जघन्यभोगभूमियाके रोमके आठ मध्यभोगभूमियाके रोम मध्यभोगभूमियाके एक रोमका आठ उत्तमभोग भूमियाके रोम। इनका त्रैराशिक करिए घनरूप राशि हैं। तातै सवनिकूं तीनतीन वार मांडि परस्पर गुणिए।

$\frac{१९}{२४}$ ५०० । ५००, ५००, ७६८०००, ७६८०००, ७६८०००, ८। इन सवनिकौ परस्पर गुणिए ते पैंतालीस अक्षर प्रमाण व्यवहारपल्यके होय है। ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२-१९२०००००००००००००००००० । इस व्यवहारपल्यके रोमनिकौ एकसौ वर्ष एकसौ वर्ष गए अेकअेक रोम तिन रोमनिमैं सो ग्रहण करिए। अैसे ग्रहण करतै सर्व रोम समाप्त जितने कालकरि होय तावन्मात्र कालके जेते समय होय सो व्यवहापल्यके समयनिकी संख्या होय हैं। सो अेक रोमका ग्रहणविषै सौ वर्ष होय पूर्वोक्त रोमनिके ग्रहणविषै केते वर्ष होय। अैसे त्रैराशिक करि वहुरि अेकवर्षके तीनसै साठि दिन अेक दिनके तीस मुहूर्त अर मुहूर्तके तीन हजार सातसैं तिहैत्तरि उछ्वासकी एक उछ्वासकी संख्यात आवली अेक आवलीके जघन्ययुक्तासंख्यात-प्रमाण समय होय तितना व्यवहारपल्यका काल है।

आगे उद्धारपल्यके कालको दिखावे है। जो व्यवहारपल्यविषैं जे रोम कहे तिनविषैं अेकअेक रोमके असंख्यात वर्षके समयनिकै समान खंडरूप कीजिये तव उद्धारपल्यके रोमनिका प्रमाण होय। तिन रोमखंडनिके अेकअेकको अेकअेकसमयमे ग्रहण करतै सर्व रोमखंड जेते कालकरि समाप्त होय सो उद्धारपल्यका काल जानना। उद्धारपल्यके कहे जे रोम तिनको असंख्यातवर्षानिके समयनिका गुणाकार दीजिए जेता:प्रमाण होय तेता प्रमाण अद्धापल्यके

समयनिका जानना। इहां असंख्यात वर्षके समय कह्या सो मध्यम असंख्यातका भेद सर्वज्ञदृष्ट है। अैसा जानना जो व्यवहारपल्यकरि तो रोमनिकी संख्या वर्णन करी हैं। अर उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्याका वर्णन है। जातै पचीस कोडाकोडी उद्धारपल्यके जैते समय है तेते जंबूद्वीपकूं आदि लेय स्वयंभूरमणपर्यंत द्वीपसमुद्र जानना। वहुरि अद्धापल्यकरिकेही समस्त-कर्मनिकी स्थितिका वर्णन जानना। औरभी पल्यकरि जिनका प्रमाण कह्या ते अद्धापल्यते हैं। वहुरि दशकोडी उद्धारपल्यका उद्धारसागर है। अढाई उद्धारसागर प्रमाण द्वीपसमुद्र हैं। उद्धारसागरका द्वीपसमुद्रकी गिणतीहीमें प्रयोजन है। अर दशकोडाकोडी अद्धापल्यका अेक अद्धासागर हैं।

वहुरि अद्धापल्यके जेते अर्द्धच्छेद होय तितनी जायगां अद्धापल्यके प्रमाणको मांडी परस्पर गुणीये सो सूच्यंगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। अेक अंगुल लंबे अेक प्रदेश चौडे अेक प्रदेश ऊंचे क्षेत्रप्रमाण है। अर सूच्यंगुलकें प्रदेशके प्रमाणका वर्ग करिये सो प्रतरांगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। सो अेक अंगुल चौडे अेक अंगुल लंबे अेक प्रदेश ऊंचे क्षेत्रका प्रमाण है। अर प्रतरांगुलके प्रदेशनिकूं सूच्यंगलके प्रदेशनिकरि गुणीयें ते घनांगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। सो अेक अंगुल लंबे अेक अंगुल चौडे अेक अंगुल ऊंचे प्रदेशनिका प्रमाण है। वहुरि पल्यका अर्द्धच्छेदका असंख्यातवा भागप्रमाण घनांगुल मांडी परस्पर गुणीये सो जगतश्रेणी होय है। सो सात राजूप्रमाणलंबे अर अेक प्रदेश चौडे ऊंचे आकाशके प्रदेशनकी पंक्तीकूं जगतश्रेणी कहिए हैं। वहुरि जगतश्रेणीका वर्गकूं जगतप्रतर कहिए है। सो सात राजू लंवा चौडा क्षेत्रकें प्रदेशनिका प्रमाण जानना। वहुरि सातराजूं लंबे चौडे ऊंचे क्षेत्रकूं जगतघन कहिए वा घनलोक कहिए है। ऐसे उपमाप्रमाण अष्टप्रकार कह्या। जो विशेष जाणनेका इच्छक होय सो त्रिलोक-सारादिकनितै जानहु। तथा इनका अनेकस्थान अल्पवहुत्व चौदहधारानितै जानहु। ऐसे प्रसंग पाइ प्रमाणका वर्णन कीया।

वहुरि यौजनके प्रमाणकी उत्पत्ति ऐसे जानहू। अनंत पुद्गलद्रव्यके परमाणूका स्कंध तो एक अवसन्नासन्न होय है। तातै आठआठ गुणें वारह स्थान जानने। सन्नासन्न, त्रुटिरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तमभोगभूमियाका वालका अग्रभाग त्योही मध्यभोगभूमियाका, जघन्यभोग-भूमियांका, कर्मभूमियांका, लीख, सिरसौं, यव, अंगुल ए वारह है। ऐसे अंगुल भया सो उत्सेंध अंगुल है। याकरि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवनिका देह तथा अकृत्रिमजिनप्रतिमाका देहका प्रमाण कीजिए है। तथा देवनिका नगर मंदिर मापिए है।

वहुरि उत्सेधांगुलतै पांचसें गुणां प्रमाणांगुल होय है। सो अवसर्पिणीकालका प्रथम चक्रवर्तीका अंगुल है। वहुरि जिस कालमे जैसा मनुष्य होय ताका अंगुल होय सो आत्मांगुल है। तहां प्रमाणांगुलकरि तो द्वीप समुद्र पर्वतादिक तथा द्वीपसमुद्रकी वेदी विमान नरकके प्रस्तार आदिक अकृत्रिम वस्तूका विस्तार आयामादिकका प्रमाण है। सो सर्व प्रमाणांगुलकरि वर्णन

जानना। वहुरि छह अंगुलका एक पाद होय बारह अंगुलका एक वितस्ति होय। दोय वितस्तिका एक हस्त होय। दोय हातका एक इषु होय गज होय। दोय गजका एक धनुष्य होय। दोय हजार धनुष्यका एक कोश होय। च्यार कोशका अेक योजन होय। अैसे लौकिक अलौकिक मान कह्या। तेसै उत्कृष्ट मध्य जघन्य स्थिति मनुष्यनिकी कही तैसेही तिर्यंचनिकी आयु कहे है।

तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

अर्थप्रकाशिका– तिर्यंच जीवनिकीभी आयुकी उत्कृष्ट स्थिती तीन पल्यकी अर जघन्य स्थिती अंतमुहूर्त है। मध्यके नानाभेद है। इहां विशेष कहे है। शुद्ध पृथ्वीकाय जीवनिकी वारह हजार वर्षका आयु है। अर कठोर पृथ्वीकायका बाईस हजार वर्षका आयु है। जलकायके जीवनिका सात हजार वर्षका आयु है। वायुकायके जीवनिका तीन हजार वर्षका आयु है। अग्निकायके जीवनिका तीन दिन रात्रिका आयु है। ऐसे एकेंद्रिय जीवनिका उत्कृष्ट आयु कह्या। बहुरि बेंद्रिय जीवनीका आयु उत्कृष्ट द्वादशवर्षप्रमाण है। त्रींद्रीयजीवनिका उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनका है। चतुरिंद्रियका आयु छ महीनाका उत्कृष्ट हैं। पंचेंद्रीय जलचर तिर्यंचनिका आयु उत्कृष्ट कोटीपूर्वका हैं। बहुरि सरीसृप जे गोधा नकुलादिकनिका नवपूर्वांगका-आयु है। वहुरि उरग जे सर्प्प तिनका उत्कृष्ट आयु बीयालीस हजार वर्षका है। पक्षीनिका उत्कृष्ट आयु वहत्तरि हजार वर्षका है। चतुष्पदनिका उत्कृष्ट आयु तीन पल्यका है। अर समस्त तिर्यंचनिका जघन्य आयु अंतर्मुहूर्तका है। ऐसे तीसरा अध्यायमे अधोलोकका वर्णन तथा मध्य-लोकमध्ये द्वीपसमुद्रादिकनिका वर्णन कीया।

अब इहां कोई अन्यवादी ऐसे कहे है जो इस जगतका कोऊ ईश्वर कर्त्ता है। जाते कर्त्ताविना कोऊही सत् रूप वस्तु होय नही। ताकूं पूछिए। ईश्वरकूं कौंन कीया। ईश्वरहू सत् वस्तु है याका कर्त्ताहू कह्या चाहिए। अर जो कहोगे याका कर्त्ताहू अन्य है। तो वाकूं कौंन कीया। ऐसें अनवस्था नामा दोष आवेगा। वहुरि और पूछे है जो पहली सृष्टी रचना नहीं थी। तो सृष्टी बाहिर ईश्वर कहां था अर कोन स्थानमे बैठी जगत्कूं रच्या अर ईश्वर आप जगत्विना निराधार अर वहोत कालसे विद्यमान आप तो कहां तिष्ठतां अर इस जगतकूं रची कहां स्थापन कीया। अर किसीके आधार कहोगे, तो वह कौंनके आधार, उसका अन्य आधार कहोगे तो उस अन्यका कोन आधार ऐसे अनवस्था नाम दोष आवेगा। अर जो या कहोगे निराधारमें अनादिनिधनमे तर्क नहीं तो सृष्टीका कर्त्तापना कहना बनै नहीं। जैसी तो समस्त पदार्थनिकूंही अनादिनिधन कहे है जाके मतमे सृष्टीकूं करी हुई माने ताके मतमेंही दोष आवेगा। बहुरि ईश्वर अेक जगत् नानात्मक, सों अेंक होय नानात्मक जगतकी रचनामें कैसे समर्थ होय। बहुरि ईश्वर शरीररहित अमूर्तिक तातैं शरीरादिक मूर्तिक उत्पन्न होनेयोग्य नहीं। अमूर्तिकतैं मूर्तिक कैसे होय।

वहुरि अन्य करणादि सामग्रीविना लोककूं कैसें रच्या। जातै उपादानकारणविना कोऊ वस्तुकी रचना नहीं देखियें है। जैसें मृत्तिकाविना समर्थ कुंभकार घटकी रचना करनेकूं नहीं समर्थ है। अर जो या कहोगे पहली सामग्री वनाय पाछै जगतकूं रच्या तो पूछिए उस सामग्रीकूं काहेतें रची। अर सामग्रीकूं अन्य सामग्रीकरि रची कहोगें तो अन्य सामग्रीकों काहेतै रची ऐसै अनवस्था दोष आवेगा। अर जो या कहोगे जगतके रचनेयोग्य सामग्री तो स्वभावहीतै सिद्ध है तो लोकहू स्वतः सिद्ध माननेका प्रसंग आवेगा। वहुरि जैसे लोकका कर्त्ताकौं स्वतैसिद्ध मान्या तैसे लोककैहू स्वतःसिद्ध माननेका प्रसंग आये है। वहुरि या कहोगे ईश्वर समर्थ है सो सामग्रीविनाही इच्छामात्रकरि लोककूं रचे है। तो ऐसे इच्छामात्र युक्तिरहित तुमारा कहना कौनके श्रद्धान करनेयोग्य हैं। इच्छामात्र करनेकी कल्पना औरहू करो कौन रोके है। इच्छामात्र कह्या तहां विचार काहेका रह्या।

वहुरि ईश्वर कृतार्थ है कृतकृत्य है कि अकृतार्थ है। जो कृतार्थ कहिए करनेयोग्य अर्थ करी लीया अन्य कुछ करनेयोग्य वाकी जाकै नही रह्या ऐसाकूं कृतार्थ कहिए है। तो जगतको रचनेकी इच्छा ईश्वरके कैसे उपजी। अर जो अकृतार्थ कहोगे तो अकृतार्थ होयगा सो समस्तजगतकूं रचनेकों कुंभकारकीज्यौं समर्थ नहीं होय। जातैं अकृतार्थ कुंभकार एक घटकूं रची कृतार्थपणा अपने मानों समस्त जगतकूं करना तो अकृतार्थके वनैगा नहीं। तैसे ईश्वरकूं अकृतार्थही मानोहो तो अकृतार्थपना होतै तो एकएक वस्तुकरि खेदित क्लेशित होता अनंत पदार्थनिकूं कैसे पूर्ण करेगा। तातैहू जगतका कर्त्तापणा ईश्वरके नही संभवे है।

वहुरि ईश्वरकूं अमूर्त्तिक कहे है। अर निष्क्रिय कहे है। अर व्यापी कहे है सो ऐसा ईश्वर जगत्कूं कैसे रचै। जातैं अमूर्त्तिकतै तो मूर्त्तिक उत्पन्न होय नहीं। अर जो निःक्रिय कहिए क्रियारहित होय ताके रचनेकी क्रिया कैसे वनै। वहुरि जो व्यापी समस्तमें व्याप रह्या ताकै लोकका रचना कैसे वनै समस्तमे अनादिहीका व्याप्त होरह्या। वहुरि ईश्वरकूं विक्रिया-रहित निर्विकार कहै ताकै रचनेकै अर्थि विकारी होना नहीं संभवे। वहुरि ईश्वर सृष्टिकूं कहां फल चाहता रची। ईश्वर तो कृतकृत्य है ताकै धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारों पदार्थनिमे कुछ करना वाकी नहीं रह्या तदि सृष्टिकूं रची कहां। फल चाह्या प्रयोजनविना तो मूर्खहू नहीं प्रवर्त्ते है। अर जो या कहोगे ईश्वरके सृष्टि रचनेमे कुछ प्रयोजन तो नही परंतु विनाप्रयो-जनही रचै है तो अनर्थरूप कार्य करनेका प्रसंग आया। अर जो कहोगे ईश्वरके या क्रीडा है तो वडा मोहका संतान आया। क्रीडा तो अज्ञानी मोही वालक करे है। वा दुःखित हुवा क्रीडाकरि दिन व्यतीत करे है।

वहुरि और पूछै है। जो ईश्वर जगतहूं रच्या तो सुखरूप उज्वल रूपवान मनोहर ऐसेही समस्त पदार्थनिकों क्यों नही रचे। जगतमें केई दरिद्रि रोगी कुरुप निंद्य नीच जाति ऐसे क्यों रचे विषादिक कीटकादिक काहेतें वनाए। तथा दुष्ट भील चांडाल म्लेंच्छ क्यों रचे

जगतमैंभी देखिए हैं। जो महाबुद्धिवान चतुर होय सो वहोत सुंदरही वनाया चाहै। अपना कीया कार्यकूं विगाडते नही चाहै। यातैं ईश्वर है सो बुद्धिवान अर समर्थ होय ग्लानिरूप भयानक विडरूप रचना कैसे करी सो कहे। अर जो या कहोगे प्राणी जैसे कर्म उपार्ज्जन कीए तैंसे उनके शरीरादिक रचे तो वाकै ईश्वरपणा कहा रह्या जैसे कोलीकूं मही सुत दिया महीमा वणि दिया मोटा दीया मोटा वणि दिया ईश्वरपणा नही रह्या। फिर और पूछै हैं। प्राणिनितें भलें खोटे कर्म कीए ते ईश्वरके अभिप्रायतें कीए की ईश्वरतें निराले जवर होय कीए सो कहो। जो ईश्वरके अभिप्रायतै कीए तो ईश्वर होयकरि अपनी प्रजातें खोटे कृत्य कैसे कराए। अर जो ईश्वरकी इच्छाविनाही कीए तो ईश्वरके ईश्वरपणा कर्त्तापना कहा रह्या। जगत स्वयंही कर्मादिककार्यके कर्त्ता भए। बहुरि कहोगे कार्य तो होय है सो जैसा कर्म कीया तैसाही होय है। परंतु ईश्वरके निमित्ततै होय है। तो ऐसें सिद्धवस्तुके विनाकारण ईश्वरका कीयापणा क्यौं पोखोहो। असत्यंत असतहूं रचे है तो आकाशका फूलका रचना समान अवस्तु ठहऱ्या।

वहुरि जो ईश्वरकूं मुक्त कहोहो तो उदासीन वह सृष्टीकूं कैसे रचे। अर जो ईश्वरसंसारी है तो आपणेसमान है उसका कीया समस्त जगत् कैसें रचनारूप होय। तातै तुमारा सृष्टीवाद कहना कुछ नहीं रह्या। बहुरि पहली तो जगतकूं रच्या अर पाछें संहार कीया सो प्रजाकूं रची अर संहार करे ताके महान् अधर्म भया। अर जो कहोगे दैत्यादिक दुष्ट इकठे भए तिनके मारनेकूं प्रलयकालमें संहार करे है। तो दैत्यादिक दुष्ट पहली रचे कैसें। अर पहली ठीक नहीं था तो ईश्वरके अज्ञानीपणा भया। अर दुखिया भया जो नई रचना करवो करे अर चूकी खणिजाय जदि मारता फिरे हेरता फिरे। ऐसे तो ईश्वरके वहुत अज्ञान रागद्वेषादिक क्लेश वहुत दोष आए। अर इसही ईश्वरकूं सदाशिव कहे है। सदाकाल मुक्त माने है। वहुरि केई ऐसा कहे है।

जो जगत् कुछ वस्तु नहीं है। एक ब्रह्महीं नानाजगतरूप दीखे है। ब्रह्मतै दूजा पदार्थ अन्य हैही नही। जैसे सूर्य तो एक है। अर सूर्यका प्रतिविंव अनेक जलके भाजननिमे देखिये है। ताकूं कहिये है। जो भाजन अर सूर्य तो दोय वस्तु भया तैसे ब्रह्म जर जगत दोय भया तव तुमारा अद्वैत ब्रह्मका मानना तो नहा रह्या।

वहुरि जैसे सूर्य अेक है तो ताका प्रतिविंव अनेक पात्रनिमैं सदृशही दीखै हैं। जिस दिन ग्रहण होयगा अर सूर्यकी कोर दक्षिणदिशाकी लुप्त भई होयगी तो समस्त पात्रनमैं दक्षिणकी कोरही लुप्त भई भासेगी अन्य प्रकार नही दीखे। तैसे ब्रम्ह एकही है तो समस्त-पदार्थनिमे अेकरूपही दीख्या चाहीए। जगत तो मनुष्य पशु पक्षीं वा केई दुःखी केई सुखी केई रंक केई राजा केई जड केई चेतन ऐसे नाना रूप कैसे भासे है। जो एक ब्रह्मस्वरूपही होय तो चंडाल अर ब्राह्मणादिकनिका भेद नही रहेगा। बहुरि जो समस्त जगत ब्रह्मरूपही है तो जप ध्यान आराधन दर्शन कौनका अर ध्यानादिक करनेवाला कोन रह्या। अेक ब्रह्महीं रह्या तव

दीक्षा शिक्षा गुरुशिष्यादिकका भेदका लोप भया। बहुरिकहोगे जो ए भेद दीखे है सो अविद्या है। तो पूछे है या अविद्या ब्रह्मसे जुदी जुदी है कि अेक है। जो अविद्याकूं वा मायाकूं जुदी कहेगा तो ब्रह्म अर अविद्या दोय ठहऱ्या तदि ब्रम्हके अद्वैतपणा कहां रह्या। ब्रह्म सो अेक कहेगा तो ब्रह्म अविद्यारूप भया मायारूप भया असत्य भया। बहुरि अविद्याकूं अवस्तु कहोहो जो अविद्या तो कुछ वस्तूही नही। तो यहु कैसे कहो जो अविद्याते जगत नानारूप दीखे हैं ब्रह्म सिवाय कुछ नही। अवस्तूके कार्यकारणपणा कैसे भया। बहुरि सब जगत ब्रह्महीहै तो अविद्या अर माया ए कौनके भया ब्रह्महीकै भया तब ब्रह्म कहना मानना तुमारे अभिप्रायतेही असत्य भया। बहुरि अद्वैतशद्वही द्वैतपनाविना होय नही। जातैं कोऊ वस्तू होंयगा ताका निषेधभी होयगा द्वैत-विना ही द्वैतपनाका निषेध कीया। अर जो कहोगे हम तो समझायबेकौ अद्वैत कह्या है जातैं जगतमे जीव भ्रमतैं द्वैत मानि राख्या है इनिका निषेधकूं कह्या है जो द्वैतका निषेध करोहो सो सत्का करोहो कि असत्का करोहो जो सत् करो तो झूठा भया। अर असत्का निषेध संभवे नही। ऐसे इनिका विधिनिषेध श्लोकवार्तिकमे तथा अष्टसहस्त्रीमे है। अर ईश्वरवादकाहु आप्तपरीक्षादिक ग्रंथनिमे है तहांतै जानना। इहां तो प्रकरण पाय दिग्मात्र दिखाया है। ऐसे सप्तभूमि विल लेश्या आयु द्वीप समुद्र पर्वत ऱ्हद नदी मनुष्य तिर्यंचनिका आयु इत्यादिक वर्णनकरि तीसरा अध्याय समाप्त कीया।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अर्थ– ऐसे तत्वार्थका है अधिगम जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं तिसरा अध्याय पूर्ण भया ॥३॥

– दोहा –

हैं जातैं तत्त्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ॥
मोक्षशात्र मंगलमय। नमो तृतीय अध्याय ॥३॥

तृतीय अध्याय समाप्तः

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

आगे चौथा अध्यायका प्रारंभ करे है।

– दोहा –

वंदनकरि पद आप्तका । सुनि आगम उपदेश ।।
स्वस्वरूपके कथनमैं । रहै न भ्रमतमलेश ।।१।।

केई प्रकरणमे देवशद्ब कह्या परंतु यह नही जाण्या जो देव कितने है कौन है इसके निश्चयके अर्थि सूत्र कहे है–

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।१।।

अर्थप्रकाशिका– देवगतिनामकर्मके उदयते देवनिका च्यारि निकाय है। निकाय नाम समूहका है। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक ऐसे देवनिके च्यार समूह है। अव इनके लेश्याका जाननेकूं सूत्र कहे हैं–

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।।२।।

अर्थप्रकाशिका– आदितै लेय भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क इन तीन निकायनिविषैं पीतपर्यंत लेश्या है। कृष्ण नील कापोत पीत ए च्यार लेश्या है। अब तिन देवनिके अंतर्भेद दिखावनेकूं सूत्र कहे है–

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपन्नपर्यंताः ॥३॥

अर्थप्रकाशिका— भवनवासीनिके दश भेद व्यंतरनिके अष्ट भेद । ज्योतिष्कदेवनिके पांच भेद । कल्पवासिनिके द्वादश भेद ऐसे कल्पोपन्न जे स्वर्गनिवासी तिन पर्यंत भेद है । अव इन देवनिमे विशेष है तिनके जाननेकूं सूत्र कहे हैं—

इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

अर्थप्रकाशिका— देवनिमें अेक अेक निकायमे दश दश भेद है । इंद्र, सामानिक, त्रायत्रिंशत्, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, किल्विषिक ऐसें भेद है । तहां अन्य देवनिविषै नही पाइये ऐसी अणिमा महिमादिक अनेक ऋद्धिनिकरि परम ऐश्र्यकूं प्राप्त होय इंद्र है । जैसें इहां राजा आज्ञा ऐश्वर्यकरि प्रवर्तै । वहुरि जिनका स्थान आयु वीर्य परिवार भोगादिक इंद्रके समान होय एक आज्ञा ऐश्वर्य नही होय जातै आज्ञा ऐश्वर्य तो इंद्रकाही होय हैं ते सामानिक देव है । इंद्र इनकूं पिता उपाध्याय तुल्य वडे गिणें है । वहुरि मंत्री पुरोहित समान तों शिक्षा करनेवाले अर पुत्रसमान प्रीतीका पात्र जिनकूं देखनेकरि वचनालापकरि पुत्रसमान इंद्रके मनकै आनंद उपजावै ऐसें तेतीस देव ते त्रायत्रिंशत है। वहुरि जे इंद्रकी वाह्य अभ्यंतर मध्य जे तीन प्रकारकी सभा तिनमे तिष्ठनेयोग्य सभानिवासी देव है ते पारिषद देव है । वहुरि जे इंद्रकी सभामे पाछै खडे रहनेवाले शस्त्रधारण कीये जे देव है ते आत्मरक्षक है । यद्यपि देवनिकै किछु घातादिक नही हैं तथापि ऋद्धिविभवकी महिमाके अर्थि है । वहूरि कोट्टपालतुल्य होय अमार्गकी प्रवृत्तिका निषेधक लोकपाल है । वहुरि पयादा अश्व वृषभ रथ हस्ती गंधर्व नर्त्तकी ए सात प्रकार इंद्रकी सेनाके देव ते अनीक कहिये । वहुरि नगरनिवासी समान प्रीतिका कारण प्रकीर्णक देव है । वहुरि दासादिकनिके समान हस्ती घोडादिक वाहन वणि सेवा करै ते आभियोग्य देव है । वहुरि दूर तिष्ठनेवाले इंद्रादिकनिकी सन्मानादिकके अधिकारी नही वाहीर दूरीही रहे है ते किल्विषिक देव है । इस सूत्रमे "एकशः" कहने करि अेक अेक निकायमे दश दश भेद है । परंतु व्यंतर ज्योतिषीनिमे आठ आठही भेद है । याते सूत्र कहे है—

त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

अर्थप्रकाशिका— व्यंतर अर ज्योतिष्क देवनिमैं त्रायस्त्रिशत् अर लोकपाल ए दोय भेद नहीं है आठही है । अव इंद्रनिका नियम कहै है—

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥

अर्थप्रकाशिका— पहली दोय निकायनिके भेदनिमें दोयदोय इंद्र है । दशप्रकारका

भवनवासीनिमें चमर वैरोचनादिक दोयदोय इंद्र है यातै वीस इंद्र है। व्यंतरनिके अष्टभेदनिमे किन्नर किंपुरुषादिक षोडश इंद्र है। अब देवनिकै काम सेवनका नियम कहे है–

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

अर्थप्रकाशिका– इहां प्रवीचार नाम मैथुनसेवनका है। भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क अर सौधर्म ईशान स्वर्गके देव अर इनिकी अंगना इनिके मनुष्यनिके समान संक्लेशकर्मकरि कायथकी मैथुनसेवन है। अब उपरिके देवनिके कैसे है सो कहे है–

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

अर्थप्रकाशिका– पहिले सूत्रमैं कहे देव तिनतै अवशेष रहे जे सनत्कुमारादिक देव-तिनकै स्पर्श रूप शद्व मनके विषैही मैथून है। सनत्कुमार माहेंद्रके देवनिकै मैथुनकी इच्छा उत्पन्न भई जाणि देवी नजीक प्राप्त होय है। तहां देवीनिका अंगका स्पर्शमात्रतैही प्रीतिनै प्राप्त होय है अर कामकी इच्छा मीटि जाय है। अर देवीनिकैहू तृप्ति होय है। वहुरि ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ इन च्यार स्वर्गनिके देवनिके देवांगनानिके स्वभावतेही सुंदरश्रृंगार आकार विलास चतुर मनोज्ञ वेषरूप लावण्य इनिके अवलोकमात्रतेंही परमसुख होय हैं। वहुरि शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रारके देव है ते देवांगनानीके मधुरगीत कोमलहाम्य कोमलवचन भूषणनिके शद्वश्रवणादि रूप अमृतपानकरि परमप्रीतिकूं प्राप्त होय है। वहुरि आनत प्राणत आरण अच्युत इन च्यार स्वर्गनिविषें देव है ते अपनी देवांगनानिका मनविषै ही संकल्पमात्र करनेतैं परमसुखकूं प्राप्त होय है। अब सोलह स्वर्ग ऊपरि अहमिंद्रनिके कैसे सुख है इसके निश्चयके अर्थि सूत्र कहे है–

परे प्रवीचाराः ॥९॥

अर्थप्रकाशिका– इहां पर शद्वके कहनेकरि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया। यातैं अच्युत स्वर्गकै उपरि नवग्रैवेयिकनिके तीनसे नव ३०९ विमान अर नव अनुदिश विमान अर पंच अनुत्तर विमान इनमें वसनेवाले अहमिंद्र हैं तिनकै कामसेवन नाही। तहां देवांगना नाहीं। विषयवेदनाके अभावतं वेदनारहित स्वाभाविक परमसुख निरंतर भोगे है। अब भवनवासी देवनिकी विशेष संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहे है–

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥

अर्थप्रकाशिका– भवननिमें वसेहै तातै इनकूं भवनवासी कहिए है। भवनवासीनिमैं असुरकुमार नागकुमार विद्युत्कुमार सुपर्णकुमार अग्निकुमार वातकुमार स्तनितकुमार उदधि-

कुमार द्वीपकुमार दिक्कुमार ऐसे दश विशेषसंज्ञा नामकर्मकरि कीनी जानना। बहुरि कोऊ स्वेतांवरादिक कहे जो देवनिकरि "अस्यंति" कहिए युद्ध करें प्रहारकरैं ते असुर है ऐसे कहैं सो नहीं। ए कहना तो देवांको अवर्णवाद है इसमें मिथ्यात्वका बंध होय है। ते सौधर्मादिकनिके देव महाप्रभाववान है। इनकै ऊपरि हीनदेव मनकरिकैंहू प्रतिकूलपणा नहीं विचारै है। जो एता विशेष है। जो चमरेंद्र अर वैरोचन ए इंद्र अपनी ऐश्वर्यसंपदाकरि परिणाममैं ऐसा मंद करै है जो हमारे सौधर्म ईशान इंद्रसौ कौनसी संपदा घटैहै हमभी उनकी तुल्यही है।

ऐसी परिणामनिमें ईर्षा है सो अभिमानकी अधिक्यतातै ऐसी ईर्षा करैही है। बहुरि सौधर्मादिक देवनिके विशिष्ट शुभकर्मका उदयकरि विभव है। सो अरहंनपूजा तथा भोगानुभवन इत्यादिकमें लीन है। इनकै परकी दारा हरणादिक वैरका कारणही नहीं। तातै असुर है ते सुरनकरि युद्ध नाही करै है। बहुरि समस्त देवनिके वाल यौवनादिक अवस्था नहीं पलटै है। उपज्या जिस अवसरतें मरणपर्यंत एकसि थिर अवस्था रहे हैं। तातै अवस्थाकरि कुमार नहीहै। इनिके कुमार समान उद्धतवेष भाषा आभरण आयुध वस्त्र गमन वाहन राग क्रीडन है तातें कुमार कहिए है।

अव इनका भवन कहां है सो कहे है। इस जंबूद्वीपकी दक्षिणदिशामैं असंख्यात द्वीप-समुद्रनिकूं व्यतीतकरी रत्नप्रभापृथ्वीका पंकभागविषै असरकुमारनिका चमर नाम इंद्रके चौतीस लाख भवन है। अर चौसठि हजार सामानिक देव है। तेतीस त्रायस्त्रिंशत देव है। बहुरि सोम यम वरुण कुबेर ए च्यार लोकपाल है। तीन सभा हैं तिनमे पहली सभामे अठाईस हजार देव है। मध्यकी सभामें तीस हजार वाह्य सभामें बत्तीस हजार देव है। अर सात सेना है। महिषनिकी घोडेनिकी रथनिकी हातीनिकि पयादनिकी गंधर्वनिकी नृत्यकारिणीनिकी। तिन एकएक सेनामे सातसात कक्षा हैं। पहिली कक्षा चोसठि हजार देवनिकी दूजी यातैं दूणी तीजी यातें दूणी ऐस सप्त जायगा दूणीदूणीकी इक्यासी लाख अठाईस हजार प्रमाण महिषनिकी सेना भई। इनिकूं सप्तकरि गुणोए तदि पांच कोटि अडसठी लाख छिनवैं हजार देव सातौं सेनाके भए। ऐसेहि वैरोचनादिक इंद्रनिके सेनाका प्रमाण जानना। इनि सात प्रकारकी सेनामें एकएक सेनाधिपति महत्तर देव है। नृत्यकारणीकि सेंनामें महत्तरी देवी है। अर प्रकीर्णक देव नगरनिवासी समान प्रीतिके पात्र असंख्यात है।

वहुरि छपन्न हजार देवी है तिनमे सोलह हजार वल्लभिका अर पांच पट्टदेवी है। अर पट्टदेवी आठ हजार विक्रिया करे है। ऐसेहि वैरोचनादि इंद्रनिके समस्त दश भेदनिमे भवन परिवारादिक त्रिलोकसारादिग्रंथनितैं जानना। बहुरि रत्नप्रभा पृथ्वीका पंकभागविषै असुरकुमारनिके भवन है अर नागकुमारादिक नव जातिके भवन खरभागविषै है। बहुरि केई भवन जघन्य है ते तो संख्यातकोटी योजनके है। उत्कृष्ट भवन असंख्यात योजनके विस्ताररूप है चौकोर है। तीनसें योजनकी ऊंचाई लीए है। भवनकि भूमिसूं लेय छातीपर्यंत तीनसे योजनकी

ऊंचाई है। अर एकएक भवनके मध्यविषैं एक योजन ऊंचा पर्वत है तिस पर्वत ऊपरि जिनेंद्र-मंदिर हैं। ऐसैं दश जातिके भवनवासीनिके सात कोटी वहत्तरी लाख भवन है। अर सात कोटी वहत्तरी लाखही जिनचैत्यालय है। अष्टगुणरूप ऋद्धिनिकरि सहित है। नानामणिमय भूषणनि-करि जिनका दीप्तिसंयुक्त अंग हैं। अर दशप्रकारके चैत्यवृक्ष जिनप्रतिमाकरि विराजित हैं। अपने तपकें प्रभावकरि सुखरूप भोग भोगते तिष्ठैं है। तिनमे असुरकुमार देवनिके एक हजार वर्ष गए आहारकि इच्छा उपजै सो मानसिक आहार मन चलतप्रमाण कन्ठमे अमृत गरै हैं। वेदना व्यापैं नाहि। अर पंद्रह दिन व्यतीत भए उच्छ्वास है। अर अन्य नागकुमार सुपर्णकुमार द्वीपकुमार इन तीननिके आहारकी इच्छा साढावारह दिन गए होय। अर साढा वारा मुहूर्त्त गए उच्छ्वास होय अर उदधि कुमार विद्युत्कुमार स्तनितकुमार इन तिनके वारह दिन गए आहारकी इच्छा। अर वारह मुहूर्त्त गए उच्छ्वास होय है अर दिक्कुमार अग्निकुमार अर वातकुमार इन तीनके आहारकि इच्छा साढा सात दिनमे अर उच्छ्वास साढा सात मुहूर्तनिमे होय है। वहुरि देहकि उंचाई असुरकुमारनिके पचीस धनुष्यकी। अन्य नव जातिनिके दश धनुष्य हैं। समस्त भवन महासुगंध महारमणीक महा उद्योतरूप है। अव व्यंतरनकी संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहे है–

व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ।।११।।

अर्थप्रकाशिका– विविध कहिए नानादिशांतरनिमैं इनका निवास तातैं व्यंतर कहिए हैं। सो सामान्यसंज्ञा है। अर नानाकर्मकें उदयकरि इनकि ए आठ विशेषसंज्ञा हैं। ते किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच ऐसें आठ है। कितने अज्ञानी कहे है जो, "**किन्नरान् कामयंते इति किन्नराः। किंपुरुषान् कामयंते इति किंपुरुष। पिशिताशनात् पिशाचाः।**" ऐसैं निरुक्तिकरि ऐसा विपरीत अर्थ करे। जो कुत्सित नरनकूं इच्छा करे ते किन्नर कहिए अर कुत्सित पुरुषातें कामसेवन करे ते किंपुरुष है। अर पिशित जो मांस ताके भक्षणतें पिशाच है। सो ऐसा कहनादेवनिका अवर्णवाद हैं। मिथ्यादर्शनके बंधका कारण है। पवित्र वैक्रियक देहका धारक देव कदाचित्‌ही अशुचि औदारिक मनुष्यनिका देहते कामसेवन नहीं करे अर मांसभक्षण देवनिके कदाचित् नहीं है। देवनिके मानसिक आहार है कवलाहार नही है। अर लोकिकमें प्रवृत्ति सुनिए देखिए है सो पूर्वजन्मके संस्कारतें क्रीडा सुखकै निमित्त है पूर्व-जन्मका संस्कार खोटा होय तातैं खोटी क्रीडामे प्रवृत्ति है। तिनमे किनरनिका हरितवर्ण है। किंपुरुषनिका धवलवर्ण है। महोरगनिका श्यामवर्ण है। गंधर्वनिका हेमवर्ण है। यक्षनिका श्यामवर्ण है। राक्षस भूत पिशाच श्यामवर्ण है। इनिकैं जिनप्रतिमाकरि सहित अष्टप्रकारके चैत्यवृक्ष है ते मानस्तंभादिक सहित है।

वहुरि इन अष्टभेदनिमे दोयदोय इंद्र है। एकएक इंद्रकै च्यार हजार सामानिक देव है। च्यार पट्टदेवी है। सोलह हजार अंगरक्षक है। तीन सभा है। अभ्यंतरसभामें आठसे देव।

मध्यममे हजार देव। वाह्यमे वारासे देव। अर एकएक इंद्रकै सातसात प्रकार सेना है। हस्ती, घोडा, पयादा, रथ, गंधर्व, नृत्यकारिणी, वृषभ, एकएकमे सातसात कक्षा है। पहली कक्षा अट्ठाईस हजारकी फिर दूणीदूणी सातमी कक्षामे हस्ती सतरालाख वाणवै हजार भया। सात कक्षानिका मिल्या हुवा पैंतीस लाख छपन्न हजार हस्ती भया। ऐसेही प्रमाण लीया घोडा पयादा रथादिकनिकी सेना हैं। ऐसे इनके समस्त इंद्र सोलह तिनकें सेनादिक ऋद्धि जाननी।

वहुरि इनका आवास इस जंबूद्वीपतैं तिर्यक दक्षिणदिशाविषैं असंख्यात द्वीपसमुद्रनिकूं उल्लंघन करिके अर खरपृथ्वीका भागविषै किंनरेंद्रका असंख्यात हजार नगर है। ऐसेही उत्तरदिशाविषैं किंपुरुष इंद्रका विभवपरिवार है। ऐसेंही सत्पुरुष गीत रतिपूर्ण भद्रस्वरूप काल नामभद्रका दक्षिणभागमे आवास है। तैसेही महापुरुष महाकाय गीत यशमणि भद्र अप्रतिरूप महाकाल। ए उत्तरके अधिपति तिनका उत्तरमे निवास है तथा पंकभागविषै दक्षिणदिशामे राक्षसनिका इंद्र भीम नामका असंख्यात नगर है। वहुरि उत्तरदिशाविषै महाभीम नाम राक्षसेंद्रका असंख्यात नगर है। वहुरि इन व्यंतरनिके नगर अनेक पृथ्वीऊपरि वहुत द्वीपनिमे है। जंबूद्वीपप्रमाण वडे हैं। अनेक वन उपवन महल मंदिर दरवाजे कोट पडकोटनि-सहित अनेक रचना है। वहुरि व्यंतरनिका आवास पृथ्वीउपरि द्वीप पर्वत समुद्र देश ग्राम नगर त्रिक चोहटा गृहांगण रस्ता गली जलके निवाण वाग वन देवकुलादिकविषै असंख्यात विचरै है। अव तृतीयनिकायकी संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहे है–

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

अर्थप्रकाशिका– १ सूर्य, २ चंद्र, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, ५ प्रकीर्णकतारा, अैसें पंचप्रकार ज्योतिष्क देव हैं। इनिको ज्योति उद्योतरूप स्वभाव है यातें ज्योतिष्क ऐसी सामान्यसंज्ञा हैं। सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णकतारा ए विशेषसंज्ञा है। इहां सूर्यचंद्रमासौं इनिकी भिन्नभिन्न विभक्तिकरि इनका प्रधानपणा जणाया है। इनिकै प्रभावादिक विशेष हैं। सूर्यका पहली ग्रहण अल्पस्वरपणातैं है। जिस शद्बमे स्वर अल्प होय सो पहली कह्या जाय है जैनेंद्रमैं वाकी अच्संज्ञा है। इनिमे चंद्रमा इंद्र है सूर्य प्रतींद्र है। इनिके आवास मध्यलोकमे है। इस सम-भूमिभागतैं सातसें नवे योजन ऊपरि समस्त ज्योतिषीनिके नीचे तारा विचरै है। तिन तारानितैं दशयोजन ऊचे सूर्यजातिके देव है। अर सूर्यनितै असी योजन ऊंचा जाई चंद्रमा भ्रमैं है। चंद्रमाते तीन योजन ऊपरि नक्षत्र है। तिनतै तीन योजन ऊंचे जाय बुधदेव है। तिनतैं तीनयोजन ऊंचे शुक्रदेव हैं। तिनतैं तीनयोजन ऊंचे वृहस्पति है। तिनतै च्यारयोजन ऊंचे मंगल है। तातै च्यारि योजन ऊंचे शनैश्चर है। ऐसे यो ज्योतिर्गणनिका विषयरूप आकाश एकसो दश योजनकी ऊंचाईमै है। जातैं समभूमितैं सातसेंनिवै योजनकै ऊपरै नवसे योजनपर्यंत एकसो दश योजन मोटा ज्योतिषी देवनिका पटल है। अर तिर्यंक असंख्यात द्वीपसमुद्र प्रमाण

चौडालंवा घनोदधिपवनपर्यंत तिष्ठै है। वहुरि एक योजनका इकसठि भागकी जेतीमे छपन्न भागप्रमाण चंद्रमाका विमान है। अर एक योजनका इकसठिभागकी जेतीमे अडतालीस भाग प्रमाण सूर्यका विमान है। शुक्रका विमानका व्यास एककोशप्रमाण है। बृहस्पतीका किंचित न्यून अेक कोशप्रमाण है। अर बुध मंगल शनैश्चरका विमान अर्द्धकोश विस्तार है। वहुरि तारानिका विमान जघन्य है सो तो एक कोशका चतुर्थभाग प्रमाण विस्तार है। अर उत्कृष्ट एककोशका तारानिका तथा नक्षत्रनिका विमानका विस्तार है। अर ए समस्त विमाननिका आकार जैसे कोऊ गोला सर्वतरफतै घटता जानना सो लोहादिकनिका गोला वीचिमे चीरिये तव उपरि विस्ताररूप अर नीचे क्रमते घटता होयही। अर विमाननिका विस्तारतै आध ऊंचाईका प्रमाण है। अर विस्तारतै तीगुणीतै कुछ अधिक परिधि है।

वहुरि राहुको विमान चंद्रमाका विमानके नीचें गमन करे है। अर केतुको सूर्यविमानके नीचें गमन करे है। अर राहुकेतुका विमान किंचित न्यून एक योजनके विस्तार है। वहुरि राहुका विमानका ध्वजादंडके ऊपरि च्यारि प्रमाणांगुलका अंतर छांडि चंद्रमाका विमान है। अर केतुका विमानका ध्वजादंडके ऊपरि च्यार प्रमाणांगुलका अंतर छांडि सूर्यका विमान है। चंद्रमाका विमान दिनप्रति अपना विस्तारके सोलमे भाग कृष्ण वा शुक्ल होय हैं। सो राहुका विमानकी गति विशेष होय हैं। दक्षिणदिशामे हस्तीके आकार च्यार हजार देव है। पश्चिममें वृषभके आकार च्यार हजार देव है। उत्तरमें तुरंगाकार च्यार हजार देव वसें है। वहुरि अन्य ग्रहनिके विमानका वाहक आठ हजार देव है। नक्षत्रविमानके च्यार हजार देव है। ताराविमानके दोय हजार देव विमानकूं वहनेवाले है। वहुरि सूर्यके वारह हजार किरण कठोर है। चंद्रमाके शीतल वारह हजार किरण है। शुक्रके अढाई हजार किरण है प्रकाशकरि उज्वल है। और ग्रहादिक मंदकिरण हैं मंदप्रकाशसहित है। वहुरि इहां कोऊ कहै ज्योतिषीदेवनिके गमनका कारणविना गमन कैसे। ताका उत्तर गौतस रत आभियोग्य देव है तिनके कर्म गमनकरिकेही पचे हैं। कर्मकी विचित्रता है तप्तायमान सुवर्णवर्ण सूर्यविमान हैं। निर्मल कमलतंतुके वर्ण चंद्रविमान है रूपावर्ण शुक्राका विमान है। मोतीसमान बृहस्पवितनि है। कनकमय बुधविमान है। तप्तायमान सुवर्णवर्ण शनैश्चर विमान है। ताया सुवर्णसमान मंगल विमान है। ज्योतिषीनिका गमनविशेष जनावनेकूं सूत्र कहे है–

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

अर्थप्रकाशिका– ज्योतिषी देव मेरुकी प्रदक्षिणारूप निरंतर मनुष्यलोकमे गमन करे है। मेरुकूं ग्यारह इकईस योजन तिर्यक् छांडिकरि तारांगणादिक बिचरे है। अढाई द्वीपमें अर दोय समुद्रमें मनुष्य निका क्षेत्र है। तिनमे जम्बूद्वीपमे दोय चंद्रमा, लवणसमुद्रमे च्यार है। धातकी द्वीपमे वारा है, कालोदधिमे बीयालीस है, पुष्कराद्धंमे वहत्तरी है। ऐसे पंचस्थान

उपरी एकसो वत्तीस चंद्रमा भये। इतनेही सूर्य है। वहुरि जम्बूद्वीपमें छत्तीस ध्रुवतारा हैं। लवणसमुद्र उपरी एकसो गुणतालीस, धातकींमे अेक हजार दश, कालीदधि उपरी इकतालीस हजार अेकसो वीस, पुष्करार्ध उपरि त्रेपन हजार दोयसे तीस ध्रुवतारा है। बहुरि एक असी योजन घटाये गुणचास हजार आठसे बीस योजनप्रमाण तो अभ्यंतर वीथी मेंरुगिरिका मध्यपर्यंत उत्तरदिशाविषै आताप फैले है।

वहुरि लवणसमुद्रका व्यास दोय लाख योजनका ताका छवा भाग तेतीस हजार तीनसें तेतीस योजन अर एकका तिसरा भागप्रमाण यामै द्वीपका चार क्षेत्र एकसो असी योजन मिलाए तेतीस हजार पांचसें तेरह योजन अर एकका तिसरा भागप्रमाण दक्षिणदिशा विषै आताप फैले है। ऐसेही अन्य वीथीनिविषै जानना। वहुरि नीचे अठारहसें योजन चित्रापृथ्वीपर्यन्त फैले है। वहुरि उपरि सौ योजनपर्यंत आताप फले है। वहुरि चंद्रमाका आयु एक पल्य अर एक लक्ष वर्षका हैं। सूर्यका आयु हजार वर्ष अधिक पल्यका अर शुक्रका आयु सौ वर्षसहित पल्यका। अर बृहस्पतिका आयु एक पल्यका। बुध मगल शनैश्चरका आध पल्यका। अर तारानिका आयु अर नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु पाव पल्यका अर जघन्य आयु पल्यका अष्टम भागप्रमाण है। वहुरि चंद्रमा अर सूर्य इनिके चारचार पट्टराणी है। अर एकएक पट्टदेवीके चारचार हजार परिवारकी देवी है। अर एकएकके एतीही विक्रिया है। अर ज्योतिषीनिकी देवांगनाका आयु अपनेअपने स्वामी देवकी आयुतै अर्द्धप्रमाण हैं। गतिमान् ज्योतिषीनिकरिही कालका विभाग है ऐसें दिखावनेकूं सूत्र कहे है–

तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका– तिन ज्योतिषी देवनिके गमनकरि कीया कालका विभाग हैं। लव, पल, घडी, मुहूर्त, दिनरात्री, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संत्सवरादिक कालका विभाग ज्योतिषीदेवनिकरी कोया प्रकट होय है, काल हैं सो दोय प्रकार है। निश्चयकाल, व्यवहारकाल। सो निश्चयकाल तो पंचम अध्यायमे वर्णन करसीही निश्चयकालका जनावने वारा व्यवहारकाल है। अव मनुष्यक्षेत्र जो अढाईद्वीपवारे ज्योतिषी देवनिका स्थिरपणाका नियम कहे हैं–

बहिरवस्थिताः ॥१५॥

अर्थप्रकाशिका– मनुष्यलोकके वाहिर असंख्यात द्वीपसमुद्रनि ऊपरि ज्योतिषी देवनिका विमान अवस्थितही है। गमनरहित है। इहां कोऊ कहे इनका अवस्थान अढाई द्वीपवारे कैसें है। ताही कहे है। मानुषोत्तरपर्वततै पचास हजार योनजपरे जाय ज्योतिषीनिके विमाननिका प्रथम वलय है। तहां एकसौ चंवालीस चंद्रमा है। आगे एक लक्ष योजन क्षेत्रपरे जायं एक

एक वलय है। अर वलयवलयप्रति चारचार चंद्रमा अधिक है। ऐसें वाह्य पुष्करार्द्ध द्वीपविषैं आठ वलय कहिए परिधि है। तहां चंद्रमा सूर्यपरिवार अवस्थित है। वहुरि पुष्करवर समुद्रविषै वेदीतै पांचसौ हजार योजनपरे जाय प्रथम वलय है। सो प्रथमवलयविषै दोचंद्रमा-संबंधी एकसूर्य अर अठासी ग्रह अठाईस नक्षत्र अर छासठिहजार नवसे पिचहत्तरी कोडाकोडी तारा हैं। एता परिवारसहित समस्त चंद्रमा जानना। जहां जे जंबूद्वीपविषै दोय सूर्य दोय चंद्रमा इनका गमन करनेका क्षेत्रकूं चार क्षेत्र कहिए है। तहां एकसौ असी योजन तो द्वीपविषै अर तीनसौ तीस योजन अर सूर्यका विंवका प्रमाणकरि अधिक लवणसमुद्रविषैं गमनका क्षेत्र है। ऐसे पांचसौ दश योजन साधिक इनका चार क्षेत्र है।

यामैं सूर्यके गमन करनेकी अेकसो चौरासी गैली है। तहां विंव प्रमाण तो अेक अेक गैलीकी चौडाई है। अर गैलीप्रती दोय दोय योजनका अंतर अैसे एकसो तीयासी अंतर जानने। इनका गमनकी जम्बूद्वीपमे अभ्यंतर परिधिमे गमन करे सो प्रथम गैली कहिये। अर लवणसमुद्रमे तीनसे तीस योजन परे जो गैली सो अंतकी वाह्य परिधि है। प्रथम अभ्यंतर वीथीविषै तिष्ठता सूर्यके दक्षिणायनका प्रारंभ है। अर अंतर्बाह्य वीथी विषैं तिश्ठता सुर्यके उत्तरायणका प्रारंभ होय है। वहुरि कर्कराशीविषै सूर्य प्राप्त होय तव अभ्यंतर वीथीविषै भ्रमण करे है। अर राशिविषै सूर्य प्राप्त होय तव वाह्यवोथीविषै भ्रमण करै हैं। सूर्य ज्यौं ज्यौं वाह्यवीथीकूं प्राप्त होय ज्यौं ज्यौं शीघ्र गमन करे है। अर जैसे जैसे अभ्यंतरवीथीकूं प्राप्त होय तैसे तैसे मंद गमन करे है। जव अभ्यंतर परिधिमैं गमनका प्रारंभ करे है। तदि अठारह मुहुर्तका दिन वारह मुहूर्तकी रात्री होय है। अर वाह्य परिधिमें भ्रमण करे है। तदि वार मुहूर्तका दिन अठारह मुहूर्तकी रात्रि होय है।

वहुरि चंद्रमाकी वीथी पंद्रह है। वहुरि इहां इनके गमनका चार क्षेत्रकी चौडाई पांचसौ दस योजन प्रमाण कह्या तिसमैं एकसौ चौरासी वीथी सूर्यका है। तिनमैं जंबूद्वीपसबंधी चार क्षेत्र एकसौ असी योजनमें जंब्रूद्वीपकी वेदीका व्यास च्यार योजनका है। तातै द्वीप उपरि एकसौ छिहत्तरीं योजन अर वेदी उपरि च्यार योजन लवणसमुद्रके ऊपरि तीनसौ तीस योजन है। तिनमें सूर्यका विंब तो अडतालीस योजनका इकसठवा भागविषै अर दोय योजनको अंतराल इनकूं मिलाय एकसौ सत्तरिका इकसठिवा भागप्रमाण दिनप्रति परिधिको अंतराल जाननी सो द्वीप ऊपरि वासठि उदय है अर वेदीसंबंधी दोय अर लवणसमुद्रसंबंधी एकसौ अठार है। ऐसे एकसौ चौरासी उदय कहे। वहुरि भरतक्षेत्रके निवासीनिकूं त्रेसठी उदय तो निषधपर्वत उपरि दीसे है। अर चोसठिवी पैसठीवी वीथीविषै तिष्ठता सूर्य हरि क्षेत्र उपरी उदय दीखे है। अर छासठिवीतै लगाय अंतपर्यंत वीथीविषै तिष्ठता सुर्य लवणसमुद्रके उपरी उदय होता भरतक्षेत्रके निवासीनिकूं दीखें है। वहुरि मेरुगिरिके मध्यतें लगाय यावत लवण-समुद्रका छठा भागपर्यंत सूर्यका आताप फैले हैं। जंबूद्वीपका आधा क्षेत्र पचास हजार योजन

तामें द्वीप चार क्षेत्र एकसौ अठासी चंद्रमा है। आगे एक लाख योजनपरैं जाय दूसरा वलय है तहां दोयसौ वाणवे चंद्रमा है। अैसे एकएक लाख योजनपरैं जाय एकएक वलय है। एकएक वलयप्रति च्यार चंद्रमा अधिक है। ऐसे पुष्करवरसमुद्रविषैं वत्तीस वलय है। वहुरि तातैं दूना वारुणीवर द्वीपविषैं चोसठिवलय है तहां वेदीतैं पचास हजार योजनपरैं जाय पहला वलय है। सो पहला वलयविषैं पांचसे छीहत्तरी चंद्रमा हैं। आगे एकएक लाख योजन क्षेत्रपरैं जाय एकएक वलय है अर वलयप्रति च्यार चंद्रमा अधिक है। समस्त वलयविषैं चंद्रमा सूर्य अपने परिवारसहित तिष्ठैं है अवस्थित है। इहां ऐसा। जो पुष्करवरसमुद्रमे वत्तीस वलय है। तातैं वारुणीवर द्वीपविषैं दूणा वलय है चोसठि है। पुष्करवर समुद्रके पहले वलयविषैं दोयसे अठयासी चंद्रमा तातैं दूणा वारुणीवर द्वीपके पहले वलयविषैं पांचसे छीहत्तरी चंद्रमा है। ऐसेही वारुणीवर समुद्र तथा क्षीरवर द्वीपादिक विषैं दूनादूना वलय अर याही अनुक्रमकरि चंद्रमा सूर्यकी संख्याकी वधतीका परिणामादिक लोकका अंतमें स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यंत ज्योतिलोक स्थिर तिष्ठैहै। ऐसे ज्योतिषीनिका वर्णनपर्यंत तीन निकायका वर्णन कीया। अव चतुर्थ-निकायकी सामान्यसंज्ञा कहने सूत्र कहे है–

वैमानिकाः ॥१६॥

अर्थप्रकाशिका– जिनमैं तिष्ठते जीवनिकूं पुण्यवंत विशेषपणाकरि मानैं सत्कार करे ते विमान है। विमाननिमे उत्पन्न भए ते देव वैमानिक है। ते विमान चौरासी लाख सत्याणवे हजार तेईस है। अर एकएक विमान वहुत योजनके विस्तार है। तहां विमान तीन प्रकार है। १ इंद्रक, २ श्रेणीवद्ध, ३ प्रकीर्णक। तिनमे श्रेणीवद्ध विमान तो एकएक असंख्यात योजनकाही है। अर इंद्रक संख्यात योजननिकेही हैं। अर प्रकीर्णक केई असंख्यात योजनके केई संख्यात योजनके विस्तारकूं धरै है। तिनमे उत्तर मंदिर कल्पवृक्ष वन वाग वावडी नगरादिक अनेक रचना पाईए है। तिनकै मध्यस्थानमें तिष्ठता इंद्रकविमान है। अर पूर्वादि च्यारों दिशानिविषैं पंक्तिरूप तिष्ठै है ते श्रेणीवद्ध है। वहुरि च्यारों दिशानिकें बीची अंतरालरूप विदिशानिविषैं जहां तहां विखेरे पुष्पकी ज्यौं तिष्ठैं ते प्रकीर्णक विमान है। अव वैमानिकनिमे भेद दिखावनेकूं सूत्र कहे हैं–

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

अर्थप्रकाशिका– वैमानिकदेवनिमे कल्पोपपन्न अर कल्पातीत ऐसे दोय प्रकार है। जहां इंद्र सामानिकादि दशप्रकार कल्पना संभवे है। ते षोडशस्वर्ग कल्प कहावे है। अर जिनमें इंद्रादिक कल्पना नहीं समस्तदेव समान है ते ग्रैवेयकादि कल्पातीत है। वहांके देव अहमिंद्र है। अव इनका अवस्थान विशेष जनावनेके अर्थि सूत्र कहे है–

उपर्युपरि ॥१८॥

अर्थप्रकाशिका— कल्पनिके जुगल तथा पटल वहुरि नवग्रैवेयक अर नव अनुदिश पंच अनुत्तर। ए समस्त ऊपरिऊपरि है। अव कल्पादिकनिका नाम कहे है तिनमे देव वसे है—

सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्र-महाशुक्रसतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवे-यकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥

अर्थप्रकाशिका— सौधर्म, ईशान, अर सनत्कुमार, माहेंद्र, अर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, अर लांतव, कापिष्ठ, अर शुक्र, महाशुक्र, अर सतार, सहस्रार, अर आनत, प्राणत, अर आरण, अच्युत ऐसे अष्ट युगलके षोडस स्वर्ग हैं। तिनके वावन पटल है। ऊपरि नव ग्रैवेयकनिके नव पटल है। उपरि अनुदिश विमाननिका एक पटल हैं। ऊपरि विजय, वैजयंत, जयंत, अपरा-जित, सर्वार्थसिद्धि इनि पंचविमाननिका एक पटल है। ऐसे समस्त त्रैसठि पटल है। इहां ऐसा विशेष जानना। इस भूमितलतें निव्याणवै हजार च्यालीस योजन ऊंच्या जाय सौधर्म ईशान दोय कल्प है। तिनका प्रथम पटलका अत्यंत अत्यंत मध्यमे ऋतुनामा इंद्रक विमान है। सो ऋतुनामा इंद्रक मेरुकी चूलिकाके ऊपरि एक वालका अग्र समान अंतरकरि तिष्ठै है सो अढाई द्वीप समान पैतालीस लक्ष योजनके विस्तार सहित है। तिसके च्यार दिशानिमे वासठि वासठि सुधी पंक्तिरूप श्रेणीवद्ध विमान है। अर दिशानिके श्रेणीबद्धनिके बीचि वहुत प्रकीर्णक विमान है।

वहुरि इसकै उपरि असंख्यात योजनका अंतराल छांडि दुसरा पटल है। तिसकै मध्य चंद्रनाम इंद्रक है। अर च्यारों दिशानिमे इकसट इकसट श्रेणीवद्ध है। अर तिनके बीचि प्रकीर्णक है। वहुरि असंख्यात योजननिका अंतराल छांडि तीजा पटल है। तिसके बीचि विमल नामा इंद्रकविमान है। अर च्यार दिशामैं साठिसाठि श्रेणीबद्ध विमान हैं। अर दिशा-निके अंतलेनिमे प्रकीर्णक विमान है। ऐसे असंख्यात असंख्यात योजनका अंतराल छांडि ड्योढ राजूकी उंचाईमे इकतीस पटल है। अर पटलपटल प्रति एकएक दिशाप्रति एकएक श्रेणीबद्ध घटता गया है। सो तहां इकतीसमा पटलमें दिशानिके श्रेणीवद्ध बत्तीसबत्तीस रहेहै। अर इंद्रकविमानका विस्तारहू पटलपटलप्रति सत्तरी हजार नवसे सडसठी योजन अर तेईस योजनका इकतीसमा भागप्रमाण उपरि घटता घटता है।

भावार्थ— सौधर्मका प्रथम इंद्रक पैतालीस लक्ष योजनका है। अर त्रेसठिमा पटल अनुत्तरविमान सर्वार्थसिद्धिनामा इंद्रक एक लक्ष योजनप्रमाण विस्तारतै लीया है। तातै चवालीस लक्ष योजन बासठि स्थाननिमें क्रमतें घटा हैं। तातें पटलप्रति सत्तरि हजार नवसे

सडसठि योजन अर तेईस योजनका ईकतीसवा भागप्रमाण इंद्रक प्रति हानि चय हैं। ऐसे डयोढ राजूकी उंचाईमे इकतीस पटलरूप सौधर्म ईशान कल्प है। तहां पटल पटल प्रति तीन दिशाके श्रेणीवद्ध अर इंद्रक अर पूर्व दक्षिण दिशाके श्रेणीवद्धनिके बीचि अर दक्षिण पश्चिम इन दोह तरफके श्रेणीवद्धनिके वीचि जे प्रकीर्णक इनमे तो सौधर्म इंद्रकी आज्ञा प्रवर्तें है। अर उत्तरदिशाका श्रेणीवद्ध अर पश्चिम उत्तर बीचि अर उत्तर पूर्वके बीचि जे प्रकीर्णक तिनमे ईशान इंद्रकी आज्ञा प्रवर्तें है। ऐसे इकतीस पटलके पूर्ण दक्षिण पशिचमका श्रेणीवद्ध अर इंद्रक अर दोय दिशाके प्रकीर्णकनिमे सौधर्मकी आज्ञा है। अर उत्तरके श्रेणीवद्ध अर प्रकीर्णकनिमे ईशान इंद्रकी आज्ञा है। सौधर्म इंद्रके वत्तीस लाख विमान है। तिनमे इकतीस इंद्र कहे। अर तेतालीसे इकहत्तरी श्रेणीवद्ध है। अर इकतीस लाख पिचाणवे हजार पांचसे अठाणवे प्रकीर्णक है। अर ईशान स्वर्गके इंद्रके चोदहसे सत्तावन श्रेणीवद्ध अर सत्ताईस लाख अठाणवे हजार पांचसे तेतालीस प्रकीर्णक है ऐसे समस्त अठाईस लाख विमाननिमे ईशानेंद्रकी आज्ञा प्रवर्तें हैं।

अव इंद्र कहां वैसे हैं सो कहे है। तिस सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटलकै मध्य प्रभा नामा इंद्रक विमान है तिनकी दक्षिणदिशासंबंधी वत्तीस श्रेणीबद्ध विमानिकी पंक्ति तिस विषै अठारमो श्रेणीवद्ध विमान है। तिसकै स्वस्तिक वर्द्धमान विश्रुत नाम धारक तीन क़ोट है। तिनमे वाह्य कोटमे वसनेवाली सेंना है। अर सभानिवासी देव है। अर मध्यम प्राकारमे निवास करनेवाला त्रायस्त्रिंशत् देव है। अभ्यंतर प्राकारमे निवास वरनेवाला देवनिका राजा सौधर्मेंद्र हैं। तिसके विमाऩके च्यारी दिशानिभे च्यार नगर है। तिनका कांचन अशोक मंदिम स्तार गल्व ए नाम है। अर तेतीस त्रायस्त्रिशदेव है। चोरासी हजार आत्मरक्षक देव है। तीन सभा है। सप्त सेना है। चोरासी हजार सामानिक देव है। च्यार लोकपाल है। अष्ट पट्टदेवी है। चालीस हजार वल्लभिका देवी है। पट्टदेवी अर वल्लभिका देवी प्रत्येक पांचपल्यका आयूकूं धारे हैं। अर एकएक देवी सोलह हजार परि-वारकी देवीनिकरि वेष्टित हैं। अर एक एक पट्टदेवी अर एकएक वल्लभिकासोलह हजार देवीनिके रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है। तिनमें सौधर्मेंद्रकी अभ्यंतर समिता नामा सभा वारह हजार देवनिकी है। तिनका पंच पल्यका आयु है। अर चंद्रा नामा मध्यमकी सभा चोदह हजार देवनिकी है। तिनका च्यार पल्यका आयु है। अर चातुर्नामा बाह्यसभा तिनमें सोलह हजार देव है। तिनका तीन पल्यका आयु है। अभ्यंतर सभाके देवनिके एकएकके सातसौ देवी है। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर मध्यकी सभाका एकएक देवके छेसौ देवी है। तिनका दोय पल्यका आयु है। वाह्य राभाके एकएक देवके पांचसौं देवी है। तिनका डयोढ पल्यका आयु है। अर तितनीही देवीनिका रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है।

वहुरी आठ महापट्टदेवीनिके अभ्यंतर सभामे सातसौ देवी मध्यममे छेसौ, अर वाह्य-सभामें पांचसौ देवी है। ए तीन सभाकी समस्त देवी अढाई पल्यकी आयुकूं धरे है। वहुरि

पयादा अश्व गज वृषभ रथ नृत्यकी गंधर्व नाम धारक सप्त सेना है। तिन सेनाके देवनिका एक पल्यका आयु हैं। अर इन सेनामे एकएक महत्तरी हैं। तिनकाहू आयु एक पल्यका है। तिनमे वायु नामा पयादनिकी सेनाका महत्तरी है। सप्त कक्षानिकरि सहित पयादनिकी सेना है। तहां पहली कक्षामे चौरासी लाख पयादा है। दूसरीमे यातै दूणा तीसरीमे यातैं दूणा ऐसे सप्त कक्षा दूणीदूणी जाननी। ऐसेही सप्त सेनाका प्रमाण सप्तकक्षासहित जानना।

हरिनाम घोडाकी सेनाको महत्तर है। ऐरावत नाम हस्तीनिकी सेनाको महत्तर है। दामयष्टि वृषभाकी सेनाको महत्तर है। माथली नाम रथानीको महत्तर है। नीलांजना गणिकानिकी सेनाकी महत्तरी है अरिष्टयशस्क नाम गंधर्वसेनाको महत्तर है। सो या संख्या विक्रियाकरी होय है। इंद्रकी लार विक्रियातै इतना रूपकरि सेवा करे है। अर स्वाभाविक तो इन एकएक सेनाके देवनिके छेसौ छेसौ देवी है। अर एकएक देवी छह देवीनिके रूपकी विक्रिया करनेकूं समर्थ है। अर आधपल्यका आयु है। अर चोरासी हजार आत्मरक्षक देव है। तिनका एकएक पल्यका आयु है। अर तिन एकएकके दोयसैं देवी है। अर एकएक देवी विक्रियाकरि अपना छह रूप करनेकूं समर्थ है। अर्द्धपल्यकी जिनकी आयु है। बहुरि इंद्रके वालक नाम आभियोग्य देव है। ताको एक पल्यका आयु है। अर जंबूद्वीप प्रमाण वाहन विमान रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है। तिसके छेसौ देवी है। एकएक देवी छेसौ रूपविक्रिया करनेकूं समर्थ है। अर्द्धपल्यका जिनका आयु है। वहुरि पूर्वदिशामें स्वयंप्रभविमानविषै सोमनाम लोकपाल है। ताका अढाई पल्यका आयु है। अर ताकै चार हजार सामानिक देव है। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर ताकै चार हजार देवी है। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अन च्यारोही लोकपालनिके च्यारच्यार महापट्टदेवी है। तिनका अढाई पल्यका आयु हैं। अर सोमके अभ्यंतर ईशान नामा पांचसौ देवनिकी सभा है। तिनका सवापल्यका आयु है। अर दृढानाम मध्यकी सभा च्यारिसैं देवनिकी है। तिनका सवापल्यका आयु है। चतुरंत नाम वाह्य सभा पांचसौ देवनिकी है। तिनका सवापल्यका आयु है। वहुरि दक्षिणदिशाविषैं वरज्येष्ठ विमान यम नाम लोकपाल है। ताकै सामानिकादि समस्त विभव सोमतुल्य है। बहुरि पश्चिम दिशाविषै अंजनविमानविषै वरुण नाम लोकपाल है। ताका पोणा तीन पल्यका आयु है। इसके ईषा नाम अभ्यंतर सभामे सांठि देव है। तिनको डचोढ पल्यका आयु है। अर दृढा नाम मध्यकी सभा पांचसौ देवनिकी हैं। तिनकी देशोन डचोढ पल्यकी आयु है। अर चतुरंग वाह्य सभा छसे देवनिकी है। तिनका कुछ अधिक डचोढ पल्यकी आयु हैं। इन तीनूंही सभाके देवनिकी देवीनिकी आयु अपने भर्तारतै अर्द्धप्रमाण है। और इनकी विभूति सोमतुल्य है। बहुरि उत्तर दिशाविषै वलगु विमानमे वैश्रवण लोकपाल है। तीन पल्यका जाका आयु है। इसकी अभ्यंतर सभाके सत्तरी देव है। मध्यसभा छसे देवनिकी। अर बाह्य सभा सातसे देवनिकी। तिनकी सवापल्यकी आयु है इनकी देवीनिकी अर्द्धप्रमाण आयु है। और विभव सोमलोकपालतुल्य है। अर इन चारि लोकपालनिके एक एकके साढातीन कोटी अप्सरा है।

सौधर्म इंद्रकानृत्य गान वादित्रका वडा समाज है। ऐसे राजवार्तिकजीतैं लिख्या है।

वहुरि सौधर्मादिकनिके एकएक विमानमे एकएक जिनमंदिर कोटीनविभूतिकरि संयुक्त हैं। वहुरि इंद्रका नगरके वाह्य अशोकवन सप्तच्छदवन चंपकवन आम्रवन हैं। एक हजार योजन लंवा पांचसे योजन चौडा तिन बननिमे एक चैत्यवृक्ष है। तिनकी च्यारों-दिशानिमे पल्यंकासन जिनेंद्रकी प्रतिमा है। तिनको मैं बंदना करूंहूं। वहुरि अमरावती पुरकै मध्य इंद्रका आवासगृंहकी ईशानदिशामैं सुधर्मा नाम इंद्रका आस्थानमंडप है। सो आस्थानमंडप सौ योजन लंवा पचास योजन चौडा पचेतरी योजन ऊंचा है तिस सुधर्मा नाम आस्थानमंडप जो सभाग्रह ताके पूर्व उत्तर दक्षिण दिशाविषैं द्वार हैं तिन द्वारनिका अष्ट योजन विस्तार है। अर अर षोडश योजन ऊंचे है। तिस सभाके बीच इंद्रके बैठनेका सिंहासन हैं। तिसही सिंहासनके अग्रभागविषैं अष्ट महादेवीनिका आसन हैं।

तिन देवीनिका आसनतैं वाह्य पूर्वादिदिशाविषैं सोम यम वरुण कुबेर इनके आसन है। वहुरि इंद्रका सिंहासनतैं अग्नि दक्षिण नैऋत्य दिशाविषैं त्रायस्त्रिंशत देवनिके तेतीस आसन है। वहुरि पश्चिमादिशाविषै सेनापतिनिके सात आसन है। वहुरि चौरासी हजार सामानिक देवनिमे बीयालीस हजारके आसन तो वायुदिशामे हैं। अर बीयालीस हजारके आसन ईशान दिशा-विषैं है। इनतैं वाह्य आत्मरक्षक देवनिका चारों दिशानिमे चौरासी हजार भद्रासन है।

तिस आस्थानमंडपके अग्रभागमे मानस्तंभ है। सो एक योजन चौडा छत्तीस योजन ऊंचा पीठकरि सहित गोल वारह धारानिकरि संयुक्त जानना। मानस्तंभ एक योजन चौडा तव याकी वारह कोशकी परिधि भई तामे एकएक कोशकी धारा जाननी। तिस मानस्तंभविषै एक कोश लंवे पाव कोश चौडे रत्ननिकी सांकलकैं लटकते रत्नमय करंड कहिए पिटारे है। तिन पिटारेनिविषैं तीर्थंकर देवनिके पहरनेकैं योग्य आभरण भरे हैं। इंद्र तिनमैंसों काढि तीर्थंकर देवकैं तांइ आभरण पहूंचावै है। मानस्तंभ छत्तीस योजन ऊंचे है। तिनमे नीचे पोणा छ योजन मानस्तंभमैं पिटारे नही पाईए ऊपरि सवा छ योजनमे पिटारे नहीहै। बीचिमे चोईस योजनकी ऊंचाईविषैं छीकाकीज्यौं लटकते एक कोश लंबे पावकोश चौडे रत्नमय पिटारे पाईए है। वहुरि सौधर्मके मानस्तंभके रत्नमय करंडकनिविषैं भरतक्षेत्रसंबंधी तीर्थंकरनिके आभरण है। अर ईशान स्वर्गके मानस्तंभनिविषै ऐरावतक्षेत्रसंबंधी तीर्थंकरनिके आभरण है। सनत्कुमारके मानस्तंभविषैं पूर्वविदेहसंबंधी तीर्थंकरनिके अर माहेंद्रमे पश्चिमविदेहसंबंधी तीर्थं-करनिके आभरण है। तातेंही यें मानस्तंभ देवनिकरि पूजनीक है।

इस मानस्तंभके निकटही आठ योजन चौडा आठ योजन लंवा ऊंचा उपपादग्रह है। तिस उपपादग्रहमे दोय रत्नमय शय्या पाईए है। इहां इंद्रका जन्मस्थान है। अर इस उपपपाद ग्रहके निकटही वहुतशिखरनिकरि संयुक्त जिनमंदिर है। वहुरि और विशेष त्रिलोकसारादि-

ग्रंथते जानना। वहुरि इकतीसमा पटलमे ज़ो प्रभाविमानतै उत्तरश्रेणीविषै वत्तीस विमानरूप उत्तरश्रेणीका आठमा विमान तामे ऐशान नाम इंद्र वसैहै तिसके परिवार वर्णन सौधर्मवत् जानना। ईशान इंद्रके अठाईस लाख विमान है। तेतीस त्रायस्त्रिशदेव है। वहुरि असी हजार सामानिक देव है। तीन सभा है। सप्त अनीक कहिए सेना है। असी हजार आत्मरक्षक है। च्यार लोकपाल हैं।

वहुरि श्रीमती सुसीमा वसुमित्रा वसुंधरा जया जयसेना अमला प्रभा ए अष्टमहादेवी हैं। तिनकी सप्तपल्योपम आयु है। वहुरि वत्तिस हजार वल्लभिका है। तिनका सप्तपल्यका आयु है। अभ्यंतर समिता नाम सभा दश हजार देवनिकी हैं। तिनका सप्तपल्यका आयु है। चंद्रमा नाम मध्यम सभा वारह हजार देवनिकी है। तिनका छह पल्यका आयु है। जातु नाम वाह्यसभा तामे चोदह हजार देव है। तिनका पंच पल्यका आयु है। लघु पराक्रम नाम पयादनिकी सेनाको महत्तर है। अमितगति नाम अश्वनिकी सेनाको महत्तर है। द्रुमकांत नामा वृषभानीक महत्तर है। पुष्पदंत नामा गजनिकी सेनाका महत्तर है। किन्नर नामा रथानीक महत्तर है। गीतयश नामा गंधर्वसेनाका महत्तर है। श्वेता नाम नर्त्तकीनिकी सेनाकी महत्तरी है। तहां पयादनिकी सेनामे सात कक्षा। तिनमे पहली असी हजार देवनिकी, दूजी यातैं दूणी, तीजी यातै दूणी। ऐसे सप्तकक्षापर्यंत दुगण दुगण एकएक सेना है। ए समस्त सेनाके देव अर इनका महत्तरनिकी कुछ अधिक एकपल्यका आयु है।

ऐशान इंद्रके पश्चिमदिशाविषैं समनाम विमानविषै सोम नाम लोकपाल है। तिसका सढाच्यार पल्यका आयु है। तिसके अभ्यंतरसभा साठि देवनिके है। मध्यसभा पांचसै देवनिकी है। अर वाह्यसभा छसै सात देवनिकी है। दक्षिणदिशाविषै सर्वतोभद्र विमाननिषै यम नाम लोकपाल है। साढाच्यार पल्यका आयु है। और सोमवत रचना है। वहुरि उत्तरदिशाविषै सुभद्रविमानविषै वरुण नाम लोकपाल है। तिनका पंच पल्यका आयु है। ताके अभ्यंतरसभा अस्सी देवनिकी है। मध्यसभा सातसें देवनिकी हैं। वाह्यसभा आठसे देवनिकी है। वहुरि पूर्वदिशाविषै अमित नाम विमानविषै वैश्रवण नाम लोकपाल है। पोणापांच पल्यका आयु हैं। तिसके अभ्यंतर सभा सत्तारी देवनिकी हैं। मध्यम छसै देवनिकी है। वाह्यसभा सातसें देवनिकी है। ऐशान इंद्रकै पुष्पक नाम आभियोग्य देव हैं। वालकदेव सौधर्मकाकै तुल्य हैं। सो जंबूद्वीपप्रमाण विमान वाहन करनेकूं समर्थ है। और रचना सौधर्मइंद्रवत जानना। ऐसे उत्तरश्रेणी अर पुष्पप्रकीर्णकनिका स्वामी ईशानेंद्र हैं। अब इस प्रभाविमानतैं ऊपरि असंख्यात योजन जाइए तहां सनत्कुमार माहेंद्र कल्प है। तिनमे सप्त पटल हैं। इत्यादिक रचना विस्तारसहित राजवार्त्तिकतैं जानना इहां लिख्यें कथन वहुत होजाता तातैं विस्तार वधनेके भयतैं इहां नहीं लिख्या हैं। इहां अन्य विशेष जानना।

मेरुका तलते चित्रापृथ्वीते डचोढ राजू ऊंचा सौधर्म ईशान युगल है। ताके ऊपरि

ड्योढ राजूविषे सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गयुगल है। आगे ऊपरिऊपरि आधआध राजूविषे छह युगल क्रमकरि है। ऐसे छह राजूनिविषे सोलह स्वर्ग हैं। वहुरि तिनके ऊपरि एक राजूविषे नव ग्रैवेयक अर अनुदिश पंच अनुत्तर विमान क्रमते है। वहुरि प्रथम स्वर्गके विषे वत्तीस लाख विमान है। ईशानविषे अठाईस लाख है सनत्कुमारविषें वारह लाख है। माहेंद्रविषे आठ लाख विमान है। ब्रह्मब्रह्मोत्तर युगलविषे च्यारि लाख। लांतव कापिष्ठमे पचास हजार है। शुक्र महाशुक्रमे चालीस हजार। शतार सहस्त्रारविषे छह हजार है। वहुरि आनतादि च्यार कल्पनि विषे सातसे है। तीन अधोग्रैवेयकविषे एकसो ग्यारह विमान है। अर तीन मध्यमग्रैवेयकविषे एकसो सात विमान है। अर तीन उर्ध्वग्रैवेयिकनि विषे इक्याणवे विमान है। वहुरि नव अनुदशविषे नव विमान है अर अनुत्तरविषे पंच विमान है। वहुरि सौधर्मयुग्मविषे इकतीस पटल अर इकतीसही इंद्रक है। सनत्कुमारयुगलविषे सात इंद्रक अर सात पटल हैं। ब्रह्मयुगलविषे च्यारि इंद्रक है च्यारिही पटल है। लांतवयुग्मविषे दोय इंद्रक है दोय पटल हैं। शुक्रयुग्मविषे एक इंद्रक है एकही पटल है। आनतादि च्यार कल्पनिविषें छह इंद्रक हैं छह पटल है। अधस्तन दि तीन प्रकार ग्रैवेयकविषे तीन तीन पटल है। अर तीन तीनही इंद्रक है। अर नव अनुदशविषे एक पटल है एक इंद्रक है। पंच अनुत्तरविषे एक पटल हैं एक इंद्रकहै। शतारयुग्मविषे एक इंद्रकहैं एक पटल है। ऐसे त्रेसठि पटल है तिनमे त्रेसठिही इंद्रक विमान है।

वहुरि इहां एता संक्षेप और है। सौधर्मस्वर्गविषे अंतका इकतीसमा पटलका इंद्रक विमानते अठारमा दक्षिणदिशका विमानमे सौधर्मेंद्र वसे है। उत्तरदिशाका अठारमा श्रेणीबद्धविमानमें ईशानेंद्र वसे है। सनत्कुमारका अंतका पटलका सोलमा श्रेणीबद्ध है। तामें सनत्कुमार इंद्र वसे हैं। उत्तारश्रेणीवद्धमे माहेंद्र इंद्र वसे है। ब्रह्मयुगलका अंतपटलका चोदमा दक्षिणश्रेणीवद्धविषे ब्रह्मेंद्र वसे है। लांतवयुग्मका अंत पटलका वारमा उत्तरश्रेणीवद्धविषे लातवेंद्र वसें है। शुक्रयुगलका अंत पटलका दशम दक्षिणश्रेणीवद्धविषै शुक्रेंद्र वसे है। शतारयुगलका अंत पटलका आठमा उत्तारश्रेणीवद्धविषै शतारेंद्र वसें है। आनतयुगलका अंत पटलका दक्षिणश्रेणीवद्धविषै आनतेंद्र उत्तारश्रेणीवद्धविषै प्राणतेंद्र वसे है। आरणयुगलका अंतका चौथा श्रेणीवद्धविषै आरणेंद्र अर उत्तारश्रेणीवद्धविषै अच्युतेंद्र वसे है। दक्षिणदिशामे छह इंद्र वसे।

१ सौधर्ममे, २ सनत्कुमारमे, ३ ब्रह्ममे, ४ शुक्रमे ५ आनतमे, ६ आरणमें। उत्तारके इंद्र १ ईशानमें, २ माहेंद्रमे, ३ लांतवमे, ४ शतारमें, ५ प्राणतमे, ६ अच्युतमें। मेरुगिरकी चूलीकाके ऊपरि वालका अग्रभाग प्रमाण अंतराल छोडि पहला ऋतुनाम इंद्रकविमान तिष्ठे है। वहुरि अपनाअपना अंतका इंद्रकका ध्वजादंड है सो कल्पसंबंधी पृथ्वीका अंत जानना।

वहुरि समस्त कल्पनिविषै जे वत्तीस लाख अठाईस लाख इत्यादिक प्रमाण लीए विमान है तिनमें पांचमा भाग प्रमाण तो संख्यातयोजनके विस्तारकूं धरे है। अर शेष विमान असंख्यात योजनके विस्तारकूं धरे है। वहुरि अधोग्रैवेयकविषै तीन मध्यग्रैवेयकविषै अठारह

उपरिग्रैवेयकविषै सत्रह। नव अनुदिशनिविषै एक पंच अनुत्तरविषैं एक संख्यातरूप योजनके विस्ताररूप है। बहुरि सौधर्म ईशानविषै विमान पंचवर्ण है। सनत्कुमार माहेंद्रविषै कृष्णविना च्यारि वर्ण है। ब्रह्मादि च्यारि कल्पनि विशै नीलभी नाही तीन वर्ण है। शुक्रादि च्यार स्वर्गनिविशै रक्तभी नाही तातै दोय वर्ण है। तातै परैं आनतादि अनुत्तरपर्यंत समस्त विमाननिविशैं शुक्लवर्णही है। ऐसें विमाननिका रंग जानना।

बहुरि सौधर्मयुगलके विमान तो जलरूप पुद्गलस्कंधनिकौं आधारकरि ऊपरि तिष्ठै है। बहुरि सनत्कुमार माहेंद्रके विमान पवनके आधार तिष्ठै है। बहुरि ब्रह्मादिक आठ स्वर्गके विमान जलरूप वा पवनरूप परणए पुद्गलस्कंधनिकै ऊपरि तिष्ठै है। बहुरि आनतादि अनुत्तरपर्यंतके विमान पुद्ललस्कंधनिका आधाररहित आकाशके आधार तिष्ठै है। बहुरि विमाननिकी भूमिकी मोटाई ऐसे है। सौधर्मादिक छह युगलनिके छह स्थान अर अवशेष आनतादि कल्पनिका एक स्थान अर तीनतीन अधोग्रैवेयकादिकनिका एक स्थान तातै तीन स्थान अनुदिश अनुत्तरका एक स्थान ऐसे इन ग्यारह स्थानकनिविषै विमाननिकी भूमिकी मोटाई सो आदिविशै ग्यारहसौ इकईस योजन प्रमाण अर ऊपरि दश स्थानविषै क्रमते निव्याणवे निव्याणवे योजन प्रमाण घाटी घाटी है। याहीतै अनुदिश अनुत्तरकी एकसौ इकतिस योजन भूमिकी मोटाई रही। बहुरि दक्षिण उत्तर स्वर्गसंबंधी सोलमा स्वर्गपर्यंतका देवी सौधर्म ईशान स्वर्गविषैही उपजै है उपरि नही उपजै है। जिनविमाननिविषै कोऊ देव नही उपजै केवल देवांगनाही जहां उपजै ऐसें सौधर्मविषैं छह लाख विमान है। अर ईशानविषै च्यारि लाख विमान है। तहां सौधर्म वा ईशानविषैं ऊपजें पीछे ऊपरले स्वर्गनिके जिन देवनिकी नियोगिनी होय ते देव अपने अपने ठिकानें लेजाय है। अर अन्य सौधर्मके छविस लाख विमान अर ईशानके चोईस लाख विमान तिनमे देवदेवी उपजै है। सनत्कुमारादिक स्वर्गके विमाननिमे देवांगनाका उत्पादही नही है केवल देवनिहीकी उत्पत्ती है।

बहुरि अधोदिशाविषै जहां पर्यन्त गमनादिक विक्रियाकी शक्ति है तहांपर्यंत अवधिज्ञानकरि पदार्थ जाननेकी शक्ति है। सौधर्म ईशानके देवप्रथम पृथ्वी पर्यंत गमन शक्ति है। दोय स्वर्गविषै दूसरी नरक पृथ्वी पर्यंत हैं। च्यारि स्वर्गनिमें तीसरी पर्यंत। च्यारिमें चौथी पर्यंत च्यारमें पांचमीपर्यंत नवग्रैवेयकविषे छठी पर्यंत। अनुदिश अनुत्तर चौदह विमानके देवनिके सातवी नरक पृथ्वी पर्यंत गमनशक्ति अर अवधिज्ञानशक्ति है। बहुरि जन्ममरणका अंतर ऐसें जानना। जे ते काल किसीहीका तहां जन्म नही होय सो जन्मका अंतर है। अर जे ते काल किसीहीका तहां मरण नही होय सो मरणांतर है। सो ए दोऊ उत्कृष्टपने सौधर्मादि दोय स्वर्गनिविषै च्यार मास अवशेष ग्रैवेयकादिक छह मास विषैप्रमाण जानना। बहुरि उत्कृष्ट विरह कहिए है। उत्कृष्टपणें मरण भए पीछें तिहकी जायगा अन्य जीव आय यावत् काल नहीं अवतरै तिस कालका प्रमाण कहे है। इंद्र अर इंद्रकी महादेवी अर लोकपाल इनका विरहकाल

छह मास हैं। वहुरि त्रायस्त्रिंशदेव अर अंगरक्षक अर सामानिक अर परिषद इनका च्यार मास अंतर जानना। वहुरि इंद्रनकी अपेक्षा कल्प संख्या ऐसें हैं। ब्रह्मब्रह्मोत्तरमे एक ब्रह्म नाम इंद्र है। अर लांतव कापिष्ठमे एक लांतव नाम इंद्र है। अर शुक्र महाशुक्रमें एक शुक्र नाम इंद्र है। शतार सहस्रारविषें एक शतार नाम इंद्र है। अन्य आठ स्वर्गनिविषै भिन्न भिन्न आठ इंद्र है। ऐसे वैमानिकनिका वर्णन कीया। विशेष जाननेका इच्छुक राजवार्तिकतै जानहू। अब वैमानिक देवनिकै परस्पर विशेष जनावनेकूं सूत्र कहे हैं–

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥

अर्थप्रकाशिका– वैमानिक देव ते स्थिति प्रभाव सुख द्युति लेश्याकी विशुद्धिता इंद्रयिनिका विषय अवधिका विषय इनकरि ऊपरि ऊपरि अधिक अधिक है। अपना आयुकर्मका उदयतै जिस भवमे रहना सो स्थिति हैं। वहुरि परके उपकार तथा निग्रह करनेकी शक्ति सो प्रभाव कहिए है। वहुरि साता वेदनीका उदयतै इंद्रियनिके इष्टविषयनिकूं भोगना सो सुख कहिए। वहुरि शरीरकी तथा वस्त्र आभरण वलकी दीप्ति सो द्युति कहिए। वहुरि लेश्याकी उज्वलता सो विशुद्धिता कहिए। वहुरि इंद्रियनिकरी विषयका जानना वहुरि अवधिकरि विषयका जानना इनकरि अधिकाधिक है।

भावार्थ– स्वर्गनिके पटलपटलप्रति नीचेंके देवनितै उपरले देवनिके स्थिति प्रभावादिक अधिक अधिक जानना। सौधर्मादिकनिकै निग्रह अनुग्रह विक्रिया परके योगतें ऊपरिऊपरि वहुत गुणे है तोहूं मंद अभिमानकरि अल्पसंक्लेशकरि प्रवर्त्तनमैं नहीं आवे है। जैसे स्थित्यादिककरि अधिक है तैसे गमनादिककरि अधिक नहीं सूत्र कहे है।

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥

अर्थप्रकाशिका– वैमानिक देव है ते गमन अर शरीरकी ऊंचाई अर परिग्रह अभिमान इनकरि ऊपरिऊपरि हीन है घाटि घाटि है। एकदेश छांडि अन्यक्षेत्रमे जावना सो गमन हैं। अर शरीरका विस्तार सो शरीर है। अर लोभकषायका उदयतें ममता परिणाम सो परिग्रह है। मानकषायके उदयतै अहंकार सो अभिमान है।

इहां कोऊ आशंका करे। जो ऊपरिके देवनिके विक्रियाकी अधिकतातै गमन वधता है गति घाटि कैसे कही। ताका समाधान। जो गमनकी शक्ति तो ऊपरि ऊपरि वधती वधती हैं परंतु अन्यक्षेत्रनिमे गमनकार्यका परिणाम अधिक नहीं तातै घाटि है। जैसे सौधर्म ईशानके देव क्रीडादिककै निमित्त महान विषयानुरातै वारंवार अनेक क्षेत्रनिमें गमन करे है तैसे ऊपरिके देवनिके विषयनिकी उत्कट वांछाका अभाव है तातै गतिकरि हीन है। बहुरि सौधर्म ईशानके

देवनिका शरीर सात हात ऊंचा है। सनत्कुमार माहेंद्रमे छह हस्तप्रमाण है। ब्रह्मब्रह्मोत्तर लांतवकापिष्ठमे पंचहस्तप्रमाण हैं। शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारमे च्यार हस्त ऊंचा हैं। आनत प्राणत साढा तीन हाथ ऊंचा है। आरण अच्युतमे तीन हाथ ऊंचा है। अधोग्रैवेयकमे आढाई हाथ। मध्यमे दोय हाथ उपरिमग्रैवेयक अर नव अनुदिशमे. ड्योढ हाथ। अर पंचोत्तरनिमें एक हस्तप्रमाण ऊंचा है। वहुरि विमान परिवारादिक लक्षण परिग्रहहूं ऊपरि घाटि घाटि है। अर कषायनिका मंदपणातैं अवधिज्ञानादिकमे विशुद्धता वधती है तातैं अभिमान घटि जाय है। जातैं इहां जिनके मंदकषाय है तेही ऊपरि ऊपरि उपजे है। तातैं ऊपरि ऊपरि कषाय मंद है। पूर्वला संस्कारप्रमाण होय है। अव इहां ऐसा विशेष जानना। असैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्थंच शुभपरिणामनके वसतैं पुण्यबंधकरी भवनवासीनीमे तथा व्यंतरनीमे उपजे है। अर सैनी पर्याप्त कर्मभूमिका तिर्यंच मिथ्यादृष्टि वा सासादान सम्यग्दृष्टि बारमा स्वर्गपर्यंत उपजे है। अर तेही सम्यग्दृष्टि सौधर्मादिक अच्युत स्वर्गपर्यंत उपजे है। अर भोगभूमिका मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यदृष्टि ज्योतिषीनिमें उपजे है। अर तापसीहू ज्योतिषीनिमे उपजै है। अर भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच सम्यग्दृष्टी सौधर्म ईशानमे जन्म धारे है। अर कर्मभूमिका मनुष्य मिथ्यादृष्टि अर सासादन सम्यग्दृष्टि भावनवासीकूं आदि लेय उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत उपजै हैं। जिनके द्रव्यतो जिनलिंग होय भावमिथ्यात्व सासादन होय तो ग्रैवेयकताई जावे है। अर अभव्य मिथ्यादृष्टि निग्रंथलिंग धारणकरि महान शमभाव अर तपके प्रभावतैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत उपजे है।

वहुरि परिव्राजक तापसीनिका उत्कृष्ट उपपाद ब्रह्मस्वर्गपर्यंत है। आजीवक कांजिका आहारि इनीका वारमा स्वर्गपर्यंत उपपाद है। अन्य लिंगिनिका उपरि उपपाद नहीं है। अर निग्रंथ लिंगके धारक मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट तपकरि मंदकषायके प्रभावतैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत जाय है। वहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्रकीर्षताके योगतैं श्रावकनिका साधर्मादि अच्युतस्वर्गपर्यंत उत्पादनीचेहू नहीं उपजे अर उपरिमी नहीं जाय। अर भावलिंगी निग्रंथनिका सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पाद है। वहुरि अणुव्रतधारी तिर्यंचनिका सौधर्मकूं आदि लेय वारमा स्वर्गपर्यंत गमन है।

बहुरि एकेंद्रिय विकलत्रय तथा देव अर नारकी ए मरणकरि देव नहीं उपजे है। अर अभव्य जीव निग्रंथ लिंग धारि भवनत्रिकादि उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत उपजे है बहुरि पंचमेरुसंबंधी तीस भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टि तो भवनत्रिकमैं उपजै हैं। सम्यग्दृष्टि सौधर्म ईशानमे उपजे है। बहुरि छाणवे कुभोगभूमिके अर मानुषोत्तर स्वयंप्रभाचल पर्वतके बीचि जे असंख्यात द्वीप तिनके उपजे तिर्यंच भवनत्रिकविषैही उपजे हैं। ऐसे देवनिका उपपाद कह्या।

वहुरि देव चय कौन पर्याय धारे है सो कहे है। भवनत्रिक देव अर सौधर्म ईशान ताईके देव चयकरि एकेंद्रिय बादर पर्याप्त ऐसे पृथ्वीकाय अपकाय प्रत्येकवनस्पतिमे तथा

मनुष्यनिमे पंचेंद्रिय तिर्यंचनिमे उपजे है। सनत्कुमारादिकनिका आया स्थावर नही होय है। वहुरि बारमा स्वर्गपर्यंतका देव चय पंचेंद्रिय पशु तथा मनुष्यमे आय उपजे है। सौधर्मकूं आदि लेय नवग्रेवेयकपर्यंतके आये देव त्रेसठिशलाका पुरुषभी उपजै है। बहुरि अनुदिश अनुत्तरके आये तीर्यंकर तथा चक्रवर्ती बलिभद्र तो आय उपजे हैं। परंतु अर्द्धचक्री नही होय है। बहुरि भवनत्रिक देवतै आये त्रैसठिशलाका पुरुष नही उपजै है। तथा विकलत्रयमे असैनीमै अपर्याप्तिमे नही उपजै है। तथा भोगभूमिमे नही उपजे हैं। अव वैमानिक देवनिके लेश्याका नियम कहनेकूं सूत्र कहे है–

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥

अर्थप्रकाशिका– सौधर्म ईशान स्वर्गमे देवनिके पीतलेश्या हैं। अर सनत्कुमार माहेंद्रके देवनिमे पीत पद्म दोऊ लेश्या हैं। वहुरि ब्रह्मादि तीन युगलनिमे पद्मलेशा कही सो ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ इनमे तो पद्मलेश्या है। अर शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार इनि च्यारनिमे पद्म शुक्ल दोऊ लेश्या जानने योग्य है। आनतादिक शेष कल्पनिविषे शुक्ललेश्या है तहांहू अनुदिश अनुत्तर संज्ञक चोदह विमाननिमें परम शुक्ल लेश्या है। वहुरि कल्प कोन हैं याते सूत्र कहै है–

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥

अर्थप्रकशिका– सौधर्मकूं आदि लेय ग्रैवेयकनिते पहली अच्युतस्वर्गपर्यंत कल्पसंज्ञा हैं। जिनमे इंद्रादिक कल्पना पाईए तातै कल्प संज्ञा है। अर नव ग्रैवेयक नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान इनिमें इंद्रादिक कल्पना नाही है तातै इनकी कल्पातीत संज्ञा है। इन कल्पातीत विमानिमे समस्त अहमिंद्र समानसुख धारे हैं। अव कौन कल्पविषे लौकांतिक देव हैं याते सूत्र कहे है–

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥

अर्थप्रकशिका– ब्रह्मलोक है आलय कहिये निवासस्थान जिनका ऐसे लोकांतिक देव है। वह्मलोक जो पंचम स्वर्ग तिसकें अंतविषे है निवास जिनका अैसे लौकांतिक देव है। अथवा लोक जो संसार ताका अंत जाके भया ते लौकांतिक है। जातैं एकवार गर्भवासमे मनुष्य जन्म लेय निर्वाण प्राप्त होय है तातै लौकांतिक है। अव इनके भेद कहनेकूं सूत्र कहे है–

सारस्वतादित्यवन्ह्यरुणगर्द्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका– सारस्वत, आदित्य, वन्हि अरुण, गर्द्दतोय, तुषित, अव्याबाध,

अरिष्ट। ए अष्टप्रकारके देव ब्रह्म देवलोककी पूर्वादिक अष्टदिशानिमे वसे हैं। इहां ऐसा विशेष जानना। जो अरुण नाम समुद्रमेतै संख्यात योजनका मूलमें विस्ताररूप समुद्रवत् वलयाकार अंधकारका रामूह उत्पन्न भया है। सो अतितीव्र अंधःकारमय परिणम्या है। सौ ऊपरि अनुक्रमकरि वृद्धीकूं प्राप्तहोय मध्यमे अर अंतमे संख्यात योजनका मोटा हैं। सो ब्रह्मस्वर्गका पहला पटलका अरिष्ट नाम विमानका अधोभागकूं प्राप्तहोय कुर्कटकी कुटीवत् अवस्थित होय तिसके ऊपरि अरिष्ट नाम इंद्रक विमानके परिधिरूप च्यारि दिशानिमे दोय दोय अंधकारकी पंक्ति निर्यकलोकका अंतपर्यंत गई हैं। तिन पंक्तिनके अंतरालनिमे सारस्वतादिक देव वसै है। ईशान पूर्व इत्यादिक आठ दिशानि विषै अनुक्रमते आठ लोकांतिक देव जानने।

वहुरि च शद्वतैं इनके विमाननिके आठ अंतरालविषै अग्न्याभ, सूर्याभ, चंद्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वृषभ, कामवर, निर्माणरज, दिगंतरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुद्वस्तु, अश्व, विश्व ए षोडश देवगण दोयदोय वसैहै। ऐसे सर्व चोईस प्रकार है। ते समस्त चोवीस प्रकारके लौकांतिक देव च्यार लाख सात हजार आठसे वीस है। ए समस्तही एक जन्मधारि निर्वाण पावे है। समस्तही चतुर्दश पूर्वके धारक है। स्वाधीन है। हीनता, अधिकता, रहित है। अर विषयनितै विरक्त है। तातै अन्यदेवनिकरि वंदनीक देवर्षि है। निरंतर ज्ञान-भावनामे लीन हैं मन जिनका अर संसारतै नित्य भयभीत है विरक्त है। अनित्य अशरणादि अनुप्रेक्षानिमे जिनका मन लीन है। अतिविशुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक है। तीर्थंकरनिकों तप कल्याणके प्रतिबोधनमैं तत्पर है। ब्रह्मचारी है इनके स्त्रीनिका प्रसंग नही है। अव जे मनुष्यके दोय दोय भव धारणकरि निर्वाण जाय दोय भव शिवाय भवधारण नहीं करे तिन देवनिका नियम कहनेकूं सूत्र कहे हैं–

विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका– विजयादिक च्यार विमानवाले अहमिंद्र दोय भव मनुष्यका लेय निर्वाण जाय है। इहां आदि शद्व प्रकारार्थमें है। तातै विजय वैजवंत जयंत अपराजित तथा नव अनुत्तर विमान इष्ट है तिनका ग्रहण हैं। जातैं इन विषै सम्यदृष्टीहीका उत्पाद हैं। इहां कोऊ कहे आदि शद्वकरि तो सर्वार्थसिद्धिकाभी ग्रहण होय है ताकूं कहिए है। सर्वार्थसिद्धिके देव परम उत्कृष्ट हैं। तातें इनकी संज्ञाही सार्थक है एक भव लेय मोक्ष पावे है। अर विजयादिकनितै आय जीव एक जन्मभी लेवे अर जो दोय जन्मभी मनुष्यके लेवे हैं। तातै ऐसे अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकरि मनुष्य दोय वहुरि संयम आराधि फेरि विजयादिकनिमे उपजे तहांतै चय मनुष्य होय मोक्ष जाय है। ऐसे द्विचरम देहपना है। ऐसे अनुदिश अर च्यार अनुत्तारके देव तो दोय भवभी धारे एकभी धारे। अर सर्वार्थसिद्धिके देव अर दक्षिण इंद्र अर सौधर्मके लोकपाल अर सौधर्मकी शची नाम इंद्राणी एक जन्म

मनुष्यका लेय निर्वाण होय है। ऐसे ग्यारह सूत्रकरि वैमानिक देवनिका वर्णन कीया। अब तिर्यंचयोनि धारकनिके जनावनेंकूं सूत्र कहे हैं—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

अर्थ प्रकाशिका— औपपादिक कहिए नारकी अर मनुष्य इन सिवाय वाकी रहे जे संसारी ते तिर्यंच है। देव नारकी मनुष्य इनिकूं पूर्वें कहे। इनितैं अन्य समस्त संसारी जीव तिर्यंच है। तिनमे सूक्ष्म एकेंद्रिय तो समस्त लोकमें व्याप्त है। लोकका प्रदेशहूं सूक्ष्मविना नहीं। अर वादर एकेंद्रिय पृथ्वीव्यादिकनिके आधार है। अर विकलत्रय अर सैनीपंचेंद्रिय त्रसनालीमे कहूंकहूं पावे है सर्वत्र नही है। अव देवनिकी आयुकी स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥२८॥

अर्थप्रकाशिका— असुरकुमारनिको आयु एकसागरका हैं। अर नागकुमारनिका तीन पल्य आयु है। सुपर्णकुमारनिका अढाई पल्य है। अर द्वीपकुमारनिका दोय पल्य हैं। अर अवशेष रहे जे छह कुमार तिनकी प्रत्येक ड्योढ पल्यकी आयु है। अैसे भवनवासीनिका उत्कृष्ट आयु कहि अव सौधर्म ईशानका आयु कहे है—

सौधर्मेशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥२९॥

अर्थप्रकाशिका— सौधर्म ईशानके देवनिका आयुका प्रमाण दोय सागरतैं कुछ अधिक है। जातैं सौधर्म ईशानमें उत्कृष्ट आयु दोय सागरहीका है। परंतु सम्यग्दृष्टि होय अर घातायुष्क होय तो तिस जीवकै आयु उत्कृष्ट आयुत आध सागर अधिक होय और दोय सागर आयु पावे तो घातायुष्क अढाई सागर अंतर्मुहूर्त घाटि पावे सो वारमा देवलोकपर्यंत घातायुष्कवाला उत्पाद है। आगेकूं नाही।

भावार्थ— पूर्वभवविषै किसी जीवने विशुद्धपरिणामनितै आयुका बंध अधिक कीया था पीछै संक्लेशपरिणामनके वसतैं आयु घटाय थोडा आणि राख्या तिस जीवकूं घातायुष्क कहिए। जैसे कोऊ मनुष्य ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध कीया फिर उसही मनुष्यभवमे संक्लेश परिणामनिके वधनेते आयुकी स्थितिका घात करि सौधर्म ईशानमें जाय उपज्या सो घातायुष्क है सो अन्य देवनिकी दोय सागर प्रमाण आयुतैं आध सागर अधिक आयु पावे है। सो बंध्याहुवा देवआयुका घातकरि पूर्वंले मनुष्य तिर्यंचभवमेही संक्लेशपरिणामनितै होय सो घातायुष्क नामकरि कह्या है। अर देवनिके भुज्यमान आयुका घात नही है। जातैं आयुका घात दोय प्रकार है। एक अपवर्त्तनघात दूजा कदलीघात है। तहां वध्यमान आयुका घटावना सो अपवर्त्तनघात है। अर भुज्यमान आयुका

घटावना कदलीघात है। सो देवनिमे कदलीघात संभवे नहीं तातें अपवर्त्तनघात है। अब अन्य-स्वर्गनिमे आयुका प्रमाण कहे है।

सनत्कुमारमाहेद्रन्योः सप्त ॥३०॥

अर्थप्रकाशिका– सनत्कुमार माहेंद्रमे देवनिका आयु उत्कृष्ट सात सागर हैं। घातायुष्कका आधा सागर अधिक है। अव उपरले स्वर्गनिमें आयु कहनेकूं सूत्र कहे है–

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥३१॥

अर्थकाशिका– तीन सात नव ग्यारह तेरह पंद्रह इन करि सात सागरमे मिलाए अनुक्रमते छह युगलनि विषे आयु जानना। सोही कहियें है। ब्रह्मब्रह्मोतरमे दश सागर कुछ अधिकप्रमाण उत्कृष्ट आयु है। लांतवकापिष्टविषै चोदह सागर प्रमाण कुछ अधिक है। शुक्रमहाशुक्रस्वर्गमे सोलह सागर कुछ अधिक है। शतार सहस्रार स्वर्गविषै अठारह सागर कुछ अधिक है। आनतप्राणत स्वर्गविषै बीससागर प्रमाण आयु हैं। आरण अच्युत दोय स्वर्गके देवनिका आयु वावीस सागर प्रमाण है। इहां सूत्रमें तु शब्द है सो सहस्त्रारपर्यंत कछु अधिक सहित जानना। आगे अधिक प्रमाण नही है। आगे कल्पातीतकी स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे है–

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥

अर्थप्रकाशिका– आरण अच्युत स्वर्गके ऊपरि प्रथम ग्रैवेयकविषै तेईस सागर प्रमाण आयु है। बहुरि ऊपरिऊपरि ग्रैवेयकविषै एकएक सागरप्रमाण आयु वधे है सो नव ग्रैवेयकमें इकतीस सागर प्रमाण आयु है। अर अनुदिशविमाननिमे बत्तीस सागर आयु है। अर विजयादिक अनुत्तरविमाननिमें तेतीस सागर आयु है। इहां सर्वार्थसिद्धिमे उत्कृष्टही आयु है जघन्य आयु नहीं हैं। देवनिका उत्कृष्ट आयु तो कह्या अब जघन्य आयु कहनेकूं सूत्र कहे हैं–

अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥

अर्थप्रकाशिका– सौधर्म ईशानके देवनिका जघन्य आयु एक पल्यतें कुछ अधिक है। अव याके ऊपरि जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे है–

परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तराः ॥३४॥

अर्थप्रकाशिका– पूर्वले पूर्वले स्थानमे जो उत्कृष्ट आयु है सो ऊपरके ऊपरके स्थानविषै जघन्य आयु है। सौधर्म ईशानविषै जो दोय सागरतै अधिक आयु हैं सो सनत्कुमार माहेंद्रमे जघन्य आयु हैं। अर सात सागर अधिक उत्कृष्ट आयु हैं। सोही ब्रह्मब्रह्मोत्तरमे जघन्य है। ऐसे ऊपरि समस्त स्थाननिमे जानना। इहां प्रसंगपाय एता विशेष और जानना। जो जहां जेता

सागरका आयु होय है तितना हजार वरस व्यतीत भए आहार मानसिक ग्रहणकी इच्छा उपजै हैं। अर जेता सागरकी आयु होय तितना पक्ष गया उच्छ्वास होय हैं। जैसे सौधर्म ईशानमें दोय सागरका आयु हैं। अर दोय हजार वरस गए मानसिक आहार होय है। अर दोय पक्ष व्यतीत भए श्वासोच्छ्वास होय हैं। आगे नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति तो कहीथी अब जघन्य-स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे हैं। इहां नारकीनिका प्रकरण नही है तोहू इहां थोरे अक्षरनकरि कह्या जाय यातैं कहे हैं–

नारकाणां च द्वितीयदिषु ॥३५॥

अर्थप्रकाशिका– नारकीनिकीहू द्वितीयादिक पृथ्वीमें ऐसेंही च शद्बकरि स्थिति जाननी। जो रत्नप्रभमैं नारकीनिकी उत्कृष्टस्थिति एक सागरकी है। सो वालुकाप्रभामे तीन सागर जघन्यस्थिति जाननी। ऐसे सप्त पृथ्वीपर्यंत जाननी। अव प्रथम पृथ्वीके नारकीनकी जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे है–

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥

अर्थप्रकाशिका– प्रथमपृथ्वी जो रत्नप्रभा तिस विषे नारकीनिका जघन्य आयु दश हजार वर्षका है। अव भवनवासीनिकी जघन्यस्थिति कहनेकूं सूत्र कहे है–

भवनेषु च ॥३७॥

अर्थप्रकाशिका– भवनवासीनिविषेहू जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है। अव व्यंतरनिहूका जघन्य आयु कहे है–

व्यंतराणां च ॥३८॥

अर्थप्रकाशिका– व्यंतरदेवनिकाहू जघन्य आयु दश हजार वर्षका हैं। अब व्यंतरनिका उत्कृष्ट आयु कहां है सो कहे है–

परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥

अर्थप्रकाशिका– व्यंतरनिका उत्कृष्ट आयु एक पल्य कछु अधिक है। अब ज्योतिष्कनिका आयु कहनेकूं सूत्र कहे है–

ज्योतिष्काणां च ॥४०॥

अर्थप्रकाशिका– ज्योतिषी देवनिका उत्कृष्ट आयु एक पल्य कछु अधिक है। अव ज्योतिषीनिकी जघन्यस्थिति कहे हैं–

तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥

अर्थप्रकाशिका– ज्योतिषी देवनिका जघन्य आयु पल्यके अष्टम भागप्रमाण है। इहां इतना विशेष जानना। चंद्रमाका आयु एक पल्य एक लाख वर्षका है। सूर्यका आयु एक हजार वर्षकरि अधिक एक पल्यका है। शुक्रका आयु सौ वर्ष अधिक एक पल्यका

है। बृहस्पतिका आयु एक पल्यप्रमाण है। शेष जे बुधादिक ग्रह तिनका उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्यका है। नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्यका है। तारकानिका आयुका प्रमाण पल्यका चतुर्थ भाग है। अर नक्षत्रनिका अर तारकानिका जघन्य आयु पल्यके अष्टम भागप्रमाण है। और सूर्यादिकनिका जघन्य आयु पल्यके चौथे भागप्रमाण है।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।।४२।।

अर्थप्रकशिका– वहुरि समस्त लौकांतिक देवनिका आयु अष्टसागरप्रमाण है। ते समस्त शुक्ल लेश्याके धारक है पंच हस्तप्रमाण ऊंचा शरीर है। ऐसे इहां च्यार निकायनिके देवनिका वर्णन कीया। सो ए देव अति उत्तम है इन सबनिका उत्तम ,मनुष्यनिकासा आकार है। एक मस्तक दोय नेत्र दोय कर्ण एक नासिका एक मुख दोय हस्त एक हृदय दोय पग समस्त अति सुंदर आकार अंग उपांग अतिमनोहर उत्तम संस्थानके धारक मल मूत्र हाड मांस चाम रूधिरादिक सप्त धातु सप्त उपधातु रहित महा सुगंध वैक्रियिक शरीर अणिमा महिमादि अनेक शक्तिनिकरि युक्त रोगरहित पसेवरहित मलरहित जिनका शरीर है। अर केश वधनेका संस्काररहित वा फणी भंवरा मस्तकके केशादिक चाहिये तहां स्वयमेव स्याम पुद्‌गल परिणमे हूए केशनिके आकारकूं धारण करे है केशनिका वधना घटना नही है। आहारकी इच्छा मनमेही उपजे है। जब कंठाविषै अमृत श्रवै है तातै तत्काल तृप्त होय है। कवलाहार नही है। मानसिक आहारही चारि निकायके देवनिके है। ऐसे च्यारि अध्यायमे जीवतत्वका वर्णन कीया। सो जीव एकरूपहू है। अर अनेक रूपहू है सो इसका कथन राजवार्तिक श्लोकवार्तिकतै जानना इहां जो सामान्य लिखिये तो संशय दूरि होय नही। अर विशेष लिखिये तो ग्रंथ बधिजाय अर मंदज्ञानी जे है ते नही समझै तिनको बडा कठिण होजाई। तदि वाचनेमै मंदता रहि जाय यातै जहां जैसा प्रयोजन आवेगा तहां तैसा लिख्या जायगा।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अर्थ– ऐसे तत्वार्थका है अधिगम जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं चौथा अध्याय पूर्ण भया ।।४।।

– दोहा –

है जातै तत्त्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ।।
मोक्षशात्र मंगलमय। नमो चतुर्थ अध्याय ।।४।।

चतुर्थ अध्याय समाप्तः

अर्थ प्रकाशिका

(तत्वार्थ टीका)

पं. सदासुखदास विरचित

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

अथ पंचमोऽध्यायः ।।

आगे पंचम अध्यायका प्रारंभ करे है।

– दोहा –

रहै अजीव प्रपंचतै सदा स्वच्छंद अफंद ।।
गहि आपापर नही चहै नमो आप्त निर्द्वंद्व ।।१।।

अब सम्यग्दर्शनका विषयपणाकरि कहे जे जीवादिक पदार्थ निमे अब अजीव पदार्थके विचारका अवसर आया तोंकी भेदसंज्ञा कहनेकूं सूत्र कहे है–

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।।१।।

अर्थप्रकाशिका– धर्म अधर्म आकाश पुद्गल ए चार अजीव ऐसे काय है। इनि च्यारि द्रव्यनिके अजीवपणा अर कायपणा दोऊरूप पावै हैं। जातैं द्रव्य छह है। तिनमे आत्माके तो कायपणा है परंतु अजीवपणा नही। अर कालनाम द्रव्य है ताकै अजीवपणा है अर कायपणा नही। अर धर्म अधर्म काकाश पुद्गलके अजीवपणा अर कायपणा दोऊ है। जिस द्रव्यमे चेतनपणा नही तिसकै अजीवपणा कहिये है। अर धर्म अधर्म काल इनकै चेतनपणा नही तातैं अजीव है। अर प्रदेशनिका वहुतपणातै इन च्यारि द्रव्यनिकै कायपणा है। अर जीवद्रव्यभी बहुप्रदेशी है यातै जीवकैभी कायपणा है परंतु अजीवपणा नही। तातै अजीव ऐसे काय तो च्यारिही द्रव्य है। यहां जो अवयवसहितपणा सोही कायपणा है। अर कालद्रव्य अेकअेक प्रदेश-रूप भिन्न भिन्न है। तातें कायपणा नही है। बहुरि गमनरूप परणमते जीव पुद्गल तिनको एक

के काल गमनकूं सहकारीकारण धर्मद्रव्य है। बहुरि स्थिति रहते जीव पुद्गल तिनको स्थिति रहनेकूं कारण अधर्मद्रव्य सहकारीकारण है। बहुरि समस्त द्रव्यनिकूं अवकाश देनेकूं कारण आकाशद्रव्य है। बहुरि तीन कालविषै अनेक परमाणूनिका मिलन विछुरन शक्तियुक्त पुद्गल द्रव्य है। अव इनिका विशेष कहे है–

द्रव्याणि ॥२॥

अर्थप्रकाशिका– धर्मादिक कहे ते द्रव्य है। त्रिकालविषै अपने गुणपर्यायनिकौ द्रवै प्राप्त होय तातै द्रव्य कहिये। जातैं द्रव्यका लक्षण तीन प्रकार करि परमागमविषै कह्या हैं। एक तो द्रव्यका लक्षण सत् हैं। जातैं सत्ताके अर द्रव्यके भिन्नपणा नही है तातै सत्स्वरूपही द्रव्यका लक्षण है। अर एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य द्रव्यका लक्षण है। द्रव्य है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है। जो एकजातिमे विरोधरहित क्रमतै होती जो भावनिकी परिपाटी तिस विषैं पूर्वस्वभावको जो विनाश सो समुच्छेद है। अर उत्तरस्वभावका प्रगट होना सो उत्पाद है अर पूर्वभावको उच्छेद होते अर उत्तरभावका उत्पाद होतैकू जो अपनी जातिका नहीं छोडना सो ध्रौव्य है। सो समस्त द्रव्यनिमे उत्पाद विनाश ध्रुवपना पाईये है।

कोऊ द्रव्यहू काहू समयमैहू उत्पाद व्यय विनानही है समयसमय परिणति है। पूर्वपरिणतिका अभाव होना सोही उत्तर परिणतिका उत्पाद है। जातै पुर्वकी परिणतिका नाश विना उत्तर परिणति होय नही अर उत्तर परिणतीका उत्पादविना पूर्व परिणतिका विनाश नही। अर पूर्व उत्तर दोऊ परिणति होतैहू द्रव्यका नाश भया नही अर नवीन उपजा नही तातें द्रव्य ध्रौव्य है शाश्वत है। तातै द्रव्यका उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण है। अर गुणपर्यायवान्पणाहू द्रव्यका लक्षण है। द्रव्यकूं कदाचित् कोऊ पर्यायमैहू नही छांडै द्रव्यका स्वभाव रूप गुण है अर क्रमतै होय ते पर्याय है। गुण अर पर्याय दोऊ द्रव्यकौ नही छांडै है। द्रव्य है सो गुणपर्यायरूप है। अव जीवकैहू द्रव्यपणा है सो कहे है–

जिवाश्च ॥३॥

अर्थप्रकाशिका– जीव है तेभी द्रव्य है। जीवभी गुणपर्यायमान् है तातै जीव है तेहू द्रव्य हैं बहुरि पूर्वे कहे जे धर्म अधर्म आकाश पुद्गल अर आगे कहेंगे जे काल ए पांचो अजीवद्रव्य है। अर इहां कह्या जीवद्रव्य कालकरि सहित ए छह द्रव्य जानने। अब इन द्रव्यनिहींकै विशेष कहनेकूं सूत्र कहे है–

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थप्रकाशिका– ए कहे जे धर्मादिक द्रव्य ते नित्य हैं अर अवस्थित है अर अरूपी है। ए धर्मादिक द्रव्य है तिनका गति हेत्वादिक तो विशेषलक्षण है। अर अस्तित्वादि सामान्यलक्षण है। ते द्रव्यार्थिकनयकरि किसही कालमे विनाशकूं प्राप्त नही होयगे तातैं नित्य

है। जिस स्वभावकरि द्रव्य तिष्ठै है तिस स्वभावका नाश नही है तातैं नित्य है। ए धर्मादिक द्रव्य हैं ते अपनी छहकी संख्याकूं नाही छांडै है पांच नहीं होय सात नही होय तातें अवस्थित है। अथवा धर्म अधर्म लोकाकाश अर एक जीव इनके तुल्य असंख्यात प्रदेश है। अर लोकाकाशके अर पुद्गलके अनंतप्रदेशीपणा है। अर कालके एकप्रदेशीपणा है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याकूं नही छांडै है तातैंहू अवस्थित है। द्रव्यविषै विशेषलक्षण है ताकूं द्रव्य छांडै नही। चेतन है ते अचेतन नही होय है। अचेतन है ते चेतन नही होय है। अमूर्तिक है ते अमूर्तिक नही होय हैं। तातैं अवस्थित है। वहुरि अरूपी कहिए रूपादिरहित है अमूर्तिक हैं। इहां रूपके निषेधतैं ताके सहचारि जे रस गंध स्पर्श इनकाहू निषेध जानना ऐसे धर्मादिक द्रव्य अरूपी हैं ऐसे कहनेतैं पुद्गलकेभी अरूपीपनाका प्रसंग आवे हैं ताके निषेधके अर्थि विशेष सूत्र कहे हैं–

रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

अर्थप्रकाशिका– पुद्गलद्रव्य हैं ते रूपी हैं। यद्यपि रूप शब्दके अनेक अर्थ हैं तोहू इहां परमागमकरि कह्या मूर्त्तिक द्रव्यकूं रूपी जानना। इहां रूपी कहनेकरि जे रूपते अविनाभावी जे स्पर्श रस गंध तिनकरि सहिताहू ग्रहण करना। वहुरि इहां "पुद्गलाः" ऐसा वहुवचन है सो पुद्गलके अणुस्कंधादि भेदकरि वहुतप्रकारता जणावै है। अत्र कोऊ पुद्गलकी ज्यों धर्मादिक द्रव्यनिकैंहू वहुतपणा जाणे तो ताके निषेधकूं सूत्र कहे है–

आ आकाशादकद्रव्याणि ॥६॥

अर्थप्रकाशिका– धर्म अधर्म आकाश ए एकएक द्रव्य है। इहां धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनिकौ एकएक कहनेतैंही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनिकै अनेकपना आया। सो आगमकै अनुकूल जीवद्रव्य अनंतानंत है। तिनतें अनंतगुणे पुद्गलद्रव्य है। कालद्रव्य असंख्यात है। धर्म अधर्म आकाश द्रव्यकी अपेक्षा एकएकही है। क्षेत्र अपेक्षा भाव अपेक्षा असंख्यात हैं अनंत है। अब कहे जे एकद्रव्य तिनका विशेषके अर्थि सूत्र कहे है–

निष्क्रियाणि च ॥७॥

अर्थप्रकाशिका– धर्म अधर्म आकाश ए तीन द्रव्य हलन चलन क्रियाकरि रहित है। वाह्य अभ्यंतर निमित्तके वशतैं जो एक क्षेत्रकौ त्यागि अन्य क्षेत्रमे गमन करे सो क्रिया है। सो अभ्यंतर तो द्रव्यमे क्रियारूप परिणमनशक्ति अर वाह्य अन्य पदार्थनिका घात प्रेरणा इन दोऊ कारणनितैं पदार्थका क्षेत्रांतरमे गमन तथा प्रदेशनिका सकंपपना रूप क्रिया होय है सो धर्म अधर्म आकाश तथा आगैं कहेंगे कालद्रव्य ए च्यारोही निष्क्रिय है। अर इनके निष्क्रियपणा कहनेतैं द्रव्यनिके जीव पुद्गलके क्रियावंतपणा जानना कोऊ कहे है जो " अजीवकाया "

इसप्रकार कहनेतै द्रव्यनिके प्रदेशनिका अस्तित्वमात्रपणा तो जान्या परंतु संख्या नही जानी। यातै प्रदेशनिकी संख्या जनावनेकूं सूत्र कहे है –

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

अर्थप्रकाशिका– धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अर एक जीवद्रव्य इनके एकएकके असंख्यात प्रदेश है ते समान है। जेता क्षेत्रकूं अविभागी पुद्गलपरिमाणु रोकिकरि तिष्ठै है तितना क्षेत्रकूं रोके सो प्रदेश हैं। ऐसे व्यवहार करिए है। तिनमे धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्य ए दोऊ निष्क्रिय है सो आकाशका अत्यंतमध्यमै असंख्यात प्रदेशनिकूं व्यापकरि निश्चल तिष्ठै है। अर जिस अवसरमे केवली होय लोकपूरण समुद्घात करे है तिस मेरुगिरके निचे चित्रा अर वज्राका पटलनिके बीचि आत्माका मध्य अष्टप्रदेश तिष्ठै हैं। अर अन्य समस्त असंख्याते प्रदेश उपरि नीचे तिर्यक् समस्त लोकाकाशकुं व्याप्त होय है। आकाशके प्रदेशनिकी संख्या कहनेकूं सूत्र कहे है–

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

अर्थप्रकाशिका– आकाशद्रव्यकै अनंतप्रदेश है जेता आकाश क्षेत्रकूं अविभागी पुद्गल परमाणु रोकै ताकूं एकप्रदेश कहिए हैं। यद्यपि आकाश अखंड एकद्रव्य है तोहू परमाणूकरि मापिए तो अनंतपरमाणू होय है याहीतै अनंतप्रदेशी कहिए है। अर केई अन्यमती आकाशक्षेत्रकूं सर्वथा निरंशही माने सों अयुक्त है जातैं आकाशक्षेत्रमे अनेकपदार्थ भिन्नभिन्न तिष्ठे हैं। जैसे यह ग्राम है यातै मठ आगे है। वापीका याकै पाछै है ऐसा देशविभाग प्रत्यक्ष हैही तातै आकाशमे विभाग कैसे नहीं मान्या जाय। इहां अनंत कह्या सो अलौकिकप्रमाण विशेष है। अर अनंत ऐसा प्रमाणकूं सर्वमतके माने है। केई लोक धातुकूं अनंत माने है। केई प्रकृतिकै अर पुरूषकै अनंतपना कहे है। केई दिशाकूं कालकूं आत्माकूं आकाशकूं अनंतमानें है। तातै अनंत हैही। वहुरि स्वाद्वादमतमे आकाशकूं द्रव्यअपेक्षा एक कहे है तोई विभाग कल्पनाकरि आत्मसहित हैही। अव पुद्गलनिके प्रदेशप्रमाण कहे है–

संङख्येयासंङख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

अर्थप्रकाशिका– पुद्गलद्रव्यके प्रदेश संख्यातहू है असंख्यातहू है च शद्वकरि अनंतभी है। जातै शुद्ध पुद्गलद्रव्य तो अविभागी एक परमाणु है। परंतु पुद्गलपरमाणुनिमे मिलन विछुरन शक्ति है तातै केई स्कंध दोय परमाणुका केई तीन च्यार इत्यादिक संख्यातका कोऊ असंख्यातका कोऊ अनंत परमाणुका स्कंध है। अव इहां कोऊ अशंका करै जो लोक तो असंख्यातप्रदेशी है यामैं अनंतानंत परमाणुका स्कंध कैसे तिष्ठे है। ताकूं उत्तर कहे है। सूक्ष्म परिणमनते अर अवगाहनासामर्थ्यतें यो दोष नही आवे है। परमाण्वादिक सूक्ष्मभावकरि

परिणमे हुए एकएक आकाशका प्रदेशमें अनंतानंत तिष्ठे हैं यातैं विरोध नही है। ऐसा एकांत नही है जो अल्प आधारविषैं महान द्रव्य नही तिष्ठैं। प्रचयका विशेषतैं अल्पक्षेत्रविषैं वहुतनिका अवस्थान देखिए है। जैसे चंपाका पुष्पकी डोडी तो अल्प है। अर तामे सूक्ष्मसंचयरूप परिणमनतैं गंधका अवयव एते निकसे है तिनकरि समस्त दिशा व्याप्त होजाय हैं। ऐसेंही केतकींका पुष्प तो अल्प है अर तामे सुगंध परमाणु एते निकसैं है तिनकरि कोशन पर्यंत सुगंध चलीजाय। तथा विलका फल तथा छाणा तथा आला काष्ठ इन विषैं प्रचयविशेषतैं एते पुद्‌गलस्कंध हैं जो अग्निकरि वालिए तो धूमधूप होय समस्त दिशानिमें भरिजाय तैंसे अल्पहू लोकाकाशमें अनंतानंत जीव अनंतानंत पुद्‌गलनिका अवस्थान है यामें विरोध नही है। अव पुद्‌गलके प्रदेशवर्णन कीए तो परमाणूहू पुद्‌गल है याकेहू प्रदेशका प्रसंग आया यातैं परमाणुकैं प्रदेशका निषेधके अर्थि सूत्र कहे है–

नाणोः ॥११॥

अर्थप्रकाशिका– अणु जो परमाणु ताकै प्रदेश नही हैं। जातैं परमाणुके प्रदेशमात्रपणोंही है। ऐसे आकाशका एक प्रदेशके भेदको अभाव है यातै अप्रदेशपणों है। तैंसे परमाणुकेहू प्रदेशमात्रपणातै प्रदेशभेदको अभाव है। वहुरि परमाणुतै अन्य कोऊ सूक्ष्म पदार्थ नाही तातै परमाणुके प्रदेशनिका भेद करिए तातैं स्वयमेव परमाणु अप्रदेशी है। अर जो अणुकेहू प्रदेश होय तो याके अणुपणा नहीं होय। अव इहां कोऊ कहे जो अणुके अप्रदेशपणातैं गधाका सिंगकीज्यों अभाव आया सो अभाव नहीं है। जातै प्रदेशमात्र है परमाणुकूं गधाका सिंगिकीज्यों अप्रदेश नहीं कह्या है। अव कोऊ या कहै जो परमाणुके आदि मध्य अंत है की नहीं हैं। जो है तो प्रदेशवान्‌पणा परमाणुके आया। अर जो आदि अंत मध्य नहीं तो गधाका सींगज्यों अभाव आया। सो नहीं है। जैसे विज्ञानके आदि मध्य अंत नहीं है तोहू विज्ञानका अस्तित्व हैही तैंसे परमाणुका अस्तित्वभी हैही। अव धर्मादिक द्रव्यनिका आधार जनावनेकूं सूत्र कहे है–

लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

अर्थप्रकाशिका– धर्मादिक द्रव्यनिको लोककाशमे अवगाह है आकाश नाम द्रव्य सर्वंतरफ अनंतानंत है। तिसके मध्यविषैं जितना आकाशमे धर्मादिक द्रव्य पाईए सो लोकाकाश हैं। जहां छहू द्रव्य अवलोकन कीए सो लोकाकाश है। अर बाहिर सर्वंतरफ अनंतानंत केवल आकाश है ताकूं अलोकाकाश कहिए है। अर लोकका क्षेत्र तीनसे तीयांलीस राजूप्रमाण असंख्यात है। सो यो लोकाकाश धर्मादिक द्रव्यनिका आधार है। अब कोऊ आशंका करै। जो धर्मादिकनिका लोकाकाश आधार है तो आकाशका अन्य कौन आधार है। ताकूं उत्तर कहे है। जो आकाशद्रव्यके अन्य आधार नही, यो तो आपके आधारही आप है। इसतै

अन्य कोऊ वडा महान् द्रव्य नाही, ताके आधार आकाश तिष्ठै। तातैं सर्वतरफ अंतरहित आकाश सो आपके आधारही आप है। अर जो आकाश आपके आधार आप नहीं होय तो अनवस्था दोष आवे।

वहुरि एवंभूतनयकी अपेक्षा करि तो अब इहां कोऊ आशंका करे। जो आकाशकूं आधेय कह्या अर ताके आधार धर्मादिक द्रव्य कह्या तब कूंडेमे ओरकीज्यों पूर्वै आकाश तिष्ठैथा पछै धर्मादिक याके आधार तिष्ठे। तदि इनके संयुक्त कोई लोकमे तिष्ठनेते अनादि-पणाका अभाव आया नवीन संसर्ग ठहऱ्या तातैं आधाराधेयपना कहना सदोष भया। ताका उत्तर। जो तुम दोष दीया सो नहीं हैं। जो संयुक्त होय सिद्ध नहीं भए तिनकेहू आधाराधेय-पणा देखिए है। जैसे शरीर अर हस्त इनकी युगपत् उत्पत्ति होतेहू हस्तके आधार शरीर है। जातैं शरीरके अर हस्तके उत्पत्ति पहली, पाछै नहीं हैं अर पहली अन्य अन्य थे, पछै युक्त होय सिद्ध भए नहीं है। तोहू शरीरके आधार हस्त है हस्तके आधार अंगुली है अंगुलीके आधार नख है। तैसे आकाश अर धर्मादिक द्रव्य इनके अनादिपरिणामिक यौगपद्यताकी सिद्धि होतैं पहली पछै ऐसा भेद नही होतैंहू आकाशके अर धर्मादिक द्रव्यनिके आधाराधेयपणा सिद्धि है, तातैं यो एकांत नहीं है, जो युतसिद्धकेही आधाराधेयपणा होय अर अयुतसिद्धके नहीं होय। अयुतसिद्ध तो जैसे स्तंभमे सार अर युतसिद्ध जैसे कुंडेमें ओर दोऊनिके आधाराधेयपणा प्रगट देखिए है तातैं अनेकांतके प्रभावतैं यो उलाहनो नही है। अब धर्म अधर्म द्रव्यका अवगाह लोकमे कैसे है यातैं सूत्र कहे है–

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

अर्थप्रकाशिका– धर्मंद्रव्य अर अधर्मंद्रव्य ए दोय द्रव्य समस्त लोकाकाशके प्रदेशनिमे व्याप्यकरि तिष्ठे है। जैसें तिलनिमे तेल व्यापि रह्या है तैसे धर्म अधर्म दोऊ द्रव्य लोकाकाशके समस्त प्रदेशनिमें व्याप्यकरि तिष्ठै हैं तातै इनके अभिव्यापक आधार है। जैसे गृहका एक देशमे घट तिष्ठै, तैसे इनका लोकमे अवस्थान नही है।

वहुरि कोऊ कहे। जो लोकाकाशका प्रदेशनिमे धर्म अधर्म द्रव्यका प्रदेश विरोध रहित तिष्ठै है। एक प्रदेशमे तिनके प्रदेश कैसे समावे हैं। ताका उत्तर। जो जल भस्म खांड इत्यादिक मूर्तिक द्रव्यही एक क्षेत्रमे विरोधरहित तिष्ठैं है तो अमूर्त्तिक धर्म अधर्म आकाश इनीके विरोध होय।

भावार्थ– एक घडा जल करिके भऱ्या हुवा तामे भस्म क्षपिए तो एकघट भस्म माजाय वा खांडका घडा माजाय वहुरि लोहकी सूई माजाय ऐसा देखिए है। जो स्थूल मूर्तिक द्रव्यहि परस्पर अवकाशदान दे हैं तो अमूर्तिक अवकाशदान कैसे नहि देवे। वहुरि भेदसंघातपूर्वक

आदिसहित जिनके संबंध होय ऐसे अतिस्थूल स्कंध तिनमे केईकनिके प्रदेशनिके तिष्ठनेमे विरोध है। अर धर्मादिक द्रव्यनिके तो आदिनाम संबंधी नहि पारिणामिक अनादिसंबंध है इनिके कैसे परस्पर विरोध होय। अब पुद्गलनिके अवगाहनविशेषके जाननेकूं सूत्र कहे है–

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका– लोकाकाशका एकप्रदेशतैं लगाय असंख्यातप्रदेशनिपर्यंत अनेकप्रकार पुद्गलनिका अवगाह है। एक परमाणुको एक आकाश प्रदेशविषै अवगाह है। अर दोय परमाणु खुलीवा बंधीको एकप्रदेशमे अवगाह वा दोय प्रदेशमें अवगाह है। तीन परमाणु खुलीवा बंधीको एकप्रदेशमे अवगाह है वा दोयमे वा तीनमें अवगाह है। ऐसे संख्यात असंख्यात अनंत प्रदेशनिका स्कंधका एक लोकाकाशका प्रदेशमैंभी अवगाह है। अर दोय तीन इत्यादि संख्यात असंख्यात प्रदेशनिमैंहू अवगाह जानना। द्रव्यनिमे यह अवगाहनशक्ति है तातैं परस्पर अवकाश दान देहै। जैसे एक घरमे अनेक प्रकाश वर्त्तेहै तहां क्षेत्रका विभाग नही है। अर एकक्षेत्रमें अवगाह होनेतैं तिन प्रकाशनिके एकपणाहू नही है। तैसे एक लोकाकाशका प्रदेशमे अनंत पुद्गलपरमाणूनिका स्कंध सूक्ष्मपरिणमनशक्तितें तिष्ठें है अर एक नही होजाय है। वहुरि द्रव्यनिका स्वभाव है सो प्रेरणा नही कीया जाय है जो ऐसे होहु ऐसे मति होहु। यातैं अवगाहन स्वभावपणाते एक द्रव्य प्रदेशविषैं वहुत स्कंधनिका तिष्ठना विरोधकूं नही प्राप्त होय है। वहुरि आर्ष जो परमागम तामेंभी ऐसें कह्या है।

उगाढगाढणिचिदो। पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ॥
सुहुमेहिं वादरेहिं अणंताणंतेहिं विविहेहिं ॥१॥

अर्थ– यो लोक समस्त सर्वतरफते सूक्ष्म अर बादर नानाप्रकारकें अनंतनंत पुद्गलकायकरि गाढा गाढा भर्‍या है। तातैं आगमप्रमाणतैंहू निश्चय करना योग्य है। अब जीवनिका अवगाह कैसे है यातैं सूत्र कहे है–

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥१५॥

अर्थप्रकाशिका– लोकका असंख्यातभागादिमे जीवनिका अवगाह हैं। इहां लोकशब्दकी पूर्वसूत्रते अनुवृत्ति है। तिस लोकाकाशका असंख्यातभाग कीजे सो एक असंख्यातवा भागहू असंख्यातप्रदेशप्रमाण है। तिस एक असंख्यातवा भागमे एक जीवकी अवगाहना तिष्ठैहै वा दोय असंख्येय भाग मे वा तीन च्यार इत्यादिक असंख्येय भागमे एक जीवकी अवगाहना है जातैं जघन्य अवगाहनाका धारक सूक्ष्मनिगोद या लब्धपर्याप्तक जीव ताका शरीरहू असंख्यात प्रदेश प्रमाण अवगाहनाकूं धारे है तातैं लोकका असंख्येय भागादिकमें एक जीवकी अवगाहना कही यद्यपि अवगाहना नाना जीवनिकी जघन्यते लेय उत्कृष्टपर्यंत एकएक प्रदेश अधिक पाइए है

तोहू वे लोकके असंख्यातवे भागही कहावे है। अर नाना जीव तो समस्त लोकमें है कोऊ प्रदेश जीवविना नही है। अव कोऊ कहे जो एक जीवकी अवगाहना लोकाकाशका असंख्यातवा भागमें कंसे है एक जीवका लोकप्रमाण प्रदेश है तातैं सर्व लोकमें व्याप्त चाहिए ताकूं उत्तररूप सूत्र कहे है–

प्रदेशसंहारविसर्प्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥

अर्थप्रकाशिका– जीवका प्रदेश लोकाकाशकै समान है तोहू दीपककीज्यों संकोच विस्तार होनेंतें जैसा आधार होय तिस प्रमाण होय तिष्ठैहै। यद्यपि आत्माका अमूर्त्तिक स्वभाव है अर लोकाकाश तुल्य प्रदेशी है तोहू अनादिकालतैं कर्मतैं एकक्षेत्रावगाहरूप होय कथंचित् मूर्तिकपणाको धारण करैहै। तातैं कर्मके वशतैं ग्रहणकीया जो छोटा वडा शरीरमैं वसैहै जैसा शरीरका आधार होय तैसैं संकोच विस्तारकूं प्राप्त होयहै। जैसैं दीपक छोटे बडे भाजनमे धरिए तिस प्रमाणही प्रकाश संकोच विस्तारकूं प्राप्त होयहै। छोटे बडे शरीरमैं तिष्ठता आत्माका लोकप्रमाण प्रदेश है ते घटैं वधैं नाहींहै। अव कोऊ कहैं जो आत्माका प्रदेश संकोच होतें कहांताई संकुचैं। ताकूं कहेहै। सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याप्तक जीवके अंगुलकै असंख्यातवैं भाग अवगाहना है ताकेभी असंख्यातप्रदेश हैं तिस प्रमाणतैं घटै नाहींहै। अव कोऊ कहे है जो धर्मादिक द्रव्यनिके नानापणौं मति कहो जातै देश संस्थान काल दर्शन स्पर्शन अवगाहनादिक करि अन्यद्रव्यनितैं अभेद है। सोही कहेहै। जिस देशमें धर्मद्रव्य तिष्ठैं तिस क्षेत्रमैंही अन्यद्रव्य तिष्ठैहै तातैं देश भिन्न नहींहै। अर जो धर्मको संस्थान आकार सोही अन्यद्रव्यनिको है तातैं संस्थान भिन्न नहीहै। अर तीन कालमै धर्मादिक समस्त द्रव्यनिकी तुल्य प्रवृत्ति है तातैं कालहू अभिन्न है अर प्रत्यक्षज्ञानी भगवान् जिस क्षेत्रमै धर्मद्रव्य देख्या तिसहीमै अन्यद्रव्य देखे तातैं दर्शन अभिन्न है। अर धर्मादिक समस्त द्रव्य सर्वात्मस्वरूप करि परस्पर स्पर्शनहू करैहैं तातैं अवगाहनभी अभिन्न है सर्वगतपणातैं अर अरूपीपणों द्रव्यपणों क्षेत्रपणों इन करि भी भिन्न नहींहैं। तोहू धर्मादित पल्टी परस्पर एक होजाय है प्रदेशनिकरि भेद है स्वभावकरि भेद है लक्षणही करि भेद हैं। यातैं जैसैं रूप रसादिकनिको तुल्य आधार होतैहू लक्षणका भेदतैं भेद है। तैसैं भिन्न लक्षण कहनेकूं सूत्र कहेहैं–

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरूपकारः ॥१७॥

अर्थप्रकाशिका– जीव पुद्गलनीकैं गति उपकार धर्मद्रव्यकृत है अर स्थिति उपकार अधर्मद्रव्यकृत है। जीव पुद्गल एक क्षेत्रमै अन्य क्षेत्रमै गमनक्रिया करैहैं। तहां गमन करनेकी शक्ती तो जीव पुद्गलहीकी है सो तो अंतरंग कारण है। अर वहिरंगसहकारी अविनाभूतकारण धर्मद्रव्य है। जो जीव पुद्गल गमन करै तो धर्मद्रव्य सहकारीकारण है अर नही गमन करैं तो प्रेरणा नही करैहै। परंतु धर्मद्रव्यका सहायविना गमन नही होय सकै तातै अविनाभूत सहकारी-

कारण है जैसे मच्छिके गमन करनेकी शक्ती तो आपहीमैं है। परंतु वहिरंग सहकारी अविनाभूत कारण जल है। यद्यपि मच्छि गमन नहि करै तो जल प्रेरणा नही करै है तथापी जलका सहायविना गमन नहीं करी सकै तातै मच्छीनिकै गमन करनेकूं जल सहकारीकारण है। ऐसैं धर्मद्रव्य जीव पुद्गलके गमनकूं सहकारीकारण है। वहुरि ऐसैंही गमनपूर्वक स्थिति रहते जीव पुद्गल तिनिकूं अधर्मद्रव्य अविनाभूतसहकारीकारण है। जैसें ग्रीष्ममैं गमन करते पथिककैं वृक्षकी छाया सहकारी अविनाभूतकरण है। इहां पूछैंहै। जो भूमि जलादि पदार्थही गति स्थिति रूप उपकारविषैं समर्थ है धर्म अधर्म द्रव्यनिका कहा प्रयोजन हैं। तहां कहिए है। भूमिजलादिक तो कोई कोई द्रव्यको एक एक प्रयोजनविषैं अनुक्रमते गमनादि उपकार करनेमें समर्थ हैं। अर धर्म अधर्मद्रव्य है ते समस्तही जीवपुद्गलनिकौ एककाल गति स्थितिको साधारण आश्रय है वहुरि एककार्यकौ अनेककारण साधैंहैं तहां दोष नाहीं। इहा तर्क। जो धर्म अधर्म द्रव्य काहुके देखनेमें आए नहीं तातें धर्म अधर्म द्रव्यही नहींहै। ताका समाधान। जो इनका नेत्रनिकरि देखना नहीं यातें अभाव मति कहो। ए परोक्ष पदार्थ है। नेत्रादिन इंद्रियनिके ग्रहणमैं नहीं आवनेतैं अभाव कैसैं कहोहो। सर्वही मतमैं प्रत्यक्षपदार्थं परोक्षपदार्थ मानिए है। जो इंद्रियनिका ग्रहणमैं नहीं आवनेंतैं अभाव मानोगे तो समस्त स्वर्ग नरक परलोक पुण्यपाप ईश्वरादिक समस्तका अभाव मान्यांजायगा। वहुरी हमारे स्याद्वादीनिकें मतमैं भगवान सर्वज्ञ वीतराग प्रत्यक्ष देखि करि कह्या है तातै सर्वज्ञकै प्रत्यक्ष होनेतैं धर्मादिक द्रव्य प्रत्यक्षभी हैंही तिनके सत्यार्थ प्रमाणभूत उपदेशतै परोक्षज्ञानीहू अंगीकार करैंहै। वहुरी ए धर्म अधर्म द्रव्य परोक्ष है अमूर्तिक है। तिनका उपकारके संबंध करि अस्तित्व निश्चय कीजिए है। जीव पुद्गलके गति स्थितिकूं ए निमित्त है। वहुरी क्षणक्षणविषैं तिनके गती आदिका भेद है ताते तिनके हेतुकेभी भिन्नपणा मानिए है। इस सूत्रका विशेष जाननेका इच्छक है ते राजवार्तिक श्लोकावर्त्तिकते जानहु। अव आकाशद्रव्यका उपकार दिखावनेकूं सूत्र कहे है–

अकाशस्यावगाहः ॥१८॥

अर्थप्रकशिका– सर्वद्रव्यनिको अवकाशदान देना आकाशद्रव्य उपकार है। इहां उपकार शब्दकी पूर्वके सूत्रते अनुवृत्ति जाननी। जीवादिक अवकाश देनेयोग्य द्रव्यनिको अवकाशदान देना आकाशद्रव्यका उपकार है। इहां तर्क। जे जीवपुद्गलादिक क्रियावान है तिनको तो अवकाशदान देना युक्त है परंतु धर्मादिक द्रव्य तो नित्यसंबंधरूप है निःक्रिय है तिनको अवकाशदान देना आकाशकें कैसे संभवे। ताका समाधान। जो गति स्थिति क्रियासहित जे जीवपुद्गल द्रव्य है तिनकी अपेक्षा तो आकाशके अवकाश देना मुख्य उपकार है। अर धर्मादिकनिकी अपेक्षा गौण है उपचारते अवकाशदान देना सिद्ध है। वहुरि तर्क। जो आकाशका अवकाशदान देना गुण है तो मूर्त्तिक द्रव्यनिके परस्पर प्रतिघात रूकना अयुक्त है अर परस्पर घात देखिए है। वज्रपातादिकनिकरि पाषाणादिकनिका घात-

देखिए है। भितिकरि गवादिकनिका घात देखिए है तातै आकाशके अवकाशदान देना कैसे वने। ताका उत्तर। पुद्गलनिका परिणमन स्थूलसूक्ष्मादि अनेक प्रकार है। तिनमे स्थूल पुद्गलनिके परस्पर प्रतिघात है ते स्थूलपुद्गल परस्पर अभिघात करे है सूक्ष्म नही करे है सूक्ष्मके परस्पर प्रवेशिका सामर्थ है स्थूलपुद्गल परस्पर रोके है। यामे आकाशका दोष नही है। रुकना भिडना परस्पर पुद्गलनिका सामर्थ्य हैं। सूक्ष्मपुद्गल है ते परस्पर अवकाशदान देवेहि है। वहुरि इहां ऐसा जो अवगाह गुण तो समस्तद्रव्यनिमेही है तथापी आकाश सवतै भरा है तातैं प्रधानपने अवकाश दान देना याहीका गुण है। सर्व पदार्थनिको साधारण युगपत अवकाश देहै। वहूरी इहां कोऊ कहे। अलोकाकाशविषे अवगाह करनेवाला कोऊ द्रव्य है नाहीं तहां अवकाशदानभी नाहीं सो तहां आकाशके अवकाश देना कैसे कहिए ताका उत्तर। तहां कोई अवगाह करनेवाला नाहीं तो अवकाशका कहा दोष, आकाशका अवगाह देना तो गुण विगडा नहीं। जो द्रव्यका स्वभाव है ताकूं द्रव्य छांडे नहीं हैं जैसे अहगाह करनेवाला हंसका अभाव होतेभी जलका अवगाह्यपणाका अभाव नहीं होय है तैसे अलोकाकाशके अवकाशदान सामर्थ्यकी हानि नहींहै। पुद्गलकृत उपकार दिखावनेकूं सूत्र कहेहै—

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥

अर्थप्रकाशिका— शरीर वचन मन प्राणापान कहिए उछ्वासनिश्वास ए पुदललकृत उपकार जीवनीके है। शरीर है सो समस्त वचनादिकका आधार है तातैं प्रथम कह्या। औदारिकादि शरीर है सो तो पुद्गलमय हैही—

इहां कोऊ कहे। शरीरनिकौ पौद्गलिक कह्या सो तो ठीक परंतु कार्मणशरीर तो निराकार है सो निराकारकै पुद्गलपणो कैसे होय? आकारवान औदारिकादि शरीरनिकैही पुद्गलपणो युक्त है। ताकू कहेहै। जो कार्मणशरीरहू निराकार नहीहै आकारवानही है सूक्ष्म पुलद्गमयही है तातैं नेत्रादिकनिके ग्रहणमे नहीं आवनेतैं निराकार नहींहैं मूर्तिमान है यातैं पौद्गलिकही है। जातैं मूर्तिक पदार्थके निमित्ततै कर्मनिका उदय आवना देखिए है। जैसे गुड बोर झडीकी मदिरा वनें है सो मदिरा मूर्तिक है ताकैं पीवनेतैं चित्रके भ्रमरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मका उदय आवेहै। तथा निंव भक्षण करनेतै असातावेदनीय उदय आवेहैं कांटा चुभनेतै असाता उदय होय है। इत्यादि मूर्तिक द्रव्यनिके संबंधतैं उदय होते देखिए है तातै कार्मणशरीरहू मूर्तिक पुद्गलमयही है ऐसा निश्चय करना। बहुरी वचन दोय प्रकार है। एक भाववचन एक द्रव्यवचन। मतिश्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतै अर अंगोपांग नाम कर्मके लाभका निमित्ततै आत्माके वोलनेकी शक्ती होई सो भाववचन है। सो पुद्गलकर्मके निमित्तमैं भया तातै पौद्गलिक है। वहुरि तिस बोलनेका सामर्थ्य सहित आत्माके कंठ तालु जिव्हा इत्यादिक स्थाननिकरि प्रेरे जे शब्दरूप पुद्गलस्कंध सो द्रव्यवचन है सोहू पुद्गलते उपज्या पुद्गलमयही है। श्रोत्रेंद्रियके विषय है तातै पुद्गलतै अन्य नही—

अव इहां कोऊ शंका करे। जो वचनकूं पुद्‌गल कहोहो तों अन्यपुद्‌गलनिकीज्यो फिरहू ग्रहणमे क्यो नही आवे ? वचन उत्पन्न होय एकवारही श्रोत्रइंद्रियका ग्रहणमे आवे है निरंतर ग्रहणमे नहीं आवेहै। ताकूं कहिएहै। जैंसे विजुलीके पुद्‌गल चक्षुइंद्रियके ग्रहणमे आयकरीके फेरि समस्त दिशामे विखरिजाय है फेरि नही दीखेहैं। तैसे वचनरूपहू पुद्‌गलस्कंध कर्णइंद्रियका ग्रहणमे आय समस्त तरफ विखरिजाय तब फेरि श्रवणमे नहीं आवैहै। कर्णइंद्रिय शब्दहीकूं ग्रहण करे रूपादिककूं नहीं ग्रहण करे। जिस इंद्रियका जो विषय होय तिसकूं नियमकरि ग्रहण करे अर परका ग्रहण नहीं करे। अव कोऊ या कहो शब्द हैं सो नेत्र इंद्रियका ग्रहणमैं क्यो नहीं आवे। ताकू कहिएहै। जैंसे घ्राण इंद्रिय गंधहीकूं ग्रहण करेहै रसादिककूं ग्रहण नही करे हैं। अर रसना इंद्रिय रसकूंही ग्रहण करे है। रूपादिककूं ग्रहण नहीं करे। तैसे चक्षु इंद्रियहू रूपहीकूं ग्रहण करे है शब्दादिककूं नहीं ग्रहण करे है। अव कोऊ या कहै जो शब्द अमूर्त्तिक है अमूर्त्त जो आकाश ताका गुण है सो नही है। कैसे अमूर्त्तिक नहीं ताका उत्तर कहे हैं–

जों शब्द अमूर्त्तिक होय तो मूर्त्तिमान श्रोत्र इंद्रिय तिसकरि कैसे ग्रहण कीयाजाय। अमूर्त्तिक होयगा सो इंद्रियनिके ग्रहणमैं नहीं आवेगा। अर अमूर्त्तिक होयगा सो मूर्त्तिमानकरी प्रेरणाकूं नहीं प्राप्त होयगा। अर शब्द हैं सो मूर्त्तिक पवनकरी आककाहूं फद्याकीज्यों प्रेर्‍या हुवा अन्यदिशामे तिष्ठते पुरूषनिके ग्रहणमे आवेहै। तथा शद्वकरि चूनापाषाणकी दीवालभीति फाटिजाय है। घावफाटिजाय है गर्भपतन होजाय है तातैं शब्द मूर्त्तिकही है। जो अमूर्त्तिक होय तो मूर्त्तिक करि कैसे प्रेरणाकू प्राप्त होय। वहुरी शब्द है सो मूर्त्तिक करि रूकेहै। नाली-मे शद्व रूकेहै भीतितैं शब्द रूकेहै जो अमूर्तिक होय तो मूर्तिक करि कैसे रूके। बहुरी मन दोय प्रकार है। द्रव्यमन अर भावमन। तहां ज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमतै पाया जो गुणदोषके विचारस्मरणकी शवतीरूप लब्धि तथा उपयोग सो तो भावमन हैं। सो पुद्‌गलकर्मके क्षयोपशमतै भया तातै पौद्‌गलिक है। वहुरि तिस भावमनसहित आत्माके अंगोपांग नाम कर्मके उदयतै गुणदोषके विचारस्मरणका उपकारी हृदयस्थानविषे सूक्ष्मपुद्‌गलनिका प्रचयरूप द्रव्यमन है ते पुद्‌गलमय हैही।

वहुरि वीर्यांतराय ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्मका उद-यकी है अपेक्षा जाके ऐसा आत्मा ताकरि ऊंचा लीया जो कोष्ठतैं पवन सो तो उछ्वासलक्षण प्राण कहिए। बहुरि तिसहि आत्माकरि वाहिरका पवन अभ्यंतर कीया सो निःश्वास है ताहि अपान कहिए है। ए दोऊही पुद्‌गलमय है मूर्तिक है हस्तादिकरि रूकतैं देखिए है। शरीर-विषै पवनका बंधान है सो आत्माका उपकारी है।

शरीरमे श्वासोश्वास आदि चेष्टा आत्माका अस्तित्व जनावैं हैं। या प्रकार शरीरा-दिक है ते पुद्‌गलमय जानना इनकरि जीवको उपकार है। बहुरि इहां उपकारशब्दकाअर्थ भला

करनाही नही लेना कछु कार्यको निमित्त होय तिसको उपकारी कहिए है। अव औरहू पुद्गल-कृत उपकार कहनेकूं सूत्र कहे है–

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥

अर्थप्रकाशिका– सुख दुःख जीवन मरण एभी उपकार पुद्गलका कीया जीवके है, वाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्ततैं सातावेदनीयका उदयते आत्माके प्रसन्नताई प्रीतिरूप होना सो सुख है। तथा असातावेदनीयका उदयतैं आत्माका संक्लेशरूप परिणाम सो दुःख है। वहुरि आयुनामकर्मके उदयते भवमे स्थिति रहता जीवके उछ्वासनिश्वासादिक क्रियाका विच्छेद नही होना सो जीवित है।

वहुरि जीवितका उच्छेद होना सो मरण कहिए। ए जीवनिके होहैं सो पुद्गलके निमित्ततैं होहै तातैं पुद्गलका उपकार कहिए। वहुरि इहां अन्य विशेष लिखिए है। तहां केई अन्यमती ऐसे कहे है जो सुख दुःख तो देहकेही होहै आत्मा तो सुख दुःखतैं रहित हैं। तथा केई कहै आत्मा तो सर्वथा नित्य है अमर है मरेही नाही। तथा केई आत्माको अनित्यही कहे है। इत्यादिक एकांत कल्पना करे है तिन सवनिका निराकरण इस सूत्रतैं जानना। जातैं सुख दुःखका संवेदन तो जीवके है। पुद्गल अचेतन जड है ताके सुखदुःखका संवेदन नही संभवे है। वहुरि उछ्वासनिश्वासादि प्राणानिका उच्छेद नही होना सो जीवना अर प्राणनिके उच्छैदकरी शरीर छूटि अन्य शरीरकी प्राप्ति होनां सो मरना है। सो यहां अन्यमती जो आत्माकूं नित्यही वा अनित्यही एकांतरूप कल्पना करे है तिनके मतमे निर्बाध कथन नही वनैहै। जातैं सर्वथा नित्य माने ताके सुखदुःख जीवन मरणादिक परिणति नही वणि सके हैं। तातैं वस्तुका स्वरूप नित्यनित्यात्मक माने तिसहीके निर्बाध कथन होय। बहुरि सूत्रमे उपग्रह शब्दके ग्रहणकरि पुद्गलका पुद्गलभी उपकार करे है। जैसे कतकफल जलका उपकार करे है भस्मादिक कांस्यादिकको उपकार करे है। अव आत्मकृत उपकारहू कहे है–

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

अर्थप्रकाशिका– जीवनिकेहू परस्पर उपकार हैं। स्वामी सेवकका उपकार वित्तादिक देनेकरि करे है। स्वामीका हित करनेकरि अर अहितका निषेधकरि सेवक स्वामीका उपकार करे है। दोऊ लोकके फलका देनेवाला उपदेशकरि वा उपदेशके अनुकूल आचरण करावनेकरि आचार्य शिष्यका उपकार करे हैं। अर शिष्य है ते आचार्यनिके अनुकूल प्रवृत्तिकरि आचार्य-निका उपकार करे है। अव कालकृत उपकार दिखावे है–

वर्त्तनापरिणामक्रियापत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

अर्थप्रकाशिका– वर्त्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालद्रव्यकृत उपकार है। धर्मादिक द्रव्यनिके वर्तना आदिक कालके निमित्ततै होईहै सोही दिखाइये है। धर्मादिक द्रव्य है ते आपही आपने उपादानकारणकरी अपने पर्यायनिके उत्पादरूप वर्तैहैं। सो तिस वर्तनाका वाह्य निमित्त चाहिए। जातै वाह्य उपकार निमित्तविनां अंतरंग परिणति होइनाही सो तहां तिनको वहिरंग निमित्त काल है। तहां तिस वर्तनाका समय है सोही कालका चिन्ह है। सव द्रव्यनिके वर्तावनेवाला काल द्रव्य है। याहीकरी कालका निश्चय कीजिये हैं। यह वर्तना है सो कालद्रव्यका अस्तित्व जनावे है। जातें गौण है सो मुख्यविना होईनाही। वहुरि इस वर्तनाकूं जेतीवार लगै है सो व्यवहार काल है।

वहुरि जो द्रव्य अपने स्वभावकूं नहीं छांडिकरि पर्यायका रूपकरि पलटना सो परिणाम है। तहां धर्मादिक द्रव्यनिके अगुरुलघुत्वगुणका अविभाग परिच्छेद रूप अनंत परिणाम है। तहां ते हानि वृद्धि सहित है। अतिसूक्ष्म स्वरूप हैं। वहुरि जीवके औपशमिकादि भावरूप परिणाम है। तथा गति कषाय क्रोधादिक परिणाम है। अर पुद्गलके वर्णादिक परिणाम है तथा घटादि अनेक रूप है। इहां ऐसा जानना, जो द्रव्यके पर्यायकूं परिणतिकूं परिणाम कहिए कैसीहै पर्याय जो पूर्व अवस्थाकूं छांडि दूसरी अवस्थारूप होना। वहुरि एकक्षेत्रते अन्यक्षेत्रविषै गमन करना सो क्रिया है। सो क्रिया जीव पुद्गल दोयहीके होय है।

वहुरि जाकूं वहुतकाल लागे ताकूं परत्व कहिए। अल्प कालका होय ताकूं अपरत्व कहिए। ऐसे द्रव्यके वर्तना आदि कहे ते कालके निमित्ततें होय है अन्य द्रव्यनिकुं यह कालका उपकार हैं। धर्मादिक द्रव्यनिकै पर्याय समयसमय पलटैहै। सो इस पलटनिको समय जो काल सोहि निमित्त है तातै ऐसा कहिए जो द्रव्यनिका पर्याय वर्तैहै ताका वर्तावनेहारा कालद्रव्य है वहुरि यहां कोऊ कहै। जो वर्तनाही भेदपरिणामादिक हैं तातें एक वर्तनाही कहना था तिनका जुदाजुदा ग्रहण अनर्थक है। ताका समाधान। जो अनर्थक है नाही। यहां कालके दोय प्रकार सूचनेके अर्थि विस्तार कह्या है। काल दोय प्रकार है एक निश्चयकाल एक व्यवहारकाल। तहां निश्चयकाल तो वर्त्तनालक्षण है। अर परिणामादिक ते व्यवहार कालभी जानिए है। जीव पुद्गलके परिणामनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीन प्रकार है। भूत वर्तमान अनागत वहुरि परमार्थकाल जो निश्चयकाल ते लोकाकाशके एकएक प्रदेशनिविषै भिन्नभिन्न असंख्यात कालाणुद्रव्य है ते परमार्थकाल है ते कालाणुपरिणतिरूप वर्तै है। परद्रव्यके परिणतिरूप नाही वर्तैहैं आपअपनी परिणतिरूपहि वर्तैहै सो परद्रव्य तो वाह्यनिमित्त हो है। तिनकि वर्तना सर्वद्रव्यनिके परिणमनप्रति निमित्त है। अव पुद्गल गुण कहे है–

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥

अर्थप्रकाशिका– पुद्गल है ते स्पर्श रस गंध वर्ण गुणनिकरि सहित है। कोमल,

कठोर, हलका, भारी, सीत, उष्ण, सचिक्कण, रूक्ष ए अष्टप्रकारका स्पर्श है। बहुरि खाटा, मीटा, कडवा, कषायला, चिरपरा, ए पंचप्रकार रस है। बहुरि सुगंध, दुर्गंध, ऐसे दोय भेदरूप गंध है। बहुरि कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत, ए पंचप्रकार वर्ण हैं। ऐसे बीस भेद है। इन एकएकका एक दोय तीन चार संख्यात असंख्यात अनेक भेद है। अर अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद है। ए स्पर्श रस गंध वर्ण जिनके होय ते पुद्गल है। समस्त पुद्गलनिके ए च्यारों गुण निश्चय करनां। इहां केई अन्यमति कहे है। जो पृथ्वी आदिके परमाणु जातिभेद रूप है पृथ्वी आदिकनिके परमाणु जुदीजुदी जातिके है कदाचित परस्पर एक होय नही जुदेही रहे है। तहां पृथ्वीके परमाणुमे तो स्पर्श रस गंध वर्ण ए चार गुण है। अर जलविषै गंधविना तीनगुण कहे है। अग्निविषै गंध रस दोऊ नाही है। स्पर्श वर्ण दोयही गुण है। पवनविषै गंध रस रूप ए तीन गुण नाही है एक स्पर्शगुणही है। ऐसे कहे है सो अप्रमाण है। जातै पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु जातिभेदके रूप नही है। एक पुद्गलही पृथिव्यादि अनेक प्रकार परिणमे है। सबनिमे स्पर्श रस गंध वर्ण ए च्यार गुण है। गुणनिकी हीनता कोई पुद्गलमैंभी नही है। पृथ्वीतै जल होना जलतै पृथ्वी होना इत्यादि जातिसंकर देखिए है। पृथ्वी जो पाषाण तथा काष्ठते अग्नि प्रगट होय है। अग्नितैं कज्जल तथा भस्मादिक पृथ्वी प्रगट होय है। चंद्रकांत मणि पृथ्वी है। तातै जल प्रगट होते देखिए है। जलतैं मोती तथा लवण ए पृथ्वी उपजते देखिए है। पृथ्वी जो जव नाम अन्न ताके भक्षणतैं वाय उपजती देखीए है जातै पृथ्वी जलादिक ए समस्त पुद्गलद्रव्यकेही विकार है सर्वही चारो गुणनकरी सहित है सो आगम अनुमानकरि सिद्ध है। ऐसे पुद्गलद्रव्यका गुण तो कह्या आगे पुद्गल द्रव्यके पर्यायनिकू कहे है–

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥

अर्थप्रकाशिका– शब्द बंध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इनि पर्यायनिसहित है ते पुद्गलद्रव्य है। तहां शब्द दोय प्रकार है। एक भाषात्मक एक अभाषात्मक। तिनमें भाषात्मकहू दोय प्रकार है। एक अक्षररूप एक अनक्षररूप। तिनमें अक्षररूप तो शास्त्रादिककरी प्रगट कीया संस्कृत वा देशभाषारूप आर्य म्लेंछनिके व्यवहारकारण है। अर अनक्षररूप द्वींद्रियादिकनिकी तथा अतिशयरूप ज्ञानके प्रकाशनेकू कारण केवलीकी दिव्यध्वनि सो ए समस्तही भाषा पुरुषके प्रयत्नतैं भई प्रायोगिक है।

बहुरि अभाषारूप शब्द है सोभी दोय प्रकार है। एक प्रायोगिक, एक वैस्रसिक, पुरुषके यत्नतैं उपजे ते प्रायोगिक कहिए है। बहुरि पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित स्वाभाविक होय सो वैस्रसिक है। सो मेघगर्जनादिकका है। अर प्रायोगिक च्यार प्रकार है। तत, वितत, घन, सौषिर तिनमे चर्मके तननाब्दिकतैं उपजें नगार ढोल मृदंगादिकके शब्द ते तत

कहिए। वहुरि तितारके वीणासह तार तमूरा इत्यादिकतै उपज्या शब्द ताकूं वितत कहिए है। वहुरि ताल घंटादिकके हलावनेकरि उपजा सो घन है। वहुरि वासरी संख आदिकते उपजा सो सुषिर है। ऐसे शब्दके भेद कहे। वहुरि बंध दोय प्रकार है। वैस्रसिक अर प्रायोगिक, तहां जो पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित होय सो वैस्रसिक है। सो वैस्रसिक दोय प्रकार है। एक आदिमान एक अनादिमान। तिनमे स्निग्ध रूक्षादि गुणनिके निमित्ततैं बिजुली उल्कापात वादला इंद्रधनुष्यकूं आदिमान वैस्रसिक बंध कहिए।

बहुरि धर्म अधर्म आकाश इत्यादिकनिकै अनादि बंध है। वा पुद्गलनिमे महास्कंधादिकनिके अनादि बंध है। वहुरि पुरुषके प्रयत्नतै बंध सो प्रायोगिक है। सो दोय प्रकार है। एक अजीवविषय एक जीवाजीवविषय। तहां लाखके अर काष्ठके बंध्र सो अजीवविषय बंध है। वहुरि कर्मनोकर्मबंध है सो जीवाजीवविषय है। वहुरि सौक्ष्म्य दोय प्रकार है अंत्य अर आपेक्षिक, तहां परमाणु तो अंत्य सूक्ष्म है। अर वीलतै आमला सूक्ष्म है। आमलातैं ओर सूक्ष्म ऐसे अन्यकी अपेक्षातै सूक्ष्म सो आपेक्षिकसूक्ष्म है। वहुरि स्थौल्यभी दोय प्रकार है। एक अंत्य दूजा आपेक्षिक, तहां जगद्व्यापी महास्कंध तो अंत्यस्थौल्य है। अर ओर आमला वील तालफल इत्यादिक अन्यकी आपेक्षातै आपेक्षिक स्थौल्य है।

वहुरि संस्थान दोय प्रकार है। एक इत्थंलक्षण एक अनित्यंलक्षण, इहां संस्थान नाम आकृतिका है। तहां गोल त्रिकोण चौकोर लंवा चौडा परिमंडलरूप तो इत्यंलक्षणसंस्थान है। अर जो वादलेनिकीज्यों जिनका आकार आकृति नहीं कहीजाय सो अनित्थंलक्षण है। वहुरि भेद है ते छह प्रकार है। उत्कर, चूर्ण, खंड, चूर्णिका, प्रतर, अणुचटन ऐसे छह प्रकार है। तहां जो करवतादिकनिकरि काष्ठादिकनिका ऊर उतरना सो उत्कर नाम भेद है। यवांको गोहांको सातू वा कणिकादिक सो चूर्ण नाम भेद है। अर घटादिकनिका कपाल खंडशर्करादिक होय सो खंड नाम भेद हैं। उडद मूंग चोंला इत्यादिकनिकी दाली सो चूर्णिका नाम भेद है। अर अभ्रपटलादिकनिका मुडत उनलै है सो प्रतर नाम भेद है। तप्त लोहपिंडादिकनिकों लोहके घनादिककरि घातकरिए तदि स्फुलिंगनिका निर्गमन होय सो अणुचटन नाम भेद है। ऐसे छह प्रकार भेद कह्या।

वहुरि प्रकाशका विरोधी अंधकार सो तम है। वहुरि प्रकाशके आवरणका कारण सो छाया है। सो दोय प्रकार है। तहां काचविषै मुखका वर्णादिकनिका परिणमन दिखना सो तद्वर्णपरिणति नाम छाया है। वहुरि दूजी प्रतिबिंव स्वरूपही हैं। वहुरि सूर्यविमानकै निमित्ततै उत्तमप्रकाश होय सो आताप कहिए। वहुरि चंद्रकांतमणि आज्ञा इत्यादिकका प्रकाश सो उद्योत कहिए। ते शब्दादिक कहे ते समस्त पुद्गलकी पर्याय है वहुरि सूत्रमें च शब्द कह्या तातै प्रेरणा अभिघात आदिभी होय ते पुद्गलके विकार है तिनकाहू समुच्चय च शब्दकरि होय है। तैसेही औरहू अनेकप्रकार पुद्गलका पर्याय जानना।

वहुरि इहां केई अन्यमती शद्बकों आकाशका गुण मानें है सो अप्रमाण है जातै शद्ब मूर्तिक है आकाश अमूर्तिक हैं सो शद्ब आकाशका गुण कैसे होय। बहुरि शब्दका मूर्तिकपणा साक्षात है जातै शद्बकों कर्णइंद्रियकरि ग्रहण करिए है तथा हस्तादिकरि रुकिए है। भीती इत्यादिकरि रुकै है। पवनादिक मूर्तिकवस्तुनिकरि तिरस्कार होय है। तातै शद्ब है सो पुद्गलद्रव्यका पर्याय है मूर्तिक है यह प्रमाणसिद्ध है। पुद्गलस्कंधनिके परस्पर भिडनेतै शद्बपर्याय प्रगट होय है। अव पुद्गलनिमे भेद कहे हैं–

अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका– पुद्गद्रव्यके अणु अर स्कंध ए दोय भेद है। एक प्रदेशमात्रहीमें स्पर्शादिक गुणनिकरि निरंतर परिणमे है। तातै अणु कहिए है। सूक्ष्मपणाते आपही आदि आपही मध्य आपहीं अंत ऐसा सुक्ष्म अविभागी जाका विभाग नही होय सो परमाणु है। अर जो स्थूलपणाकरि ग्रहण निपेक्षपणादि व्यापारकूं प्राप्त होय सो स्कंध है। अर ग्रहण निपेक्षपणादिक व्यापारके योग्य नही होय ऐसे सूक्ष्म परिणमनरूपहू स्कंध होय है। परमाणुविषे रूक्ष सचिक्कणमतै एक गुण होय अर शीत उत्तममेतै एक ऐसे दोय गुण तो स्पर्शके हैं। अर एक रस एक गंध एक वर्ण ऐसे पांच गुणसहित होय है। जातै परमाणु निरवयव है याकै अंश नाही जाकै अवयवसहितपणा होय ऐसे मातुलिंगादि फलके अनेक रसपणा देखिए है। मयूरादिकनिके अनेकवर्णपणां देखिए हैं। अनुलेपनादिकनिके अनेक गंधपणा देखिए है। परमाणु अवयवरहितही है यातै रग गंध वर्ण इनका एकपणा ही है। अर स्पर्शके दोयही भेद है। जातै हलका भारी नरम कठोर ए स्कंधके विषय हैं तातै परमाणु नहीं है। वहुरि व्द्यणुकादि वहुत परमाणुके मिलनरूप स्कंध है ते स्पर्श रस गध वर्ण गुणनिसहित अनेक प्रकार है। ऐसें पुद्गलद्रव्यके अणु स्कंधरूप दोय भेद जानने। यद्यापि व्द्यणुकादिक तथा स्पर्श रस गंध वर्णादिकरी अनंतभेदरूप है तथापि इन दोऊ भेदनिमे गर्भित है। अव स्कंधनिकी उत्पत्तिके हेतु कहनेकूं सुत्र कहे हैं।

भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका– पुद्गलनिके स्कंध है ते भेदते तथा संघाततै उपजे है। वाह्य अभ्यंतर निमित्तके वसतै स्कंध विदारेजाय सो भेद है। वहुरि न्यारे न्यारे होय तिनका एकपणा सो संघात हे। इहां भेद अर संघात दोऊनिके वहुवचन है तातै तीसरा भेद जो भेद अर संघात दोऊनितैहू स्कंध उपजे है। तहां दोय वा तीन च्यार इत्यादि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणु मिलि स्कंध होय है। वा केई स्कंधनिमे कोई स्कंध वा परमाणु मिलि स्कंध होय है ऐसे संघाततै स्कंधनिकी उत्पत्ति कही। अर तैसेही स्कंधके भेद होतै दोय परमाणुका स्कंधपर्यंत स्कंध उपजे है। वहुरि ऐसेही कोई स्कंधका मेद होय कोई अन्य स्कंधका मिलना

होय ऐसे भेद संघाततैंभी स्कंध उपजै है। अव अणुकी उत्पत्तीका नियमके अर्थि सूत्र कहे है।

भेदादणुः ॥२७॥

अर्थप्रकाशिका–परमाणु है सो भेदहीतैं उपजेहै संघाततै नही उपजेहै। अव इहां कोऊ कहै जो संघाततैंही स्कंधाकी उत्पत्ति होयहै फेरि भेदसंघातका ग्रहण करना अनर्थक है ऐसे कहतैं इनका ग्रहण करनेका प्रयोजन जनावनेकूं सूत्र कहेहै–

भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥

अर्थप्रकाशिका–इंद्रियगोचर जो स्कंध होयहै सो भेद संघात दोऊनितैं होयहै। अनंतपरमाणुनिका स्कंध है तो कोऊ स्कंध चक्षु इंद्रियके गोचर होय कोऊ स्कंध चक्षु इंद्रियगोचर नाही होय। सो कैसे नेत्र इंद्रियके गोचर होय इस हेतुतैं 'भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः' ऐसा सूत्र कह्याहैं केवल भेदहीतैं नेत्र इंद्रियके गोचर नहीं होयहै। भेद संघात दोऊनितैं होयहैं। सोही कहीएहै जो सूक्ष्मपरिणमनरूप स्कंध है ताका भेदकूं होतेहू अपने सूक्ष्मपरिणामकूं नाही छांडे है तदि इंद्रियनिके ग्रहणमैंहू नाही आवेहै। अर जव वह सूक्ष्मपरिणया स्कंध अन्य स्कंधमे संघातरूप होय मिले तव सूक्ष्मपणाके परिणामको छांडि स्थूलपणाको प्राप्त होय चक्षु इंद्रियकेगोचर होय है इंद्रियनिकरि ग्रहण करनेयोग्य होयहै। अव द्रव्यका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहेहै–

सत् द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥

अर्थप्रकाशिका – द्रव्यका लक्षण सत् है। जो सत है सोही द्रव्य है। यह सामान्य अपेक्षाकरि द्रव्यका लक्षण है। जाते सर्व द्रव्य सत्मय है जो सत् है सो द्रव्य है। इहा ऐसा विशेष जानना। जो सत्को भाव ताहि सत्ता कहिए वा सत्व कहिए। सत् नाम अस्त्विका है जो वस्तु है सो सर्वथा नित्यपणा करिके नहीहै अर सर्वथा क्षणिकपणा करिके नहीहै। सर्वथा नित्यही होय तो क्रमतैं होते जे वस्तुमे अनेक भाव तिनका अभावतै विकारवानपणा कैसे होय अर सर्वथा क्षणिक जो क्षणविनाशिकही मानिये तो यो वस्तु जो पूर्वै था सोही है ऐसा प्रत्यभिज्ञानका अभाव होय तदि वस्तुके एकसंतानपणा काहेतैं होय तातैं प्रत्यभिज्ञानवा कारणभूत कोऊ स्वरूप करिके तो वस्तु ध्रुवपणाकूं अवलंवन करेहै। अर कितने क्रमतैं प्रवर्ततै स्वरूपकरि नष्ट होता अर उत्पन्न होता संता एककालविषै निश्चयथकी उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप तीन अवस्थाकूं धारण करता वस्तुकूं सत् मानना योग्य है। ऐसें सत् वस्तु तीन है याहीतै सत्ताकूंहू उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप मानना योग्य हैं जातैं अर भाववानके कथंचित् एकस्वरूपपणा है। अव जो यो सत्ता है सो त्रिलक्षणरूप समस्त वस्तुके समूहमे सदृशपणाकूं कहेहै। जो यो सत् है। ऐसे समस्त त्रिलक्षण रूप वस्तुकूं सत् कहे है तातै एक है। बहुरि त्रिलक्षण रूप समस्त पदार्थनिकूं जो सत् ऐसा नाम कहिए है वा सत्पणाकी प्रतीत करिए है

तिनका मूल सत्ता है तातैं या सत्ता सर्वपदार्थस्थित है। वहुरि समस्त वस्तूका स्वभाव जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रिलक्षण स्वभाव तिनकरि सहित व्यावर्त्तै है तातैं या सत्ता विश्वरूप है। वहुरि द्रव्यनिमे पर्यायनिकी अनंत व्यक्ति है ते रामस्त व्यक्ति त्रिलक्षणरूप हैं। तिनतैं सत्ता जानिए है। यातैं या सत्ता अनंत पर्याय है। ऐसें या सत्ता है तोहू सर्वथा ऐसीही एकांततै नही है। अपना प्रतिपक्षीकरि सहित है कथंचिन् सत्ता कथंचित् असत्ता कथंचित् त्रिलक्षणा कथंचित् अत्रिलक्षणा कथंचित् एका कथंचित् अनेका कथंचित् एकपदार्थस्थिता कथंचित् सर्वपदार्थस्थिता कथंचित् एकरूपा कथंचित् विश्वरूपा कथंचित् एकपर्याया कथंचित् अनेकपर्याया ऐसे सत्ताकूं अनेक भेदरूप कहे है।

सत्ता दोय प्रकार है। एक महासत्ता, एक अवांतरसत्त, तिनमे समस्त पदार्थनिका समूहमे व्यापनेवाली सदृश अस्तित्वताकी कहनेवाली सो तो महासत्ता है। जाकरिके घट पट स्तंभ पृथ्वी आकाश जल स्थल अजीव अजीव समस्त द्रव्यसत् कहावे है। जो योभी सत् समस्त सत्रूपही है सो तो महासत्ता है। अर वस्तुवस्तुप्रति नियमतैं भिन्न भिन्न अपनेअपने स्वरूपके अस्तित्वकूं सूचनेवाली अवांतरसत्ता है। तिनमे महासत्ता तो अवांतरसत्ताकी अपेक्षा असत्ता हैं। जातैं महासत्ता जो समस्त वस्तुकी सत्ता सो एकवस्तुकी सत्ता कैसे होय। जो समस्तवस्तुकी सत्तारूप जो महासत्ता एकवस्तुकी सत्ता होजाय तो समस्तवस्तु एकवस्तुरूप होजाय सो होयनही तातैं अवांतरसत्ताकी अपेक्षा महासत्ता असत्ता है। अर अवांतरसत्ता महासत्तारूपकरि असत्ता है। जातैं एकवस्तुकी सत्ता महासत्ता कैसे होय। जो एक वस्तुकी सत्ताही महासत्ता होजाय तो समस्त वस्तु एक होजाय। तातैं सत्तातैं प्रतिपक्षी कथंचित् असत्ता है।

वहुरि जिस स्वरूपकरि उत्पाद है सो तिस स्वरूपकरि उत्पादही एक जाका लक्षण है। अर जिस स्वरूपकरि विनाश हैं तिस स्वरूपकरि विनाशैकलक्षणही है। अर जिस स्वरूपकरि ध्रौव्य है तिस स्वरूपकरि ध्रौव्यैकलक्षणही है। जैसे उत्पाद है सो घटपणाकरिकेही है। पिंडपणाकरिके नही है। अर मृत्तिकापणाकरिके नही है। अर विनाश है सो पिंडपणाकरिकेही है। घटपणाकरिके नही है। अर मृत्तिकापणाकरि नही है। अर ध्रौव्य है सो मृत्तिकापणाकरिकेही है घटपणा करिके पिंडपणाकरिके नही है। ऐसे उत्पद्यमान उच्छिद्यमान अवतिष्ठमान जे वस्तुके स्वरूप तिनके प्रत्येक त्रिलक्षणपणाको अभाव है यातैं कथंचित् अत्रिलक्षणपणा त्रिलक्षणपणाका प्रतिपक्षीहू वस्तुके है। वहुरि जो एक वस्तुका स्वरूपकी सत्ता है सो अन्यवस्तुका स्वरूपकी सत्ता नही होय है तातैं एकपणाका प्रतिपक्षी अनेकपणा है। वहुरि पदार्थपदार्थप्रति सत्ताका जुदाजुदा नियम है कोऊ पदार्थकी सत्ता कोऊ अन्य पदार्थकी सत्तासे मिले नही तातैंही पदार्थनिके जुदाजुदापणाका नियम है तातैं सर्व पदार्थ स्थितिका प्रतिपक्षी एकपदार्थस्थितिपणा है।

वहुरि जिस पदार्थका जो रूप है तिस रूपकी सत्ता तिस पदार्थहीमे है अन्यमे नही तातै एक रूपपणा सविश्वरूपका प्रतिपक्षी है। वहुरि एकएक वस्तुके अनंत पर्याय है तिनमे एकएक पर्यायप्रति सत्ताका जुदाजुदा नियम है। यातैही पर्यायनिके भिन्नता है तातै कथंचित् एकपर्यायपणा अनंतपर्यायका प्रतिपक्षी जानना। ऐसे सामान्यविशेषस्वरूपका प्ररूपणमे समर्थ ऐसी दोऊ नयनिके आधीन समस्त कथन निर्दोष है। नयनिकूं जानेविना वस्तुका यथावत् जानना नही होय तदि एकांतग्रहणकरि विपरीतताकूं प्राप्त होय हैं। अव सत्का लक्षण कहनेकूं सूत्र कहे है–

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥

अर्थप्रकाशिका– उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनपणाकरि युक्त है सो सत् है। अपनी जातिकों नाही छांडते जे चेतन अचेतन द्रव्य तिनके वाह्य अभ्यंतर निमित्तके वशतै एक परणतितै अन्य परणतिकौं प्राप्त होना सो उत्पाद है। जैसे मृत्तिका द्रव्यविषै पिंडपर्यायका नाश होना अर घटपर्यायका उपजना ऐसे उत्पाद जानना। तथा एक जातिमे विरोधरहित क्रमते होता जो भावनिका संतान ताके विषै पूर्वभावका अभाव होना सो विनाश है ताहिकूं समुच्छेद कहिए है। व्यय कहिए है। अर उत्तर भावका प्रगट होना सो उत्पाद है। अर पूर्वभावका नाश अर उत्तर भावका उत्पाद होतैकू आपनी जातिका नाही छांडना सो ध्रौव्य है। ए उत्पाद व्यय ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न है वोही एकद्रव्य है द्रव्यतै भिन्न नही है। अर विशेषकी अपेक्षा समस्तपर्यायिक्रमवर्ती जुदीजुदी है परस्पर मिलैनही तिस करि भिन्न है। द्रव्यविषै तीनो धर्म युगपत् एककालमे पाइए है द्रव्यका स्वभाव है याहीतै द्रव्यका लक्षण हैं। जातैं जो उत्तर-पर्यायका उपजना सोही पूर्वपर्यायका नाश होना है अर जो पूर्वपर्यायका नाश होना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है अर द्रव्य है सो उत्पादमे हूवैही द्रव्य है अरव्ययमे हुवैही द्रव्य है अन्य नाही भया अर उत्पाद व्ययद्रव्यमे समयसमय होइ है जातै सर्वद्रव्य परिणामी है परिणमनविना कोऊ समयमैहू द्रव्य नही है। तातै जो सत् लक्षण द्रव्य हैं सो उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप ही है।

वहुरि ए तीनों द्रव्यमे परस्पर सापेक्षही हैं। इनके जो परस्पर अपेक्षा नही होइ तो वस्तुही सिद्ध नही होइ। जो केवल उत्पादही मानिए तो नवीन वस्तुका उपजना ठहरे सो अत्यंत असत् ताका उपजना संभवै नही पूर्वं जो वस्तु सत्रूप होयगा ताकेही अन्य पर्यायका उपजना होयगा अर जो पूर्वै सर्वथा असत् था अर फिर नवीन उपज्या मानिए तो मृत्तिकविना घटका उत्पाद अर सुवर्णविना कुंडलका उपजना होयगा सो सर्वथा अवस्तुका उत्पाद होना नही हैं। पर्याय नवीन उपजै है अर विनसै हें द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाश नही है।

वहुरि सर्वथा वतुस्का विनाशही मानिए तो तिसका फेर उपजना नही ठहरेगा केवल शून्यका प्रसंग आवेगा। घटका विनाश होतै मांटिका विनाश अर कुंडलका विनाश होतैं

सुवर्णका नाश ऐसे प्रत्यक्ष दोष आवे। अर जो एकांतकरि ध्रौव्यही मानिए तो वस्तुमे उत्पाद विनाश प्रत्यक्ष देखिएहैं तिस समस्त व्यवहारके असत्पना आवै तब व्यवहारका लोप होय। तथा उत्पाद व्यय रूपहीकूं एकांतकरि सत् कहिए तो पूर्वापरका जोड रूप नित्यभावविना वस्तुका अभाव भया तदि उत्पाद व्यय कौंनमैं होय समस्तव्यवहारका लोप होय तातै सत् है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। अथवा आगे सूत्र कहेंगे जो गुण पर्याय द्रव्यका लक्षण है। अनेकांतस्वरूप वस्तुके अन्वयी जोडरूप तो गुण है। अर व्यतिरेकी पर्याय है जैसें मृत्तिकाविषै स्पर्श रस गंध रूप ये तो गुण है। अर पिंड घट कपाल खंड शर्करादिक पर्याय है। स्पर्श रस गंध वर्ण गुण है ते तो मृत्तिकाकी साथिही घट कपाल खंडादिक समस्त पर्यायनिमे पाईए है तातै स्पर्शादिक गुण अन्वयी हैं। अर घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमे पाइए है जिस कालमे पिंडपर्याय है तिस कालमे घटादिक अन्य पर्याय नही अर घटपर्याय है तिसमें पिंडादिक पर्याय नहीं तातै पर्याय व्यतिरेकी हैं। अर द्रव्यतै गुण पर्याय भिन्न नही गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है। गुण है ते तो द्रव्यमे युगपत् प्रवर्त्तै है। पर्याय है ते क्रमकरि प्रवर्तै है तातै गुण पर्याय है ते द्रव्यका स्वभावभूत है तातै द्रव्यका लक्षणपणाकू धारण करे है ऐसे द्रव्यके तीन लक्षण कहे।

एक द्रव्यका लक्षण सत् कह्या। एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कह्या। एक गुणपर्यायवान्पणा कह्या। इन तीन लक्षणनिके मध्य एककू कहते संते अन्य दोय लक्षण अर्थतैही आजाय है। जो सत् लक्षण कहिए तो उत्पाद व्यव ध्रौन्यवान्पणा अर गुणपर्यायवान्पणा स्वयमेव आवे है अर उत्पादव्ययध्रौन्यवान् कहिए तहां सत्पणा अर गुणपर्यायवान्पणा स्वयमेव आवे हैं। अर गुणपर्यायवान्पणा तहां सत्पणा अर उत्पादव्ययध्रौन्यपणा आपेही आवे है। जो सत् है सो नित्यानित्य स्वभाव है यातै ध्रुवपणा अर उत्पादव्ययपणाकू प्रगट करे है।

वहुरि जो सत् है सो ध्रुवस्वरूप गुणनिकरि अर उत्पादव्ययस्वरुप पर्यायनिकरि सहित अपना एकपणाकू कहेही है। वहुरी उत्पाद व्यय ध्रौन्य जे है तेहू नित्य अनित्य है स्वरूप जाका ऐसा परमार्थभूत सत्कू जणावे है। अर अपने स्वरूपका लाभका निमित्त गुणपर्यायनिकूहू विस्तारे है। जातै उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होयगा सो नित्यअनित्यरूपही होयगा। अर गुणनिविना ध्रौन्यपणा कैसे होय। अर पर्यायविना उत्पाद व्यय कोनका होय तातै गुणपर्यायवानहू होयही। वहुरि गुणपर्याय है ते अन्वयव्यतिरेकीपणातै ध्रौव्य उत्पाद विनाशकू अर नित्य अनित्य स्वभाव सत्कू जणावेही है। यातै एकलक्षण कहनेते स्वयमेव तीनू लक्षण आवे है।

वहुरि उत्पाद अर विनाश द्रव्यके नही है। जातै द्रव्य तो सहप्रवृत्तगुण अर क्रमप्रवृत्तपर्याय इनिका सद्भावरूपकरि अनादिनिधन है। कदाचित् गुणपर्यायका द्रव्य नाश नहीं है तातै द्रव्य तो उपजे नही अर विनसेभी नही। अर द्रव्य अपने सहभावी गुणनिकरि ध्रौव्य है तोहू क्रमप्रवृत्तरूप पर्यायनिकरि उपजैहू है। तातै द्रव्यार्थिकनयकरिके तो द्रव्यके उत्पादहू नही

अर विनाशहू नही। अर पर्यायार्थिकनयकरि उत्पादसहित अर विनाशसहित द्रव्यकूं जानना योग्य है। बहुरि कथंचित् द्रव्यके अर पर्यायके भेद नही है द्रव्यपर्याय एकही हैं। जैसे दुग्ध दधि नवनित घृत इनि पर्यायनिविना गोरस नाम द्रव्य कोऊ कहावे नही है गोरस होयगा सो दुग्ध दधि नवनीत घृत इनि पर्यायनिमैंही होयगा इन विना कहू नही तैसे पर्यायविना द्रव्य है ही नही। वहुरि जैसे गोरसविना दुग्ध दधि नवनीत घृत कहूं है नांही तैसे द्रव्य विना पर्याय कहूं है नाही। तातै द्रव्यके अर पर्यायनिके नयके वशतै कथंचित् भेद होतैहूं द्रव्य अर पर्यायका अस्तित्व भिन्न नही है अस्तित्व एकही है। यातैं द्रव्यके अर पर्यायके वस्तुपणाकरि भेद नही वस्तु एकही है। अैसेही द्रव्यके अर गुणकैंहू भेद नही हैं। जैसे पुद्गलद्रव्यते भिन्न स्पर्श रस गंध वर्ण नही है तैसे द्रव्य विना गुण नहीं है। अर जैसे स्पर्श रस गंध वर्णतै जुदा पुद्गलद्रव्य नही संभवे है तैसे गूणविना द्रव्य नही संभवे है। तातै द्रव्यके अर गुणनिके कथंचित् भेद होतेहूं अस्तित्व एकका नियम है तातं वस्तुपणाकरि अभेद हैं। यहां द्रव्यके नयका वशतै कही सप्तभंगी है।

स्यादस्ति द्रव्यं। स्यान्नास्ति द्रव्यं। स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं। स्यादवक्तव्यं च द्रव्यं। स्यादस्ति वक्तव्यं च द्रव्यं। स्यन्नास्ति च वक्तव्यं च द्रव्यं। स्यादस्ति च नास्ति च वक्तव्यं च द्रव्यं। अैसे द्रव्यविषै सप्तभंग कहै। इहां स्यात् शद्बका अर्थ तो सर्वथापनाका निषेध करनेवाला है अर अनेकांतका उद्योतक है। कथंचित् अर्थमै स्यात् शद्बका निपात है। तहां अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कहिए तदि तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है। अर परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कह्या हुवा द्रव्य नास्तिस्वरूप हैं अर स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै अर परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै क्रमते कह्याहुवा द्रव्य अस्तिनास्तिरूप है। वहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव अर परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि युगपत्कह्या द्रव्य अवक्तव्य हैं। वहुरि स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भाव करिके अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै कह्या द्रव्य अस्तिअवक्तव्य है। वहुरि परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कह्या हुवा द्रव्य नास्तिअवक्तव्य हैं।

वहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकैं अर परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकैं अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कह्याहुवा द्रव्य अस्तिनास्ति अवक्तव्यरूप है। ऐसे नयविभागतैं भंग जानना। वहुरि जो सत्रूप द्रव्य है ताका द्रव्यपणाकरि नाश नाही है। अर असत् जो अभावरूप अन्यद्रव्यका द्रव्यपणा करि उत्पाद नहीहै।

जातैं जो सत्वस्तु है ताका सर्वथा अभाव कदाचित् नही होयहै। अर असत् जो अभाव सो कहांतैं उपजैं? नही उपजै। यातैं द्रव्य है ते सत्का उच्छेद अर असत्का उत्पादविनाही गुण पर्यायनिमैं विनाश अर उत्पादकूं आरंभ है। जैसे घृतकी उत्पत्तिविषैं विद्यमान गोरसका नाश नहीहै अर गोरसविना अन्य सत्अर्थका उत्पाद नहीहै। तो कहाहै। सत्का

उच्छेद अर असत्का उत्पादकूं नही प्राप्त होता जो गोरस ताकै स्पर्श रस गंध वर्णादिक परिणामी गुणानिकै विषैं पूर्वअवस्थाकरि विनसता अर उत्तरअवस्थाकरि प्रगट होतामै वनीन पर्याय विनसेहै अर घृत पर्याय उपजैहै। गोशस् तो उपजै नही अर विनसै नही। ऐसे समस्तद्रव्यनिमै जानना।

वहुरि जीवादिक तो द्रव्य हैं। अर चेतनादिक गुण है। अर सुर नर नारक तिर्यंचादिक जीवकी वहुत प्रकार पर्याय है। तहां अगुरुलघु गणकी हानिवृद्धिकरि रचीहुई तो शुद्धपर्याय है। अर जीवकै सुर नर नारक तिर्यक् लक्षण जे पर्याय हैं ते परद्रव्य जो पुद्गलकर्म तिसके संयोगतैं रची अशुद्धपर्याय है। समयसमयप्रति संभवती जो अगुरुलघुगुणकी हानिवृद्धिकरि रची स्वभावपर्यायकी परिपाटीकूं नहीं विच्छेद करनेवाली ऐसी कर्मकी उपाधिसहित मनुष्यपर्यायकरि तो जीव विनसेहै। अर उपाधिसहित देवादिक पर्यायकरि उपजेहै। तहां मनुष्यपणाकरि नाश होतैं जीवपणाकरि नाश नही होय है। अर देवादिपर्यायकरि उत्पन्न होतै जीवपणाकरि नही उपजैहै सत्का नाशविना अर असत्का उत्पादविनाही पर्यांय तैसे प्रवर्तै है। जो पूर्वपर्यायका नाश अर उत्तरपर्यायका उत्पादरूप दोऊ अवस्थाकूं अंगीकार करता जीव द्रव्य उपजता विनशता देखिए है परंतु उत्पाद विनाश दोऊ अवस्थामे व्यापो अपना एक स्वभाव तिसकरी विनसै नहीहै अर उत्पन्न नही होय है। अर द्रव्य हैं सो पूर्वपूर्व पर्यायका नाश अर उत्तरउत्तर पर्यायका उत्पाद ऐसे विनाश उत्पाद दोऊधर्म धारेहै। परंतु द्रव्यतै भिन्न नहीहै तातै पर्यायनिकरि सहित एकवस्तुपणातै जीवद्रव्य उपजैहै अर विनसेहै तोहू सर्वकालमै जीवद्रव्य अविनष्ट है अर उनुत्पन्न है। अर देव मनुष्यादिक पर्याय है ते क्रमवर्ति हैं। तातैं अपना समय व्यतीतकरि विनसेहै अर उपजैहै। यातै सत्का विनाश नहीहै अर असत्का उत्पाद नहीहै। अर जो ऐसा होइ जो मरै है सो ही उपजैहै अर जो उपजैहै सोही मरेहै तदि तो सत्का विनाश होय अर असत्का उत्पाद होय। अर जो देव उपजे है अर मनुष्य मरेहै ऐसा कहिए तो अपने कालकी मर्याद प्रमाण देव मनुष्यादिक पर्यायकू रचनेवाला देव मनुष्य गतिनामा नामकर्मकै तितना प्रमाणमात्रपणा है तातै विरोध नहीहै। जैसै एक वडा वांसविषै अपने प्रमाणकौ लिए अनेक पेली अदनाअदना स्थानविषै तो सभ्दावकूं धरेहै। अर अन्य पेलीविषै आप नही प्राप्त होती। परस्थानमे अपना अभावकू धारेहै। अर वांस हैं सो समस्त पेलीनिमै अपना सभ्दावकूं धारै है तोहू अन्य पेलीका संबंधकरी अन्य पेलीमै संबंधका अभावतै अभावकूंभी धारण करेहै।

तैसे अमर्यादरूप त्रिकालमै तिष्ठता एक जीवद्रव्यकै क्रमतै वर्त्तती अनेक मनुष्यत्वादि पर्याय है। ते पर्याय अपनेअपने प्रमाणकूं लीए है यातै अन्यपर्यायमें नही गमन करती अपनेअपने स्थानमे तो सद्भवकूं धारेहै अर परस्थानविषै अभावकूं धारेहै। अर जीवद्रव्य है सो

समस्तपर्यायनिविषै अपना सद्भावकूं धारेहै तोहू अन्यपर्यायिका संबंधकरि अन्यपर्यायमै संबंधको अभाव है यातै भावकूं धारण करेहै–

भावार्थ– जैसे एक जीवके मनुष्य देव नारक तिर्यक् अनेकपर्याय होय है तिन समस्त पर्यायनिमे जीव एक प्रवर्तै है। परंतु मनुष्य पर्यायमे तो देव नारकादिपर्यायका अभाव है। अर देव नारकादिकनिमे मनुष्यपर्यायका अभाव है। मनुष्यपणाकरि देवपर्यायमें नही देवपर्यायकरि मनुष्यपर्यामे नही। ऐसे कथंचित् सद्भाव कथंचित् असद्भाव जानना।

अव सिद्धपर्याय कैसे है कहे है। जैसे थोरे काल है संबंध जाका ऐसा नामकर्मका भेद जो देवगत्यादिकर्म तिसकरि रची जो जीवके देवत्वादिक पर्याय होई है अर जव देवगति-नाम कर्मका उदय होय चुके तदि पूर्वे कहे नही भई। ऐसी मनुष्यादिक पर्याय उपजे है तो असत् की उत्पत्ति तो नही भई। जीव तो वोही है नविन नही उपज्या। तैसेही दीर्घ काल है संबंध जाका ऐसा ज्ञानावरणादिक कर्मसामान्यका उदयकरि रची संसारी-पणाकी पर्याय जीवके अनादितै है। अव किसही भव्य जीवके संसारीपणाका कारण अष्टकर्मका उदय नाशकूं प्राप्तभया तदि संसारीपणाकी पर्याय नष्ट भई अर पूर्वे नही भईथी ऐसी सिद्धत्व पर्याय उत्पन्न भई। सो असत्की उत्पत्ति नही है पूर्वे जो जीव अष्टकर्मकरि लिप्त था सो संसारी था सोही जीव अष्टकर्मका अभाव कीया तदी सिद्ध भया है। वहुरि द्रव्य है सो सदाकाल विनसे नही हैं अर उत्पन्न नहि होय है तातै जीवके द्रव्यरूपकरि नित्यपणा कह्या हैं। अर देवादिपर्यायकरि प्रगट होतैं तिसही जीवके भावका कर्तापणा कह्या। अर मनुष्यादि पर्यायकरि विनसता तिसही जीवके अभावका कर्तापणा कह्या। अर विद्यमान देवादि पर्यायका उच्छेदकूं आरंभ करता तिसही जीवके सद्भावका अभावको कर्तापणो उत्पन्न होय है अर तिसही जीवके अविद्यमान जो मनुष्यादिक पर्यायका उत्पादका आरंभ कर्त्ताके अभावके भावका कर्तापणा कह्या। ऐसे यह समस्त कहना निर्दोष है। द्रव्यपर्यायनिके मध्य एककूं गौण एककूं मुख्यकरि व्याख्यान सिद्धांतमैं है यातै सोही कहिए है। जिसं अवसरमे पर्यायकूं तो गौण करिए अर द्रव्यकुं मुख्यकरी कहिए तहां तो जीव उपजैहू नही है अर विनसैहू नही है। अर जिस अवसरमे द्रव्यको गौण करिए अर पर्यायकूं मुख्य करिए तदि प्रगटभी होय है। अर विनसेहू हैं। ऐसे यो समस्त प्रसाद अनेकांतको है जो ऐसा विरोधहू विरोधकूं नही प्राप्त होय है। अव नित्यपणा कहनेकूं सूत्र कहे है–

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥

अर्थप्रकाशिका– तद्भावकरि अव्ययरूप है सो नित्य है। जो पहीले समय था सोही दूसरे कालमें होय सो तद्भाव है ताहिकूं नित्य कहिए। जो पूर्वे था सोही यह वर्तमानमे है ऐसा जोडरूप जो वस्तुमे भाव सो तद्भाव है। याहीकूं प्रत्यभिज्ञान कहिए। जो तद्भावकरि अव्यय

कहिए अविनाशीं सो नित्य जानना। सर्वथा नित्य कहे तो सर्वथा नित्य कूटस्थ ठहरे। कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है। तदि संसार तथा संसारके अभावका कारणके विधानमे विरोध आवे। इहां तर्क। जो सोही वस्तु नित्य सोही अनित्य ऐसे कहनेमे तो विरोध है। ऐसे विरोधके अभाव करनेकूं सूत्र कहे हैं–

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥

अर्थप्रकशिका– जाकूं मुख्य करिए ताकूं अर्पित कहिए। अर जाकूं गौण करिए ताकूं अनर्पित कहिए। इनि दोऊ नयनिकरि अनेक धर्मस्वरूप वस्तुका कथन सिद्ध होय है। वस्तूमे अनेक धर्म है। तहां वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वसतैं प्रधानकरि कहे सो अर्पित हैं। अर प्रयोजनविना जिस धर्मकी कहनेकी इच्छा नही करे सो अनर्पित है। वहुरि ऐसे नाही जो वस्तुमे धर्मही नही है। वस्तु तो अनेकधर्मस्वरूप हैही। परंतु किसीकी धर्मकूं कहनेकी प्रधानता किसीकी अप्रधानता दोऊनिकरि सिद्धी होय है। जैसे एक पुरुषमे पिता पुत्र भ्राता मामा भैणजा इत्यादिक अनेक संबंध है ते अपेक्षाते सिद्ध होय है। पुत्रकी अपेक्षा पिता कहिए पिताकी अपेक्षा पुत्र कहिए। भईकी अपेक्षा भाई कहिए भैणजाकी अपेक्षा मामा कहिए मामा की अपेक्षा भैणजा कहिए। ऐसे एकही पुरूषमे अनेक संबंध कहते कुछ विरोध नाही। तैसेही वस्तुकूं सामान्य अर्प्पिणाते नित्य कहिए विशेष अर्पिणाते अनित्य कहिए यामैं विरोध नाही। वहुरि जे सामान्य विशेष है ते कथंचित् भेद अभेद कर व्यवहारके कारण होय है। इहां सत् असत् एक अनेक नित्य अनित्य भेद अभेद तत् अतत् इत्यादि अनेक धर्मात्मक वस्तुके कहनेमे अन्यमती विरोधादि दूषण बतावे है। ते वस्तुको स्वरूप जान्यो नही ते सर्वथा एकांती है।

सर्वथा एकांतका सामर्थ्यतें अनेकांतरुप वस्तु कैसे सधै ? एकांती जैसे कहै तैसे दूषण आवै। निर्दोष वस्तुका स्वरूप नही साधि सकै। स्याद्वाद वडा महिमा लायक है वलवान् है यामैं विरोधादि दूषणका अवकाश नही है। निर्बाधा वस्तूके रूपकूं साधै है। अव इहां कोऊ कहे है। सत् है ताके अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातें सत्‌रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ती सो भेद संघातते है। परंतु इहां ऐसा संदेह है। जो द्वयणुकादिक लक्षण जो स्कंध सो संघात जो संयोग तातैही होंय है की और किछु विशेष निश्चयकरिए है। तहां कहोंगे। जो पुद्गलनिका संयोग होते जो एकत्व परिणमन होना योही जो बंध तातै संघात उपजै है। तो और पूछे है। जो अनेक पुद्गलनिका संयोग होतेहू केइकनिके तो बंध होय है केईक भिन्नही रहे है। तिनके बंध होनेका कारण कहनेंकूं सूत्र कहे है।

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥

अर्थप्रकाशिका– स्निग्ध कहिए सचिक्कणपणा तथा रूक्षपणातेही परस्पर बंध होय

है। दोय आदि संख्यात असंख्यात अनंत परिमाणुनिका स्कंध होय है। इहां ऐसा जानना पुद्गलनिमें रूक्ष तथा सचिक्कण गुण होय है तहां केई परमाणु रूक्षरूप हैं केई सचिक्कणरूप हैं। तहां सचिक्कणपणाका अर रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद केई परमाणुमे किसी अवसरमे अधिक हो जाय है किसी अवसरमे घटि जाय है। षट्गुणी हानिवृध्दिका क्रमकरि रूक्षपणा सचिक्कणपणाकी अधिकता हीनता निरंतर होय है।

इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकूं गुण कहै है। परमाणुमे सचिक्कणपणाका एक विभागपरिच्छेदसें लेय अनंतपर्यंत वढै है। अर एक परमाणुमें अनंत अविभागपरिच्छेदसे घटे तो असंख्यात वा संख्यात वा दोंइ तथा एक अंशपर्यंत रहै। तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष हो जाय है रूक्ष परमाणु सचिक्कण होय है। समयसमय परिणमन है अर वाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमत्ततै परिणमनमै है। ऐसे स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमे तथा स्कंधमे जानना। जैंसे जलमे सचिक्कणना है तातै छालीका दूधमे छालींका दूधतै गोदूधमे गौके दूधतै भैंसीके दुग्धमे यातै घृततै तैलमे सचिक्कणपणा अधिक अधिक पाइए है। तथा पांसु जो रज तिसमै रूक्षपणा है तातै वालुकामे तातै शर्करामे अधिक अधिक रूक्षपणा है। तैसे परमाणूहूमें सचिक्कणपणाकी अधिकता अर न्यूनताअनुमान करना योग्य है। परमाणुमै होय तदिही स्कंधमें होय। ऐसे स्निग्धरूक्षपणातै पुद्उलनिके परस्पर बंध जानना। अव बंध होनेमे अन्य विशेष कहे है—

न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥

अर्थप्रकाशिका— जे जघन्यगुणसहित परमाणु है तिनके बंध नहीं होय है। इहां परिमाणुमै स्निग्धताका वा रूक्षताका अविभागपरिच्छेद है ताहि गुण कहिएहै। जिस परमाणुमें स्निग्धताका वा रूक्षताकां एक अविभागपरिच्छेद रहिजाय सो जघन्यगुण है। इहां एक अविभागपरिच्छेदकूं जधन्य कह्याहै। जिसम एक गुण स्निग्ध रूक्षताको होय सो परमाणु द्वितीयादि संख्यात असंख्यात अनंत गुणसहित स्निग्धपरमाणुकरिकै वा रूक्षकरिकैं नही बंधनै प्राप्त होयहै औरभी जिस गुणसहित नही बंधै ताके कहनेकूं सूत्र कहेहै—

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥

अर्थप्रकाशिका— गुण जे स्तिग्धरूक्षताके अंश तिनकरि साम्य कहिए समान संख्यारूप ऐसे सदृश कहिए रूक्षरूक्ष अर स्निग्धस्निग्धा ऐसे सदृश होय ते परमाणुहू बंधकू नही प्राप्त होय है। गुणकी समानता कहिए दोऊ परमाणुमे गुणनिके अविभागपरिच्छेदरूप अंश समान होंय तिन परमाणुके परस्पर बंध नही होय। जामै दोयदोय वा तीनतीन वा चारचार ऐसे संख्यात असंख्यात अनंत गुण स्निग्धाता वा रूक्षताका समान होय तिनके बंध नही होय है। अर

सदृशका कहिए रूक्षरूक्षके अर स्निग्धास्निग्धकेहू बंध नही होय हैं। स्निग्धरूक्षकैहू नही होय है। तो कौंनके बंध होय यातै सूत्र कहे हैं–

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३६॥

अर्थप्रकाशिका– दोय गुणकरि अधिक होय तिनहिके बंध होय अन्यके नहि होय। तुल्य जातीयकैहू होय अर अतुल्य जातीयकैहू होय। जिस परमाणुमे दोय गुण स्निग्धताका होय तिसके एक गुण स्निग्ध वा दोय गुण स्निग्ध वा तीन गुण स्निग्ध परमाणूकरि बंध नही है। चार गुण स्निग्धताका जामै होय ताकरि बंध है। वहुरि तिस द्विगुण स्निग्ध परमाणुके पंच षट् सप्त अष्ट नव दश संख्येय असंख्येय अनंत गुण स्निग्धकरि बंध नही है। ऐसेही त्रिगुण स्निग्ध परमाणुके पंचगुण स्निग्धसहित परमाणुके बंध है। अन्य जे पूर्व उत्तर संख्यासहित स्निग्ध गुण-धारक परमाणुनिकरि बंध नही है। वहुरि चतुर्गुण स्निग्धपरमाणुके षड्गुण स्निग्ध परमाणुकरि बंध है। अर शेष पूर्वोत्तकरि नही है। ऐसेहि शेष अन्य परमाणुनिविषैभी दोय गुणकरि अधिक करिकेहि बंध है। अन्यकरि नही है।

वहुरि तैसेहि द्विगुण रूक्षके एक दोय तीन गुण रुक्षकरि सहित बंध नही है अर चतुर्गुण रुक्षकरि बंध है। तैसेही द्विगुण रूक्ष परमाणुके पंचगुण रूक्षादिक उत्तरगुण तिन करिकैहू बंध नही है। ऐसेही त्रिगुण रूक्षादिक परमाणुनिकहू द्विगुण अधिककरि बंध योग्य है जैसे समान जातीयमे कह्या तैसे भिन्नजातीयमेहु बंध जानना। द्विगुण स्निग्धकै एक दोय तीन रूक्षगुणसहितनिकरि बंध नही हैं चतुर्गुण रूक्षकरिके बंध है अर उत्तार पंच गुण रूक्षादिकरि बंध नाही है। ऐसेही त्रिगुण स्निग्ध परमाणुके पंच रूक्ष परमाणु करिके बंध है। शेष पूर्वोत्तर गुणसहितनिके बंध नही हैं। ऐसे संख्यात असंख्यात अनंत गुणके धारक जे स्निग्ध रूक्षपरमाणु तिनके सजातीयमे वा विजातीयमें दोऊ गुण अधिककरिहि बंध है अन्यके नही। ऐसेही भगवान् सर्वज्ञ वीतरागदेव प्रत्यक्ष देख्याहै। अन्य छद्मस्थनिके सर्वज्ञ वीतरागका कह्या आगमतै प्रमाण जानना। सोही सिद्धांतमे कह्या है।

गाथा– णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण। लुक्खस्सलुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि बंदो। जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥१॥

अर्थ– स्निग्ध परमाणुकै स्निग्धपरमाणु दोय गुण अधिककरि बंध होय है। अर रूक्ष-परमाणुके दोय गुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बंध होय है। अर स्निग्ध परमाणुके रूक्षपरमाणुकरि बंध होय है। अर जघन्यगुणा जो एक गुण तिस सहित परमाणुकरि बंध नहीं होय हैं। अर दोय च्यार छह आठ इत्यादिक समगुणके धारकनिकेहू बंध है। अर तिन पांच सात नव ग्यारा इत्यादिक

विषमगुण धारकनिकेहू बंध होय है। परंतु गुणके दोय अंशकी हीन अधिकता होय तिनहिके बंध है अन्यके नहि है।

भावार्थ– स्निग्धस्निग्धकै अर स्निग्धरूक्षके अर रूक्षस्निग्धके दोय गुण अधिक समविषम होतै बंध होय है। अन्य हीनअधिकके बंध नहि होय। ऐसेंहि सर्वज्ञ वीतराग प्रत्यक्ष देख्या है। ऐसे कहि जो विधि तिस करि द्व्यणुकादि अनंत परमाणुका स्कंधपर्यंत स्कंधकी उत्पत्ति जानना योग्य है। वहुरि इहां पुद्गलस्कंधका छह भेद सिद्धांतमे वर्णन कीया है।

गाथा– बादरवादर वादर। वादरसुहमं च सुहमथूलं च।
सुहमं च सुहमसुहमं। धरादियं होदि छब्बेयं ॥१॥
पुढवी जलं च छाया। चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु।
छव्विहभेयं भणियं पुद्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥२॥

अर्थ– १ वादरवादर २ बादर ३ वादरसूक्ष्म ४ सूक्ष्मबादर ५ सूक्ष्म ६ सूक्ष्मसूक्ष्म ऐसे स्कंधके छह भेद कहे। तिनमें जे छेदेहुए फेर जुडनेको असमर्थ ऐसे काष्ठ पाषाणादिक वादरवादरसंज्ञक है। वहुरि जे छेदे भेदे हुए स्वयमेव मिलजानेमें समर्थ ऐसे जल घृत दुग्ध तैलादिक रस वादर है। वहुरि जिनका अवलंवन तो स्थूल अर शरीरादिकनिकै आताप आल्हाद करै तोहू छेद्या नही जाय अर उठाय ग्रहण करनेकूं अर अन्य स्थान लेजाइवेकौ समर्थपणा नही होय सो ऐसे छाया आतप अंधकार चांदनी इत्यादिक ये बादर सूक्ष्म स्कंध है। वहुरि जे सूक्ष्म है तोहू स्थूलपणाते ग्रहणमें आवे ऐसे स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ए च्यार इंद्रियनिके विषय ते सूक्ष्म वादर स्कंध है।

वहुरि सूक्ष्म है तातै इंद्रियनिके ग्रहणमे नहि आवे ऐसी कर्मवर्गणादिक सूक्ष्म स्कंध है। वहुरि कर्मवर्गणाते नीचे दोय परमाणुका स्कंधपर्यंत सूक्ष्मसूक्ष्म स्कंध है। जाते सूक्ष्म स्थूल पर्याय स्कंधहीमे होय है परमाणुमे नहि। परमाणुमे तो रस एक गंध एक वर्ण एक स्पर्श दोय शीत उष्णमेतै एक स्निग्धरूक्षमेतै एक एहि पांच गुण है। सूक्ष्मबादरादिक स्कंधके धर्म है। अब द्व्यधिकगुणकरि मिलजाय तिनका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहे है–

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥

अर्थप्रकाशिका– बंध होते अधिक गुणसहित पुद्गल अल्पगुणसहितकौ अपने परिणामस्वरूप करे है। एकत्व परिणाम होय है। अल्पगुणके धारक अधिकगुणके स्कंधरूप होय है सो पूर्व अवस्थाका त्यागपूर्वक तीसरी अवस्था प्रगट होय है। एक स्कंध होय जाय है। जो एक स्कंध नही होय तो शुक्ल कृष्ण सूतके तंतुकी ज्यो संयोग होतेहू एक परिणाम नही होई

भिन्नभिन्न रूपकरिही तिठै। अर एक होय मिल जाय तदि वर्ण गंध रस स्पर्श इनकी अन्यही अवस्था प्रगट होई स्कंध उपजे है जैसे कृष्णपीतादिकका संयोग होई हरितवर्णपणा जात्यंतर प्रगट होय है। तैसे स्कंध मिल्या जात्यंतरपणा प्रगट होय है। अव द्रव्यका अन्य लक्षण कहे है।

गुणपर्यायवत् द्रव्यम् ॥३८॥

अर्थप्रकाशिका— गुणपर्यायवान् द्रव्य है जाके गुणपर्याय होय सो द्रव्य है समस्त द्रव्य अपनेअपने गुणपर्यायसहित है। इहां अन्वयी तो गुण है व्यतिरेकी पर्याय है। जो द्रव्यकी अनेक परिणति होतेहू द्रव्यते भिन्न नही होय द्रव्यकी साथिही रहे सो गुण हैं अर क्रमवर्ती पर्याय है। द्रव्यके जेते गुण है ते द्रव्यते भिन्न नही गुणनिका समुदाय है सो ही द्रव्य है।

द्रव्यके अनेक पर्यायकू पलटतैंहूं गुण नही पलटे है लारही रहे है तातै गुण है ते अन्वयी है। द्रव्यका स्वभाव गुणरूप अर पर्यायरूप हैं। द्रव्यका लक्षण पूर्वे सत् कह्या सो तो सामान्यलक्षण है। जातै सत् कहनेमे द्रव्य गुण पर्याय समस्त आगए। जातै सत् सामान्य कहे तो सत् द्रव्य है की गुण हैं कि पर्याय हैं यातै द्रव्यका विशेषलक्षण गुणपर्यायवान् कह्या। जातै द्रव्य है सो सहप्रवृत्त तो अनंतगुण अर क्रमप्रवृत्त अनंतपर्यायनिका आधारपणाकरि अनंतरूपपणाते एकहू नानारूप कहिए है। द्रव्यके गुणनितै भेद मानिए वा गुणनिके द्रव्यते भेद मानिए तो वडा दोष आवे।

गुण है ते तो कोऊ द्रव्यके आश्रय हैं। जाकै आश्रय सोही द्रव्य अर द्रव्यकूं गुणनितैं भेदही मानिए अर द्रव्यमे गुणनिके मिले मानिए तो पहले गुणनिविना द्रव्यका स्वरुप तो कैसे था अर द्रव्यविना गुण कहां तिष्ठै थे तदि दोऊनिका नाश होय तातैं द्रव्यते गुण भिन्न नही द्रव्य गुणस्वरूपही हैं द्रव्यके अर गुणनिके प्रदेशनिकरि भेद नही ऐसा एकपणा है। अर प्रदेशनका भेदरूप अन्यपणाभी नाही अर अनन्यपणाभी नाही है। जैसे एक परमाणुके एक अपना प्रदेशकरि सहित अभिन्नपणाते अन्यपणा नही है तैसे एक परमाणुके अपने स्पर्श रस गंध वर्णादिगुणनिकरिकैभी भिन्नपना नही है।

वहुरि जैसे अत्यंत दूरवर्ती सह्याचल पर्वत अर विंध्याचल पर्वत इनकी ज्यों तो द्रव्य गुणनिके अन्यपणाहू नाही हैं। अर अत्यंत मिलेरहे जे दुग्ध अर जल इनकी जौ अनन्यपणा नाहीं है। जातै अत्यंत मिलेहुएहू दुग्धजलप्रदेशनिके भिन्नपणाते अनन्यपणाकू नही धारे है। अर संज्ञा संख्या लक्षण विषयादिकरि द्रव्यके अर गुणनिके भेद है तोहू सह्याचल विंध्याचलकीज्यों प्रदेशनकरि भेद नही है। अव कोऊ कहे। लोकमे कहे है ए द्रव्यके गुण है ऐसे कहनेतै जानिए है जो द्रव्य भिन्न हैं अर गुण भिन्न है सो नही हैं। जातै द्रव्य

प्रदेश संस्थान संख्या विषय अन्यपणामेभी होय अर अनन्यपणामेहू पाईए है।

जैसे देवदत्तके गौ है इहां देवदत्त भिन्न है अर गौ भिन्न है इहां अन्यत्वमें षष्ठी विभक्तिकरि व्यपदेश है तैसे वृक्षके शाखा है द्रव्यके गुण है ऐसे अनन्यपणामेभी षष्ठीव्यपदेश है। जैसे देवदत्त जो है सो फल है ताहि अंकुशकरिके धनदत्तके अर्थि वृक्षतै वाडीमे चूटै है। इहां अन्यत्वमे षट्प्रकार है। जातैं देवदत्त कर्ता सो भिन्न है अर फल कर्म सो भिन्न है। अर अंकुश करण है सो भिन्न है अर धनदत्तके अर्थि संप्रदान भिन्न है अर वृक्ष जो उपादान सो भिन्न अर वाटिका आधार सो भिन्न है।

ऐसेही अन्यत्वमे षट्प्रकारक अभिन्न है। जैसे मृत्तिका घटभाव जो है ताही स्वयं आपहीकरि आपके अर्थि आपतै आपविषै करे है। अर ऐसेंही आत्मा आपने आपकरि आपके अर्थि आपतै आपमें जाणे है ऐसें अनन्यपणामेहू कारकव्यपदेश है। जैसें ऊंच देवदत्ताकी ऊंची गौ इस प्रकार अन्यत्वमे संस्थान है तैसे ऊंचा वृक्षके ऊंची शाखा अर मूर्तद्रव्यका मूर्तगुण ऐसें अनन्यत्वमेंभी संस्थान होय है।

जैसे एक देवदत्तके दश गाय है ऐसे अनन्यत्वमे संख्या है तैसे एकवृक्षके दश शाखा है एक द्रव्यके अनंत गुण है ऐसें अनन्यत्वमेंभी संख्या है। जैसे गुवाडामे गाय है ऐसे अन्यत्वविषै विषय है। तैसे वृक्षमे शाखा है द्रव्यमें गुण हैं ऐसे अनन्यत्वमेभी विषय हैं। तातैं व्यपदेशादिक है ते द्रव्यगुणनिके वस्तुपणाकरि भेद नही साधे है। वस्तुपणाकरि एकही है। अव वस्तुपणाकरि भेदका अर अभेदका उदाहरण कहे है। जैसे धनका अस्तितव भिन्न हैं अर पुरुषका अस्तित्व भिन्न है अर धनका संस्थान कहिए आकार सो भिन्न है अर पुरुषका संस्थान भिन्न हैं।

वहुरि धनकी संख्या भिन्न है अर पुरुषकी संख्या भिन्न है। अर धन भिन्नविषयमे प्रवर्त्तै है अर पुरुष भिन्नविषयमें प्रवर्त्तै है। ऐंसे धनके अर पुरुषके वडा भेद है तोहू धनका संबंधकरि धनी ऐसा नाम पृथक्प्रकारकरि पावे हैं। बहुरि जैसे ज्ञानका अस्तित्व अर पुरुषका अस्तित्व भिन्न नहीं अर पुरुषका संस्थान अर ज्ञानका संस्थान भिन्न नही अर ज्ञानकी संख्या अर पुरुषकी संख्या भिन्न नही। अर ज्ञानका विषय अर पुरुषका विषय भिन्न नही तोहू पुरुषके ज्ञानी ऐसा नाम एकत्वप्रकारकरि करे है। ओठैंहू जहां द्रव्यके भेदकरि कथन होय तहां पृथक्पणा है अर जहां भेदकरि कथन होय तहां एकत्वकरि कथन है बहुरि जो ज्ञानी आत्मा ज्ञानतैं जुदाही होय तो जैसे अपना कत्र्यंशविना जैसें परसीरहित देवदत्त काष्ठकूं नही छेदी सकै तैसे किसी पदार्थकूं जाननेकूं नहीं समर्थ होय ज्ञानविना काहेतैं जानै यो दोष आवे।

बहुरि ज्ञान है सो जो ज्ञानीतैं भिन्न नही होय तो कत्र्यंशविना कोन जाने। जैसे देव-

दत्तरहित परसी काष्ट छेदनेकूं समर्थ नही तैसे ज्ञानी जो आत्मा तिस विना ज्ञान जाननेकूं नही समर्थ होय तदि ज्ञानकै अचेतनपना आया यो दोष आयो।

वहुरि ज्ञान अर ज्ञानी दोऊनिके संयोग मिलिकरिकैंभी चेतनपणा प्रगट नही होयहै ज्ञानगुणविना तो ज्ञानीका अभाव है। अर आत्माविना निराश्रय गुणका अभाव है। तातैं आत्माविना ज्ञान कहूं सिद्ध होजाय अर ज्ञानविना आत्मा सिद्ध होजाय तो दोऊनिका संयोगभी सिद्ध होय सो भिन्न कहूं सिद्धहै नही।

वहुरि केइक एकांती ऐसे कहे है। जो आत्मा अर ज्ञान दोऊनिकै भेद है परंतु समवाय नाम एकपदार्थ हैं सो ज्ञानकू अर आत्माकू युक्त करिदेहै समस्त गुणगुणीनिकू समवायपदार्थ जोडेहैं। ऐसे मानेहैं ताकू कहेहै। जो तुम आत्मातैं ज्ञानकू भिन्न माना हो अर ज्ञानका समवायतैं आत्माकूं ज्ञानी माना हो सो नही वणि सकैहै। सो पूछेहै ज्ञानका समवाय पूर्वें नही भया तदि आत्मा ज्ञानी था की अज्ञानी था। जो या कहोगे ज्ञानका समवाय भये पहलाभी आत्मा ज्ञानी था तदि तो ज्ञानका समवाय मानना निष्फल है पहलाही ज्ञानी था। अर कहोगे पहला अज्ञानी था तो पूछेहैं। अज्ञानका समवायकरी अज्ञानी था की अज्ञानकरि सहित एकपणाही था।जो अज्ञानसमवायतैं तो अज्ञानी नही होसकै जातैं अज्ञानीकैं अज्ञानसमवाय निष्फल है। अर ज्ञानका समवायविना ज्ञानी था नही। तातैं अज्ञानकरिकै सहित एकपणा अवश्य सिद्ध भया। अर ज्ञानकरि सहित एकपणा सिद्ध भया। तदि तैसेही ज्ञानकरि सहितहू आत्माका एकपणा सिद्ध होयहै। तदि तुमारा समवायतैं संबंध मानना वृथा है।

जातैं जैनीनिकैं तो जो द्रव्यकैं अर गुणनिकैं एक अस्तित्वपणा सोही तथा अनादिनिधनवृत्तिपणा सोही समवायहैं। अर जो समवायकू एकपदार्थही भिन्न माने सो नहीहै। अन्यमती समवायपदार्थकू न्यारा मानेहै। जो जगतमें एक समवाय है सो अग्निमें उष्णगुणका समवाय करेहै जलमे शीतगुणका समवाय करेहै। ऐसे समस्तपदार्थनमै गुणका जोड समवाय करेहै। ताकू कहेहैं। जो जगतमे वस्तु तो अनंत है अनंतनिमै गुण जोडनेकू एकाकी समवाय कैसे समर्थ होय। अर समवाय तो जड है अचेतन है। एक है सो उष्णगुणका समवाय एकहीमें कैसे किया अर शीतगुणका समवाय जलहीमें अर ज्ञानगुणका समवाय आत्माहीमैं करनेका ज्ञान जड अज्ञानी अचेतन अैसें समवायपदार्थमे कैंसे आया तातैं समवायतैं गुणगुणीकी संयुक्तता मानना वृथा है। जैंसे परमाणूविषैं वर्ण रस स्पर्श गंध गुण प्ररूपणकरिएहै ते गुण परमाणुतैं अविभक्तप्रदेशपणाकरि भिन्नही है। तैंसेही ज्ञान दर्शन गुणहू आत्मविषैं अविभक्तप्रदेशपणाकरि अन्य नही आत्माही है। नामादिकनिकरि भिन्न है तोहू स्वभावतैं द्रव्यतैं अपृथक्पणाही जानना। ऐसे तो द्रव्यकै अर गुणनिकै अभेदपणा दिखाया।

अव जो पर्याय है सोहू द्रव्यते भिन्न नही है द्रव्यका स्वभावही है। द्रव्य तो पर्याय-

विना कहू देखिए नही अर पर्याय द्रव्यविना नही। यद्यपि द्रव्यके अर पर्यायके संज्ञा संख्या लक्षणादिकरि भेद है तोहु वस्तुपणाकरि भिन्न नही है। जैसे मृत्तिका नाम द्रव्य है तिसके घटादिक पर्याय है। सो मृत्तिकाके अर घटादिकके कथंचित् संज्ञाकरि भेद है वाकूं मृत्तिका कहिए वाकूं घट कहिए। अर संख्याकरि भेद है मृत्तिकाको पिंड एक था ताके घट पांच वणिगए तातैं संख्याकरिभी भेद हैं। वहुरि मृत्तिकाका लक्षण तो पिंडादिकरूप अन्य है अर घटका लक्षण कंबुग्रीवाकारादिपणा भिन्न है। वहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन हस्तधोवनादि अन्य है। अर घटका जलधारणादि प्रयोजन अन्य है। ऐसे द्रव्यके अर पर्यायके संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिककरि कथंचित् भेद होतैंहू वस्तुपणाकरि भेद नही है वाही एक मृत्तिका है। ऐसें गुणपर्यायवान्पणा द्रव्यका लक्षण कह्या। अव कालद्रव्यकूं कहे है।

कालश्च ॥३९॥

अर्थप्रकाशिका– काल है सोभी दव्य है। इहां द्रव्य है ऐसा वाक्य शेष है इस लोकाकाशके समस्तप्रदेशनिविषै एक कालद्रव्य भिन्नभिन्न तिष्ठै है परस्पर मिले नही एकएक परमाणु मात्र अवगाहनाकूं धारते असंख्यात कालाणुद्रव्य है। ते कालद्रव्य अमूर्त हैं स्पर्श रस गंध वर्ण गुणरहित है। वहुरि ज्ञान दर्शनादि चेतनासंबंधी गुणरहित है तातैं अचेतन है। प्रदेशनिका समूह इनिके नही तातैं एकएक प्रदेशमात्र भिन्नभिन्न मिलनेकी शक्तिरहित रत्ननिकी राशिकी ज्यों असंख्याते तिष्ठं है तातैं अकाय है। क्षेत्रतैं क्षेत्रांतरमे गमनरहित हैं तातैं निष्क्रिय है। अर उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्पणा अर गुणपर्यायवान्पणा द्रव्यके लक्षण तिनकरि संयुक्त है तातैं कालभी द्रव्य है।

वहुरि कालके ध्रौव्यपणा तो स्वाधीनस्वभावकी व्यवस्थातैं है। अर उत्पाद व्यय ए परके निमित्ततैंभी है अर अगुरुलघुगुणकी वृद्धी हानिकी अपेक्षाकरि स्वनिमित्ततैंभी है। तथा कालद्रव्यके गुणहू साधारण असाधारण दोउरूप है। तिनमें वर्तना हेतुपणा तो असाधारणगुण है। अर अचेतनपणा अमूर्तपणा सूक्ष्मपणा अगुरुलघुपणा ए साधारण गुण है। अर उत्पाद व्यय लक्षण पर्याय हैं। समस्तद्रव्यनिकी समयसमय वर्तनापरिणमनका वहिरंगनिमित्त कालद्रव्य है। अब व्यवहारकालका प्रमाणनिश्चयके अर्थि सूत्र कहें है–

सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

अर्थप्रकाशिका– काल है सो अनंत है समय जाके ऐसा है। यद्यपि वर्तमानकाल एकसमयमात्र है तोहू अतीत अनागत अपेक्षा अनंत समय है। समय है सो अतिसूक्ष्म हैं। तिनका समूह सो आवली घटिका इत्यादि व्यवहारकाल है। अथवा अनंतपर्यायनिकी वर्तनाका

कारण एक कालाणु है तातैं मुख्यकालकैहू अनंतसमयपणा वर्त्तैहै। अब गुणपर्यायवान् द्रव्य कह्या तिनके गुणका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहे है–

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

अर्थप्रकाशिका– जे द्रव्यके तो आश्रय है अर आप अन्यगुणनिकरि रहित है ते गुण है। जे द्रव्यकूं आश्रयकरि नित्यही वर्त्तै ते गुण है। अर पर्याय है ते कदाचित् होय कदाचित् अन्य होय। अर गुण है ते द्रव्यमे नित्य है। गुणविना द्रव्य नही है। जीवके अस्तित्वादिक ज्ञान-दर्शनादिक गुण है। पुद्गलके अचेतनत्वादिक तथा रूपादिक गुण है। इत्यादि समस्त द्रव्यनिमे जानना। अत्र पूछे है परिणामशद्ब वारंवार कह्या सो परिणाम कहा है यातैं सूत्र कहे है–

तद्भावः परिणामः ॥४२॥

अर्थप्रकाशिका– धर्मादिक द्रव्यनिका जिस स्वरूपकरि होना सो तद्भाव है सो ही परिणाम है। सो परिणाम दोय प्रकार है। एक आदिमान् परिणाम है। एक अनादिमान् परिणाम है। तहां धर्मादिकनिके जो गति हेतुपणा इत्यादिक अनादि परिणाम है सो सामान्यअपेक्षाकरि है। विशेषकी अपेक्षा वाह्यनिमित्तादिकतैं परिणाम होइ तातैं आदिमान्हू हैं। तिनमे कोऊ ऐसा जाने जो धर्म अधर्म आकाश काल इनिविषै तो अनादिही परिणाम हैं अर जीवपुद्गलनिमे आदिमान् है सो ऐसे नही मानना समस्तद्रव्य अनादि है तातैं अनादिही परिणाम मानना अन्यथा नित्यपणाका अभावका प्रसंग आवे। तिनमे च्यार द्रव्यनिका परिणाम तो आगम गम्य हैं। अर जीवपुद्गलके परिणाम कथंचित् प्रत्यक्षगम्यभी हैं।

पर्याय दोय प्रकार है। एक व्यंजनपर्याय एक अर्थपर्याय। तिनमे व्यंजनपर्याय है ते तो मूर्त्त है अर वचनगोचर है चिरस्थायी है विनाशीक है अर स्थिर हैं। अरअर्थपर्याय है सो सूक्ष्म है क्षणक्षणप्रति विध्वंसी, वचनके अगोचर है। इहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य इनिके तो अर्थपर्याय है। अर जीवद्रव्य अर पुद्गलद्रव्य इनिके अर्थपर्याय अर व्यंज-नपर्याय दोऊ हैं।

इहां कोऊ कहै द्रव्य गुण पर्याय तीन कहै। अर नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय कहे तहां तीसरा गुणार्थिकनय क्यौं नहीं कह्या। ताका समाधान। जो पर्याय दोय प्रकार है। एक सहवर्त्ती एक क्रमवर्त्ती। तहां सहवर्त्ती तो गुण हैं सो सहवर्त्ती पर्यायमे गुण जाणलेनें तातैं गुणार्थिकनय भिन्न नही। गुणपर्यायवानही द्रव्यका निर्दोषलक्षण है।

ऐसे इस पंचम अध्यायमे अजीवतत्वकौ प्रधानकरि निरूपण है। तहां धर्मादिक च्यार अजीवास्तिकाय कहि अर जीवास्तिकाय कह्या। तिन पंचनिकौं द्रव्य कहे। तिनमे च्यार

अरूपी एक रूपी अर धर्म अधर्म आकाश इनिकै एकद्रव्यपणा अर क्रियारहितपणा अर धर्म अधर्म एकजीवकै लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेश कहे अर आकाशद्रव्यकै अनंतप्रदेश कहे पुद्‌गलस्कंधकै संख्यात असंख्यात अनंत प्रदेश कहे। अणुकै प्रदेश नाही ऐसे कह्या। वहुरि आकाशका अवकाशदान उपकार अर धर्मका गति उपकार अधर्मका स्थिति उपकार पुद्‌गलका शरीरादि उपकार जीवनिकै परस्पर उपकार कालका वर्त्तना उपकार कह्या। वहुरि पुद्‌गलके स्पर्शादिगुण स्कंधादिक पर्याय कहे अणु स्कंध भेद कहें। वहुरि द्रव्यका सत् सामान्यलक्षण कह्या नित्यताका स्वरूप कह्या, मुख्य गौणकरि नयका लगावना कह्या वहुरि पुद्‌गलकै स्कंध होनेका विधान कह्या वहुरि द्रव्यका विशेषलक्षण कह्या। वहुरि कालद्रव्यकूं कह्या अर गुण-पर्यायका स्वरूप कह्या ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

ऐसे तत्वार्थका है ज्ञान जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामै पांचमा अध्याय समाप्त भया ।

– दोहा –

है जातै तत्त्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ॥
मोक्षशात्र मंगलमय। नमो पंचम अध्याय ॥५॥

पंचम अध्याय समाप्तः

अर्थ प्रकाशिका

(तत्वार्थ टीका)

पं. सदासुखदास विरचित

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

आगे छठा अध्यायका प्रारंभ करे है।

– दोहा –

आस्रव आगे कर्मका त्यागि सुभले प्रकार ।।
पायो पद अविकार जिन ध्यावों स्तुतिविस्तार ।।१।।

अजीवपदार्थके अनंतर आस्रव कहने योग्य है यातें आस्रवकी प्रकटकताके अर्थि सूत्र कहेहै ।

कायवाङमनःकर्म योगः ।।१।।

अर्थप्रकाशिका–काय वचन मन इनिकी कर्म कहिए क्रिया सो योग है। तहां वीर्यांतरायकर्मका क्षयोपशम होतै औंदारिकादिक सप्तप्रकार काय वर्गणामेतै अन्यतम वर्गणाका अवलंबनकी अपेक्षाकरि आत्मप्रदेशका सकंप होना सो काययोग है। बहुरि वीर्यांतराय अर मत्यक्षरादि आवणरका क्षयोपशमकरि प्राप्त भया वाग्लब्धिकी निकटता होतें जो वाग्रूप परिणमनकै सन्मुख जो आत्मा ताका प्रदेशनका जो हलनचलन सो वाग्योग है। बहुरि अभ्यंतर वीर्यांतराय अर नोइंद्रियावरणका क्षयोपशमस्वरूप मनोलब्धिकी निकटता होतें अर बाह्य पूर्वोक्तनिमित्तका आलंबन होतें मनःपरिणामकै सन्मुख आत्माका प्रदेशनिका चलनवलन सो मनोयोग है। ऐसे क्षयोपशमलब्धि अभ्यंतर हेतु है। अर केवलीकै क्षयहेतु होतैहू त्रिविध योग

है। जातै क्रियारूप परिणमन करता आत्माकै तीन प्रकार पुद्गल वर्गणाका आलंवनकी अपेक्षा जो आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो योग है। सो सयोगीगुणस्थानपर्यंत है अयोगीकै अर सिद्ध-निकै त्रिविध वर्गणाका आलंवनको अभाव तातै योग नही। ऐसे मन वचन काय तीन योग है तेही आस्रव है यातै सूत्र कहेहै–

स आस्रवः ॥२॥

अर्थप्रकाशिका– कह्या जो योग सो आस्रव है। योगके निमित्ततैं आत्माकै कर्मका आगमन होहै तातैं योग है सोही आस्रव है। जैसे सरोवरकै जल आवनेका द्वार होय सो जल आवनेकूं कारण है ताकूं आस्रव कहिएहै। तैसे इहांहू योगद्वारकरि आत्माकै कर्म आवेहै. यातै योगभी आस्रव है ऐसे कहिए हैं। अथवा। जैमैं गीला वस्त्र है सो समस्त तरफतैं आया रजकूं ग्रहण करेहैं तैसैं कषायरूप जलकरि गीला आत्मा योगनिकरि ग्रहणकीया कर्मकूं समस्त प्रदेशनिकरि ग्रहण करेहै। अथवा जैसैं अग्निकरि तप्तायमान लोंहका पिंड जलविषैं क्षेप्याहुवा सर्व तरफतैं जलकूं ग्रहणकरेहै तैसैं योगनिकरि तप्तायमान जीव समस्ततरफतै कर्मरूप जलकूं ग्रहण करे है। सो कर्म दोय प्रकार पुण्यपापरूप है ताका हेतु कहनेकूं सूत्र कहेहै–

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥

अर्थप्रकाशिका– शुभ योग पुण्यका आस्रव करेहै। अशुभयोग पापका आस्रव करेहैं तहां प्राणीनिका घात करना असत्य बोलना परधनहरण ईर्षापरिणामकूं आदि लेय अशुभ योग है यातैं पापका आस्रव होयहै। वहुरि प्राणीनिका उपकार रक्षा करना सत्य बोलना पंचपर-मेष्ठीकी भक्ति इत्यादि शुभयोग है इनितैं पुण्यका आस्रव होय हैं। इसका विशेष ऐसा। जो प्राणीनिका घात करना, विनादीया परधनहरण करना, मैथुनप्रयोगादि अशुभ काययोग है। अनृतवचन कठोरवचन असत्यवचन इत्यादिक अशुभ वाग्योग है। हिंसा ईर्षा ग्लानिका चित-वन सो अशुभ मनोयोग है। ऐसे अशुभयोगके असंख्यातविकल्प है। वहुरि इनतैं उलटा सो शुभयोग है। यद्यपि परिणामके भेद असंख्यातही हैं तथापि अनंतानतं जीवनिकी अपेक्षा अनंत भेद हैं।

अव कहोगे। जैंसे सुवर्णमय सांकल बेडी तथा लोहमय बेडी आत्माकैं स्वतंत्रताका अभाव दोऊ तुल्य करेहैं। तैंसे पाप अर पुण्य आत्माकूं पराधीन करनेको दोऊ निमित्त तुल्य है तातैं इनकूं शुभ अशुभ भेद रूप कैसे कहे। ताका समाधान। इष्ट अनिष्ट गति जात्यादिक रच-नेतैं भेद कह्या। अव इहां कोऊ कहे। जो आयुकर्मविना सप्तकर्मका आस्रव निरंतर होय है। तातैं शुभपरिणाम पुण्यहीका कारण अर अशुभ पापहीका कारण कैसे कहोहो। ताका उत्तर। यद्यपि संसारी जीवनिकै सप्तकर्मका आस्रव निरंतर होय है तथापि ऐसे जानना जो संक्लेश-

परिणामतैं देव मनुष्य तिर्यक् आयुविना एकसो पैंतालीस कर्मकी प्रकृतिनिकी स्थिति वहुत वढिजाय है अर तीन आयुकी स्थिति घटिजाय है अर मंद कषायके परिणामतै समस्त कर्मकी स्थिति घटिजाय है अर तीन आयुकी स्थिति वढीजाय है। वहुरि तीव्र कषायकरि शुभप्रकृतिनिमैं अनुभाग जो रस सो घटिजाय है। अर असातावेदनी आदिक अशुभप्रकृतिनमै अनुभाग वढिजाय है। वहुरि मंदकषायके प्रभावतै शुभ जे पुण्यप्रकृति तिनमै रस वढिजाय है। अर पापप्रकृतिनिमै रस घटिजाय है। तातै स्थिति अनुभागकी अपेक्षाकरि शुभपरिणामनितै पुण्यास्रव कह्या अर अशुभपरिणामतै पापास्रव कह्या। जातै स्थिति अनुभागही प्रधान है। स्थितिविना आस्रव कुछ कार्यकारी नाही। अर अनुभाग जो रस तिसविना थोथी प्रकृति यहा कार्य करै। तातै शुभपरिणामनितै अशुभकर्मनि स्थिति घटिजाय अर अनुभाग जो रस सो घटिजाय तदि अशुभका आस्रव नही आने तुल्यही है। अर अशुभपरिणामनितै पुण्प्रकृतिनिकी स्थिति अनुभाग दोऊ घटिजाय अर पापप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभाग वढिजाय तदि स्थिति अनुभागविना आस्रव निष्फल रह्या। सोही पूर्वाचार्यकृत वार्त्तिकमै गाथासूत्र लिख्या है–

गाथा– सव्वट्ठिदीणमुक्कस्स गोदुउक्कस्स संकिलेसेण।
विपरीदे दु जघण्णो आयुगतिगवज्ज सेसाणं ॥१॥

अर्थ– समस्तकर्मनिकी उत्कृष्ट स्थिति संक्लेशपरिणामनितै होय है। विशुद्धपरिणामनितै जघन्यस्थितिबंध होय है। मनुष्य तिर्यक् देव आयुकूं वर्जिकरि इन तीनी आयुकी स्थिति संक्लेशपरिणामनितै घटै है विशुद्धनातै वढै है।

गाथा– सुभपगदीण विसोधिए। तिव्वमसुहाण संकिलेसेण।
विपरीदे दु जघण्णो। अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१॥

अर्थ– विशुद्धपरिणामनिकरि शुभप्रकृतिनिमे रस अधिक होजाय है। अशुभप्रकृतिनिमे मंद रस होय है। अर संक्लेशपरिणामकरि शुभप्रकृतिनमें रस मंद होय अशुभमें तीव्र होय तातै कषायही संसारका कारण है। अव यो आस्रव सर्व संसारनिके समानफलका हेतु है कि कुछ विशेष है। यातै सूत्र कहे है–

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥

अर्थप्रकाशिका– कषायसहित जीवके सांपरायिक कहिए संसारका कारण ऐसा आस्रव होय है। अर कषायरहित जीवके ईर्यापथ कहिए स्थितिरहित आस्रव होय है। इहां स्वामीके भेदतैं आस्रवमे भेद है आस्रवके दोय स्वामी है। सकषायी जीव अर अकषायी जीव। जे आत्माकूं "कषति" कहिए घातै ते क्रोधादिक कषाय है। तथा जैंसे फिटकडी लोद हरडै ए कषायले द्रव्य वस्त्रके रंग लगनेकूं कारण है। तैसे क्रोधादिकषाय आत्माके कर्मरूप रंग

लगनेकूं कारण है तातैं कषाय कहिए है। ऐसे कषायसहित जीवके सांपराय कहिए संसारका कारण आस्रव होय है। अर कषायरहित जे उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगीके योगका वशकरि आस्रव होय है सोही ईर्यापथ आस्रव है स्थिति एकसमयहूकी नही पावे है जैसे मार्ग होय गमनकरि जाय ठहरैनही। अव बहुत भेदरूप जो सांपरायिक आस्रव ताके भेंद कहनेकूं सूत्र कहे है–

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंचचतुःपंचपंचविंशतिसंख्याः पूर्व्वस्य भेदाः ॥५॥

अर्थप्रकाशिका– इंद्रिय पांच-कषाय च्यार-अव्रत पांच क्रिया पचीस ए सव है ते "पूर्व्वस्य" कहिए पहिले कह्या जो सांपरायिक आस्रव ताके भेंद है। तहां पाच इंद्रिय तो पहिले कह्या सोही इंद्रियनिके विषयविषै रागद्वेषरुप प्रवर्त्तना। वहुरि कषाय क्रोधादिक वहुरि अव्रताहिंसादिक आगें कहसी–

अव इहां पचीस क्रिया कहे है। तहां चैत्य गुरु अर प्रवचन जो आगम इनिकी पूजादिलक्षण सम्यक्त्वक्रिया है–१, अन्य कुदेवतानिका स्तवनादिरूप मिथ्यात्वं क्रिया है–२, गमनागमनादिरूप प्रवर्तन का यादी करि सो प्रयोगक्रिया है–३, बहुरि वीर्यांतराय वा ज्ञानावरणका क्षयोपशम होते संतैं अंगोपांगका अवलंवनतै आत्माके काय वचन मनके योग रचनामें समर्थ ऐसें पुद्गलनिका ग्रहण सो समादानक्रिया है। अथवा संयमीपुरुषके असंयमके सन्मुखपणा सो समादानक्रिया है–४, वहुरि ईर्यापथ जो गमनकर्म ताकै निमित्त क्रिया सो ईर्य्यापथक्रिया है–५, ऐंसे पांच क्रिया कही। वहुरि क्रोधके वशते जो क्रिया सो प्रादोषिकी क्रिया है। जातै क्रोध प्रदोषकूं कारण है। कोऊ अपना इष्ट स्त्री वित्तहरणादिक निमित्त विना ही चुगल दुष्ट क्रोध करे है जैसे दृष्टिविषादिक स्वभावतैंही होय है।

तथा दुष्टनिकी चेष्टाविना निमित्तही क्रोधादिरूप है निमित्तवान् प्रदोष है–१, दुष्टपनाकें अर्थि उद्यम करना सो कायकी क्रिया है–२, हिंसाके उपकरण शस्त्रादिक ग्रहण करना सो अधिकरणक्रिया है–३, अपने वा परके दुःखकी उत्पत्तिको कारण सो पारितापिकी क्रिया है–४, आयु इंद्रिय बल प्राणका वियोग करनेतैं प्राणातिपातिकीक्रिया है–५, ऐंसे पंच क्रिया कही।

वहुरि प्रमादी जीवके रागार्द्रीकृतपणातै रमणिक रूपके अवलोकनका अभिप्राय सो दर्शनक्रिया हैं–१, वस्तुके स्पर्शनें विषै परिणामतै प्रवर्त्तना सो स्पर्शक्रिया है–२, विषयके अपूर्व नवीननवीन कारण उपजावना सो प्रात्ययिकी क्रिया है–३, वहुरि स्त्रीपुरुष पशूनिके बैठने सोवने प्रवर्त्तनेके देशविषै मलमूत्रादिक क्षेपना सो समंतानुपात क्रिया है–४, विना देखी विना सोधी भूमिविषैं कायादिकका निक्षेप करना बैठना सोवना सो अनाभोग क्रिया है–५, ऐंसे पांच क्रिया है।

वहुरि जो परके करने योग्य क्रियाकूं आप करे सो स्वहस्तक्रिया है–१,

पाप जाकरि ग्रहण होय ऐंसी प्रवृत्तीकूं भला जाननां सो निसर्गक्रिया वा आलस्यते प्रशस्तक्रियाका नाही करना सो निसर्गक्रिया है–२, परकरि आचरण किया जो पापादिक ताका प्रकाश करना सो विदारणक्रिया है–३, चारित्रमोहके उदयते आवश्यकादिकनिविषै परमागमकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्त्तन करनेकूं असमर्थ होई अन्यथा प्ररूपण करना सो आज्ञाव्यापादिका क्रिया है–४, मूर्खतातैं वा आलस्यकरिके परमागमकरि उपदेशकरी विधिमे अनादर करना सो अनांकाक्षा क्रिया है–५, ऐसे पांच क्रिया है।

वहुरि छेदन भेदन छोलन इत्यादि क्रियामे तत्परपना अथवा अन्यकरिके आरंभ करता संता हर्ष करना सो आरंभक्रिया है–१,

परिग्रहकी रक्षाके अर्थि प्रवर्त्तना सो परिग्राहिकी क्रिया है–२, ज्ञानदर्शनादिविषै कपटरूप उपाय सो मायाक्रिया है–३, कोऊ मिथ्यात्वका कार्य करता होय ताकूं प्रशंसादिकरिके दृढ करे जो वहुत भले करी ऐंसे मिथ्यात्वकूं दृढ करे सो मिथ्यादर्शन क्रिया है–४, संयमका घातक कर्मके उदयके वशतै निवृत्तिरूप नही होना संयमरूप नही प्रवर्त्तना सो अप्रत्याख्यानक्रिया है–५, ऐसे सर्व पचीस क्रियाके नाम कहे। ए आस्रवके कारण है। अव आस्रवका विशेष जनावनेकू सूत्र कहे हैं–

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥

अर्थप्रकाशिका– तीव्रभाव मंदभाव ज्ञातभाव अज्ञातभाव अधिकरण वीर्य इनिके विशेषतै तिस आस्रवमै विशेष है। बाह्य अभ्यंतर कारणनिकी उदीरणाके वशतै अतिवृद्धिरूप क्रोधादि कषायनिकरि तीव्र परिणाम सो तीव्रभाव है। अर कषायनिकी मंदतातै मंदभाव हैं। कोऊ प्राणीका घात होतै ज्ञान भया जोमै प्राणोका घात कीया सो ज्ञातभाव है। अथवा यो प्राणी मारने योग्य हैं ऐसा जानिकरी मारनेमे प्रवृत्ति करना सो ज्ञातभाव हैं। बहुरि मद्यादिककरी वा इंद्रियनिकै मोहके करनेवाला मद तातै वा असावधानता है लक्षण जाका ऐसा प्रमादतै गमनादिकनिमै विनाजाणे प्रवृति करना सो अज्ञातभाव है। जाकै आधार पुरूषनका प्रयोजन होय सो अधिकरण है द्रव्यकी शक्तीका विशेष सो वीर्य हैं। इन छहके तफावततै आस्रवविषैं तफावत होयहैं। ए जहां जैसा होय तहां तैसा आस्रव होयहै। जातै कारणके भेदतै कार्यमे भेद हैही। अब कह्या जो अधिकरण तामै भेद दिखावेहैं–

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥

अर्थप्रकाशिका– आस्रवका आधार जीव अर अजीव हैं। इहां वहुवचन कहनेकरि जिसतिस पर्यायकरि सहित जीव अजीव अधिकरण है। अब प्रथम जीवाधिकरणका भेद कहे है–

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषाय विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥

अर्थप्रकाशिका– आदिका जीवाधिकरण है सो संरंभ समारंभ आरंभ ए तीन अर मन वचन काय ए. तीन, अर कृत कारित अनुमोदना ए तीन, क्रोध मान माया लोभ ए कषाय च्यार, इनिकौं परस्पर गुणें एकसो आठ भेद रूप है। हिंसादिकविषै उद्यमरूप परिणाम सो संरंभ हैं। हिंसादिकका साधन जे कारण तिनमें अभ्यास करना सामग्री मिलावना सो समारंभ हैं। हिंसादिकनिमें प्रवर्तन करना सो आरंभ है। ऐसे ए तीन वहुरि मन वचन कायके भेदतें योग तीन, वहुरि कृत कहिए आप स्वाधीन होय करैं अर परतें करावै सो कारित हैं अर अन्य कोऊ करै ताकूं आप भला जानें सो अनुमत है ऐसे ए तीन वहुरि क्रोध मान माया लोभ ए च्यार कषाय एते विशेषनिकरि परस्पर संबंधरूप करिए तदि एकसो आठ भेद होइ है।

सो ऐसे। क्रोधकृत कायसंरंभ–१, मानकृत कायसंरंभ–२, मायाकृत कायसंरंभ–३, लोभकृत कायसंरंभ–४, क्रोधकारित कायसंरंभ–५, मानकारित कायसंरंभ–६, मायाकारित कायसंरंभ–७, लोभकारित कायसंरंभ–८, क्रोधानुमत कायसंरंभ–९, मानानुमत कायसंरंभ–१०, मायानुमत कायसंरंभ–११, लोभानुमत कायसंरंभ–१२, ऐंसै कायसंरंभके भेद भए।

ऐसैही वचनसंरंभके वारह भेद हैं अर ऐसैही मन:संरंभके वारह भेद है। सव मिलि संरंभके छत्तीस भेद भए। ऐसैही समारंभके अर आरंभके छत्तीस छत्तीस भेद होयहै। सव मिलि जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद होय है।

वहुरि सूत्रमे च शब्द है सो अंतरंग भेदके समुच्चयकें अर्थि है। ताकरि अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन जे कषायके च्यार भेद तिनकरि गुणे च्यारसे वत्तीस भेद होय है। ऐसे जीवके परिणामके विशेषतै आस्रवमै भेद है। अव अजीवाधिकरणके भेद कहेहैं–

निर्वर्त्तनानिक्षेपसंयोगनिस्सर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥९॥

अर्थप्रकाशिका– निवर्त्तना निक्षेप संयोग निसर्ग ए च्यार है। तहां निर्वर्त्तनाके दोय भेद। निक्षेपके च्यार भेद। संयोगके दोय भेद। निसर्गके तीन भेद। ऐसे अजीवाधिकरणके भेद है। तहां निपजाइए सो निर्वर्त्तना है सो दोय प्रकार है। शरीरतै कुचेष्टा उपजावना सो देहदु:प्रयुक्त नाम निर्वर्त्तना है–१, अर हिंसाके उपकरण शस्त्रादिककी रचना करना सो उपकरणनिर्वर्त्तना है–२, तथा एक मूलगुण निर्वर्तना एक उत्तरगुणनिर्वर्तना। तहां मूल पंचप्रकार शरीर वचन मन छासनिश्वासका निपजावना सो मूलगुणनिवर्तना है। अर उत्तर जो काष्ठपुस्त

कहिए मृत्तिका दिक अर चित्रकर्मादि निपजावना सो उत्तरगुण निर्वर्तना है। ऐसैंहूं दोय प्रकार निर्वर्तना है।

बहुरि निक्षेप कहिए धरिए सो निक्षेप है। ताके सहसानिक्षेपाधिकरण–१, अनाभोगनिक्षेपाधिकरण–२, दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण–३, अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण–४, ऐसै निक्षेप च्यार प्रकार है।

तहां भयादिककरिकै वा अन्यकार्य करनेकी शीघ्रताकरिकै जो पुस्तक कमंडलु शरीर तथा शरीरका मलादिक क्षेपिए सो सहसानिक्षेपाधिकरण है।

१, बहुरि शीघ्रता नही होतैंहू इहां जीव है वा नही हैं ऐसा विचार नहीकरैं अर अवलोकनविना ही पुस्तक कमंडलु शरीर अर शरीरसंबंधी मलादिक निक्षेपण करिए तथा जहां वस्तु धरि चाहिए तहां नही धरना जैसें तैंसे अनेक जाइगा धरना सो अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है।

२, बहुरि जो दुष्टताकरि वा यत्नाचाररहितपणाकरि जो उपकरण शरीरदिकनिका क्षेपना सो प्रदुष्टनिक्षेपाधिकरण है।

३, बहुरि जो विनादेख्या वस्तुका निक्षेपण करना सो अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण है। ऐसे च्यारप्रकार निक्षेप कह्या। बहुरि संयोजना जो संयोग सो दोय प्रकार हैं। तहां जो शीतस्पर्शरूप जो पुस्तक तथा कमंडलु शरीरादिक तिनकूं तावडाकरि तप्त जो पिंछिका ताकरि पूछना सोधना इत्यादिक उपकरणसंयोजना है। बहुरि पान जो जलादिक तिनक अन्यपानमैं मिलावना तथा भोजनमैं मिलावना तथा भोजनकूं पानमैं मिलावना तथा अन्यभोजनमैं मिलावना सो भक्तपानसंयोजना है।

निसर्ग्गाधिकरण तीन प्रकार है। दुष्टप्रकार मनका प्रवर्तन करता सो मनोनिसर्गाधिकरण है–१, दुष्टप्रकार वचनका प्रवर्त्तन करना सो वाग्निसर्गाधिकरण है--२, दुष्टप्रकार कायका प्रवर्तन करना सो कायनिसर्गाधिकरण है।

भावार्थ– जीव अजीव दोऊ द्रव्यके आश्रयकरि कर्मका आगमन होय है तिन भावनिके ए विशेष कहेहै। ऐसे सामान्य आस्रवका स्वरूप कहि अब ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके आस्रवके कारण कहेहैं–

तत्प्रदोषनिन्हवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥

अर्थप्रकाशिका-- ज्ञानदर्शनकै बिषै तत्प्रदोष निह्नव मात्सर्य अंतराय आसादना उपघात इनि भावनितै ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मकां आस्रव होयहै। तहां कोऊ पुरूष मोक्षका कारण

ऐसा तत्वज्ञानकी कथनी करता होई ताकूं श्रवणकरि ईर्षाभावतै प्रशंसा नहीकरै मौन राखै ताकूं प्रदोष कहिए। वहुरि आपकूं शास्त्रका ज्ञान होय अर कोऊ जाननेकै अर्थि आपकूं पूछे इस वस्तुका स्वरूप कहा है तदि आप नटिजाय जो मै तो नही जानूं ऐसा शास्त्रज्ञानका छिपावना सो निन्हव है। वहुरि आपकै शास्त्रका ज्ञान होई अर शिक्षायोग्य होंई तोहू सिखावै नही जो सिखजायगा तो मेरी वरावरी करैगा ऐसे अभिप्रायकूं मात्सर्य कहिए। वहुरि ज्ञानाभ्यास कोऊ करता होई तिसमै विघ्नकरिदे पुस्तकका तथा पढावनेवालाका तथा स्थानका विच्छेद वियोग करदे सो अंतराय है। वहुरि परकरि प्रकाशन कीया ज्ञानको वर्जन करना अवार मती प्रकाशो इत्यादिक है सो आसादना है। वहुरि प्रशस्तज्ञानकूं दूषण लगावना सो उपघात है। इनिकरि ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका आस्रव होय है। औरहू आचार्य उपाध्यायतै प्रतिकूलता अर अकालमैं अध्ययन, श्रद्धानका अभाव विद्याके अभ्यासमै आलस्य तथा अनादरतै सूत्रका अर्थका श्रवण, धर्मतीर्थका लोप, बहुश्रुतीपणाका गर्व तथा मिथ्या उपदेश देना, वहुश्रुतीनीका अपमान करना, असत्यप्रलाप. उत्सूत्रवाद करना, शास्त्रनिका वेचना, हिंसादिकमै प्रवर्त्तना ते समस्त ज्ञानावरण कर्मके आस्रवका कारण है।

वहुरि परके देखनेमै मात्सर्य तथा अंतराय करना तथा नेत्रनिका उत्पाटन, दृष्टिका गर्व, बहुतनिद्रा, दिवसमै शयन करना, आलस्यस्वभाव रहना, नास्तिकताका ग्रहण, सम्यग्दृष्टिकूं दूषण लगावना, कुतीर्थनिकी प्रशंसा करना, प्राणीनिका घात करना यतिजनाकी निंद्रा करना, इत्यादिक दर्शनावरण कर्मके आस्रवका कारण है। अब अन्य कर्मके आस्रवकूं कहेहै—

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥

अर्थप्रकाशिका— दुःख शोक ताप आक्रंदन वध परिदेवन एते आपके करे तथा परके करे तथा आपके परके दोऊनिके करे सो असातावेदनीय कर्मके आस्रवके कारण है। तहां पीडारूप परिणाम सो दुःख है। अपने उपकारक द्रव्यका वियोग होतै जो परिणाममे मलीन होय तिसमें लीन अभिप्रायरूप होय चिंता खेदरूप निराश होना सो शोक है। वहुरि जो निंद्यकार्य करनेतै अपना अपवाद होनेतैं अंतःकरणकी कलुषततै तीव्र पश्चानाप करना सो ताप है। कोऊ या कहै जो निंद्यकार्य कीया ताका तो पश्चाताप चाहिएही तो निंद्यकार्य करनेतै अपवादहूभी चाहिएही निंद्यकार्यका फल तो नरक तिर्यंचमै भोगना पडेगा इहां निंदा अपवाद होनेतै धर्मात्मा तो हर्षही मानेगा जो मै निंद्यकार्य कीया है मेरी निंदा अपवाद तिरस्कार चाहिएही अब पश्चाताप करूंगा तो तीव्रकर्मका बंध होयगा ऐसा विचारि क्लेशित नही होय है।

वहुरि परितापतै उपज्या अश्रुपातपूर्वक विलापकरि रोवना सो आक्रंदन है। वहुरि आयु इंद्रिय वल प्राणादिकका वियोग करना सो वध है। वहुरि ऐसा विलाप करे जो श्रवण

करनेवालेके करुणा उपजि आवे सो परिदेवन है। ऐसे दुःख शोक ताप आक्रंदन वध परिदेवन ये दुःखादिक आप करे तथा परके दुःखादि करे तथा आपके अर परके दोऊनिके करे ताके असाता-वेदनीयकर्मका आस्रव होय है। तथा औरहु कहे है। अशुभप्रयोग, परका अपवाद, परकी चुगली निर्दयता, परके आताप करना, अंगोपांगका छेदन, भेदन, ताडन, त्रासन, तर्जन भर्त्सन इत्यादि तथा परकी निंदा, अपनी प्रशंसा करना तथा संक्लेश प्रगट करना, महाआरंभ, महापरिग्रह धारणकरना तथा विश्वासघातता, वक्रस्वभावता, पापकर्मकरि जीविका करना निरर्थक परकूं दंड देना, विषमिलावना वा जाल पासी वागुरा पिंजर बनावना, जीवनिके परके मारनेकूं पकरनेकूं यंत्रनिका उपाय तथा खोटे प्रयोग शस्त्रनिका दान पापतैं मिले भाव इत्यादि असाता-वेदनी कर्मके आस्रवका कारण है।

बहुरि इहां कोऊ प्रश्न करे जो दुःखदिक आपके परके करनेतैं असातावेदनीयका बंध होई तो नग्न रहना अनशनादिक तप करना आतापन योगादि धरना इत्यादिकका उपदेश देना वा करना इसमेहू दुःखादि उत्पन्न होय है तातैं अपने कहनेमैंही धर्मतीर्थमे विरोध आया, ताका समाधान, जो अंतरंगमे क्रोधादिक परिणामके आवेशपूर्वक दुःख आदिक देनेका अभिप्राय होय ते असातावेदनीयकर्मके आस्रवके निमित्त है। अर जैसे कोऊ वैद्य परमकरुणाचित्तकरि निःशल्य हुवा यत्नतैं संयमीपुरुषके गूमडाके चिरादे हैं सो वाकैं दुःख उपजावे है तोहू तिस वैद्यके वाह्य दुःखके निमित्तमात्रहीतैं पापबंध नही होय है। वैद्यका अभिप्राय तो रोगीके रोंगकूं दुरिकरी निरोगी करनेका है। तातैं संसारके दुःख मेटि मोक्ष प्राप्तहोनेका अभिप्रायवलाकै दुःख होनेका अभिप्राय नाही, तातैं किंचित् बाह्यदुःख होतैंहू परिपाककालमे कडवी औषधि-कीज्यों समस्तदुःखका दूरी करनेवाला है तातैं असाताके बंधका कारण नही है। अब सातावेदनीयका आस्रवके कारणनिकूं कहे है--

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥

अर्थप्रकाशिका-- आयुनामकर्मके वशतैं उत्पन्न होय ते भूत कहिए ते समस्त चतुर्गति-संबंधी प्राणी जानने। अर जिनकै अहिंसादिव्रतनिका धारण होय ते व्रती जानने। इनकैं विषै पीडा जानि आपमें जैसे दुःख आया तैसे परकी पीडा मेटनेंरूप परिणाम होना सो भूतव्रतीनिमें अनुकम्पा है। अब इहां कोऊ आशंका करे। जो भूत कहनेमेही सर्व प्राणिमात्र आगए फिरि व्रतीनिका ग्रहण काहेतैं कीया। ताका समाधान। जो समस्त प्राणिमात्रमें अनुकम्पा करना तथा व्रतीनिविषै अनुकम्पाका विशेष प्रधानपना जनावकै अर्थि व्रतीनिका भिन्नग्रहण कीया है।

बहुरि दुःखित बुभुक्षित जीवनिका उपकारकै अर्थि धनादिक औषधि आहारादिक देना तथा व्रती सम्यग्दृष्टि सुपात्र तिनमे भक्तिपूर्व्वक दान देना सो दान है। जिनके चित्तमे दुष्टकर्म हरनेमे राग सराग कहिए ऐसे रागीनिका संयम सो सराग संयम हैं अथवा

रागसहित संयम सो सरागसंयम है। आदिशब्दतें संयमासंयम आकामनिर्ज्जरा वालतप इनिका ग्रहण करना। तहां एकदेशत्याग करना विषयनिमें विनाप्रयोजननिका त्याग होय ताकूं संयमासंयम कहिए है।

वहुरि जो आपका अभिप्रायतें तो त्याग नही कीया अर पराधीनपणातैं भोग उपभोगका निरोध होना सो अकामनिर्जरा है। तत्वका यथार्थग्रहणका अभावतें अज्ञानी तिनकौ वाल कहिए मिथ्यादृष्टी कहिए तिनका जो तप सो वालतप हैं।

निर्दोषक्रियाविशेषका जो आचरण सो योग है ताहि समाधि कहिए। वहुरि शुभ-परिणामनिकी भावनातैं क्रोधादिकषायका अभाव होना सो क्षमा हैं। वहुरि लोभके प्रकारनिका त्याग सो शौच है। वहुरि इतिशब्दकरि अरहंतका पूजन तथा वाल वृद्ध तपस्वी मुनीनिका वैयावृत्य करनेमें उद्यमी रहना, योगनिकी सरलता, विनयादिक समस्त सातावेदनीय-कर्मके आस्रवके कारण है। अनंतसंसारका कारण दर्शनमोह ताके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं—

केवलिश्रुतसङ्घधर्म्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

अर्थप्रकाशिका— केवली श्रुत संघ धर्म अर च्यारनिकायके देवनिकें नही होते झूठे दोष प्रगट करना अपनी बुद्धिकी मलिनतातैं सो दर्शनमोहका आस्रव करे है। जाके समस्तज्ञानावरणका अत्यंतक्षयतें इंद्रियनिविना क्रमरहित त्रिकालवर्ती समस्तगुणपर्यायनिसहित लोक अलोकका जानना प्रगटहूवा ऐसे भगवान अरहंतकूं केवली कहिए है।

तिस केवलीके ग्रासादिककरि आहार करनेतें जीवना कहे अर केवलीकै क्षुधा तृषा आहार निहार कहे। कंवलादि वस्त्रपात्र कहे। कालभेदतें ज्ञानदर्शन प्रवर्त्तता कहे इत्यादिक केवलीका अवर्णवाद है। वहुरि श्रुतकें ऐसा दोष लगावे जो श्रुतविषैं मांसभक्षण मधुभक्षण मदिरापान अर वेदनाकरि पीडितकै मैथुनसेवन रात्रिभोजन इत्यादीक निर्दोष कह्या है। ऐसे जिनेंद्रका आगमका झूटा दोष प्रगट करना सो श्रुतका अवर्णवाद है।

वहुरि देहमैं निर्ममत्व निर्ग्रंथ वीतरागमुनीश्वरनिके संघकूं अपवित्र कहना निर्लज्ज कहना तथा इहांही दुःख भोगवे है तो परलोकमें कैसे सुखी होइगे? ऐसें कहना सो संघका अवर्णवाद है। वहुरि जिनेंद्रधर्मसेवनका फल असुरादि होना कहना सो धर्मका अवर्णवाद है। वहुरि देवनिके मांसभक्षण मद्यपान कहना तथा देवनिके भोजनादिकका भक्षण कहना वा मनुष्यणीनिमें कामसेवनादि कहना सो देवनिका अवर्णवाद है इनकरि दर्शनमोहनीयका आस्रव होय हैं। अव चारित्रमोहके आस्रवका कारण कहे है—

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका– द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तका वशतैं कषायनिका तीव्र उदयतै तीव्रपरिणाम होय तातैं चारित्रमोहनीय कर्मका आस्रव होय है। तथा जगतके उपकार करनेमे समर्थ जे शीलव्रत तिनकी निंदा करना, आत्मज्ञानी तपस्वीनिकी निंदा करना धर्मविध्वंस करना धर्मके साधनमे अंतराय करना शीलवाननिकूं शीलतैं चिगावना देशव्रती महाव्रतीनिकूं व्रतनितै चलायमान करना मद्यमांसमधुके त्यागीनिके चित्तमे भ्रम उपजावना चारित्रमैं दूषण लगावना क्लेशरूप लिंग भेद धरना क्लेशरूप व्रत धरना आपके अर परके कषाय उपजावना इत्यादि कषायवेदनीयके अस्रावके कारण है।

वहुरि उत्कट हसना दीन दुःखित अनाथनिकी हास्य करना कामकथा कामचेष्टाकरि हास्य करना बहुतवृथाप्रलाप करना इन परिणामनितैं हास्यवेदनीकर्मका आस्रव होय है। वहुरि परपुरुष कोऊ विचित्रक्रीडा करै तिसमैं तत्परता उचितक्रियाकूं नहीं वर्जन करना परके पीडाका अभाव करना देशादिकानिमें उत्सुकपणाका अभाव सो रतिवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण है।

वहुरि अन्य जीवनिके अरति प्रगट करना परकीर्तिका विनाश करना पापीनिकी संगति करना खोटी क्रियामे उत्साह करना इत्यादि अरतिवेदनीयका आस्रवका कारण है। वहुरि आपके शोक होई तामैं विषादी होई चिंता करना परकै दुःख प्रगट करना अन्यकूं शोकमे देखि आनंद धारना सो शोकवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण है। वहुरि अपना भयरूप परिणाम करना परके भय उपजावना निर्दयपरिणामकरि परकूं त्रास देना सो भयदेवनीयका आस्रवका कारण है।

वहुरि सत्यधर्मकूं प्राप्त भए जे च्यार वर्णके धारक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य क्षूद्र तिनका कुलकी क्रिया आचारनकी ग्लानि करना परका अपवाद करनेका स्वभाव सो जुगुप्सादेवनीयके आस्रवका कारण है। वहुरि अतिक्रोधके परिणाम अतिमानीपणा ईर्षाका व्यवहार असत्यवचनमे प्रवृत्ति अतिमायाचारमें तत्परपना अतिरागभावका करना परस्त्रीसेवन करना परस्त्रीका राग-भावतैं आदर करना स्त्रीकेसे भाव आलिंगनादिकरना इन भावनतैं स्त्रीवेदका आस्रव होय है। वहुरि अल्पक्रोध अर कुटिलताका अभाव निर्लोभता स्त्रीके संबंधमैं अल्पराग अपनी स्त्रीमें संतोष ईर्षाका अभाव अर स्नान गंध पुष्पमाला आभरणादिकनिमे अनादरपणा इत्यादि पुरुषवेदके आस्रवका कारण है। वहुरि प्रवल क्रोध मान माया लोभके परिणाम तथा गुह्य इंद्रियका छेंदना स्त्रीपुरुषनिके कामके अंग छांडि अनंगमे व्यसनीपणा करना तथा शीलवतनीकूं उपसर्ग करना व्रतनीकूं दुःख करना गुणवंतनिका मथन करना दीक्षाग्रहण करनेवालेनिकूं दुःख देना परस्त्रीके संगके निमित्त तीव्रराग धरना आचाररहित निराचारी होना सो नपुंसकवेदके आस्रवका कारण

है। ऐसे मोहनीयकर्मके आस्रवका कारण कह्या। अब आयुकर्मके आस्रवके कारणनिमें नरकायुका आस्रवनिके कारणनिकू कहे हैं-

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥

अर्थप्रकाशिका- वहुत आरंभ अर बहुत परिग्रह नरक आयुके आस्रवके कारण है। तहां प्राणीनिके पीडाका कारण व्यापारका प्रवर्तन करना सो आरंभ है। वहुत जो आरंभ सो बव्हारंभ है। अर परद्रव्यनिमे मेरा ये वस्तु है में इसका स्वामी हूं ऐसे परवस्तुमे आपा अर आपकापणाका संकल्प सो परिग्रह है।

वहुत जो परिग्रह है सो वहु परिग्रह है। सो वहु आरंभ अर वहु परिग्रह नरकायुके आस्रवके कारण है। वहुरि मिथ्यादर्शनमें मिल्या आचरण उत्कृष्टमानीपणा शिलाभेद समान क्रोध तीव्रलोभकें परिणाम निर्दयपणा परजीवनिके संताप उपजावनेके परिणाम परके घातकरनेके परिणाम परके बंधन होनेका अभिप्राय प्राणीनिका घातकरनेवाला असत्यवचन परद्रव्यके हरनेके परिणाममैं मैथुनमें अतिराग अभक्ष्यभक्षण दृढवैर साधुनिकी निंदा तीर्थंकरनिकी आज्ञाभंग कृष्णलेश्याके परिणाम रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिकहू नरकआयुके आस्रवके कारण हैं। अब तिर्यगायुके आस्रवका कारण कहे है-

माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥

अर्थप्रकाशिका- चारित्रमोहके उदयतैं प्रगट भया जो आत्माका कुटिलस्वभाव सो माया है। मायाचारतैं तिर्यग्योनिका आस्रव होय है। बहुरि मिथ्याधर्मका उपदेश देना वहु आरंभ वहु परिग्रहमे परिणाम कपट कूटकर्ममे तत्परपना पृथ्वीभेदसमान क्रोधीपणा शीलरहितपणा शब्दकरि चेष्टाकरि तीव्र मायाचार करना परके परिणामनिमैं भेद उपजावना अति अनर्थ प्रगट करना गंध रस स्पर्शनिका विपरीतपणाका करना जाति कुल शीलमें दूषण लगावना विसंवादमें प्रीति रखना परके उत्तम गुणनिकूं छिपावना विना होते ओ गुण प्रगट करना नील कपोत लेश्याके परिणाम आर्त्तध्यानतैं मरण करना इत्यादि तिर्यंच आयुके आस्रवका कारण है। अब मनुष्यआयुका आस्रवका कारण कहे है-

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥

अर्थप्रकाशिका- अल्प आरंभ अल्प परिग्रहपणातैं मनुष्य आयुका आस्रव होय है। वहुरि मिथ्यादर्शनसहित बुद्धि विनयवान स्वभाव सरलप्रकृति सांचे आचरणमें सुख मानना अपना सुख जनावना अल्प क्रोध व्यवहारमैं सरलप्रकृति संतोषमें रति प्राणीनिका घातमें विरक्तता कुकर्मतें निवृत्तहोना समस्तमें मिष्टवचन स्वभावहीतें मधुरता लौकिकव्यवहारतैं

उदासीनता ईर्षारहितपणा अल्पसंक्लेशपणा देव गुरु अतिथिनिका दान पूजाकै अर्थि अपने द्रव्यमैतै विभाग करना कपोतलेश्याके परिणाम मरणकालमें धर्मध्यानीपणा ए मनुष्यायुके आस्रवके कारण है। इहां कोऊ आशंका करे। जो मिथ्यादर्शनसहित जाकी बुद्धि होय ताकै मनुष्यायुका आस्रव कैसे कह्या। ताका उत्तर। मनुष्य तिर्यंचनिके सम्यक्त्वपरिणाम होतै तो कल्पवासीदेवकाही आयु बंधे है मनुष्यायुका बंध नहीं करे है। अव औरहू मनुष्यायुका आस्रवपणाका कारण कहे है–

स्वभावमार्दवं च ॥१८॥

अर्थप्रकाशिका– विनाशिखाया स्वभावतैंहीं कोमलपणा सोहू मनुष्यायुके आस्रवके कारण है। अव अन्यहू विशेष कहे है–

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥

अर्थप्रकाशिका– शीलरहितपणा अर व्रतरहितपणाते समस्त च्यारूही आयुका आस्रव होय है। इहां कोऊ कहे है। जो व्रतशीलरहित होय ताके देवआयुका आस्रव कैसे होय। ताका समाधान, जो भोगभूमीके जीवनिकै शीलव्रतादिक नही है तोहू देवआयुहीका आस्रव होय है। अव देवआयुके आस्रवके कारणनिकूं कहे है–

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥

अर्थप्रकाशिका– सरागसंयम अर संयमासंयम अकामनिर्झरा वालतप ए देवायुके आस्रवका कारण है। कर्मके नाशकरनेमें राग तथा व्रतादिक शुभ आचरणमें रागसहित संयमभाव सो सरागसंयम है। अर त्रसहिंसाका त्याग सो संयम अर थावरका विघातका त्याग नही सो असंयम। ऐसे संयम असंयम दोऊ रूप परिणाम सो संयमासंयम है। अर पराधीन बुद्धिग्रहादिकनिमें क्षुधातृषादिककी पीडाका भोगना मारना ताडनादिक त्रास भोगना मल-धारन करना भूमिशय्या ब्रह्मचर्य रखना परितापादिक दुःख भोगना इत्यादिक मंदकषायके भाव होय सो अकामनिर्जरा हैं। बहुरि आत्मज्ञानरहित तप करना सो वालतप है। सो सरागसंयमतै अकामनिर्जरातै वालतपतै देवआयुका आस्रव होय है। तथा आपके कल्याणके कारण ऐसे मित्रनिका संबंध करना तथा धर्मायतन जे धर्मके स्थानका सेवन करना सत्यार्थधर्मका श्रवण तथा प्रशंसा करना धर्मका महिमा दिखावना निर्दोष उपवासादि करना तपमें भावना रखना इनतै देव आयुका आस्रव होय है।

वहुरि बंदिग्रह में बंधनादिककरि बंध्या होय तथा दीर्घ कालका रोगी होय संता संक्लेशरहित हुवा वृक्षते पड्या होइ तथा पर्वततें पड्याहोइ तथा अनशनमें अग्निप्रवेशमें

जलप्रवेशमे विषभक्षणमें धर्म होनेकी बुद्धिकरि मरणकीया होइ ते व्यंतरनिमें मनुष्यनिमें तिर्यंचनिमें उपजे है। तथा जो शीलव्रतरहित होइ परंतु अनुकंपासहित जिनका हृदय होय अर जलरेषासमान ज्याके रोष अतिमंद होइ ते व्यंतरादिक देवनिमें उपजे है। तथा भोगभूमिके उपजे मनुष्यतिर्यंच तेहू व्यंतरादिक देवनिमें उपजे हैं तथा आत्मज्ञानरहित अज्ञानसंयमी अर संक्लेशभावरहित होइ ते भवनवासी व्यंतरादि बारमा स्वर्गपर्यंत देवनिमें उपजे है। तथा मनुष्यतिर्यंचनिमेंहू उपजे है। अब औरहू देवायुके आस्रवका कारण कहे है-

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

अर्थप्रकाशिका- सम्यक्त्वतें देवआयुहीका आस्रव होय है। इहां न्यारा सूत्र कहनतें कल्पवासी देवहीका नियम है। भवन व्यंतर ज्योतिषमें नहि उपजे हैं। कल्पवासीनिमेंहू महर्द्धिकदेव होय है। नीचदेव नही उपजे है। ऐसें मनुष्य तिर्यंचनिकी अपेक्षा नियम है अर देवलोकमेंतें व नरकमेंतें आया सम्यग्दृष्टी कर्मभूमिका मनुष्यही होय है। जातें देवपर्यायतें आयाहुवा देव होयनहीं अर नरकका निकस्याहू देव होय नही। ऐसे आयुकर्मके आस्रवका कारण कह्या। अब नामकर्ममें अशुभनामकर्मके आस्रवकूं कहे हैं-

योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥

अर्थप्रकाशिका- मन वचन कायके योगनिकी वक्रता अर अन्यजीवनिकूं अन्यथा प्रवर्त्तावना धर्मके मार्गकूं छुडाय उन्मार्गमें प्रवृत्त करावनेसे अशुभनामकर्मका आस्रव होय है। मिथ्यादर्शन धरना पूछि पाछें खोटी कहना, चित्तका अस्थिरपना, ताखडी वाट कूडा रखना, सुवर्ण मणि रत्नादिक खोटेकुं सांचेमे मिलावना, कूडी खोटी साक्षि भरना, अर उपांगका काटना, वर्ण रस गंध स्पर्श इनिकी विपरीतता करना, अनेकजीवनिकूं दुःख देनेवाले यंत्र पिंजरे बनावना, कपटकी अधिक्यता रखना, परकी निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, झूठ वचन बोलना, परका द्रव्य ग्रहण करना, महारंभ महापरिग्रह, उजलवेषका मद करना, आभरण रूपादिकका मद करना, कठोर निंद्य वचन असत्य प्रलाप करना, क्रोधके वचन धीरताके वचन कहना, अपना सौभाग्य चाहना, वशीकरणके प्रयोग करना, परजीवनिके कौतुहल उपजावना, आभरण पहरनेमें आदरतें अनुराग करना, जिनमंदिरके चंदनादिक गंध अर पुष्पमाल्यादिक धूपादिकनिका चोरना, हास्य करना, ईटनके पकावनेके प्रयोग करना, दवाग्नि लगावनेका प्रयोग करना, प्रतिमाका विनाश करना, तथा प्रतिमाका स्थान जो मंदिर ताका विनाश करना, मनुष्य तिर्यंचनिकै बैठनेसोचनेके मकानकौ मलमूत्रादिकरि बिगाडना, बाग बगीचा बनका विनाश करना, तथा क्रोध मान माया लोभका तीव्रपणा पापकर्मतें जीविका करना इत्यादिकनितै अशुभनामकर्मका आस्रव होय हैं। अब शुभनामकर्मके आस्रवकूं कहे है-

तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥

अर्थप्रकाशिका- अशुभनामकर्मका जो आस्रव कह्या तातैं विपरीत कहिए उलटा भावतैं शुभनामकर्मका आस्रव होयहै। मन वचन कायकी सरलता अर विसंवादका अभाव अर धर्मात्माकूं देखि हर्षकरना सम्यग्भाव रखना संसारभ्रमणतैं भयभीत रहना प्रमाद वर्जना इत्यादि शुभनामकर्मके आस्रवका कारण है। अव अनंत अर उपमारहित है प्रभाव जाका अर अचिंत्यविभूतिविशेषका कारण अर त्रैलोक्यमैं विजय करनेवाला ऐसा तीर्थंकरनामा नामकर्मके आस्रवके कारण षोडशभावना तिनकौं कहैहै –

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ-शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैय्यावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतभक्तिप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणि मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥२४॥

अर्थप्रकाशिका– दर्शनविशुद्धता–१, विनयसम्पन्नता–२, शीलव्रतेष्वनतीहार–३, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग–४, संवेग–५, शक्तितस्त्याग–६, शक्तितस्तप–७, साधुसमाधि–८, वैयावृत्यकरण-९, अरहंतभक्ति–१०, आचार्यभक्ति–११, वहुश्रुतभक्ति–१२, प्रवचनभक्ति–१३, आवश्यकापरिहाणि–१४, मार्गप्रभावना–१५, प्रवचनवत्सलत्व–१६, इन षोडशभावनाकरि तीर्थंकरनामकर्मका आस्रव होयहैं।

तहां जो सत्यार्थं आप्त आगम गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। तिनमे जो अठारह दोषनिकरि रहित होय अर सर्वज्ञ होय अर परमहितोपदेशक होय इनि तीन विशेषनिकरि सहित होइ सो आप्त होय है। तिनमें क्षुधा १, तृषा २, जन्म ३, जरा ४ मरण ५ रोग ६, शोक ७, भय ८, विस्मय ९, अरति १०, चिंता ११, राग १२, द्वेष १३, स्वेद, १४, खेद, १५, निद्रा १६, मद १७, मोह, १८, ए अठारह दोषकरि रहित होइ सोही आप्त है अर दुजा विशेषण सर्वज्ञपणा जामे पाइए जो लोक अलोकरूप समस्तपदार्थं तिनकूं त्रिकालवर्ती समस्तगुणपर्यायनिसहित युगपत् एकसमयमै जानना होइ सो सर्वज्ञपणां आप्तका दूसरा विशेषण है। अर तीजा परमहितोपदेशक होइ ऐसे निर्दोषपणा अर सर्वज्ञपणा अर वीतरागपणा जामै तीनों गुण असाधारण पाइए सोही आप्त है। जो आप्तका लक्षण एक निर्दोषही कहिए तो क्षुधादि अठारह दोषकरि रहित तो घटपटादिकभी है।

धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गलभी है। इनिके आप्तपणाका प्रसंग आवे तातै सर्वज्ञविना आप्तत्व नही। अर जो निर्दोषत्व अर सर्वज्ञत्व दोय विशेषणरूपहीकूं आप्त कहिए तो भगवान् सिद्धपरमेष्ठी निर्दोषभी है अर सर्वज्ञभी है यातै सिद्धनिके आप्तपणाका प्रसंग आवे तातै तीजा विशेषण परमहितोपदेशकपणा कह्या। तातै निर्दोषत्व अर सर्वज्ञत्व अर परम-

हितोपदेशकत्व इनि तीन विशेषणनिकरि सहित भगवान् अरहंतकैही आप्तपणा संभवैहै अन्यकै नही संभवैहै। यातै निर्दोष सर्वज्ञ परमहितोपदेशक अरहंतकूंही आप्त जाणि श्रद्धान करना उचित है।

वहुरि जो शास्त्र भगवान् आप्तका कह्या हुवा होइ अर वादी प्रतिवादीकरि उल्लंघन नही कीया जाई अर जाकी कथनी प्रत्यक्ष अनुमानकरि विरूद्ध नही होई अर सारभूत वस्तुकूं कहनेवाला होइ अर समस्त छह कायके जीवनिका हितरूप होइ अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होइ ऐसा आगमका श्रद्धान करना उचित है।

वहुरि जाकै विषयनिमै वांछा नही होइ अर समस्त आरंभ अर परिग्रह रहित होई निरंतर ज्ञानाभ्यासमै तपमै आसक्त होई सोही वीतरागी मोक्षमार्गी गुरू श्रद्धान करनेयोग्य है।

ऐसें सत्यार्थ आप्तमै आगममै गुरूमें जाकै दृढश्रद्धान होइ अर इन लक्षणरहितकूं आप्त आगम गुरूपणाकरि श्रद्धान नहीकरै सो श्रद्धानरूप परिणाम सम्यग्दर्शन है। सो इस श्रद्धानपरिणाममै पचीस दोष नही होय अर अपने गुण अंगनकरि सहित होय सोही दर्शन विशुद्धिता है। तिन दोषनिमै तीन मूढता है, अष्ट, मद है, शंकादि अष्ट दोष है, छह अनायतन है ए पचीस दोष है। तिनमै जो नदीस्नानमै धर्म मानें समुद्रकी लहरी लेनेमै धर्म मानै तथा पर्वततै पडनेमै अग्निमै प्रवेश करनेमे धर्म मानै तथा स्नानतै अपना शौच मानै तथा श्राद्धतर्प्पणादिकनिकूं धर्म मानै तथा संक्रांति जानि दान करना, ग्रहणजानि सूतक मानना स्नान करना इत्यादिक वहुतप्रकार लोकमूढता है।

तैसेही ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्ष यक्षिणी क्षेत्रपाल सूर्य चंद्रमा शनैश्चरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धिकै अर्थि सेवना पूजना वंदना दान देना सो देवमूढता है। अर जो देवपणाकरि रहित, जिनमें च्यारि निकायका देवपणा नही अर देवाधिदेव सर्वज्ञपणाकरि रहित अर जिनके तिर्यंचनिकेसे मुख हस्तीकासा मुख वानराकासा मुख सिंहकासा मुख गर्दभमुख सूवरकासा रूप जिनकै पूंछ सींग इत्यादि विपरीत आकारकूं धरें तथा चतुर्मुख पंचमुख षण्मुख चतुर्भुजादि रूपके धारकनिकूं देव मानना तथा लिंग योनि इत्यादि विपरीत रूपनिमै देवबुद्धि करना तथा जलकूं अग्निकूं वृक्षकूं पहाडकूं अन्नकूं देव मानि पूजना तथा सर्पादिकनिकूं गौकूं देव मानना तथा देवतानिकै वकरा भैसा इत्यादिक मारि चढाना तथा देवतानिकूं मद्यमांसके भक्षक तथा रोट लापसी वडा पूवा इत्यादिककी देवता वासना लेहै तथा भोजन करेहै ऐसे विपरीतश्रद्धान करेहै सों समस्त मिथ्यात्वका तीव्र उदयतै देवमूढता कहिए है।

जातै चारनिकायके देव है ते मनुष्य तिर्यंचनिकीज्यों मुखमे ग्रास लेय आहार करे है।

देवनिके तो मानसिक आहार है। मनमे विचार होतप्रमाण तृप्त होय है। देवनिके आहार-निहार मानें सो सर्वज्ञकी आज्ञाते पराङ्मुख मिथ्यादृष्टि है।

वहुरि जो आरंभपरिग्रहके धारक हिंसादि पापनिमे प्रवर्तवाले विषयानुरागी अभिमानी अज्ञानी अपना पूजा सत्कारके इच्छक कुलिंगी सूत्रविरूद्ध आचरणकेधारकनिकूं गुरु जानना पुज्य जानना सो गुरुमूढता वा पाषंडिमूढता कही है।

वहुरि जो ज्ञानका मद जाति कुलका वलका तपका ऐश्चर्यंका रूपका हस्तकी कलाका मद करना सो समस्त मिथ्यादर्शनका प्रभाव है। जाते पराधीन विनाशसहित इंद्रियजनित ज्ञानका मद करना सो मिथ्यादर्शन है। तथा कुल जाति ऐंश्चर्य रूप बलादिक ए समस्त कर्मका उदयजनित पौद्गलिक इनमे जो आपा मानि अहंकार करना सो समस्त मिथ्यादर्शनका प्रभाव हैं।

बहुरि जो रागी द्वेषी मोही देवपणारहित सो कुदेव है अर हिंसासहित यज्ञादिक ये कुधर्म है। विषय कषायके आधीन प्रवर्त्तनेवाले परिग्रहधारी आरंभधारी सो कुगुरु हैं अर इन कुगुरु कुदेव कुधर्मके सेवनेवाले ए छह अनायतन है। इनिमे धर्म नही ताते अनायतन है। इनिकूं भला जाने धर्मरूप माने सो मिथ्यादर्शनके उदयते है।

तथा शंका कांक्षा ग्लानि मूढता अनुपगूहन अस्थितीकरण अवात्सल्य अप्रभावना ए आठ दोष है इनिके त्यागते निःशंकितादिक अष्टगुण प्रगट होय है तिनकू कहें हैं। जो, इस-लोकका भय। परलोकभय। मरणभय। वेदनाभय। अनारक्षकभय। अगुप्तिभय। अकस्माद्भय। इनि सप्तभयनिकरि रहित अपना स्वरूपकूं अवलोकन करना सो निःशंकित अंग है। जाते जो भवितव्य है सो अंतरंग बहिरंग दोऊ कारणनिका परिपूर्णसंयोग मिलनेते है ताते भवितव्यता दुर्लंघ्य है ऐसे निश्चयकरि भयका अभावरूप रहना तथा अरहंत भगवानकरि उपदेश्या प्रवचनमे शंकाका अभाव सो निःशंकित है। जो सर्वज्ञ वीतराग अन्यथावादि नहीं है अन्यथा तो रागी द्वेषी कहे है ऐसा निश्चयकरि सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञामे जाके अचलप्रीति होय सो निःशंकित है।

वहुरि इहलोक परलोकसंबंधी भोगनिकी वांछाका अभावरूप परिणाम सो निःकांक्षित है। इहां कोऊ पूछें। जो, अविरतसम्यग्दृष्टीकैंभी भोगनिमे धनमे वांछा है ताकेनिर्वांछकपणा कैसे। ताका समाधान जो सम्यग्दृष्टीके भोगनेकी वांछा है सो भोगनिकूं भला जानि नही वांछा करे है। इंद्रलोककाभी भोग महान् दुःख दिखे है परंतु चारित्रमोहका प्रबल उदयते कषायराग मंद भई नही यातें इंद्रियजनित दाह सहनेकूं समर्थ नही ताते वर्त्तमानकालका दुःख उपशम होजाय तावन्मात्र चाहे है। जैसे रोगी कटुक औषधीकी बहुत चाह नाकरि पीवे हैं।

वर्त्तमान दुःख नही सह्या जाय याते परंतु अंतरंगमे ऐसा चितवन है जो कदि इस औषधितें मेरा छुटना होई। अंतरंगमे औषधितै अति अरुचि है। तैसे जानना। तथा मिथ्यादृष्टीनिका ज्ञान आचरण तपमे वांछाको अभाव सो निःकांक्षित गुण है।

बहुरि शरीरादिकनिका अशुचिस्वभाव जानिकरि शुचिपणाका मिथ्यासंकल्पका अभाव करना तथा अरहंतके प्रवचनमे साधुका समस्त आचरण योग्य है परंतु स्नान नही करना घोर तप करना कष्ट सहना ये अयोग्य है ऐसे ग्लानि नही करना सो निर्विचिकित्सता अंग है।

बहुरि वहुत प्रकार एकांतरूप दुर्नयनिके मार्ग है ते सत्यसे दीखें अर सत्य नही तिनमे परीक्षारहित होय मूढनिका वखायाहुवा विपरीत मार्गमे नही प्रवर्त्तना तथा लौकिकमे मणि मंत्र औषधनिका संयोगजनित अनेक क्रिया तथा व्यंतरादिकनिकरिविपरीत चेष्टाकूं देखी भगवत्सूत्रकी आज्ञाते विपरीत श्रद्धानका अभाव सो अमूढदृष्टि अंग है।

बहुरी जैसे पुत्रकृत दोषकूं माता गोपन करे तैसें परके दोष देखि प्रगट नही करे जो मोहनिय ज्ञानावरणादि कर्मके आधीन जगत् नष्ट होय रह्या है जो गुण होना दुर्लभ है हमारेमांहीही अनेक दोष है ऐसे विचारी परका दोष प्रगट नही करे अर अपना सुकृत्य होइ ताहि प्रशंसाके अर्थि प्रगट नही करें तथा धर्मात्मामे दोष देखि विचारे जो इसके अज्ञान तातै अशक्ततातै दोष लगिगया है जो प्रगट होइगा तो धर्मकी निंदा होयगीं ऐसा विचारि दोषकूं गोपन करे सो उपगूहनगुण है। अथवा उत्तम क्षमादिभावनाकरि आत्माके धर्मकी वृद्धिका करना सो उपबृंहण है सोभी यहींकूं कहिए है।

बहुरि कर्मका उदयजनित रागद्वेष वा रोगपीडा तथा उपसर्गपरीषह इनितैं परिणाम विगडी जो धर्मसूं छूटता होइ ताकूं धर्मके उपदेशकरि ज्ञान वैराग्य वधाय चिगने नहीं देना तथा औषध आहार पानका संयोगतै शरीरकी टहलतै तथा हम आपके है आपकी सेवातै कदाचित् नहीं चिगेंगे आपकेही है ऐसे आत्मसमर्प्पणतै जैसे वने तैसे चिगनेनही देवै धर्ममे स्थापन करै सो स्थिताकरण अंग है।

बहुरि जिनेंद्रका कह्या धर्ममें तथा धर्मके धारकनिमें धर्मके कारणनिमै नित्य अनुराग रखना सो वात्सल्य अंग है।

बहुरि जो रत्नत्रयधर्मको धारणकरि आत्माका प्रभाव प्रगट करना तथा दान शील तप जिनपूजन इत्यादिकरि जिनधर्मका प्रभाव प्रगट करै तथा अन्यमिथ्यादृष्टीहू जाकी प्रशंसा करै जो जैनीका वडा संतोष वडा दयावानपणा निर्लोभीपणा दातारपणा क्षमावानपणा जो प्राण जातैंहू विकारी नहीं होइ अनेक लोभके वशतैंहू असत्यवचन नहीं कहे, परधनहरण स्वप्नमैंहू नहीं करै, जैनीनिका सादृश्य और कोऊनिका नाही ऐसे मन वचन कायकी प्रवृत्तिकरि धर्मकी

निंदा नही करावे अर अनेकांतके प्रभावकरि एकांतरूप मिथ्याश्रद्धानकूं दूरिकरि लोकनिके हृदयमे अनेकांतरूप सत्यार्थवस्तुका स्वरूपका प्रकाश करै तथा सप्तक्षेत्रनिमे धन लगायकरि वा सकलत्यागी होई धर्मका प्रभाव प्रगट करै सो प्रभावनांग है। ऐसें पचीस दोषनिकरि रहित अष्ट अंगनिकरि रहित होइ सो दर्शनविशुद्धिता है-१

वहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रके विषै तथा दर्शन ज्ञान चारित्रके धारकनिविषै आदर सत्कार भक्ति करना तथा देव गुरु धर्मका प्रत्यक्ष परोक्ष विनय करना सो विनयसंपन्नता गुण है। तथा कषायका अभाव करि आत्माकूं मार्द्दवरूप करना सो विनयसंपन्नता अंग है-२

अहिंसादिक व्रतनिके पालनेकै अर्थि क्रोध मान माया लोभ कषायका अभावरूप आत्मस्वभावका करना सो शील है। तथा स्पर्शइंद्रियजनित समस्तविषयनितै राग छूटि वीत-रागभावरूप होना सो शील है। शीलविषै मन वचन कायकी निर्दोषता करि अतिचाररहित प्रवर्त्तना सो शीलव्रतेष्वनतिचारभावना हैं-३

वहुरि निर्दोषग्रंथनिकूं पढना पढावना उपदेश करना श्रुतज्ञानके अर्थमे निरंतर उपयोग रखना सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है-४

वहुरि शरीरसंबंधी क्षुधा तृपा शीत उष्ण रोगादिजनित अर मनसंबंधी दुःख अर इष्टवियोग अनिष्टसंयोग वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारके दुःखनितै भयभीत होइ परमवीतरागताका चिंतवन सो संवेगभावना है-५

वहुरि अपना अर अन्यका उपकारकै आहार औषध शास्त्र अभयदानका सम्यग्भावनितै भक्तिपूर्वक देना, जातैं त्यागमे अर तपमे शक्ति छिपावनाहू नहीं अर शक्तितैं अधिकहू नहीं जातैं शरीरादिक बिगडी भ्रष्ट होजाय सो नहीं करना सो शक्तितस्त्याग भावना है-६

वहुरि अपना वीर्यकूं नहीं छपायकरिकैं जिनेंद्रका मार्गके अनुकूल अनशनादिक तप करना तथा ऐसे विचारना जो यो शरीर दुःखके कारण हैं अशुचि है कृतघ्न हैं इस देहकूं यथेष्ट भोजन देय पुष्ट करना अयोग्य है तोहू चारित्र ज्ञानादिक रत्ननिका संचय करनेकूं उपकारी हैं यातै विषयनितै विरक्त होइ करिकै अपना प्रयोजनकै अर्थि परिमित शद्ध आहार देय यथाशक्ति मार्गतै अविरोधी कायक्लेशादि तप करना श्रेष्ठ है ऐसी शक्तितै तपोभावना है-७

वहुरि अनेक शीलनिकरि सहित जो मुनि तिनकै कोऊ कारणकरि विघ्न आवे तो ताका दूरि करना, जैसे अनेक वस्तुनिकरि भऱ्या भंडारविषै अग्नि लागि होई ताका जैसे बुझावना तैसे साधुनिकै विघ्न दुःख दूरीकरि व्रत शील संयमकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है-८

गुणवंत जे साधुजन तिनकै कोऊ कारणकरि दुःख रोग आजाय ताका निर्दोष विधानकरि दूरि करना सेवा टहल करना सो वैय्यावृत्य है—९

इहां उपदेशादिकरि तथा शरीरकी टहलकरिके आहारादिक पानकरिकै तो वैयावृत्ति होय है अर उनके व्रतसंयमादिकनिमें विघ्नके कारणानिकूं दूरि करना सो साधुसमाधि है।

वहुरि केवलज्ञानही हैं दिव्य नेत्र जाके ऐसा अरहंत भगवानके गुणनिमें अनुराग सो अर्हद्भक्ति है—१०

वहुरि समस्तगंधके अधिपति दीशाशिक्षाके देनेवाले आचार्यनिकें गुणनिमै अनुराग सो आचार्यभक्ति है—११

वहुरि परके हित करनेमे है प्रवृत्ति जिनकी अर स्वमतपरमतके विस्तारका निश्चयका जाननेवाले वहुश्रुत जे उपाध्याय तिनकै गुणनिमें अनुराग सो वहुश्रुतर्भाक्त है—१२

वहुरि श्रुतज्ञानके गुणनिमें अनुराग सो प्रवचनभक्ति है—१३

वहुरि सामायिक स्तव वंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान कायोत्सर्ग ए षट् आवश्यक क्रियानिका हानि नही करना यथाकाल प्रवर्त्तन करना सो आवश्यकापरिहाणि भावना है—१४

वहुरि परमतरूप अज्ञानके उद्योतका तिरस्कार करनेवाली जे स्याद्वादरूप सम्यग्ज्ञानसूर्यकी प्रभाकरि जिनधर्मका सत्यार्थ प्रभाव दिखावना तथा जातै देवनिकेहू आसनकंपायमान होजाय ऐसा महान् तपकरि तथा भव्यरूप कमलनिके वनकूं प्रफुल्लित करनेवाला जिनेंद्रका पूजनकरि सम्यग्धर्मका प्रभाव प्रगट करना सो मार्गप्रभावनांग है—१५

बहुरि जैसे गऊ वत्सविषै प्रीति करै तैसे सधर्मीकूं अवलोकन करि स्नेहतैं चित्तका आर्द्रपणा होजाना सो प्रवचनवत्सलत्व भावना है—१६

ऐसे ए षोडशभाव समस्त तथा ऊन दर्शनविशुद्धिकरि सहित चिंतवन करी हुई तीर्थंकरनामकर्मका आस्रवका कारण है—१७

वहुरि इहां विशेष ऐसा। जो तीर्थंकरनाम प्रकृतिका बंध होइ सो अविरतनाम चतुर्थगुणस्थानमें तथा पंचमे छठेमें सातमांमे तथा आठमां अपूर्वकरणगुणस्थानका छठा भागपर्यंत बंध होय है। अर प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें तथा द्वितीयोपशममें क्षयोपशममै क्षायिकमें च्यारों सम्यक्त्वमें तीर्थंकरप्रकृतिका बंध होइ परंतु मनुष्यपर्यायहीमै उसके आस्रवका आरंभ

केवली भगवान् तथा श्रुतकेवलीके चरणनिके निकटही होय और तरह नही होय।

बहुरि तीर्थंकरप्रकृतिकूं वांधि देवआयुकाही बंधकरै सो कल्पवासीनिकैमें महर्द्धिकदेव वा इंद्र होइ तथा सर्वार्थसिद्धिपर्यंत अहमिंद्रनिमैजाय उपजै है तहां देवपर्यायमेहू निरंतर आस्रव आस्रवे है। अर जाकैं पूर्वे मिथ्यात्वगुणस्थानमे तिर्यंचगतिका वा मनुष्यगतिका आयु वंधिगया होई ताके नियमतैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध नही होई। अर पूर्वें मिथ्यात्वपरिणामनिमैं प्रथम नरकका वा द्वितीय नरकका आयुबंध करीलीया होइ अर पाछै केवली श्रुतकेवलीका निकट पाय क्षयोपशम वा क्षायिकसम्यक्त्वकूं प्राप्त होइ अविरतनाम चतुर्थगुणस्थानी होइ जातैं नरक आयु बंधनकीया होइ ताके देशव्रत महाव्रत ग्रहण नही, तातैं अविरतगुणस्थानधारी रहे है पछै केवलीका निकटकुं पाय षोडशकारण भावना तीर्थंकरप्रकृतिका बंध करे सो सम्यक्त्व अव्रत-सहित मरणकरि प्रथमनरक जाय तहांभी तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव हुवाकरै। तहांसैं आयु पूर्ण करी पंचकल्याणके धारक तीर्थंकर होई निर्वाण प्राप्त होइ है। अर कोऊ मिथ्यादृष्टी जीव द्वितीय तृतीय नरकका आयु बंध कीया होइ अर पिछै क्षयोपशमसम्यक्त्व ग्रहण करि केवली तथा श्रुतकेवलीका निकट पाय षोडशकारणभावना भाय तीर्थंकरप्रकृतिके बंधकू करे फिर मनुष्यआयुमे अंतमुहूर्त बाकी रहे तहांतांई सम्यक्त्व रहै अर समयसमय तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव हुवा करै फिर द्वितीय नरकमें सम्यक्त्व लीएजाय नही। यातैं अंतर्मुहूर्त्त आयुमे बाकी रही जाय तदि सम्यक्त्व छूटि मिथ्यादृष्टी होइ द्वितीय तृतीय नरकमे जाय हैं। तहां अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत तो मिथ्यात्व रहे फिर पर्याप्त पूरा हुवा सम्यग्दर्शनकू प्राप्त होइ तदि तीर्थं-करप्रकृतिका फिर आस्रव होनेंलगिजाय सो तीन सागर वा सप्त सागर पूर्ण करि वहांतैं मनुष्यजन्ममैं पंचकल्याण पाय निर्वाण जाय है।

इहां भरतक्षेत्रमैं वा ऐरावतक्षेत्रमैं तो दोय जन्म पहली तीर्थंकरप्रकृतिबंध कीया होइ ऐसा जीव तीन नरकका आया वा षोडश स्वर्ग वा अहमिंद्र लोकका आयाही तीर्थंकर होइ पंचकल्याणक पाय निर्वाण जाय है।

बहुरि विदेहक्षेत्रमैं पूर्वभवमे तीर्तंकरप्रकृति वांधि तीसरातांई नरकका आया वा कल्पवासी देवका आया वा अहमिंद्रलोकका आया तो पंचकल्याणकुं प्राप्त होयहै। अर कोऊ मनुष्यपर्यायमे गृहावस्थामे तीर्थंकरप्रकृतिबंध करै सो तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याण प्राप्त होय है। जातैं याके गर्भ जन्म तो तीर्थंकरप्रकृतिबंध कीया पहली होगए। तदि दोय कल्याण कैसे होई।

बहुरि कोऊ मुनिपणामैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध कीया ऐसा चरम सरीरी दोऊ भवहीमे ज्ञान निर्वाण दोऊ कल्याण पायकरीही निर्वाण जाय है। ऐसे तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव कही नामकर्मके आस्रवके कारण कहे। अब नींच गोत्रके आस्रवके कारण कहे है।

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका-- परकी निंदा अपनी प्रशंसा करनी परके विद्यमानहू गुणका आच्छादन करना अर आपके जे गुण नही होइ तिनकूंहू प्रगट करना इन भावनिते नीचगोत्रका आस्रव होय है। परजीवनके होते दोष वा अनहोते दोष प्रगट करनेकी इच्छा सो परनिंदा है। अर आपविषे विद्यमान वा अविद्यमान गुणनिको प्रगट करनेकी इच्छा सो आत्मप्रशंसा है अर परके सत्यगुणनिकूं आच्छादन करना अर अपने झूंटेहु गुण प्रगट करना सो परनिंदा आत्मप्रशंसा है अर परके गुण होइ तिनकूं ढौकणा आपके अनहोते गुण प्रकट करना ते नीचगोत्रके आस्रवके कारण है। विशेष ऐसा। जो जाति कुल वल रूप श्रुत आज्ञा ऐश्चर्य तपका मद करना परकी अवज्ञा करना परकी हास्य करना परके अपवाद करनेका स्त्रभाव रखना धर्मात्मा पुरुषनिकी निंदा करना अपनी उच्चता दिखाना परके यशकूं विगाडि देना अपनी असत्यकीर्ति प्रगट करना गुरुनिका तिरस्कार करना गुरुनिका दोष विख्यात करना गुरुनिका स्थान विगाडना अपमान करना, गुरुनिके पीडा उपजावना अवज्ञा करना गुणनिकुं लोपना गुरुनिका अंजुली नही जोडना गुरुनिकी स्तुति नही करना गुरुनिके गुण नही प्रकाशना गुरुनिकू देखि नही खडा होना तीर्थंकरादिककी आज्ञाका लोप करना ए समस्त नीच गोत्रके आस्रवकूं कारण है। अव उच्च गोत्रके आस्रव के कारण कहे है-

तद्विपर्ययौ नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका- नीचगोत्रके आवते विपर्ययपणाते अर नीचप्रवृत्ति अर उत्सुकताका-अभावतै उच्चगोत्रका आस्रव होय है। परकी प्रशंसा करना अपनी निंदा करना परके भले गुणनिकूं प्रगट करना अपने गुणकी कथनी नहीं करना गुणवंतानिविषै विनयकरि नम्रीभूत रहना सो नीचैर्वृत्ति है। आपमे विज्ञानादिक अधिक होइ तोहू तिनकृत मद नहीं करना सो अनुत्सेक है। सो ए उच्चगोत्रके आस्रवके कारण है। अन्यहू जानना।

जाति कुल रूप वल वीर्य विज्ञान ऐश्चर्य तप इनिकरि अधिक होइ तातै आपकी उच्चता नहीं चितवन करना। अन्यजीवनिकी अवज्ञा नहीं करनां अन्यजीवनितै उद्धतपणा छांडना परकी निंदा ग्लानि हास्य अपवादका त्याग करना अभिमानरहित रहना धर्मात्मा जनका पूजा सत्कार करना देखतैही उठि खडा होना अंजुली जोडना नम्रीभूत रहना वंदना करना वहुरि इस अवसरमे अन्यपुरुषनिकै ऐसे गुण दुर्ल्लभ तिनकूं आपमे होतैहू उद्धतपणा नहीं करना जैसे भस्ममै ढक्या अग्निकीजों अपना माहात्म्य नहीं प्रगट करना धर्मके कारणनिमें परमहर्ष करना सो समस्त उच्चगोत्रके आस्रवके कारण है। अव अंतरायकर्मके आस्रवनिकू कहे है-

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

अर्थप्रकाशिका— दानदेनेमैं विघ्न करनेतैं दानांतरायका आस्रव होय है। जो कोऊके लाभ होता होइ तिन लाभके कारणनिकूं विगाडनेतैं लाभांतरायकर्मका आस्रव होय है। परके वीर्य विगाडनेतैं वीर्यांतराय कर्मका आस्रव होय है।

वहुरि विशेष ऐसा। जो कोउ ज्ञानाभ्यास करता होइ ताके निषेध करनेतैं तथा कोऊ सत्कार होता होइ तिसके विनाशनेतैं तथा दान लाभ भोगोपभोग वीर्य स्नान विलेपन अत्तर फुलेल सुगंध पुष्पमाल्यादिक वस्त्र आभरण शय्या आसन भक्षण करने योग्य पेय आस्वादने योग्य लेह्य इत्यादिकनिमे दुष्टभावनातै विघ्न करनेतैं तथा विभवसमृद्धि देखि आश्चर्य करनेतैं तथा अपनें धन होतैंहू नहीं खरच करनेतैं द्रव्यकी अतिवांछातैं देवताकै चटीकै वस्तुके ग्रहण-करनेतैं निर्दोष उपकरणके त्यागनेतैं परकी शक्ति वीर्य विनाशनेतैं धर्मका छेद करनेतैं सुंदर आचारके धारक तपस्वी गुरूका घात करनेतैं धर्मका आयतन तथा जिनप्रतिमाकी पूजाके विगाडनेतैं तथा दीक्षितनिकूं वा दारिद्रीनिकूं दीन अनाथनिकूं कोऊ वस्त्र पात्र स्थान देता होइ तिनका निषेध करनेतैं परकूं बंदिग्राहमे रोकनेतैं गुह्य अंगके छेदनेते कर्ण नासिका ओष्ठके काटनेतैं जीवनिके मारनेतैं अंतरायनाम कर्मका आस्रव होय है।

इहां कोऊ ऐसी आशंका करे। जो कोऊ पुरुष अभक्ष्यभक्षण करै ताकूं वर्जन करै तो ताके अंतराय कर्मका आस्रव कैसें नही कह्या। ताका समाधान। जो कोऊ अभक्ष्यभक्षण करता देखि ऐसा विचार करैं जो अभक्ष्यभक्षणतैं नरक जायगा अर हिंसातैं महान् पापका बंध होयगा किसी तरै याके यातना नहीं होई ऐसी करुणा भावनाकरि वर्जन करे ताके तो अंतरायकर्मका बंध नही होय। अर जाका केवल भोग विगाडनेका अभिप्रायतैंही वर्जन करे ताके अंतरायका आस्रव होयगा बंध नही है।

इहां ऐसा विशेष। जैसे कोऊ मद्यपानी अपनाही रुचिके विशेषतैं मोह मद विभ्रमके करनेवाली मदिरा पीय करिकैं अर ताके परिपाकके वशतैं अनेक विकारकूं प्राप्त होय है। तथा जैसे रोगी अपथ्य भोजन करि अनेक वातपित्तकफादिजनित विकारनिकूं प्राप्त होय है। तैसे यह जीव आस्रवविधिकरि ग्रहणकीया अष्ट प्रकारका ज्ञानावरणादिकर्म तथा एकसो अडतालीस प्रमाण उत्तरकर्म तथा असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तरकर्मकी प्रकृतितैं उपज्या विकारकूं प्राप्त होय है।

अव इहां कोऊ प्रश्न करै। जो आयुकर्मविना सप्तकर्मप्रकृतिनिका आस्रव समय समयप्रति निरंतर अनादिकालतैं होय है तदि तत्प्रदोषादिकनिकरि ज्ञानावरणादिकनिकाही नियम कैसे रह्या। ताका उत्तर। एककालमे जो समयप्रवद्ध आवे हैं तिसके परमाणु आयुविना ज्ञानावरणादि सप्तकर्मनिकूं वटै है तथा अपनेअपने वटेमे यथायोग्य अपनी उत्तरप्रकृतिनिकूं वटै है तातैं समस्त कर्मप्रकृतिके प्रदेशबंधप्रति नियम नहीं कह्या हैं। जो ए तत्प्रदोषादिक

भाव कहे ते अनुभागप्रति कारणका नियम है। इन भावनितै जो कर्म आवे सो अनुभागप्रति नियम जणावे है। जैसे कोऊ पुरुषका भाव दानके देनेमे अंतराय करनेवाला होइ तदि उस समयमे जो कर्मका आस्रव भया सो सब्तकर्मनिकूं वटिगया परंतु दानांतरायकर्ममे तो रस प्रचुर पडा अर अन्यप्रकृतिनिमे रस मंद पडा थोथी रही गई जातै कर्मनिका प्रकृति प्रदेश बंध तो योगनिके आधीन होय है। अर स्थिति अनुभाग कषायरूप भावनिके आधीन कोऊमे मंद पडे है। ऐसे जानना।

वहुरि आयुकर्मका आस्रवकी विधि ऐसे जाननी। जो कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका वर्तमान आयुका जेता काल होइ ताके ती भाग करने जव दोय भाग व्यतीत होइ तव तृतीय भागकी आदिमे अंतर्मुंहूर्तमात्र आयुबंधका काल है। ऐसे अष्ट त्रिभाग है।

उस कालमेही आयुकर्मके आस्रव होनेकी योग्यता है। जैसे किसी मनुष्य तिर्यंचका भुज्यमान आयु इक्यासी वर्षका होइ ताके दोय त्रिभाग जो चोवन वर्ष तिन पर्यंत तो परभव संबंधी आयुके बंध करनेकी योग्यताही नही। अर वाकी जो सत्ताइस वर्षकी आयु रही तिसकी आदिविषै अंतर्मुंहूर्तपर्यंत आयुकर्मके आस्रव होनेकी योग्यता हैं, वहां नही बंधे तो दोय त्रिभागके अठारह वर्ष भए तिनमे आयु बंधे नही अर नव वर्ष रह्या तिसका आदिका अंतर्मुहूर्त पर्यंत आयुकर्मका आस्रवका अवसर है। अर इहां नही बंधे तो छह वर्षपर्यंत योग्यता नही तीन वर्षकी आदिका अंतर्मुंहूर्त्तमे योग्यता है अर इहां नही बंधे तो दोयवर्षपर्यंत नही बंधे एक वर्षकी आदिका अंतर्मुंहूर्तमे बंध करे। अर इहांहू जो बंध नही होइ तो आठ महिनापर्यंत योग्यता नही पछे आयुका महीना चारकी आदिका अंतर्मुहूर्तमे आयुबंध होनेकी योग्यता है। इहांहू नही बंधे तो अस्सी दिनपर्यंत योग्यता नही, च्यालीस दिनकी आदिके अंतर्मुंहूर्त्तमे बंधकी योग्यता है। अर इहांहू बंध नही होइ तो चालीस दिनका दोय त्रिभाग जो छवीस दिन अर चालीस घडीपर्यंत आयुबंधकी योग्यता नही है। पछे तेरा दिन वीसघडीकी आयु रहे आदिका अंतर्मुहूर्त्तमे आयुबंधक योग्यता है। इहांहू नही बंधे तो आठ दिन वीस घडी अस्सी पल पर्यंत बंधकी योग्यता नही है चार दिन दस घडीकी लोग्यता है। ऐसे आठ अपकर्षण आयुके बंधके योग्य है। अर इन आठ अपकर्षकाभी यह नियम नही जो इहां आयुका बंध होयही। अर नवमा अपकर्ष है नही, तदि कहां बंधे। सौ कहे है। भुज्यमान आयुके कालमे एक आवलीका असंख्यातवा भाग प्रमाण अवशेष रह्या परभवसंबंधी आयुका बंध होयही ऐसा नियम है।

वहुरि केई अष्टवार केई सप्तवार केई छवार केई पांचवार केई च्यारवार केई तीनवार केई दोयवार केई एकवारही परभवसंबंधी आयुका आस्रवनैं प्राप्त होईहै। इहां अष्ट अपकर्षनिमै आयुबंध करनेवाली सर्वतं अल्प है यातै सात अपकर्षमै वांधनेवाले संख्यातगुणे, यातै

छवार बांधनेवाले संख्यातगुणे, यातैं पांचवार, यातैं च्यारवार, यातैं तीनवार, यातैं एक अपकर्षणमैं आयुबंध करनेवाले संख्यात असंख्यात गुणे है।

वहुरि जो एक अपकर्षणमैं एकवार जैसी आयु बंधीजाय सो अन्य अपकर्षमैभी वाही बंधै अन्य आयुको आस्रव नही होइ स्थिति हीन अधिक बंध्र करेही। वहुरि देव नारकीनिकै आयुका त्रिभागमै पराभवका आयु नाही बंधेहै भुज्यमान आयुका छैमहीना अवशेष रहै छै महीनाकै त्रिभागमै बंधेहै सोहू अष्ट अपकर्षरूप जानना।

वहुरि एकसमयकरि अधिक कोटीपूर्वकूं आदिसे तीन पल्यपर्यंत संख्यात असंख्यात वर्षकी आयुके धारक भोगभूमिके मनुष्यके तिर्यंचनिकै भुज्यमान आयुका नव महीना अवशेष रहे त्रिभागमै आयुबंध करै है ऐंसे आस्रव कह्या॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

ऐसे तत्वार्थका है ज्ञान जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामै छठा अध्याय समाप्त भया।

– दोहा –

है जातै तत्त्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ॥
मोक्षशात्र मंगलमय। नमो छठा अध्याय ॥६॥

छठा अध्याय समाप्तः

अर्थ प्रकाशिका

(तत्वार्थ टीका)

पं. सदासुखदास विरचित

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ ॐ नमः परमात्मने ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

आगे सातमें अध्यायका प्रारंभ करे है।

– दोहा –

॥ पापपुन्यको भेद जिन । कह्यो सुज्ञानविवेक ॥
॥ मोहभाव निर्मूलतैं । आस्रव टिकै न एक ॥१॥

आस्रव विशेषविधानके अर्थि व्रत कहनेकूं सूत्र कहे है–

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

अर्थप्रकाशिका– हिंसा अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रह इनतैं जो विरत कहिए निवृत्त होना सो व्रत है। हिंसादिकनिका स्वरूप आगैं कहसी। चारित्रमोहके उपशम क्षयोपशमतैं जो हिंसादिक पंचपापनितैं विरतिरूप होना सो व्रत है। बुद्धिपूर्वक पापनिका त्यागरूप नियम सो विरति है। व्रतनिमैं हिंसाका त्याग प्रधान है। तातैं अहिंसाव्रतकूं आदिमैं कह्या हैं। ऐसे अहिंसा–१, सत्य–२, अचौर्य्यं–३, ब्रह्मचर्य–४, परिग्रहत्याग–५, ऐसे व्रतनिके नाम है। अब व्रतनिकें द्विविधपणा जणावनेकूं सूत्र कहेहै–

देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥

अर्थप्रकाशिका– एही पंचव्रत एकदेश होय तब अणुव्रत होयहै । तातै इन पांचोपापनिका जो एकदेशत्यागी होइ सो अणुव्रती कहावेहै । अर पांचों पापनिका समस्तपणाकरी त्याग करै सो महाव्रती कहिए हैं। तिनका ऐसा विशेष है। जो मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि समस्त त्रसस्थावरनिकी विराधनाकरि रहित समस्त आरंभ परिग्रहका त्यागी देहादिक समस्त परद्रव्यनिमैं प्रवर्तै तोहू मनवचनकायतै मारनेका संकल्पकरि त्रसजीवनिकी हिंसा आप करे नही अन्यतै करावे नही अर अन्य कोऊ करै ताकूं भला जाने नही अर जो गृहमे तिष्ठता गृहस्थावस्थाहीमैं अणुव्रतरूप श्रावकका व्रत धारण करेहैं· तिसकै आरंभजनित हिंसाका तो त्याग वणी सके नही अर अपने मन वचन कायके संकल्पकरी द्वीइंद्रियादि त्रसजीवनिकी हिंसा करे नही करतेकूं भला जाने नही अर थावरकी हिंसाका त्याग नही परंतु प्रयोजनविना स्थावरकी विराधना करे नही अर प्रयोजनके वशतैं पृथ्वी जलादिककी विराधना होइ ताकूं भला जाणें नही तातै गृहस्थकैं एकदेशहिंसाका त्याग है ।

ऐसेही स्थूल असत्यका चोरी कुशीलका परिग्रहका त्याग करे सो अणुव्रती है अर याहीकूं देशव्रती कहिए है । अव इन व्रतनिकूं धारण करनेवाला ज्ञानी इन व्रतनिकी रक्षाके अर्थि जें भावना भावैं तिनकैं अर्थि सूत्र कहे है–

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ॥३॥

अर्थप्रकाशिका– इन व्रतनिके स्थिर करनेके अर्थि एकएक व्रतनिकी पांचपांच भावना है। वारंवार चितवन करना सों भोवना है। इनितै व्रत दृढ होय है। अव अहिंसाव्रतकी भावना कहे हैं–

वाङमनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥४॥

अर्थप्रकाशिका– वचनगुप्ति मनगुप्ति ईर्यासमिति आदाननिक्षेपणसमिति आलोकितपानभोजन ए पांच अहिंसाव्रतकी भावना है। वचनकी प्रवृत्तिकूं भले प्रकार रोकना सो वचनगुप्ति है। मनकी प्रवृत्तिकूं भले प्रकार रोकना सो मनोगुप्ति है, भूमिकूं अवलोकनकरि यत्नाचारतै चालना सो ईर्यासमिति है। यत्नाचारतै जीवनिकी विराधन रहित वस्तूकूं उठावना धरना सो आदाननिक्षेपणसमिति है। आहार पान दिवसविषै अंतरंगज्ञानदृष्टितै अर नेत्रनितै देखि सोधि भक्षण करना सो आलोकितपानभोजन है। ए पांच भावना अहिंसाव्रतकी निरंतर चितवन करना। अव्र सत्यव्रतकी पांच भावना कहनेकूं सूत्र कहे है–

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥५॥

अर्थप्रकाशिका– क्रोधका प्रत्याख्यान कहिए त्याग। अर लोभका त्याग। भयका त्याग। हास्यका त्याग। अर पापरहित सूत्रके अनुसार बोलना सो अनुवीचिभाषण। ए पांच भावना सत्यव्रतकी है। जातै क्रोध लोभ भय हास्य इनिके निमित्ततै असत्यवचन बोलिए। तातै इनिका त्यागरूप भावना राखणी अर अपना परका अहितहितकूं विचारि बोलना। ऐसे सत्यकी पंचभावना कही। अव अचौर्य व्रतकी पंचभावना कहनेकूं सूत्र कहे है–

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच ॥६॥

अर्थप्रकाशिका– शून्यागारमे वसना, विमोचितवासमै वसना, परका वर्जन नही करना, भिक्षाकी शुद्धिता करना, सधर्मनिसो विसंवाद नही करना, ए पंच भावना अदत्तादान-वर्जव्रतकी है। शून्यगृह जो पर्वत गुफा वन वृक्ष कोटरादिकनिमे वसना, अर परकरि छोडा हुवा उजडस्थानमे वसना, तथा आप जठे जवे अन्य कोऊ आवे ताकूं वर्जन नही करना, तथा पहली कोऊ वासकरि राख्या होइ ताकूं काढी नही वसना, अर आचारांगके मार्गकरि भिक्षाकी शुद्धिता करना, सधर्म्मनितै विसंवाद नाही करना, ए अचौर्यव्रतकी पंच भावना अव ब्रह्मचर्य-व्रतकी पंच भावना कहे है–

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरस-स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥७॥

अर्थप्रकाशिका– स्त्रीनिके विषे राग उत्पन्न करनेवाली कथाका त्याग करना, स्त्रीनिके सुंदरमनोहर अंगनिके रागसहित अवलोकनका त्याग करना, त्याग नही कीए पहली भोगकीए थे तिनके स्मरण करनेका त्याग करना, वृष्येष्टरस कहिए पुष्ट इष्ट रस जो कामोद्दीपन करने-वाला इंद्रियनिकै लालसा उपजावनेवाला रसका त्याग करना, अर अपने शरीरकू कज्जल कुंकुम पुष्प तैलादिकरि संस्कार करनेका त्याग ए पांच भावना ब्रह्मचर्यव्रतकी जानना। अव परिग्रह-त्यागव्रतकी पंच भावना कहेहै–

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥८॥

अर्थप्रकाशिका– पांच इंद्रियनिके जे स्पर्श रसादिक इष्ट अनिष्टविषय तिन विषैं रागद्वेष छांडना सो परिग्रहत्याग व्रतकी पंच भावना है। ऐसे पंच व्रतनिकी पांच पांच भावना निरंतर भावनेतै व्रत शिथिल नही होय है। जैसे व्रतनिकी दृढता करनेकूं भावना कही तैसे व्रतनिकू विरोधी हिंसादिकनितै पराङ्मुख होनेकूं भावना कहे है–

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥

अर्थप्रकाशिका– हिंसादिक पंच पाप होतै संतै इस लोकमे तथा परलोकमे अपाय कहिए नाश तथा भय अर अवद्य कहिए निंदनीकपणा देखिए है। ऐसे भावना करवोयोग्य है। कैसे सो कहिए है। हिंसक है सो नित्यही उद्वेगरूप होय है। अर निरंतर अनेकजीवनितै वैरका वांधनेवाला होय है अर इस लोकमे वध क्लेशादिकनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमे अशुभगति अर निंदनीय होय है। तातै हिंसातै विरक्तता श्रेष्ठ है कल्याणकारिणी है। तैसेही असत्यवादी समस्तके श्रद्धानयोग्य नही होय है।

इस लोकहीमे जिव्हाका छेद तथा तीव्रदंडादिक तथा जिनकूं असत्यवचनतै दुःखित कीए ते वैरी भए तिनते महान् कष्टनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमे अशुभगति होय हैं अर निंदनीक होय हे। तातै अनृतवचनतें विरक्त होना कल्याणकारी है। तैसे परधनहरणमे आसक्त है बुद्धि जाकी ऐसा चोर है सो सवंके भय उपाजनेवाला होय है।

अर इस लोकहामे मारन ताडन वध बंधन अर हस्त पाव कर्ण नासिका ओष्ठ इत्यादिकनिकका छेदन भेदन सर्वस्वहणादिकनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमे अशुभगति अर निंदनीक होय हैं। तातै चोरीतै विरक्त होना कल्याणकारीं है। तथा कुशीलपुरुष है सो मदका विभ्रमकरि उन्मत्तचित्त रहे है। अर स्त्रीनिकरि ठिग्याहुवा वनका हस्तींकीज्यो वध वंध परिक्लेशादिकनिकूं भोगे है। मोहकरी तिरस्कृत हुवा कार्य अकार्यकूं नही जाणे हैं। अर किंचित्हू कुशलकूं नही आचरण करे है। अर जो परकी स्त्रीका आलिगनमे रति करे है सो इसही लोकमे वैरका बंधाणकरि लिंगछेदन वध बंधन सर्वस्वहरणादिक नाशकूं प्राप्त होय है। परलोकमे अशुभगति कू प्राप्त होय है अर निंद्य होय है। यातै कुशीलतै विरक्त होना आत्मका हित है।

वहुरि तैसेही परिग्रहधारी है सो अनेकधनका अर्थि जो राजा चोर दाइ या दारादिक तिनकरि तिरस्कारादिकनिकूं प्राप्त होय है। जैसे कोऊ पक्षीके मांसका खंड ग्रहणहुवा तिसकूं अनेकपक्षी चोगिरद फिरि मारे है मांस खोसि ले है दुःखित करै है। तैसे धनवानके चोगिरद धनके ग्राहक अनेक दुष्ट फिरे रहे हैं। अर धनके उपार्जनमें रक्षणमें तथा नाशमें वहुत क्लेशकूं प्राप्त होय है। अर जैसे इंधनकरि अग्नि तृप्ति नही होय है तैसे धनकरि तृप्ति नहीं होय है। अर जिसका मन लोभकरि तिरस्कृत है सो कार्य अकार्यकूं नहीं देखे है अर परलोकमे अशुभगति होय है। अर यो लोभी है ऐसे निंद्य होय है। तातैं परिग्रहतै विरक्त होना श्रेष्ठ है। ऐसे हिंसादिक पापनिमें इस लोकमै नाश तथा भय परलोकमे नरकादिक दुर्गतिस्वरूप अपाय अवद्य अवलोकन करना औरहू हिंसादिकनिमें भावना कहनेकूं सूत्र कहे है–

दुःखमेव वा ॥१०॥

अर्थप्रकाशिका– हिंसादिक पंच पाप हैं ते दुःखरूपही है ऐसी भावना राखना। हिंसादिक दुःखका कारण है तातैं हिंसादिक दुःखही है। इहां कारणमे कार्यका उपचारकरि कह्या हैं। हिंसादिक पाप है ते असातावेदनीयादि अशुभकर्मका कारण है अशुभकर्म दुःखका कारण है ऐसे दुःखका कारणका कारणभी है तातैं दुःखही हैं। जैसें बंधन पीडन मोकूं अप्रिय है तैसेही अन्य समस्तप्राणीनिकूं अप्रिय है। जैसे कटुक कठोरवचन मोकूं कोऊ कहे ताके श्रवण करनेतैं हमारे अति तीव्र दुःख उपजै है तैसे अन्य जीवनिकैंहूं दुःख उपजावे है। जैसे मेरा इष्टद्रव्यकूं चोरनिकरि चोरतैं हमारे महादुःख होय है तैसे अन्य जीवनिकैंहूं होय है जैसे हमारी स्त्रीका कोऊ तिरस्कार करैं तिस करि हमारे तीव्र मानसिक पीडा होय तैसे अन्य जीवनिकैंहू अतिदुःख होय है। जैसे आपके धनादिक परिग्रह नहीं प्राप्त होतैं वा प्राप्तहुवा ताकूं नष्ट होतैं वांछा रक्षा शोक इत्यादि करि उपजा दुःखकूं प्राप्त होय हैं। तैसेही परिग्रहको वांछातैं तथा परिग्रहके नष्ट होनेतैं समस्तजीवनिके दुःख होय है। तातैं हिंसादिक पापनितैं विरक्त होनाही जीवका कल्याण है।

इहां कोऊ प्रश्न करैं। सुंदरस्त्रीका कोमल सुंदर शरीरका स्पर्शनतैं रतिसुख उपजता देखिएहै सो दुःखरूप कैसे कह्या।ताका उत्तर। जो यो सुख नहीहै भ्रांतितैं सुखरूप दीखैंहै। वेदनाका इलाज है। जैसे चाम मांस रूधिर है ते जव विकारते कलुषपणाने प्राप्तहोइ खाजिकी उत्कटताकरि वाधा करेहै तदि नखनतैं ठीकरी फत्तर इत्यादिकनितैं अपना शरीरकूं खुजावेहै। गात्रकूं छेंदने रगडनेतैं रूधिरकरि लिप्त हुवाहू अत्यंत खुजायकरि दुःखहीको सुख मानेहै। तैंसे मैथुन सेवनेवाराहू मोहतैं दुःखहीकूं सुख मानेहै। तथा मनुष्य असुर नथा सुरेंद्रादिक समस्तही अपने साथि उपजि इंद्रिया तिनकरि उपजा दुःखकूं सहनेकूं असमर्थ भए रमणीकविषयनिमै रमेहै जाते समस्त संसारीजिवनिकैं इंद्रियनिकरि उपज्या परोक्षइंद्रियाकैं आधिन ज्ञान है ताते इंद्रियनिविषैंही मित्रता वर्तैंहै अर इंद्रियानिकैं अपनेंअपनें विषयनिमे अतिलालसाकरी झंपापात प्रवर्तैंहै।

जैसें अग्नीकरि तप्तायमान लोहका गोला तैंसे इंद्रियनिकी तापकरी तप्तायमान जो आत्मा ताके विषयनिमे अतितृष्णातैं उपज्या अतिदुःखका वेगकूं सहनेंकूं असमर्थ भया विषयनिमे पडेहै। जैसे कोऊ पुरुष च्यारोतरफ अग्निकी ज्वालातैं वलता अग्निके आतापकूं नही सही सकता विष्टाका भऱ्या महादुर्गंधकुंडमैं जाय पडेहै तिस विष्टामे मस्तकपर्यंत डूबि ताकूंही आतापरहित सुख मानि मरण करेहै।

तैसे स्पर्शनइंद्रियकी आताप सहनेकूं असमर्थ हुवा संसारीजीव स्त्रीयानिका दुर्गंधदेहमे कामकी आतापरहित सुख मानता अतितृष्णातैं उपज्या तीव्रदुःखकूं भोगता मरणकरि संसारमे नष्ट होजाय है तथा इस जीवके इंद्रिय तो महाव्याधि हैं अर विषय हैं सो किंचित्काल व्याधि को

उपशमताका कारण औषध है। जिनकै इंद्रिया जीवती तिष्टै है तिनके स्वाभाविकही दुःख है। दुःख नही होइ तो विषयनिमे उछलिउछलि कैसे पडे। सो देखिएही हैं।

कपटकी हथनीका शरीरका स्पर्शकै अर्थि वनका हस्ती स्पर्शनेंद्रियकी आतापकरि बंधनमे पडेहै। धीवरके पसारे कांटेविषैं रसनाइंद्रियका विषयका लोलुपी मत्स्य फसि मरेहै। घ्राणेंद्रियकी आतापका मार्या भ्रमर है सो संकोचके सन्मुख कमलका गंधकूं ग्रहणकरता मरण करेहै। नेत्रेंद्रियजनित संतापकूं नही सहि सकता रूपका लोभी पतंग दीपककी ज्वालामे भस्म होयहै।

कर्णेंद्रियजनित तृष्णाकी आतापकूं नही सहि सकता हरिण शिकारिकरी गाया रागमे अचेत होइ मार्या जायहै। इनि दुर्निवार इंद्रियनिकी वेदनाके वसि पडे जीवनीका निकटही है मरण जिनमे ऐसे विषयनिविषै पतन होयहीहै इंद्रियजनित आतापतुल्य त्रैलोक्यमे आताप नहीहै। जैसा इंद्रियनिका आताप है तैसा अग्निका नही शस्त्रका नही विषका नही।

इंद्रियनिका आताप राहनेकूं असमर्थभये विषयनिके अर्थि अग्निमे वलैहै शस्त्रनिके सन्मुख होइहै, विषभक्षण करेहै, धर्म लोपेहैं, मात पिता गुरु उपाध्यायकूं विषयनिका रोकनेवाला जानि मारि डारेहैं।

इस संसारमे दुःखही केवल इंद्रियजनित है। जिनके इंद्रियरहित अतींद्रिय केवलज्ञान है तिनहीके निराकुलता लिए ज्ञानानंदसुख है। यातै इंद्रियाके आधीन है त्यांके स्वाभाविक दुःखही है जो स्वाभाविकदुःख नही होइ तो विषयनिमे प्रवृत्ति कैसे करे।

जाकै शीतज्वर मिटिगया सो अग्नितै तापना नाही चाहेगा। जाकै दाहज्वर मिटिगया सो कांज्याका सींचना नही चाहेगा। जाकै नेत्ररोग मिटिगया सो खपरचा अंजनादिक नही चाहेहै। जाकै कर्णका शूल मिटिगया सो कर्णमे वकराका मूत्र नही डारेगा। जाकै व्रणघाव मिटिगया सो मलमपट्टी नही करेगा। तैसे जाकै इंद्रियजनित वेदना नही ताकै विषयनिमे प्रवृत्ति कदाचित् नही होयगी।

क्षुधा वेदनाविना भोजन कौन करे? तृषावेदनाविना जल कौंन पीवे? गरमविना शीतपवन कौन चाहे? शीतविना रूईका भर्या तथा रोमका वस्त्र कौन वोढे? तातै ए समस्त विषयवेदनाके ईलाज है। वेदना घटिजाय ताकूं अज्ञानी सुख मानेहै। सुख तो जो है जहां वेदना नही उपजे अनाकुलतालक्षण स्वाधीन अतींद्रिय अनंतज्ञान है सोही सुख है अन्य नही ऐसा निश्चय जानहु। ऐसे हिंसादिकनिकूं दुःखरूपही चिंतन करना। अव औरहूं व्रतनिके अर्थि भावना कहेहै।

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ॥११॥

अर्थप्रकाशिका– सत्व जे प्राणी तिनविषै मैत्री भावना । गुणनिकरि जे अधिक होइ तिनविषै प्रमोद भावना क्लेशयुक्तनिविषै कारुण्य भावना । अविनेयनिविषै माध्यस्थभावना भावनी । अनादिकालतै अष्टप्रकार कर्मसंतानकरि दुःखरूप चतुर्गतिमैं 'सीदन्ति' कहिए क्लेश भोगे ते एकेंद्रियादिक समस्तप्राणी तिनकूं सत्व कहिए है । समस्तप्राणीनिविषै दुःखकी उत्पत्तिका अभाव चाहना जो कोऊ प्राणीके दुःख मति होहु सो मैत्रीभावना है । समस्त-प्राणीनिमे मैत्रीभावना करना योग्य है । अर जो सम्यग्दर्शनादिगुणनिकरि अधिक होइ तिनकूं गुणाधिक कहिए तिनमें प्रमोदभावना करनी । प्रमोद नाम हर्षका है ।

सो गुणनिकरि अधिक पुरूषनिकूं देखतप्रमाण मुखकी प्रसन्नताकरि नेत्रनिका आल्हादन-करि रोमांच होनेकरि स्तुति भाषण नामकीर्तिनादिकरि अंतर्गत भक्ति प्रगट करना सो प्रमोदभावना है ।

वहुरि असातावेदनीयका उदयकरि रोग दारिद्रचादिककरि पीडित जे क्लिश्यमान मनुष्य तिनमै उपकार करनेका दुःख मेटनेका अभिप्राय सो कारुण्यभावना है वहुरि जे तत्त्वार्थ-उपदेशका श्रवण ग्रहणके योग्य नही ऐसे अविनेयनिविषै रागद्वेषका अभावरूप माध्यस्थभावना करना ।

भावार्थ– मै सर्वजीवनिमें क्षमा कराऊंहू अर समस्तजीवनिमें मै क्षमा करूंहूं मै समस्तजीवनिमे मैत्रीभाव प्रीतिभाव ताकूं धारूहूं मेरा किसि जीवतें वैर नही ऐसे समस्तप्राणीनिमै मैत्रीभावना भावे । अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि अधिक पुरुषनिमै वंदना स्तुति वैय्या वृत्यकरणादिकरि प्रमोदभावना भावै । अर नानाप्रकारके शरीर मानसिक दुःखकरि संतापित दीन अनाथ कृपण बाल वृद्ध मनुष्यनिमे करुणाभावना भावे । अर जे ग्रहण धारण विज्ञा-नादिरहित मोही मिथ्यादृष्टि अभिमानी दुष्ट हठग्राही तिनमै रागद्वेषरहित माध्यस्थभावना भावै । व्रतीनिकी ओरहू भावना है ताही कहनेंकूं सूत्र कहेहै–

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥

अर्थप्रकाशिका– संवेग अर वैराग्यके अर्थि जगत्का अर कायका स्वभाव चिंतवन करना । यो जगत् कहिए लोक सो अनादिनिध्रन है अर्द्धमृदंग ऊपरि एक मृदंग धरिए ऐसा ड्योढ मृदंगकासा संस्थान धरै है । इस जगत्विषै जीव है ते नानाभेदरूप चतुर्गतिमें भ्रमण-करता निरंतर दुःख भोगें है । कोऊहू निश्चल नही है । जलका बुद्बुदातुल्य जीवित अथिर है । अर भोगसंपदा मेघपटलज्यों तथा विजुलीके चमत्कारज्यों क्षणभंगुर है ।

इहां संसारीप्राणी अनंतपरिवर्तन किए है इत्यादिक जगत्के स्वभावका चिंतवन

करनेतैं संसारपरिभ्रमणतै संवेग कहिए भय उपजे है। बहुरि यो काय है सो अनित्य हैं दुःखको कारण है अपवित्र है निःसार है कोटियत्न करतै करतै नष्ट होइगा।

बहुरि यो मनुष्यशरीर हैं सो रोगरूप सर्पनिका विल हैं। अर धोवतै निरंतर मैल गलैहै। सुगंध अत्तर फुलेल लगावता लगावता दुर्गंध वमैहै। पोषतैं पोषतै नही धारे है। सुखित राखतै राखतै अपना नहीं होय हैं। भूषित करतै करतै विडरूप दिनदिन होय है। सुधारता सुधारता दिनदिन भयानकता धारे है। सुख देतादेता दुःख उपजावेहै। मंत्रतैं तंत्रतैं मरणतैं भयभीत रहेहै। दीक्षारूप होताहोताहू दूषित करे है। शिक्षा देतैंदेतैंहू गुणनिमें नही रमैहै। दुःख भोगते भोगतैंहू ऊपशमभावकूं नहीं प्राप्त होय है। रोकतै रोकतैंहू पापहीमें प्रवर्त्तन करैहै। प्रेरणा करतै करतैंहू धर्मकूं नाहीं धारण करैहै। मर्दन करते करते कठोर होय है। रूक्ष करते करते आमकूं धारेहै। तेलादिकतै मलते मलतेहू वायकूं प्राप्त होंय हैं। सिंचता सिंचता पित्तकरि जलैहै। शोषण करते करते कफकरि गलैहै। पूंछते पूंछतें कोढादि-रोगतै मिलैहै। चमडाकरि बंध्या है। तोहू कालकरि क्षीण होय है। रक्षा करतै करतेहू यमका मुखमै पडै है। ऐसा निंद्य चिंतवन करिके वैराग्यभाव प्रगट होय है। याते संवेगवैराग्यताके अर्थि जगत्का स्वभाव अर कायका स्वभाव चिंतवन करना। अब हिंसादिक पंचपापनिका अनुक्रमतें लक्षण कहनेकूं सूत्र कहेहै—

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

अर्थप्रकाशिका— प्रमत्तयोगनितें प्राणनिका व्यपरोपण कहिए वियोग करना सो हिंसा है। कायसहित आत्माका परिणाम सो प्रमत्त है। अथवा करनेयोग्य नही करनेयोग्य कहनेयोग्य नहीं कहनेयोग्यनिकूं नही जानता संता जीवनिके उत्पत्तिस्थान आश्रय जीवसमासा-दिकनिकूं नहीं जानता कषाय मदसहित हुवा जीवनिकी दयामें नहीं प्रवर्तें सो प्रमत्त हैं।

प्रमत्तपणाका योग जो संबंध तातैं प्राणीनिका वियोग करना सो हिंसा है। जातैं जीवके रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है। अर रागदिकनिकी अनुत्पत्ति सो अहिंसा है। जातैं हिंसाके दोयभेद, एक स्वहिंसा एक परहिंसा। तहां राग द्वेष मोहादिकनिकरि आत्माका ज्ञानदर्शनादिक भावप्राणनिको जो घात तो स्वहिंसा है। अर अन्य देहादिकनिको प्राणीनिको घात सो परहिंसा है।

अर जहां अपना ज्ञानादिकनिका घात भया तहां हिंसा निश्चित भई जातैं त्रैलोक्य जीव-निकरि भऱ्या है। प्रमत्तयोगविना केवल प्राणीके प्राणनिका वियोगहीतै हिंसा नहीं है। जातैं समितिके पालनेवाले मुनि यत्नचारी तिनके वाह्यहिंसाहीतें बंध नहीं होयहै। समितिसहित च्यार हाथ-प्रमाण भूमीकूं अवलोकनकरि गमन करतें साधुका तो पग उठाय अर मेलना अर तहां जीवका

उछलीकरि पगतलै दबि मरजाना होतेंहू साधुके तिसके निमित्ततै सूक्ष्महू बंध नही होय हैं। ऐसा आगममे कह्या है। वहुरि जीवका मरण होहु वा मतिहोहु अयत्नाचारीके निश्चयतें हिंसा होय है। अर यत्नाचारिके हिंसामात्रहि करि बंध नहि होयहै।

वहुरि जे एकांतवादी जीवकौ सर्वथा नित्य अविनाशीहि माने है तथा सर्वथा क्षण-भंगुरहि मानें हैं तिनके मतमे हिंस्यहिंसक हिंसाहिंसाफल इत्यादि किछू नहि वनिसकेहै। तिनके मतमे वहुत वाधा आवे है तातैं तिनका मत प्रमाण नही। अव अनृतका लक्षण कहे हैं।

असदभिधानमनृतम् ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका— प्राणीनिकूं पीडाका कारण अप्रशस्तवचन कहना सो अनृत है। इहां अप्रशस्तकूं अनृत कहनेतैं जो आपके परके इस लोकमें वा परलोकमें दुःखका कारण असत्य कहना वा झूट कहना सो समस्त अनृत हैं। जिस वचनतैं आत्माका अभावरूप श्रद्धान होजाय, जिस वचनतैं हिंसाके कारण आरंभमे प्रवृत्ति होजाय, जिस वचनतैं कामकी उत्कटता होजाय, रागभाव वधिजाय, कलह प्रगट होजाय, मूर्छा परिग्रहमे बधिजाय, धर्मतैं पराङमुख होजाय, इंद्रियनिके विषयमे लीनता होजाय सो अनृत वचन है। तथा जिस वचनतैं परका मर्म भेद्याजाय, परका अपवाद दूषण जगत्में प्रगट होजाय, अपमान होजाय, तिरस्कार होजाय, सो अनृतवचन है। जिस वचनतैं देव गुरु धर्मतैं पराङ्भुख होजाय, तथा कुदेव कुगुरु कुधर्मंमे लीनता होजाय, लोकनिंद्य होजाय, लोकापवाद होजाय, सो समस्त अनृतवचन जानहु। अब चोरीका लक्षण कहे हैं—

अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५

अर्थप्रकाशिका— विनादीया अन्यका धन धान्यादिकका ग्रहण सो स्तेय है। इहांभी प्रमत्तयोगकी अनुवृत्ति है। जहां लोभक्लेशादिककरि परवस्तु ग्रहणकरनेकी इच्छा ताकूं स्तेय कहिए। परका वस्तुग्रहण होहु वा मति होहु प्रमत्तयोगतै स्तेय होयहीहै। यद्यपि कर्म नोकर्म धर्मग्रहण शद्बग्रहण इत्यादिकहू कोऊ दीए नाही तथापि ए अदत्तग्रहण नाही है। जातै देने लेनेके व्यवहार जहां संभवे तहां अदत्तग्रहण जानना। अव अब्रह्मका लक्षण कहे है—

मैथुनमब्रह्म ॥१६॥

अर्थप्रकाशिका— मंथुन कहिए कामसेवन सो अब्रह्म है। चारित्रमोहनीयका तीव्र उदयकरी रागभावकी उत्कटतातै जो स्त्रीपुरुषनिके परस्पर शरीरका स्पर्श करनेमे सुखकूं इच्छा करता पुरुषका जो रागपरिणाम सो मैथुन है। कदाचित् चारित्रमोहका उदयसहित दोय पुरुषनिके वा दोयस्त्रीनिकैहू कामका उदयकरि जो रागपरिणाम सो मैथुन है। बहुरि जो एकही

जन हस्तादिकनितैं कुचेष्ठा करे है सोहू तीव्रकामके संबंधतै मैथुन है सो अब्रह्म है। अव परिग्रहकूं कहे है–

मूर्छा परिग्रहः ॥१७॥

अर्थप्रकाशिका– वाह्य अभ्यंतर जे चेतन अचेतन परिग्रह तिनमे जो ममत्वपरिणाम सो मूर्छा है सोही परिग्रह है। वाह्य अभ्यंतर स्त्री पुत्र दासी दास सेवक परिवार गाय भैसी हस्ती घोडा धन धान्यादिक तथा सुवर्ण रूप्य मणि मोती शय्या आसन गृह आभरण वस्त्रादिक चेतन अचेतन वाह्य परिग्रह अर रागादिक अभ्यंतर परिग्रहका रक्षण उपार्जन संस्कारादिकमे जो व्यापार सो मूर्छा है। मूर्छा है सोही परिग्रह है।

इहां कोऊ कहे। जो मेरा यह ऐसा संकल्पही परिग्रह है, तो ज्ञानदर्शनादिकमेभी मेरा ऐसा संकल्प है तिनकेभी परिग्रहका प्रसंग आया सो यह दोष नही। इनिमे मोहका अभाव है ज्ञानदर्शनादिक परद्रव्य नहीं आत्माका स्वभाव है इनिमे मूर्छा कैसे होई। रागादिक होय है ते परके निमित्ततैं होयहै यातैं परिग्रह है। समस्त दोषनिका मूल एक परिग्रह हैं। जातै परिग्रहधारीही हिंसामे तथा आरंभदिकमें प्रवर्त्तै तथा उपार्जनके अर्थि हिंसा करें असत्य बोले परधन हरणकरे कामसेवनमें प्रवर्त्तै इसहीकरि नरकादिकनिमें दुःखका प्रकार प्रगट होय है। वहुरि मिथ्यात्व अर च्यार कषाय तीन वेद हास्यादिक छह ऐसे चोदह प्रकार परिग्रह है। अव जाके व्रत होइ सो शल्यरहित हुवा व्रती होय है–

निःशल्यो व्रती ॥१८॥

अर्थप्रकाशिका– जो शल्यरहित होय सो व्रती होयहैं। अनेकप्रकार वेदनारूप शलाकाकरी प्राणीनिका समूहकूं 'शृणाति' कहिए घातकरै तातै शल्य ऐसा नाम कहिए। जैसे शरीरमे प्रवेश कीया वाणादिक आयुध प्राणीनिकै वाधा करेहै तैसे कर्मका उदयजनित शल्यहू प्राणीनिकै वाधा करे, तातै शल्य ऐसा उपचार करि कहिए है। तें शल्य तीन प्रकार है। मायाशल्य। मिथ्यात्वशल्य। निदानशल्य तिनमै मायाचार कपटकूं धारना सो तो मायाशल्य है। विषयभोगनिकी वांछा करना सो निदानशल्य है। अर तत्वार्थनिका श्रद्धानका अभाव सो मिथ्यादर्शनशल्य है। जातै मिथ्यादृष्टीके व्रत होइ तोहूं द्रव्यलिंगी रह्या तातै व्रती नही। अर मायावी कपटीका व्रत सारा झूंठा अर जाकै इंद्रियजनित विषयभोगनिकी वांछा सो तो आत्मज्ञानरहित रागी है, तिसकै रागसहितके व्रत होइ सो परमार्थकूं विनासमझ्या होइ सो अज्ञानिका व्रत निष्फल है तातै शल्यरहितही परमार्थतें व्रती होयहै अन्य नही। अब जो व्रती ताके दोय भेद कहेहै।

अगार्य्यनगारश्च ॥१९॥

अर्थप्रकाशिका-- व्रतीके दोय भेद है। एक अगारी कहिए गृहस्थ व्रती होयहै। एक अनगारी कहिए गृहका त्यागी साधु संयमी, ऐसे व्रतीके दोय भेद है। जो गृहमे तिष्ठताही एकदेश व्रत धारे सोभी व्रती अर जो गृहकूं छांडि समस्त पापनिका मन वचन कायते त्यागकरि मूलगुण उत्तरगुणनिका धारक मुनि होय सोहू व्रती है ।

इहां कोऊ प्रश्न करे । जो गृहस्थके अणुव्रत है । परिपूर्ण व्रतविना व्रती कैसे कह्या ताका समाधान । जो नैगमादिक नयकी अपेक्षा कह्या है । जैसें नगरके मध्य एक छोटासा मकानमे झूंफडीमे रहतेकूं नगरनिवासी कहिए तैंसे अणुव्रतीकूंहू व्रती कहीएहै। तथा जैंसे वत्तीस हजार देशनिका अधिपति सार्वभौमकूंहू राजा कहिए अर एकदेशका पतिकूंहू राजा कहिए ऐंसे अणुव्रतीकूंहू व्रती कहिए अर अष्टादश सहस्त्र शील चोरासी लाख उत्तरगुणने धारक महामुनिकूंहू व्रती कहिए । अव अगारीकूं कहेहै ।

अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

अर्थप्रकाशिका-- जाकै अणुमात्र व्रत कहिए एकदेश पंचपापनिका त्याग होई सो अणुव्रती है सो अगारी कहिए गृहस्थ हैं ।

द्वीद्रियादिक जंगम प्राणीनिकी हिंसा करनेका त्याग सो प्रथम अणुव्रत है । वहुरि स्नेहके वशतैं वैरके वशतैं मोहके वशतैं असत्य कहनेका त्याग सो द्वितीय अणुव्रत है । वहुरि जो परजीवनिकैं पीडाको कारण अर राजादिकनिके भयतैंहू त्यागनेयोग्य ऐसा विनादीया परधनका त्याग सो तृतीय अणुव्रत है । वहुरि परकरी ग्रहणकरी वा नहीकरी ऐसी परकी स्त्रीका अंगतैं विरक्त होना सो चतुर्थ अणुव्रत है। वहुरि स्त्री पुत्र दासी दास गाय भैंसी धनधान्य इत्यादि परिग्रहका प्रमाण करना सो परिग्रहप्रमाण नाम पंचम अणुव्रत है। ऐसे पंचव्रतनिका धारनकरनेवाला अगारीं व्रती है । जिनेंद्रकी उपदेशी नीतिकूं नही विगाडनाही व्रत है। अव ग्रहस्थके योग्य अन्यहू व्रत है तिनकूं कहेहै ।

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोग-परिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

अर्थप्रकाशिका -- दिग्विरत देशविरत अनर्थदंडविरत सामायिक प्रोषधोपवास उपभोगपरिभोगपरिमाण अतिथिसंविभाग इनि सात व्रतनिकरि सहितहू गृहस्थ व्रती होय है ।

इहां विरतिशब्द प्रत्येक लगावना । लोभका आरंभका त्यागके अर्थि पूर्वादिक दिशानिका योजन नदी ग्राम नगर पर्वतादिक प्रसिद्धचिह्ननिकरि प्रमाण करना, जो इतना क्षेत्रका प्रमाण हैं इतना क्षेत्रवाहिर गमनादि करूं नही, कराऊं नही, करतेकूं भला जाणूं नही,

सेवकादिक भेंजूं नही, किंचित वस्तू मंगाऊं नही, भेजूं नही, ऐसी यावज्जीव मर्यादकरि अधिक क्षेत्रमे वणिजव्यवहारादिकका त्याग करे तिसकै दिग्विरति नाम व्रत है ।

वहुरि यावज्जीव जो दिशाका प्रमाण दिग्व्रतमे कीया तिसकै अभ्यंतर ग्राम नगर गृह पाटकादिककी मास पक्ष दिवसादिक कालकी मर्यादाकरि गमनागमनादिकका प्रमाण करै ताके देशविरति नाम व्रंत होयहै । वहुरि जातै अपना कार्यंहू कछु सिद्ध नही होइ अर पापका जातै ग्रहण होइ सो अनर्थंदंड है । सो अनर्थंदंड पंचप्रकार है । पापोपदेश, हिंसादान अपध्यान दुःश्रुति, प्रमादचर्या । तहां जो आरंभका तिर्यंचनिकै क्लेश होनेका वनस्पति छेदनेका पृथ्वीके खोदनेका स्त्रीपुरूषनिके विषका तिर्यंचनिके बंधनादिका जो उपदेश देना सो पापोपदेश नाम अनर्थंदंड है ।

याका विशेंष ऐसा । जो इस देशसे दासी दास सुलभ है इहांसे लेय उस देशमे वेचै तो वहुत लाभ होय सो तो क्लेशवाणिज्य है । अर इस देशतै गाय भैसि वलद ऊंट लेय उस देशमे लेजाय तो महालाभ है ऐसे तिर्यग्वणिज्य है । वहुरि वागुऱ्या शिकारी शाकुनिकनिकूं कहैं उस देशमे मृग शूर पक्षी वहुत है ऐसे कहना सो वधकोपदेश है । वहुरि खेतीकूं आदि लेय आरंभ करनेवालेनिकूं कहै पृथ्वीका जलका अग्निका पवनका वनस्पतिका आरंभ इस उपायकरि करना सो आरंभकोपदेश है ऐसे याके भेंद है ।

वहुरि जो हिंसाके उपकरण जे शस्त्र फावडा खुरपा कुदाल वेडी शांकल चावका विष अग्नि मार्जारादिक दुष्ट जीवनिका पालना लोहादिक आयुध तथा लाक्षा खलिलवण सावग सोरा नीर तैल घृत इत्यादिक हिंसाका कारण वणिज करना सो हिंसादान नामा अनर्थंदंड है।

वहुरि जो परजीवनके दोषग्रहण करनेका भाव, तथा अन्यकी लक्ष्मीके ग्रहण करनेकी इच्छा, अन्यकी स्त्रीके देखनेकी इच्छा, तथा अन्य मनुष्यतिर्यंचनिकी कलह देखना, तथा परजीवनिके स्त्री पुत्र धन आजीविकाका वियोग चाहना परका अपमान अपवाद अवज्ञा चाहना परके हानि होतै हर्ष करना, आपकी उज्वता चाहना परकी जीति हारि चिंतवन करना, शिकारमे हर्ष मानना इत्यादि अनेक दुष्टचिंतवनकूं अपध्यान नाम अनर्थंदंड कह्या है ।

वहुरि राग काम क्रोध अभिमानका वधावनेवाला, हिंसाका पोषण करनेवाला मिथ्यात्वकूं कहनेवाला, भंडकथा युद्धकथाके षारक भारतादिक वेद स्मृत्यादिकका श्रवण करना सो दुःश्रुति नामा अनर्थंदंड है ।

वहुरि जो प्रयोजनविना जलका अग्निका वनस्पति छेदनेका भूमिखोदनेका अभिप्राय रखना, तथा घात करना, अतिसंग्रह करना सो सव प्रमादचर्या नाम अनर्थंदंड है । ऐसे पंचभेद वा अनेकभेदरूप अनर्थंदंडका त्याग करना योग्य है ।

वहुरि तीनौ संध्यविषैं सर्व पापयोगक्रियासो रहित होइ समस्त रागद्वेष तजि साम्यभावकूं प्राप्तहोइ शुद्ध आत्मस्वरूपविषैं लीन होना सो सामायिक है। वहुरि एकएक मासप्रति दोय अष्टमी दोय चतुर्दशी इन पर्वनिमे सकल आरंभ तजि विषयकषाय आहारका त्याग करि धर्मकथाका श्रवण कर्त्ता करावता धर्मकथाके चिंतवनमे अंतःकरण लगाय सोलह पहर व्यतीत करै ताके प्रोषधोपवास है। एकांत पवित्र क्षेत्रमे साधुनिका निवास करयेनोग्य निर्जनस्थानमे तथा चैत्यालयमे तथा अपने रहनेकी जायगामे निराला स्थानमे प्राप्तहोइ शास्त्राभ्यास आदि आत्मकल्यणके कार्यमे प्रवर्त्तै। ताके प्रोषधोपवास होय है।

वहुरि जो एकवारही भोगनेमे आवे तांबूल भोजन पान पुष्प गंधादिक तिनकूं उपभोग कहिए। अर जो वस्तु अनेकवार भोगनेकैं आवैं ऐसे आभरण वस्त्र गृह वाहन शय्या आसनादिक ते परिभोग है। इनि भोगपरिभोगकी मर्यादा करै। तहां त्रसघात प्रमोद वहूवध अनिष्ट अनुपसेव्य जे पंचविषय तिनके भेदतैं भोग पंचप्रकार है तिन पंचप्रकारके भोगनिका तो यावज्जीव त्याग नही करना ए तो महापापरूप है इनिमैं मर्यादा नही है। ए तो महा अनर्थ उतमकुलकैं योग्यही नही व्रती कैंसे ग्रहणकरै। तिनमैं मधु अर मांस इनिमैं तो अप्रमाण त्रसजीवनिका घात है। तातैं शुष्कमांसमैं तथा आलामैं कच्चामैं अग्निका पचायामैं तथा अग्निउपरि पकतेमैं निरंतर असंख्यात त्रसजीव उपजैहै तातैं त्यागही श्रेष्ठ है।

वहुरि कार्य अकार्यमे विवेकका नाश करनेवाला महामोह करनेवाला मद्य है सो प्रमादका नाश करनेकैंअर्थि त्यागहा करना योग्य है इहां मद्यकैं मदिरा नही जाननी जो परिणाममैं उन्मत्तता उपजावै सो समस्त भंगापानादिक मद्यही है। यातैं आत्माके ज्ञानादिक गुणनिका घात होयहै। अर मदिरामैं तो त्रस जीवभी असंख्याका घात अनुपसेव्यादि लौकिक दोषभी वहुत है, यामैं हिंसाभी अपरिमित है।

वहुरि केतकी केवडा निंवका पुष्पकूं आदि लेय वहुत जीवनिका योनिस्थान है। तथा नवनीत जो मांखन तथा आर्द्र श्रृगवेर कंद मूल हलद इत्यादिक अनंतकाय है। इनिके सेवनेमैं अनंतजीवनिका घात होइ अर किंचित जिव्याका आस्वादनमात्र फल तातैं वहुत जीवनिका वध जाणी त्याग करना श्रेष्ठ है।

वहुरि जो अपने शरीरमे रोग वेदनादिक उत्पन्न करनेवला अनिष्ट है। जातैं किंचित आस्वादनकैं अर्थि महावेदना रोगकी वृद्धि मरणादिककूं नही गिणता जिव्हा इंद्रियका लंपटी होइ अनिष्टकूं भक्षण करै ताकै महापाम होइ तातैं अनिष्टका त्याग करना योग्य है। वहुरि संखचूर्ण गोमूत्रादिक कफ मलमूत्र ऊठडीका दुग्ध तथा शुद्रस्पर्शसहित तथा अस्पर्शशूद्र स्लेंछादिकनिकरि स्पर्शनकीया भोजन अनुपसेव्य है त्यगने योग्य हैं। तथा चित्रविचित्र

वस्त्रविकाररूप वस्त्र आभरणादिकहू अनुपसेव्य है ते त्यागनेयोग्य है। तातैं त्रसबद्धका स्थान अर प्रमाद करनेके कारण अर वहुवध अर अनिष्ट अर अनुपसेन्य इनिकूं त्यागी अन्य भोगनिमैं तथा न्यायरूप परिभोगनिमे कालकी मर्यादाकरि त्याग करै। सो भोगपरिभोगप्रमाण व्रत है।

वहुरि अतिथि जे मोक्षकै अर्थि उद्यमी अर संयममे लीन अर अंतरंग वहिरंग शुद्ध ऐसे व्रनिकै अर्थि शुद्ध मनकरि निर्दोषभिक्षा देना योग्य है। जातैं जिनधर्ममैं लीन यती है ते याचनारहित उद्गमादि वियालीस दोष वत्तीस अंतरायरहित चोदहमल टालि भक्तिपूर्वक गृहस्थनिकरि दींया भोजन ग्रहण करै है। तातैं ग्रहस्थ भक्तिपूर्वक संयमकी वृद्धि करनेवाला भोजन देवै तथा दर्शन ज्ञान चारित्रकी वृद्धिका कारण धर्मोपकरण देवैहै। तथा संयमकै अर्थि रोगका नाश करनेवाला प्राशुक औषध देना तथा ध्यानाध्ययनका कारण शुद्ध वस्तिका देना ऐसे चार प्रकार दानमैं अपना भोजन धनादिकका विभाग करना सो अतिथिसंविभाग नाम व्रत है ऐसे पंचव्रत अर सप्तसील ए वारह व्रत श्रावककै होयहै। अव संल्लेखनाभी कहेहै।

मारणान्तिकी सल्लेखनां योषिता ॥२२॥

अर्थप्रकाशिका– मरणके अंतमैं सल्लेखना जो है ताहि योषिता कहिए प्रीतिकरै सेवन करै। आयु इंद्रिय वल स्वासोछ्वास इन दशप्राणनिका वियोगकूं मरण कहिएहै। मरणरूप अंतविषैं सल्लेखनांकूं प्रीतिकरि सेवन करना। सो सल्लेखना दोय प्रकार है। एक कायसल्लेखना दूजी कषायसल्लेखना है तहां कायकूं जो सम्यक् कहिए आत्महितकै अर्थि लेखना कहिए कृश करना सो सल्लेखना है। अर कषायनिकूं आत्महितकै अर्थि कृश करना सो कषायसल्लेखना है। जैसे वात पित्त कफादिकके प्रकोपकरि मरणके अवसरमैं परिणाम आकुल होइ आराधनातैं नही चलायमान होइ तैसे काय सल्लेखना करै। अर मोह राग द्वेषदिककरि अपना ज्ञानदर्शनपरिणाम मरणसयमैं मलिन नही होइ तैसे कषायसलेखना करै ऐसे अनशन रसपरित्यागादिकका क्रमकरि तो जो देहका त्यागकरै अर शुभध्यान स्वाध्यायादिक करि परमात्मस्वरूपमैं एकाग्रता करता संसारसंवंधी समस्तविकल्प छांडि च्यार आराधनाका आराधक हुवा प्राणत्याग करै ताकै सल्लेखनामरण होयहै संसारके नाश करनेकूं समर्थ है।

कोऊ प्रश्न करै। जो समाधिमरणपूर्वक देहका त्याग करै तिसकै आत्मघातका प्रसंग आया। ताकूं कहेहै जो राग द्वेष मोहकरि लिप्त हुवा विष शस्त्रादिक कारणनिकरि अपना घात करै तिसकै आत्मघात होयहै। अर सल्लेखनामरण करै ताकै रागादिक नहीहैं। जैसे कोऊ वणिज करनेवाला वणिककै नानाप्रकारके क्रयविक्रयकै योग्य जे रत्न सुवर्ण वस्त्र केसरि कर्पूरादिककरि भऱ्याहुवा गृह होइ तिस गृहका विनाश होना वडा अनिष्ट हैं। अर जो विनाशके कारण निकट होइ प्रवर्त्तै तो अपनी शक्तिप्रमाण विनाशके कारणनिकूं दूरी करै अर

जो दूरी नही होते दीखै तो जैसे बहुमोल्यवस्तुनिका नाश नही होइ तैसे गृहमैसूं भिन्न होइ तिष्ठैं तैसे व्रत शील संयमादिक पुण्य परिणामनिके संचयसंयुक्त जो शरीर तिसका विनाश नाही चाहेहै। तथापि जो दुर्भिक्ष जरा रोग उपसर्गादिक शरीरके नाशके कारण आय प्राप्त-होइ तो जैसे अपना सम्यग्दर्शनादि गुण नही मलिन होइ तैसें यत्न करे अर जो यत्नतैंहू देहका मरण नही दूरि होत जाणै तो जैसे अपना व्रत संयमादिक नही विनसै तैसें आहारादिकका त्यागकरि सल्लेखनामरण करे तिसकै आत्मघात कैसे होय।

बहुरि जैसे तपमे तिष्ठते साधुकै शीत उष्णादिजनित दुःख सुख होतेहू सुख-दुःखरूप अभिप्रायके अभावतै सुखदुःखमे रागद्वेष नही होनेतै सुखदुःखकृत कर्मबंध नही होयहै। तैसे अरहंतप्रणीत सल्लेखना करनेवाले पुरुषके जीवने मरणेके अभिप्रायरहित पुरुषकै अपने मरणमे रागद्वेषके अभावतै सल्लेखनामरणमे आत्मघात कदाचित् नही होय है। ऐसे व्रतनिका तथा सल्लेखनाका स्वरूप कह्या। जाकै प्रमत्तयोगविना आत्मज्ञानसहित देहसूं भिन्न कलेवरकूं अवश्यविनाशीक जाणि त्याग करै ताके हिंसा नही। अब सम्यक्त्वके पंच अतिचार कहे है–

शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥२३॥

अर्थप्रकाशिका– शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टिसंस्तव ए सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार है। तहां जो अरहंतके परमागमतै प्ररूपणकीए अर्थमे संशय सो शंकाहै तथा अपने आत्माकूं ज्ञाता द्रष्टा अखंड अनिवाशी परपुद्गलनिके संबंधतै भिन्न जाणिकरिकैहू जो सप्तभयकूं प्राप्तहोना सो शंकानाम अतिचार है। इस लोक परलोकसंबंधी भोगनिमैं वांछा सो कांक्षा नाम अतिचार है। तथा दुःखित दरिद्री रोगी इत्यादिक क्लेशितमनुष्य तिर्यंचनिकूं देखि ग्लानि करना तथा अशुभकर्मका उदयमैं ग्लानि करना तथा अरहंतके परमागमतै जो अनशनादिक तप अर यावज्जीव स्नानका त्याग त्रिकाल परिषहका सहना इत्यादिक आचरणमे ग्लानिकरना सो विचिकित्सा नाम अतिचार है। मिथ्यादृष्टीनिका ज्ञान तप शील दानादि देखि अपना मनविषै भला जानना सो अन्यदृष्टिप्रशंसा नाम अतिचार है। अर मिथ्यादृष्टीके ज्ञान चारित्र शील तपादिकनिका वचनकरि प्रशंसा करना सो संस्तव नाम अतिचार है। ऐसे सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार कहै। ऐसेही व्रतादिकनिके अतिचार है–

व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमम् ॥२४॥

अर्थप्रकाशिका– अहिंसादिक अणुव्रत अर दिग्विरत्यादिक शील इनकेभी पांच पांच अतिचार यथाक्रमतैं कहिएहै सो जानना। जातै जाणेविना त्यागपूर्वक व्रत शुद्ध कैसे होइ। अब अहिंसा अणुव्रतके अतिचार कहे है–

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका– बंध, वध, छेद, अतिभारारोपण, अन्नपाननिरोध ए पांच अहिंसा अणुव्रतके अतिचार है। तहां जो प्राणीनिका वांछितदेशमे गमनकूं रोकना खोडा बेडी शांकल पींजरा कोठा रसा जेवडानिकरि वांधना सो बंध अतिचार है।

वहुरि लाठी चावका वेतादिककरि प्राणिनिका घात करना सो बंध नाम अतिचार है। वहुरि कर्ण नासिका लिंगादि अंग उपांगनिका छेदना सो छेद नाम अतिचार है। वहुरि वलध उंट घोडा भैंसा इत्यादिक ऊपरि जो भार बोझ लादनेकी जो न्यायरूप मर्याद तातैं अधिक भारका लाधना तथा मर्यादतैं अधिक दूरिचलावना सो अतिभारारोपण नाम अतिचार है। वहुरि मनुष्य तिर्यंचादिकनिकूं खानपानादिकका निरोधकरि भूखा तिसाया राखना तथा काल उल्लंघनकरि भोजन पान देना सो अन्नपाननिरोध नाम अतिचार है। ऐसे अहिंसा अणुव्रतके पंच अतिचार कहे। अव सत्य अणुव्रतको कहे है–

मिथ्योपदेशरहोऽभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥

अर्थप्रकाशिका– मिथ्याउपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार, साकार-मंत्रभेद। ए पांच सत्य अणुव्रतके अतिचार है। तहां जो स्वर्गमोक्षके साधक क्रियाविशेषविषै अन्यजीवनिकूं अन्यथा प्रवर्त्तन करावना झूटा उपदेश देना सो मिथ्योपदेश नाम अतिचार है। तथा स्त्रीपुरुषनिकरि एकांतमे जो क्रिया आचरण किया ताका प्रकाश करना प्रगट करना सो रहोभ्याख्यान नाम अतिचार है। वहुरि परकरि कह्या नही अर परका अभिप्रायतैं किंचित जानिकरि लिख देना जो तिनमे ऐंसे कह्या है ऐसा आचरण कीया है पगकूं ठिगनेके अर्थि कूडा लिख देना सो कूटलेखक्रिया नाम अतिचार है।

वहुरि कोऊ रुपया ह्मोर वा आभरणादिक आपके धारण करगया सोपि गया अर फेरी गिणती भूलि अल्पप्रमाण मांगनेलगा वाकूं कहे जो ठीक है अपने है सो लेजावो ऐंसे विस्मरणहुवाकूं कहना सो न्यासापहार अतिचार है। बहुरि कोऊ प्रकरणकरि वा अंगविकार भृकुटीक्षेपादिककरि अन्यके अभिप्रायकूं जाणी ईर्षाभावते लोकनिकूं प्रगट करना सो साकारमंत्रभेद नाम अतिचार है। ऐसे सत्यअणुव्रतके धारककै त्यागनेयोग्य पंच-अतिचार कहे अव अचौर्यव्रतके कहे है–

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिक-मानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥

अर्थप्रकाशिका– स्तेनप्रयोग। तदाहृतादान। विरुद्धराज्यातिक्रम। हीनाधिक मानोन्मान। प्रतिरूकव्यवहार। ए पंच अचौर्यअणुव्रतके अतिचार हैं। चोरी करतेकूं चोरणेंके

अर्थि आप युक्त करे तथा अन्यतैं प्रेरणा करावे तथा करतेकूं भला माने सो स्तेनप्रयोग अतिचार है। वहुरि जो चोरकूं प्रेरणाभी नही करी अर अनुमोदनाहू नही करी परंतु चोरका लाया वस्तुकूं ग्रहणकरे सो तदाहृतादान नामअतिचार है। वहुरि जो उचित न्यायकूं छांडि जो देना ग्रहणकरना सो विरुद्ध है राज्यके न्यायतैं विरुद्ध सो विरुद्धराज्यातिक्रम है। ज्यो वहुतमोलकी वस्तु अल्पमोलकरि लेना इत्यादिक विरुद्धराज्यातिक्रम दोष है। जो तोलावाट तो मान है अर तोलनेकी ताखडी उन्मान है तहां न्यूनकरिके अन्यके अर्थि देना अर अधिककरी लेना ऐसा कपटका प्रयोग रखना सो हीनाधिकमानोन्मान नाम अतिचार है। वहुरि जो सुवर्णादिक धातु तथा वस्त्र तथा कुंकुम कर्पूरादिक तिनमे खोटी मिलाय खरीमे वेचना सो मायाचारपूर्वक व्यवहार सो प्रतिरूपकव्यवहार नाम अतिचार है। ऐसे अदत्तादानत्याग नाम अणुव्रतके पांच अतिचार त्यागनेयोग्य है। अव ब्रह्मचर्यव्रतके पांच अतिचार कहें है–

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहोतागमनानङगक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥

अर्थप्रकाशिका– परविवाहकरण। अपरिगृहीतेत्वरिकागमन। परिग्रहीतेत्वरिकागमन। अनंगक्रीडा। कामतीव्रता। ए ब्रह्मचर्यव्रतके पांच अतिचार है। सातावेदनीय अर चारित्रमोहनीय कर्मके उदयतैं जो कन्याका वरणा सो विवाह है। परका जो विवाह करनासो परविवाहकरण नाम अतिचार है। वहुरि ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमतैं प्राप्त भई जो कलागुणप्रवीणता ताकरीके तथा स्त्रीवेद नामकर्मके तीव्रउदयकरिके तथा अंगोपांग नाम कर्मका उदयतैं परपुरुषतैं रमनेका जाका स्वभाव होइ सो व्यभिरिणी इत्वरिका है। तहां इत्वरिकाके दोय भेद। एक तो जाका कोउ स्वामी नही होइ ऐसी जो परपुरुषगामिनी कुलटा सो अपरिगृहीत इत्वरिका है। अर जाके स्वामी होइ एक पुरुषकी परिणीतेहीइकरी जो परपुरुषनिमे गमन करनेवाली कुलटा सो परिगृहीत इत्वरिका है। इनि दोऊ प्रकारकी व्याभिचारणीके जावना बुलावना लेना देना वचनालाप करना ते दोऊ शील खंडनेके कारण अतिचार है। वहुरि कामसेवनयोग्य अंगनिकूं छांडि अन्य अंगनिमे क्रीडा सो अंगनक्रीडा नाम अतिचार है॥ वहुरि काममे अधिक परिणाम तथा कामसेवनमे निरंतर परिणाम सो कामतीव्राभिनिवेश नाम अतिचार है। ऐसे ए ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रतके धारनकरनेवाले श्रावकके ए पांच अतिचार त्यागनेयोग्य है। वहुरि दीक्षितस्त्री अतिवाला स्त्री तिर्यंचणी इनका त्याग कामतीव्रताकरि कह्याही। जिस पापीके लोकापवादका भय तथा राजका भय तथा परलोकभय नही होयगा तिसके ऐसे अन्यायमे प्रवृत्ति होय है तातैं लौकिकजनही इनिका परिहार करे है तदि श्रावक कैसे ग्रहण करे। अव परिग्रहप्रमाण अतिचार कहे है–

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभाण्डप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥

अर्थप्रकाशिका– क्षेत्रवास्तु । हिरण्यसुवर्ण । धनधान्य । दासीदास । कुप्यभांड। इनिका प्रमाणनिकरि उल्लंघना सो परिग्रहत्याग अणुव्रतके पांच अतिचार है। ध्यानादिक उपजनेका स्थान क्षेत्र है। रहनेका गृहादिक मकान सो वास्तु है। रूपया ह्मोर इत्यादि हिरण्य हैं। सुवर्ण प्रसिद्ध हैं। इहां हिरण्यशब्दकरि तो व्यवहारमे प्रवृत्तिका कारण रूपये ह्मोर इत्यादि लेना। अर सुवर्णशब्दकरि आभरण पात्र अन्य सुवर्णका संचयादि लेना। गौ वलव्र इत्यादिक धन है। शालि गोहूं इत्यादिक धान्य है शरीरकी गृहकी सेवा करनेके अधिकारी स्त्रीपुरुष-दासदासी है। वस्त्र कपास चंदनादि कुप्य है।

इस परिग्रहमे मेरै इतनाही ग्रहण है। अधिक त्यागीहू ऐसे प्रमाणकरि फिर अतिलोभके वशतै प्रमाणतै अधिक ग्रहण करना ते परिग्रह परिमाणव्रनीकै त्यागनेयोग्य पंच अतिचार हैं अव दिग्विरतके अतिचा कहेहै।

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥

अर्थप्रकाशिका– उर्ध्वातिक्रम। अधोतिक्रम। तिर्यगतिक्र। क्षेत्रवृद्धि। स्मृत्यंतराधान ए दिग्विरतिव्रतके पंच अतिचार है। तहां पर्वत वृक्ष भूम्यादिकनिकै उपरि चढना सो उर्ध्वातिक्रम है। कूप वावडी इत्यादिकनिके मध्य अवतरणतै अधोतिक्रम है। भूमिके मध्य विल तथा पर्वतादिकनिकी गुफादिकनिमै प्रवेश करना सो तिर्यगतिक्रम है पूर्वै जो दिशानिका योजनादिककरि प्रमाण कीया तातै अधिक क्षेत्रमे गमकी वांछा सो क्षेत्रवृद्धि नाम अतिचार है। मर्यादकरी ताका विस्मरण होना सो स्मृत्यंतराधान नाम अतिचार है।

इहां ऐसा जानना। जो दिशाका प्रमाण कीया तिसमै जो समस्तलोकनके जावनेयोग्य मार्ग है तिसमै व्रतीकूं गमन करना उचित है। अर मार्ग छांडि पर्वत वृक्ष टीबा इत्यादिकउपरि चढना तथा कूपादिकमे नीच उतरना तथा गुफादिकमे प्रवेश करना सो अतिचार है। ऐसे दिग्विरतिव्रतके पंच अतिचार त्यागनेयोग्य है। अव देशव्रतके कहेहै–

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्‌गलक्षेपाः ॥३१॥

अर्थप्रकाशिका–आनयन। प्रेष्यप्रयोग। शव्दानुपात। रूपानुपात पुद्‌गलक्षेप ए पंच देशविरतिव्रतके अतिचार है। तहां जो मर्यादरूप क्षेत्रकरि तिष्ठते पुरूषकै प्रयोजनके वशतै मर्यादवाह्य क्षेत्रकी वस्तु परकरी मंगावना तथा परकूं बुलावना सो आनयन नाम अतिचार है। मर्यादकरि तिस क्षेत्रके वाह्य आप तो नही गमन करे परंतु सेवककूं वा पुत्रादिकनिकूं कहै जो हमारे तो इस मकानतै वाहिर गमनका त्याग हैं। तुमकूं ऐसा कार्य करना ऐसे अपने अभिप्रायका कार्यकी प्रेरणा करना सो प्रेष्यप्रयोग नाम अतिचार है। मर्यादवाह्य क्षेत्रमे तिष्ठतें पुरूषनिकूं

काश खंखारादि समस्याकरि समझावना सो शब्दानुपात अतिचार है।

बहुरि मर्यादबाहिर क्षेत्रमे तिष्ठतेनिकूं अपना रूप दिखाय कार्यमें प्रवर्त्तन करावना सो रूपानुपात अतिचार है। बहुरि मर्यादबाह्य क्षेत्रमे पाषाण काकरी इत्यादिक क्षेपि कार्यके करनेवालेनिकूं समस्या करना सो पुद्गलक्षेप नाम अतिचार है। ऐसे देशव्रतीकूं त्यागयोग्य पंच अतिचार कहे। अब अनर्थदंडत्यागका अतिचार कहे है–

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगर्थक्यानि ॥३२॥

अर्थप्रकाशिका– कंदर्प। कौत्कुच्य। मौंखर्य। असमीक्ष्याधिकरण। परिभोगका अनर्थपणा ए पांच अतिचार अनर्थदंडके त्यागके हैं। तहां रागभावकी उत्कटताते हास्यतै मिल्याहुवा गाली भंडवचन बोलना सो कंदर्प अतिचार है। बहुरि रागका उदयकी तीव्रताते हास्यवचनभी अर अशिष्ट भंडवचन बोलना अर कायतेंहू निंदनीक क्रिया करना सो कौत्कुच्य नाम अतिचार है। बहुरि धीटताकरि अनर्थक बहुतप्रलाप करना सो मौखर्य अतिचार है। बहुरि प्रयोजनकूं विचारेविना अधिकपणाकरि प्रवर्त्तन करना सो अधिकरण है। सो काय मन वचनकरि तीन प्रकार है। तहां अनर्थकूं करनेवाला खोटा काव्य श्लोकादिक चिंतवन करना सो मन अधिकरण है। अर निःप्रयोजन कथा करना विकथा करना तथा परके पीडा करनेवाला वचन सो वचन अधिकरण है। अर प्रयोजनविना गमन करना बैठना खडा रहना सचित्त अचित्त तृण वृक्ष पत्र पुष्प फलादि छेदन भेदन कुट्टन क्षेपणादि करना अग्निका विषका क्षारादिकंका देना ए समस्त असमीक्ष्याधिकरण है। बहुरि जेता अर्थकरि अपना भोग उपभोगकी कल्पना होइ तितना तो अर्थ है। अर प्रयोजनविना अधिकका संग्रह करना सो भोगोपभोगानर्थक नाम अतिचार है ऐसे अनर्थदंडविरतिव्रतके धारनेवालेके त्यागनेयोग्य पंच अतिचार है अब सामायिक व्रतके अतिचार कहे है–

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥

अर्थप्रकाशिका– मन वचन कायके योगनिका दुष्प्रणिधान अनादरस्मृत्यनुपस्थान ए सामायिकके पंच अतिचार है। सामायिक करनेका अवसरमे शरीरके अंगोपांगादिकनिका निश्चलतारहित रखना सो कायदुःप्रणिधान है। अर अक्षरनिका उच्चारणमे शुद्ध संस्कारका अभाव अर्थ जामे नहीं जान्या जाय ऐसे पाठका पढना सो वचन दुष्प्रणिधान है। अर सामायिकके भावमे अर्थमे मनका नही लगावना सो मनोदुष्प्रणिधान है। इहां प्रणिधान नाम दुष्टपरिणामनिका वा अन्यथा प्रवर्त्तनका है। बहुरि उत्साहरहित अनादरतै सामायिक करना सो अनादर नाम अतिचार है। बहुरि सामायिकमे एकाग्रताविना चित्तकी व्यग्रतातै पाठका

भूलि जाना सो अनादर नाम अतिचार है। ऐसे सामायिकव्रतीके त्यागनेयोग्य पंच अतिचार कहे। अब प्रोषधोपवासके पंच अतिचार कहे है–

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥

अर्थप्रकाशिका– अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित ऐसी भूमिमे मलमोचन तथा उपकरणग्रहण तथा संस्तरोपक्रमण अर अनादर, अर स्मृत्यनुपस्थान ए पंच प्रोषधोपवासके अतिचार है। इस भूमिमे जीव है किं नही है ऐसे नेत्रनितै देखना सो प्रत्यवेक्षण है। बहुरि कोमल उपकरण-करिकैं सोधना भुवारना सो प्रमार्जन है। तहां जो नेत्रनितै देखेविना तथा कोमल उपकरणतै सोधन कीएविना भूमिमे मल मूत्र कफादिकका क्षेपना सो अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितोत्सर्गनाम अतिचार है।

बहुरि देखे शोधेविना अरहंत आचार्यादिकनिकी पूजनके उपकरण तथा गंध माल्य धूपादिकनिका ग्रहण तथा अपने पहरनेके वस्त्र वा पात्रदिकनिका ग्रहण सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान नाम अतिचार है। बहुरि विनादेखि विनासोधी भूमिविषै वस्त्रादिकनिकूं शयनासनके अर्थि बिछावना सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण नाम अतिचार है। बहुरि क्षुधा तृषादिककी बाधाकरि आवश्यक क्रीयानिविषै अनादर सो अनादर सो अनादर नाम अतिचार है। करने योग्य आवश्यकादिकनिकूं विस्मरण होजाना सो स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार है। ऐसे प्रोषधोपवासके धारक पुरुषकै ए पांच अतिचार त्यागनेयोग्य है। अब भोगोपभोगप्रमाणव्रतके अतिचार कहे है–

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥

अर्थप्रकाशिका– सचित्त, सचित्तसंबंध, सचित्तसंमिश्र, अभिषव, दुःपक्व ऐसे आहारका भक्षणतै भोगोपभोगप्रमाणव्रतके पंच अतिचार है। चेतनासहित द्रव्य पुष्पफलादिकका आहार, सो सहित्तआहार नाम अतिचार है। सचित्तन्तै भिड्या संबंधने प्राप्त भया जो आहार सो सचित्तसम्वधाहार नाम अतिचार है। सचित्ततैं भिन्न नही कीया जाय ऐसा वस्तुका आहार सों सचित्तसंमिश्राहार नाम अतिचार है। बहुरि पुष्टवस्तु द्रव्यादिकका आहार करना सो अभिषव नाम अतिचार है।

बहुरि जो अन्न सम्यक् नही पक्या होइ सो दुःपक्वाहार है। जैसे भातके पकनेमे अभितर तंदुल रहिगया होइ तथा अती सीजिगया होइसो दुःपक्व है जातै दुःपक्व आहार करनेतै इंद्रियनिमैं मदकी वृद्धि होइ वा सचित्तपणाका प्रसंग होइ वातादिक रोग होइ फिर रोगका इलाज करनेमे पापका बंध होइ तातै दुःपक्वाहार त्यागनेयोग्य है। भोगोपभोगव्रतीके

त्यागनेयोग्य पंच अतिचार है। अब अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार कहे है–

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥

अर्थप्रकाशिका– सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, कालातिक्रम, ए दानके पंच अतिचार है। सचित जो कमलपत्रादिकमे स्थापनकरि दानदेवे सो सचित्तनिक्षेप नाम अतिचार है। बहुरि जो अन्यका नामकरि दान देना सो परव्यपदेश नाम अतिचार है। बहुरि देतासंता आदरविना देना सो मात्सर्य है अथवा अन्यदातारतै ईर्षाभावतें तथा अदेखसकाभावतै देना सो मात्सर्य नाम अतिचार है। कालके उल्लघनकरि अकालमे भोजन देना सो कालातिक्रम नाम अतिचार है। ऐसे अतिथिसंविभागके पांच अतिचार है। अब सल्लेखनाके अतिचार कहे है–

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥

अर्थप्रकाशिका– जीवितांशसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध, निदान, ए पांच अतिचार सल्लेखनामरणके है। सल्लेखनाकरिके जीवनेकी इच्छा करना जीवितांशसा नाम अतिचार है। रोगादिक उपद्रवतै आकुल होइ मरणकी वांछा करना सो मरणाशंसा नाम अतिचार है। पूर्वे जिनके जिनके सामीलरहि अनेक क्रीडादिकमे रच्या तिन मित्रनिकूं स्मरण करना सो मित्रानुराग नाम अतिचार है।

बहुरि पूर्वें भोगे भोगनिकूं शयनकूं क्रीडनकूं चिंतवन करना सो सुखानुबंध नाम अतिचार है। बहुरि जो विषयसुखनिकी अभिलाषा भोगनिमैं आगामीकालमे वांछा सो निदान नाम अतिचार है। ऐसे सल्लेखनामरण करनेवाला व्रतीका पंच अतिचार कह्या। अब दानका लक्षण कहे है–

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥३८॥

अर्थप्रकाशिका– आपका अर परका उपकारकै अर्थि धनादिकका त्याग करना देना सो दान है। जिसतै आपके पुण्यबंध होइ वा धर्मात्मा पात्रका लाभ सो अपना उपकार है। अर अन्य जीवके सम्यग्ज्ञानादिककी वृद्धि होइ सो परका उपकार है। अपना अर परका उपकारके अर्थि आहारादिक देना सो दान हैं। अब दानके फलमे विशेषके दिखावनेकूं सूत्र कहे है–

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

अर्थप्रकाशिका– विधिविशेषतै, द्रव्यविशेषतै, दातारके विशेषतै, पात्रके विशेषतै,

दानमैं विशेषतैं, तहां प्रतिग्रह उच्चस्थान पादोदक प्रणमन इत्यादिक विधि है। इनमैं तफावततैं फलमे विशेष है तफावत है।

वहुरि आहार उपकरणादिक कोऊ तो तप स्वाध्यायकी वृद्धिका कारण होइ तथा कोऊ नही होई इत्यादिक द्रव्यके तफावततैं फलमे तफावत है। वहुरि ईर्षारहितता तथा विषादरहितता तथा देनेके इच्छकमे देतेमे दीया तिसमे प्रीति होइ। तथा कल्याणका अभिप्राय होइ तथा दृष्ट फलकी चाहना नही होइ तथा निदान नही होइ। इत्यादि दातारके गुण हैं तिनके तफावततैं फलमे तफावत होय है।

वहुरि सम्यग्दर्शनादिक गुणनिकरि युक्त पात्र होइ पात्रके तफावततैं फलमे तफावत होय है। ऐसे विधि हुवा दातार पात्र इनके विशेषतैं दानमे विशेष जानना। जहां जैसा होय तहां तैसा फल होय। ऐसे सप्तम अध्ययके विषैं हिंसादिक पंच पापके त्यागकूं व्रत कहिके तिस व्रतके एकदेशतैं अणुव्रती सर्वदेशतैं महाव्रती ऐसे कह्या। वहुरि तिन व्रतनिके दृढ करनेकूं पांच पांच भावना कही।

वहुरि पांच पापनिकूं इस लोक परलोकमे दुःखदाई तथा दुःखरूप कहे। वहुरि मैत्री आदि चारी भावना कही। वहुरी संसार देहका स्वभावकी भावना कही। वहुरि पंचपापनिका जुदा जुदा लक्षण कह्या। तथा शल्यरहितकूं व्रती कह्या। वहुरि गृहस्थके अणुव्रत सप्त शील कहे। अंतसल्लेखना कही। वहुरि एकसम्यक्त्व पंच अणुव्रत सप्त शील एक सल्लेखना इन चोदहनिके पांच पांच अतिचार कहे। वहुरि दानका लक्षण अर दानके मध्य विशेषपणा कह्या।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

ऐसे तत्वार्थका है ज्ञान जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं सप्तम अध्याय समाप्त भया।

– दोहा –

है जातैं तत्त्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ॥
मोक्षशात्र मंगलमय। नमो सप्तमो अध्याय ॥७॥

सप्तम अध्याय समाप्तः

॥ ॐ नमोऽर्हद्भ्यः ॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ ॐ नमः परमात्मने ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

आगे आठमें अध्यायका प्रारंभ करे है।

– दोहा –

॥ श्रीजिनेंद्रपद नमनतै । होई सबसुखसंच ॥
॥ करमभरमसंबंधका । कारन रहे न रंच ॥ १ ॥

अव इस सूत्रमे बंधपदार्थका वर्णन करिएगा परंतु गुणस्थाननिके अर मार्गणास्थाननिके तथा मार्गणा है मध्य जाके ऐसी वीसप्ररूपणानिका स्वरूप जाणेविना बंधका उदयका एत्वका स्वरूप समझनेमे नही आवे तथा प्रसंगपाय प्रयोजन स्वरूप समकीपहली संक्षेपकरी गुणस्थाननिका स्वरूप लिखिए है। तिनमे प्रथमही गुणस्थाननिका नाम जाननेयोग्य है–

॥ गुणस्थान ॥

मिच्छो सासण मिस्सो। अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदप्पमत्त इदरो। अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य ॥१॥

उवसंत खीणमोहो। सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चोद्दसगुणठाणेहि य। कमेणसिद्धा य णादव्वा ॥२॥

मिथ्यत्व– १, सासादन– २, मिश्र– ३, अविरतसम्यग्दृष्टि– ४, देशविरत– ५, प्रमत्तसंयत– ६, अप्रमत्तसंयत– ७, अपूर्वकरण– ८, अनिवृत्तिकरण– ९, सूक्ष्मसांपराय–१०, उपशांतमोह– ११, क्षीणमोह– १२, सयोगकेवलीजिन– १३, अयोगकेवलीजिन– १४

इस प्रकार गुणस्थाननिके चोदह नाम कहे। अव इनके नामनिके अर्थसहितपणा दिखावे है। मिथ्यात्व कहिए असत्यार्थ है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाके सो मिथ्यादृष्टि हैं। आसादना नाम विराधनाका है जो सम्यक्त्वकी विराधनासहिद प्रवर्त्तै सो सासातनम्यग्दृष्टि कहावे।

जातै सम्यक्त्वतै छूटि मिथ्यात्वके सन्मुख होइ तदि सासादन नाम पावे-२

वहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्व दोऊ मिलेहुए परिणाम होइ सो मिश्र नाम पावे-६

वहुरि जाके व्रत नही होइ अर सम्यग्दर्शन होइ सो अविरतसम्यग्दृष्टि नाम पावे-४

वहुरि जाके एकदेशविरत कहिए व्रत होइ सो देशविरत नाम पावे-५

वहुरि जो संयत कहिए संयमी होइ अर प्रमादसहित होइ सो प्रमत्तसंयत है-६

वहुरि प्रमादरहित ध्यानमे लीन जो संयमी सो अप्रमत्तसंयत है-७

वहुरि जाके समयसमय अपूर्व कहिए पूर्वके समयमे नहीभए ऐसे करण कहिए विशुद्धपरिणाम सो अपूर्वकरण है-८

वहुरि निवृत्ति नाम विशेषताका है भिन्नताका है। जिसमे नानाजीवनिकी अपेक्षाहू एक समयमे एक सदृश परिणामही होइ निवृत्ति कहिए भिन्नरूप नहीहोइ सो अनिवृत्तिकरण है-९

वहुरि जामे सूक्ष्म कहिए अतिमंदतारूप सांपराय कहिए कषाय होइ सो सूक्ष्मसांपराय है-१०

वहुरि जहां मोहका अत्यंत उपशम होइ सो उपशांतमोह नाम है-११

वहुरि जहां मोहका सत्तामेतै अत्यंत नाश होइ सो क्षीणमोह नाम है-१२

वहुरि च्यारि घातिकर्मकूं जीति लिया तातै जिन है। अर केवल कहिए असहाय इंद्रियादिकनिकी अपेक्षारहित ज्ञान होइ सो केवली है। अर मन वचन कायके योगनिसहित जो केवलीजिन सो सयोगकेवली जिन है-१३

वहुरि योगनिरहित जो केवलीजिन सो अयोगकेवलीजिन नाम है-१४

ऐसे गुणस्थाननिका अक्षरार्थ कह्या। ये गुणस्थान है ते आत्माका स्वभाव नही है। मोहकर्मका उदयादिक वा योगनिकी अपेक्षातै होइ हैं।

अव मिथ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप कहे है। दर्शनमोहका भेद जो मिथ्यात्वप्रकृतिनिका दउयकरि जो जीवके तत्वार्थका श्रद्धान नही होना, अतत्वकूं तत्व समझना, सत्यार्थ आप्त आगमका स्वरूपकूं नही श्रद्धान करना, कुदेवमे देवबुद्धि करना कुगुरुमे गुरुबुद्धि करना, कुआगममे आगमवुद्धि करना, कुधर्ममें धर्मबुद्धि करना, तथा सत्यार्थ देव गुरु धर्मकूं असत्यार्थ देव गुरु

धर्मकूं समान जानना, तथा देव गुरु धर्म स्वतत्व परतत्वकूं जाननाही नही, देहादिक परद्रव्यमेही आपा धारणकरना. देहके रूप जाति कुलकूंही आत्मा जानना सो समस्त मिथ्यात्वके उदयकूं अनुभवन करता जीव विपरीतश्रद्धानी होय है। अर अहिंसालक्षण धर्म तथा समस्तजीवनिमे मैत्रीभाव तथा समस्तद्रव्यनिमें साम्यभाव तथा क्षमादिकपरिणाम ताकूं नही रुचे है। अहंकारादि मदकरि सहित जगतकी अवस्थाकूं नही जानता धर्ममे रुचि नहीकरै।

जैसे पित्तज्वरके धारककूं मधुररस नही रुचे है। अर जो कदाचित् धर्मका श्रवणहू करे तो जैसे सर्प्प दुग्धमिश्री पानकरिकेहू विषमविषकूं उगले है। तैसे धर्संश्रवणकरिकेहू धर्मके धारक पुरुषनितै वा धर्मकी कथनीतै तथा धर्मायतनतै वडा वैर करे है। इस मिथ्यात्वके एकांत-१, विपरीत-२, विनय-३, संशय-४, अज्ञान-५

ऐसे पांच भेद हैं इनमे अनेक विपरीतता गर्भित है। सो जहांतहां वर्णन कीयाही है। इस मिथ्यात्वगुणस्थानका काल अनादि अनंत है। अर अनादि सांतहू है। अर सादि सांतहू है। ऐसे गुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अव सासादनगुणस्थानका स्वरूप कहे है। जो कोऊ जीवके प्रथमोपशमसम्यक्त्व था सो उपशमसम्यक्त्वका काल अंतर्मुहूर्त्तका है। तिस उपशमसम्यक्त्वकालमे जघन्यकरि तो एक-समय वाका रहीगया होय, उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाण रहिगया होय, तदि अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायमेतै कोऊएक कषायका उदय होय तदि सम्यक्त्व तो नष्ट होगया अर अनंतानुबंधी च्यार कषायमेतै एक कोऊ कषाय अनुभव करता जीवके सासादन सम्यक्त्व होइ। क्योंकि सम्यक्त्वकी विराधनासहित परिणाम भया तातै सासादन सम्यक्त्व नाम भया।

भावार्थ– उपशमसम्यक्त्वका काल अंतर्तुहूर्त्तका है अंतर्मुहूर्त्त पाछे नियमतै छुटे है। जो तहां मिथ्यात्वकर्मका उदय आजाय तो उपशमसम्यक्त्व छूटि मिथ्यत्वगुणस्थानी हो जाय। अर तहां जो अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभमेतै कोऊ एकका उदय होजाए तो सासादनगुणस्थानी हो जाए। अर सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होजाय तो क्षयोपशम सम्यक्त्व होजाय।

जो जीव उपशमसम्यक्त्वरूप रत्नपवर्ततै छूटि मिथ्यात्वरूपभूमिके सन्मुख भया, जेतै अंतरालमे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलीपर्यंत अंनरालमे वर्तै तेतै सासादनगुणस्थानी कहावे है।

जैसे वृक्षतै फल टूटया अर भूमिमे नही पड्या तेतै वृक्षका अर भूमिका संबंधरहित अंतरालमे है। तैसे कोऊ जींव अनंतानुबंधीका उदय होतै सम्यक्त्वी नही रह्या अर मिथ्यात्वका

उदयविना मिथ्यात्वी नही कहाया बीचमे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली कालप्रमाण सासादनगुणस्थानी कहावे है। याका जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाणही काल है पाछे नियमतै मिथ्यात्वी होय है ऐसे द्वितीय सासादनगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अव तृतीय मिश्रगुणस्थानका स्वरूप कहे है। दर्शनमोहनीयका भेद एक जात्यंतर-सर्वघातिसम्याङ्मिथ्यात्व है द्वितीय नाम जाका ऐसी मिश्रप्रकृतिका उदयकरि जीवके सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप मिलेहुए कर्वुरितपरिणाम होय है। इस मिश्रप्रकृतिका उदयकरि केवल सम्य-क्त्वपरिणामभी नही होइ। अर केवल मिथ्यात्वपरिणामहू नही होइ। जैसे दधि जो धही अर खांड दोऊ मिलजाय तदि एक अन्यजातिका स्वाद अनुभव करावै है जुदाजुदा स्वाद नही देवे है। तैसे मिश्रप्रकृतिका उदयकरि सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊनिका मिलनरूप अनुभव होय है।

वहुरि मिश्रगुणस्थानी जीव देशसंयम तथा सकलसंयमकूं नही ग्रहण करे है। क्योंकि मिश्रगुणस्थानीके देशसंयम सकलसंयमके होनेयोग्य करणरूप परिणामनिका असंभव है। मिश्रगुणस्थानीके देशसंयम सकलसंयमरूपके भावनिप्रति चढनेकी योग्यता नही है। अर चतुर्गतिका कारण चार आयुका बंधभी नही करे है। अर मिश्रगुणस्थानमें मरणभी नही होय है। मिश्रगुणस्थानकूं छांडि असंयतसम्यक्त्वमें वा मिथ्यात्वमें जाय मरण करे है ऐसा नियम है।

वहुरी मिश्रगुणस्थानी पूर्वें सम्यक्त्वपरिणामसे वा मिथ्यात्वपरिणाममें जहां आयुबंध कीयाहोय तिस सम्यक्त्व वा मिथ्यात्व परिणामने प्राप्त होयकरिकेही मरण करे है ऐसाभी नियम केई आचार्यनिके अभिप्रायतै जानना। वहुरि मिश्रगुणस्थानमे मारणांतिकसमुद्घातहू नही करे है। ऐसे मिश्रगुणस्यानका स्वरूप कह्या।

अव चौथा असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानका स्वरूप कहेहै। सम्यक्त्व जो तत्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन एक प्रकार है। तथापि कारणके वशतै तीन प्रकार है। जातै दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति अर ४ अनंतानुबंधी कषाय इनि सातप्रकृतिनिका उपशमतै उपशमसम्यक्त्व होयहै। अर इन सातप्रकृतिनिका अत्यंतक्षयतै क्षायिकसम्यक्त्व होयहै। अर इनि सातप्रकृतिनका क्षयोपशमतै क्षायोपशम सम्यक्त्व होय है। तिन तीन प्रकार सम्यक्त्वमे क्षायोपशमसम्यक्त्वका स्वरूप कहिए है।

जहां अनंतानुबंधी कषायनिका प्रशस्त उपशम तो नही होइ अर प्रशस्त उपशम होय, अथवा अनंतानुबंधीका विसंयोजन भया होय, अन्य द्वादशकषाय नवनोकषायरूप परिणामिजाय ताकूं विसंयोजन कहिएहै। अर मिथ्यात्व अर सम्यग्मिथ्यात्व इन दोऊ दर्शनमोहकी प्रकृतिनका प्रशस्त उपशम होय अथवा क्षयकूं प्राप्त होय। अर सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघातिस्पर्द्धनिका उदय होते जो तत्वार्थनिका श्रद्धान होइ सो क्षयोपशमसम्यक्त्व है।

भावार्थ– जिसका आनंतानुबंधी च्यार कषायनिका उपशम होइ अथवा विसंयोजन होइ अर मिथ्यात्व अर सम्यग्मिथ्यात्व दोऊनिका उपशम होइ, अर सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होय तदि क्षायोपशमिकसम्यक्त्व होयहै। इहां ऐसा जानना। जो प्रकृति उदययोग्य तो नही होइ तोभी स्थिति अनुभागकी वृद्धिहानिके योग्य होय वा संक्रमण-योग्य होय सो अप्रशस्तोपशम कहिएहै। अर जो प्रकृति उदययोग्यभी नही होइ अर स्थिति अनुभागकी वृद्धिहानि योग्यभी नही होइ, अर संक्रमणयोग्यहु नही होइ तहां प्रशस्तोपशम कहिए है। इस क्षयोपशमसम्यक्त्वविषै छहप्रकृतिनका तो उपशम वा क्षय हैही।

एक सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय है। सो देशघातीनिका उदयके तत्वार्थनिका श्रद्धान विगाडदेनेका सामर्थ्य नही तातै सम्यक्त्व बण्या रहे ताकूं चल मल अगाढ इन तीन दोनिकरि सहित सम्यक्त्व होय है। क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतै तत्वार्थका श्रधान विगाडनेका सामर्थ्य तो है नाही केवल सम्यक्त्वके मल दोष लगावने-मात्रही सामर्थ्य है। तातै इस प्रकृतिकूं देशघाति कहिएहै। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकूं अनुभवं याहीतै याकूं वेदकसम्यक्त्व कहिएहै।

अब चलादिक दोषनिका स्वरूप कहेहै। अपनेही जे आप्त आगम पदार्थ तिनविषैही जो चलायमान होय सो चलदोष है। जैसे आपकरि कराया जो अरहंतका मंदिरादिकविषै यो हमारा मंदिर है यो हमारा देव है ऐसा अभिप्राय करेहै। अर परकरि कराया ताको ये परका है ऐसा परपणाका अभिप्राय सो चलदोष है। क्योकी अरहंतका मंदिरादिक ते तो महान आनंदकरि समस्तभव्यनिके आराधनेयोग्य है। तथापि ए मंदिर ए प्रतिमा हमारा ये अन्यका तैसा अभिप्राय सो चलदोष है। तैसे नानाप्रकार कल्लोलनविषै जल एकही है तोहू नानारूपकरि चलेहै तैसे दर्शनमोहनीका भेद जो सम्यक्त्वप्रकृति ताका उदयकरि अपनेही आप्त आगम पदार्थनिविषै श्रद्धान चलायमान रहेहै परकेमै नाही जायहै। तैसा चलदोष है।

वहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतै श्रद्धानके अतिचार मल लागे। जैसे शुद्धसुवर्ण है सो परसंगकरी मलिन होइ तैसे सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयरि श्रद्धान मलिन होय सो मलदोष है। वहुरि वृद्धपुरूषका हस्तविषै लाठी स्थानऊपरिही रहे स्थानसूं चले नही अर हस्ततैहू नही छूटे तोहू सकंप रहेहै। ताकूं अगाढ कहिएहै। तैसे आप्त आगम पदार्थका श्रद्धानमे अवस्थित दृढपुरुषहूके सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयते श्रद्धान कंपायमान रहेहै। सोही दिखावेहै। समस्त अरहंतदेवनिके समानही अनंतशक्ति है। तोहू इस शांतिकर्मके विषै श्रीशांतिनाथस्वामीही समर्थ है। इस विघ्नविनाशनकर्मविषै पार्श्वनाथदेवही समर्थ है। इत्यादि प्रकारकरिके श्रद्धानके शिथिलपणाका संभवते अगाढ दोष है।

अब औपशमिक क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण अर इनिका स्वरूपकूं कहेहै। अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ अर मिथ्यात्त्व सम्यग्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्वप्रकृति ए तीन दर्शनमोहकी इनि सातप्रकृतिनिका करणपरिणामनिकरि अत्यंत उपशमकरिके उपशमसम्यक्त्व उपजेहै। अर इनही सप्तप्रकृतिनका क्षयते क्षायिक सम्यक्त्व होयहै। ए दोऊही सम्यक्त्व निर्मल है। इनमे शंकादिक मलदोषका लेशहू नहीहै। तथा ए निश्चल है। आप्त आगम पदार्थ है विष जाका ऐसा श्रद्धानका विकल्पनिविषै कहांहू शिथिल नहीहैं बहुरि दृढ है गाढरूप है आप्तादिकनिमै तीव्ररूचिका संभवतै दृढ होयगी। ऐसे कह्या जो तीन प्रकार सम्यग्दर्शन तिनकरि परित सम्यग्दृष्टि है। अर अप्रत्त्ख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ इनमेतै कोई एकका उदकरि संयमभाव नही होसके तातै याकूं असंयतसम्यग्दृष्टि कहिएहै। यो असंयतसम्यग्दृष्टि भगवान् अरहंतका उपदेश्या सत्यार्थ आप्त आगम पदार्थका श्रद्धान करैहै। अर जो आपके विशेषज्ञान नही होई अर केवल उपदेशदाताके संबंधतै भगनान् अरहंतका उपदेश्या जाणि असत्यार्थहू श्रद्धान करै, जो भगवान्का आगममे ऐसेही कह्या होयगा, सोहू सम्यग्दृष्टि है भगवान्की आज्ञा नही उल्लंघनतै। बहुरि कोऊ वहुज्ञानीका संबंध होइ। अर गणधरादिकनिका उपदेश्या आगम दिखावै जो तुमने श्रद्धान जो कीया सो नही है। भगवान्का आगममे ऐसे उपदेश हैं। तुम जो समझि रख्या है सो नही है। ऐसे समझावतेहूं जो खोटे आग्रहतै तथा अभिमानतै तथा हम हजारनिमनुष्यानिमै कह्या अब कैसे फिरै ऐसे वचनके पक्षपातै जो असत्यार्थके हटकूं नही छांडे सो जीव उसही कालतै मिथ्यादृष्टि होय है।

वहुरि यो असंयतसम्यग्दृष्टि है सो इंद्रियनिके विषयनिमे विरक्त नही विषयनिका याके त्याग नही। तथा त्रस स्थावरनिकी हिंसाका त्यागहू नहीहै। तथापि जिनेंद्रके वचनका दृढश्रद्धानतै विषयकषायनिकूं विषसमान जानता विषयनिमे अतिविरक्त है अर प्रयोजनविना स्थावर त्रसनकी विरोधनामैहु नहीं प्रवर्त्तैहै हिंसाकूं महान् अधर्म जानहै। याका जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त्त है। उत्कृष्ट तेतीससागर कुछ अधिक जानना। ऐसे अविरतसम्यग्दृष्टि नाम चतुर्थ-गुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अब देशसंयम नाम पंचमगुणस्थानका स्वरूप कहेहै। अनंतानुबंधी अर अप्रत्यारख्या-नावरण इन अष्टकषायनिका उपशमतै अर प्रत्याख्यानावरण च्यार कषायनिका देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैसंतै अर सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयाभावलक्षण क्षय होतै सकल-संयमके भाव नही होय है। देशसंयम होय है। एकदेश थोरेव्रत होय है। देशसंयमकूं धारण करणेतै देशसंयम नाम पंचमगुणस्थान प्राप्त होय है। जाके त्रसनकी हिंसाका त्याग अर स्थावरनकी हिंसाका त्याग नही। एककालविषै त्रसकी हिंसातै विरंत अर स्थावरहिंसातै विरत नही तातै याकूं विरताविरतहूं कहिएहै। परंतु प्रयोजनविना स्थावरहिंसाकूं नही करैहै। इस

देशसंयमगुणस्थानमेही श्रावकव्रतके ग्यारह स्थान है जाकी जैसी शक्ति होइ तिस प्रमाण धारण करे है–

इन ग्यारह स्थानका वर्णन लिखे तो ग्रंथ वहुत होजाय यातैं नही लिख्या है रत्नकरंडश्रावकाचारादि अन्य ग्रंथनितैं जानना। याका काल जघन्य तो अंतर्मुहूर्त है अर उत्कृष्टकाल अष्टवर्ष अंतर्मुहूर्त घाटि कोटिपूर्वका है। ऐसे देशसंयम नाम पंचमगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अव प्रमत्तसंयत नाम छठा गुणस्थानका स्वरूप कहेहै। इहां संज्वलन क्रोध नाम माया लोभरूप च्यार कषाय अर हास्य रति अरति शोक भय गुजुप्सा स्त्रीपुरुष नपुंसकवेद इनका तीव्र उदयतैं संयमहू होइ अर संयमके मल लगावनेवाला प्रमादहूं होय यातैं याकूं प्रमत्तसंयत कहिएहै।

इहांहूं संज्वलन कषाय अर नवनोकषाय इनिका सर्वघातस्पर्द्धकनिका उदयाभावलक्षण क्षय होतैं अर द्वादश कषायनिका अर उदयकूं नही प्राप्त भए ऐसे संज्वलन कषाय अर नवनोकषायका निषेकनिका सत्तामे अवस्थितलक्षण उपशम होतैं अर संज्वलनका अर नोकषायनिका देशघातिस्पर्द्धकनिका तीव्र उदयतैं संयम होइ अर मलका उपजावनेवाला प्रमादहू उत्पन्न होय है तातैं छठा गुणस्थानवर्ती जीवकूं प्रमत्तसंयत कहिए है। ऐसा जानना। जो केते प्रमाद तो अपने अनुभवमे आवे तातैं व्यक्त कहिए। अर केतेक प्रमाद है ते प्रत्यक्षज्ञानके धारकनिके जाननेमे आवे ते अव्यक्त हैं।

ऐसे व्यक्त अर अव्यक्त प्रमाद होतैंहू जो संयम वर्त्तैहै सो चारित्रमोहनीयका क्षयोपशमका महात्म्यकरिके सकल गुणशीलकरी सहित महाव्रती होयहै। देशसंयमीकी अपेक्षा याकूं सकस संयमी कहिए है। याका आचरण प्रमादसहित है तातैं कर्बुरित आचरण है। अव प्रमादनिका नाम संख्या कहे है।

गाथा– विकहा तहा कसाया। इंदियणिद्दा तहेव पणयो य।
चतु चदु पण एगेगं होंति पमादाहु पंचदस ॥१॥

विकथा चार, कषाय च्यार, इंद्रिय पांच, एक निद्रा, एक स्नेह, ऐसे तो ए पंचदश प्रमाद हैं। इहां इनका ऐसा अर्थ है। जो संयमतैं विरूद्धकथा सो कथा है अर जे संयमगुणका घात करे ते कषाय है। अर संयमतैं विरोध करनेवाली इंद्रियनिकी प्रवृत्ति ते इंद्रिय है। अर निद्रा नाम कर्मके उदयतैं सामान्यग्रहकूं रोकनेवाली जड अवस्था सो निद्रा है। अर बाह्य अर्थनिमे ममत्वरूप परिणाम सो प्रणय है स्नेह है। इनि पंद्रह प्रमादनिके सामान्य भेदनिकूं परस्पर गुणे अस्सी भेद होय अर विकथा पचीस अर कषाय पचीस अर मनसहित इंद्रिय छह

अर निद्रा पांच अर स्नेह मोह दोय इनकूं परस्पर गुणें साढा सैंतीस हजार भेद प्रमादनिके भिन्नभिन्न होय है। सो इनका आलापादि लिखें ग्रंथ वहुत वधिजाय इस भयतै विशेष नही लिख्या है। इस प्रमत्तगुणस्थानका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल हैं। ऐसे छटा प्रमत्तसंयत-गुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अव अप्रमत्तसंयत नाम सप्तम गुणस्थानका स्वरूप कहेहैं। जिस कालमें संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनिका अर हास्यादिक नव नोकषायनिका यथा-संभव मंद उदय होय प्रमाद उपजावनेंका सामर्थ्यरहित होय तिस कालमे जीवके अंतरर्मुहुर्त्तपर्यंत अप्रमत्तगुणस्थान होय हैं। इहां समस्तप्रमादरहित अर व्रत गुण शील इनिका पंक्तिकरि मंडित होय। अर सम्याग्ज्ञानोपयोनयुक्त होय। अर धर्मंध्यानमे लीन जाका मन होय सो अप्रमत्तसंयम है। सो यो अप्रमत्तसंयत जितने उपशमश्रेणीके वा क्षपकश्रेणीके चढवेकूं सन्मुख नही प्रवर्त्तै तितनै स्वस्थान अप्रमत्त कहिए है। अर जिस अवसरमे इकवीस प्रकृति मोहनीयकी उपशम करनेकूं वा क्षपावनेकूं सन्मुख होय सो सातिशय अप्रमत्त कहिएहै।

याका संक्षेप ऐसा है। जो समयसमय अनंतगुण विशुद्धताकरि वर्द्धमान ऐसा वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयमी प्रथमही अनंतानुबंधी कषायचतुष्टयकूं करणत्रयपूर्वक संक्रमण-विधान द्वादश कषाय नव नोकषायरूप विसंयोजन करे परिणमन करावे। ताके अनंतर अंतर्मुहूर्त्त काल विभाग करि वहुरि करणत्रयकरिके दर्शनमोहत्रयकूं उपशमनकरि द्वीतीयो-पशमसम्यग्दृष्टि होयहै।

अथवा करणत्रयपरिणामकरि दर्शनमोहका त्रयकूं छायाकरि क्षायिकसम्यग्दृष्टि होय है ताके अनंतर अंतर्मुहूर्त कालपर्यंत प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थानिमे हजारबार पलटा-पलटी करे है। तहां पछे समयसमयप्रति अनंतगुण विशुद्धताकरि वधतो एकविंशति चारित्र मोहनीयकी प्रकृतिके उपशम करनेंकू उद्यमी होय है। अथवा इकवीस प्रकृतिके क्षपावनेविषै उद्यमी होयहै। परंतु क्षपावनेके सन्मुख क्षायिकसम्यग्दृष्टिही होय उपशमसम्यग्दृष्टि नही होय। अर उपशम करनेमे दोऊही सम्यक्त्वी उद्यम करे है। सो सातिशय अप्रमत्त होय है सोही चारित्र मोहके उपशम वा क्षपण करनेके निमित्त जे तीन करण तिनमे प्रथम अध:प्रवृतिकरण करेहैं इहां अंध:प्रवृत्तिकरण होइ ताका स्वरूप अर प्रवृत्ति वर्णन करिए तो कथनी बहोत हो जाय तातै ग्रंथ वधनेके भयतै नही लिख्या ज्ञानीजन श्रीगोमटसार वा लब्धिसारतै जानहु।

इस अंध:करणके प्रभावतै समयसमय अनंतगुण विशुद्धताकी वृद्धि अर स्थितिबंधा-पसरण अर सातादिक प्रशस्तप्रकृतिनका समयसमय अनंतगुणवृद्धिकरि गुडखंड शर्करा अमृत-सदृश चतु:स्थानरूप अनुभाग बंध अर असातादिक अप्रशस्तप्रकृतिनका समयसमय अनंतगुणी

हानिकरि निंव काजी सदृश द्विःस्थानरूप अनुभागबंध होय है। ऐसे चार आवश्यक संभवे है। इहां नानाजीवनिकी अपेक्षा नीचले समयके अर ऊपरले समयके परिणामनिकी विघता मिली जाय हैं। जैसे कोई जीवकूं अधःकरणकूं प्राप्तभए वीस समय भये जो विशुद्ध ताकूं प्राप्तभया होइ सो विशुद्धता कोई जीव पांचसमयमेही प्राप्त होजाय। ऐसे नानाजीवनिकी अपेक्षा नीचले उपरिले समयकी विशुद्धता कीसी जीवकी मिलिजाय किसीकी नही मिले तातै याकूं अधःकरण कह्या। याका काल असंख्यांतसमयरूप अंतर्मुहूर्तका है। अर असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम नानाजीवनिकी अपेक्षा त्रिकालगोचर है समयसमय विशुद्धता अनंतगुणी है सो याका दृष्टांत-दार्ष्टांत विस्ताररुप है तातै लिख्या नही हैं।

अव अपूर्वकरण अष्टमगुणस्थानकूं कहे है। ऐसे अंतर्मुहूर्त कालपर्यंत पूर्वं कह्या अधःप्रवृत्तिकरणकूं व्यतीतकरी विशुद्धसंयमी होइ समयसमयप्रति अनंतगुणी विशुद्धताकी वृद्धि-करि वधतो अपूर्वकरणगुणस्थानकूं आश्रय करे है। जातै इस अपूर्वकरणगुणस्थानविषै असदृश जे उपरिउपरिके समयनिमे स्थित जे जीव ते पूर्वपूर्व समयमे नही प्राप्तभए ऐंसे विशुद्धपरिणामनिकूं प्राप्त होय है। तातै इसकूं अपूर्वकरण कहिए है। जैसे अधःप्रवृत्ति-करणके भिन्नभिन्न समयनिमे तिष्ठते जीवनिके परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धिता सदृश सभवे है। तैसे अपूर्वकरण गुणस्थानमें समस्तकालमे कोऊ जीवकेहू सदृशपणा नही होय है। याका काल अधःप्रवृत्तिकरणके कालके असंख्यानवे भागरूप अंतर्मुहूर्तका है तोहू असंख्यातसमय-मात्र है। अर त्रिकालगोचर नानाजीवनिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तिकरणका जे असंख्यात लोकमात्र परिणाम तिनतै असंख्यातगुणे अपूर्वकरणकी परिणाम है। अर समयसमय अनंत-गुणी विशुद्धतारूप है इन परिणामनिका समयसमयप्रति संख्या विशुद्धिताके दृष्टांतदार्ष्टांत ग्रंथ वधनेके नही लिख्या है। तिस अपूर्वकरणपरिणामरूपपरिणत समस्तजीव है। ते प्रथमसमयकूं आदि लेय चारित्रमोहनीयकर्मका क्षपणमे वा उपशमनेमे उद्यमी होय है। अर गुणश्रेणीनिर्जरा-१, गुणसंक्रमण-२, स्थितिखंडन-३, अनुभागखंडन-४ ए है लक्षण जिनका ऐसे च्यार आवश्यक करे है। इस अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागमे निद्रा प्रचला दोयकी बंधमे व्युच्छित्ति होतै जे उपशमश्रेणीकूं आरोहण करते है तिसका प्रथम भागमे मरण नही होइ ऐसी आगमकी आज्ञा है। जे अपूर्वकरणगुणस्थानी जीव उपशमश्रेणी चढे है। तिनके चारि-त्रमोहनीय नियमकरि उपशम होय है। अर जे क्षपकश्रेणी चढे है। ते नियमकरि चारित्र-मोहनीयकूं क्षपावे है। क्षपकश्रेणीसे सर्वत्र मरण नही है। जातै मिश्रगुणस्थानमे अपूर्वकरणका प्रथमभागमे अर सर्वत्र क्षपकश्रेणीमे संयोगकेवलीमें इनि गुणस्थाननिमे मरण नही ऐसा आगममे है।

अव अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्वरूप कहे है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका काल अपूर्वकरणके कालतै असंख्यातवे भाग है एक समयमे वर्त्तमानत्रिकालगोचर नानाजीव जैसें

संस्थान आयु शरीरका वर्ण अवगाहनाकरि परस्पर भेदरूप है। तैसे विशुद्धपरिणामनिकरि भेदरूप नही हैं। नहीं विद्यमान है विशुद्धपरिणामनमे भेद जिनके ते अनिवृत्तिकरण जीव है। प्रथमसमयतै लगाए समयसमयप्रति अनंतगुण विशुद्धताकी वृद्धिकरि वधता हीनादिकभावरहित त्रिकालवृत्ति नानाजीवनिके परिणामनिमे भेद नही। जेता समयका याका काल है तितनेही याके परिणाम है। निर्मल अंतर्ध्यानिरूप अग्निकी शिखाकरि कर्मरूप वनकूं दग्ध करे है। इस अनिवृत्तिकरणकरि समस्त चारित्रमोहनीयका उपशम वा क्षपण नियमतै होय हैं ऐसे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानका स्वरूप कह्या। अव सूक्ष्मसांपरायनाम दशमागुणस्थानकूं कहेहै।

जैसे धोयाहुवा कुसूमल वस्त्र सूक्ष्मरागसंयुक्त दोयहैं। धोए पछैहू सूक्ष्मरंगका अंशकी झलकी रहेहैं। तैसे पूर्वे अनिवृत्तिकरणस्थानविषै संभवता कर्मनिकी शक्तिसमूहरूप स्पर्द्धक तिनकूं अनिवृत्तिकरणपरिणामकरि कीया तिसकै अनंतैक भागमात्र अपूर्वस्पर्द्धक तिनको अनिवृत्तिकरणपरिणामनकरि कीया वादरकृष्टि तिनको तिनकरि कीया कर्मनिकी शक्ति सूक्ष्मखंडरूप सूक्ष्मकृष्टि तिनका यथाक्रम अनुभाग अपने उत्कृष्टतै अपना जघन्य उपरितन जघन्यतै अधस्तन उत्कृष्ट अनंतगुण हीन क्रमतै होयहै ऐसे अनिवृत्तिकरणका अंतका समयके लगतीही सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानकूं प्राप्त होइ सूक्ष्मदृष्टिकूं प्राप्तभया लोभकूं अनुभव करता उपशम वा क्षपक ताकूं सूक्ष्मसांपराय कहिएहै।

सामायिक छेदोपस्थापन संयमकी विशुद्धितातै अतिविशुद्ध सूक्ष्मसांपराय संयसहित यथाख्यात चारित्रतै किंचित् हीन होयहै। भावार्थ– अनिवृत्तिपरिणामनिकरि लोभ सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त होयहै सो सूक्ष्म कहिए सूक्ष्म है सांपराय कहिए लोभकषाय जाकै सो सूक्ष्मसांपराय कहिए। याका अंतर्मुहूर्त्त काल है।

अव उपशांतकषायगुणस्थानका स्वरूप कहे है। जैसे कतकफलचूर्णसंयुक्त जल मल रहित उजल होइहै कर्दम नीचे दविजाय है तैसे समस्तपणाकरि जाके मोहनीय उपशांत भया होइ उदययोग्य नही होय सो उपशांतकषाय कहिए ऐसे उपशांतकषायगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अव क्षीणकषायनाम गुणस्थानका स्वरूप कहेहैं। जाके क्षीणा कहिए प्रकृति स्थिति अनुभागरहित मोहनीयकी प्रकृति जाके भई होइ सो क्षीणमोहगुणस्थान है। स्फटिकका पात्रमे तिष्ठता निर्मल जलकीज्यों उजल परिणामसहित है सोही परमार्थं निर्ग्रंथ है। ऐसे क्षीणकषायगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अव सयोगकेवली नाम तेरमा गुणस्थानका स्वरूप कहे है। जाके समस्त घातिकर्म नष्ट भया यातैं केवलज्ञानकरि समस्त त्रिकालवर्ती गुणपर्यायसहित समस्त द्रव्यनिकूं जाणे। अर

दिव्यध्वनिकरि अनेक भव्यजीवनिका अज्ञान अंधकार दूरि कीया। अर क्षायिक ज्ञान दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्य सम्यक्त्व चारित्र रूप नव लब्धिनिकूं प्राप्त होइ परमेष्ठी अरहंत जिन नामकूं प्राप्तभया। अर योगकरि सहित तातै सयोगी कहिए। अर परके सहायरहित ज्ञान-दर्शनसहित तातै केवली कहिए। अर घातिकर्म निर्मूल कीया तातै जिन कहिए।

अव अयोगकेवली चौदमा गुणस्थानकूं कहेहै। जो अठारह हजार शीलका अधिपति-पणानै प्राप्तभया। अर समस्त आस्रव अर बंधकरि रहित होय मन वचन कायके योगरहित होय ऐसा केवली जिन सो अयोगकेवली जिन कहिए सोही अयोगी कहिए। ऐसे चौदमा गुण-स्थानका स्वरूप कह्या। ए गुणस्थान आत्माका स्वभाव नही है। मोहकर्म अर योगकरि उत्पन्न भयाहै। इनि गुणस्थानके धारी कर्मसहित संसारीजीव कहे। जिनके अष्टकर्मनिका नाश भया ऐसे गुणस्थानरहित भगवान् सिद्धपरमेष्ठी मुक्तजीव है। ऐसे संक्षेपकरि गुणस्थाननिका वर्णन किया। अव गुणस्थाननिके चढने उतरनेका क्रम कहेहै।

मिथ्यात्वगुणस्थानतै तो चढनेके च्यार मार्ग हैं। कोऊ जीव तो मिथ्यात्वमै तीन करणकरि दर्शनमोहनीकी तीन प्रकृति अर अनंतानुबंधी च्यार कषाय इन सात प्रकृतिनिका उपशमकरि चतुर्थगुणस्थानकूं प्राप्त होयहै। कोऊ मिश्रप्रकृतिका उदयतै तीजै गुणस्थान जाय है। कोऊ सात प्रकृतिनिका अर अप्रत्याख्यानकाहू क्षयोपशमतै पंचमगुणस्थान चढे है। कोऊ दर्शनमोहनी अर अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशमादिकरि संज्वलन अर नव नोकषायका देशघातिस्पर्द्धकनिका अतिमंद उदयतै सप्तमगुणस्थानकूं प्राप्त होयहै। ऐसे मिथ्यात्वतै तो चौथें तीजे पांचमे सातमे इन च्यार गुणस्थाननिमेही गमन होय है। अर सासादनतै एक मिथ्यात्वमेही पडेहै चढे नही। अर मिश्रगुणस्थानमे चढे तो चौथें। पडे तो पहले मिथ्यात्वमे ये दोयहीमे गमन है। अर अव्रत नाम चतुर्थगुणस्थानी चढे तो सातमे तथा पांचमे दो स्थानमे जाय अर पडे तो प्रथममे जाय अर पडे तो प्रथममे तथा द्वितीयमे तृतीयमे ऐसे चढने उतरनेके पांच मार्ग है। अर देशसंयम नाम पंचम गुणस्थानी चढे तो एक सप्तममे जाय पडे तो मिथ्यात्वादिक च्यारमे ऐसे पांच मार्ग है। अर छठे गुणस्थानतै चढे तो एक सप्तमे अर पडे तो प्रथमै तथा द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचम ऐसे छह मार्ग है। अर सप्तम गुणस्थानमै पडे तो एक छटे अर चढे तो अष्टममे अर मरण करे तो चतुर्थ गुणस्थानमे आवे ऐसे तीन मार्ग है। अर अष्टम गुणस्थानतै चढे तो नवमे पडे तो सातमे मरण कीए पछे चौथे ऐसे तीन मार्ग है अर नवमा गुणस्थानतै चढे तो दशमे सूक्ष्मसांपरायमे जाय अर पडे तो आठमें अर मरण करे तो चोथे अव्रतमे ऐसे तीन मार्ग है। अर दशम गुणस्थानतै क्षपकश्रेणीवाला मोहकी क्षपणाकरि होइ ते तो वारमै जाय अन्य मार्ग नही। अर मोहनीयका उपशम करनेवाला चढे तो एक ग्यारमे अर पडे तो नवमै अर मरण करे तो चौथे ए तीन मार्ग है। अर ग्यारमा

गुणस्थानधारी पडे तो दशमे अर मरे तो चौथे दोयगुणस्थानही मार्ग है चढे नही पडेही। अर वारमा क्षीणकषाय नामा चढे सो तेरमेही जाय पडे नही अर मरणहू नही करे। अर तेरमां गुणस्थानी केवली चौदमेही जाय पडे नही अर यामे मरणहू नही। अर चौदमा गुणस्थानी सिद्धालयमेही जाय है। ऐसे गुणस्थानके उतरनेचढनेका स्वरूप कह्या।

इहां ऐसा जानना। जो मिश्रगुणस्थामे अर क्षीणकषाय नाम वारमा गुणस्थानमे अर तेरमामे अर क्षपकश्रेणीमे तो नियमकरि मरण नहीहै। अन्य गुणस्थानमे मरण करेहै। परंतु मरणकरी परलोकजाय है तदि मार्गमे विग्रहगति कहिए तहां विग्रहगतिमें मिथ्यात्व और सासादन णर अविरत ए तीनही गुणस्थान है। पंचमादि अन्यगुणस्थानमे मरण तो करे परंतु मरणकरतेही दूजे समयमेही अविरतगुणस्थान होजाय है संमयमभाव रहे नही। अर मिथ्यात्वका मन्या मार्ग मिथ्यात्वी सासादनका मन्याकै मार्गमे सासादन रहेहै। अपर्याप्त अवस्थातांई पाछे मिथ्यात्त्व होय है अविरतका मन्याकै अव्रत रहे। ऐसें संक्षेप गुणस्थाननिका स्वरूप कह्या।

अव वीस प्ररूपणाविषै जीवसमासप्ररूपणा कहे है। जीव अनेक है वहुत प्रकार तिनकी जाति है तोहू सामान्यताकरि एकपणाने प्राप्तिकरिए सो जीवसमास है। जीव जामै संग्रहरूप ग्रहणकरीए नानारूप जाका ग्रहणमे आजाय सो जीवसमास है। जीव है सो उपयोगलक्षण एकप्रकार है। इसमे समस्त जीव आयगए। द्रव्यार्थिकनयका विषयकरी जीव एकप्रकारही है। संग्रहनयकरि ग्रहणकीया तिनमे भेद करनेवाला व्यवहारनयकरी संसारी जीवका त्रस स्थावर भेदकरि जीवसमास दोयप्रकार है। एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय करि तीन प्रकार है। एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सकलेंद्रियके संज्ञी असंज्ञी भेद करी च्यार प्रकार है। एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेद्रिय भेदकरि पंचप्रकार है। पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पति त्रसकायके भेदकरि छह प्रकार है।

वहुरि पंच स्थावर विकलेंद्रिय अर सकलेंद्रियके भेदकरि जीवसमास सप्तप्रकार हैं। पंच स्थावर अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि अष्टप्रकार है। बहुरि स्थावर पंचेद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेद्रिय भेदकरि नवप्रकार है। वहुरि पंच स्थावर तीन विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि दशप्रकार हैं। तथा पंच स्थावरकाय बादरसूक्ष्मकरि दश अर त्रसकाय ऐसे ग्यारह प्रकार है। वहुरि वादरसूक्ष्मकरि स्थावर दशप्रकार अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय भेदकरि द्वादशप्रकार है।

वहुरि स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी ऐसे त्रयोदशप्रकार है। तथा स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय तीन अर पंचेंद्रिय ऐसे चतुर्दश प्रकार है। तथा स्थावरकाय दश विकलेंद्रिय तीन असंज्ञी संज्ञी ऐसे पंचदश प्रकार है। तथा पृथ्वी अप तेज वायुकायिक अर

वनस्पतिका नित्यनिगोद इतरनिगोद ऐसे स्थावरनिके षड्भेद वादरसूक्ष्मकरि वारह अर प्रत्येक-वनस्पति ऐसे स्थावर तेरह अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि षोडश प्रकार है।

बहुरि स्थावरकाय तेरह प्रकार विकलत्रय तीन पंचेंद्रिय एक ऐसे सतरह प्रकार है। तथा स्थावरकाय तेरह विकलत्रय संज्ञी असंज्ञी ऐसें अष्टादशप्रकार जीवसमास है। तथा पृथ्वीकाय अप तेज वायु नित्यनिगोद इनका वादरसूक्ष्मकरि वारहभेद अर सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितकरि प्रत्येक वनस्पति दोय भेद द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय संज्ञी असंज्ञी पंचेंद्रिय ऐसे उगणीस प्रकार है। बहुरि पर्याप्त अपर्याप्तकरि गुणीए तो अडतीस प्रकार। अर पर्याप्त लब्धपर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त करि गुणें सत्तावन भेदरूप है।

तथा अठचाणवे जीवसमास समझनेयोग्य है। पृथ्वी अप् तेज वायु नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोद इनि छहके वादरसूक्ष्मकरि वारह भेद भए अर प्रत्येकवनस्पति सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसे दोय भेद सब मिलि एकेंद्रियके चोदह भेद अर विकलत्रय ऐसे सतरह भेद इनिके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्धपर्याप्त इन तीन भेदनिकरि गुणें इक्यावन भेद एकेंद्रिय विकलत्रयके भए।

बहुरि तिर्यंचनिमे कर्मभूमिके गर्भज पंचेद्रिय तिर्यंच जलचर स्थलचर नभश्चर तीन भेद ते प्रत्येक संज्ञी असंज्ञी भेदकरि छह प्रकार तिनके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि कर्मभूमिके गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंचके वारह भेद भए। वहुरि कर्मभूमिके सन्मूर्छन पंचेंद्रिय तिर्यंच जलचर स्थलचर नभश्चर इनिके संज्ञी असंज्ञी भेदकरि छह प्रकार।

इनिके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्धपर्याप्तकरि अठारह प्रकार ऐसे कर्मभूमिके पंचेंद्रिय तिर्यंचके तीस भेद भए। भोगभूमिमे संज्ञीही उपजै है अर असंज्ञी नही उपजे अर जलचर नही उपजै। यातैं स्थलचर नभश्चर इनके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि चार भेद भए। ऐसें तिर्यंचनिकै पच्यासी भेद भए। अर मनुष्यनिमे आर्यखंडके अर म्लेंछखंडके अर भोगभूमिके अर कुभोग-भूमिके च्यार प्रकारके गर्भज मनुष्य पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त भेदकरि अष्टप्रकार भए।

वहुरि संमूर्छन मनुष्य लब्धपर्याप्तही होइ यातैं नव भेद भए। अर देव नारकी पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि च्यार भेदरूप भए। ऐसे अठचाणवे जीवसमास जानने इन भेदनिके जाननेतैं संसारी जीवनिके प्रकारनिका जान्या जायहै। मुक्तजीव विशुद्धज्ञानदर्शनमय एकरूपही है। ऐसे दूजी जीवसमासप्ररूपणा वर्णन करी।

अब तीसरी पर्याप्तिप्ररूपणा वर्णनकरीए है। जैसे घट पट गृह इत्यादिक बणाइएहै तहां जो समस्त शक्तिसहित परिपूर्ण होजाय तदि पूर्ण कहिए। अर समस्तशक्तिसहित पूर्ण नही होइ सो अपूर्ण कहिए है। तैसेही संसारी जीवकू एक शरीर छांडि अन्य शरीरके ग्रहण

करनेविषैहू अपनेयोग्य पर्याप्ति पूर्ण करे सो पूर्ण कहावे तथा पर्याप्त कहावे। पूर्ण नही करे सो अपर्याप्त कहावे।

आहारपर्याप्ति १, शरीरपर्याप्ति २, इंद्रियपर्याप्ति ३, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ४, भाषापर्याप्ति ५, मनःपर्याप्ति ६, ऐसे छह पर्याप्तिनिके नाम जानने। तिनमे एकेंद्रिय जीवनिके भाषा अर मन नही तातै च्यारिही पर्याप्ति है। अर विकलत्रय जीवनिके तथा असंज्ञी पंचेंद्रियके मनविना पंचपर्याप्ति हैं। संज्ञी पंचेंद्रिके छह पर्याप्ति हैं।

इहां ऐसा जानना। जो मनुष्य तिर्यंचनिके तो औदारिक शरीर होय है। अर देव-नारकीनिके वैक्रियक शरीर होय हैं। छठा गुणस्थानवाले आहारक ऋद्धिधारक मुनिके संशयादि दूरि करनेके अर्थि एक हाथ प्रमाण इंद्रियनिके अगोचर मस्तकमैतै निकसे अंत-र्मुहूर्त्तप्रमाण कालमे केवली श्रुतकेवल्याका दर्शनमात्रतै संशयादि दूरिकरि मुनीश्वराका अंगमे पाछा प्रवेश करे सो आहारकशरीर है। ऐसे तीन शरीरके मध्य जैसा शरीर नाम कर्मका उदयकरि जो शरीर धारण करना होय तिस शरीरके योग्य तथा छह पर्याप्तिनिके योग्य पुद्गलस्कंधनिकूं खलरसभागकरि परिणमावनेकूं पर्याप्तिनाम कर्मका उदयतै आत्माकै शक्तिका उपजना सो आहारपर्याप्ति है।

भावार्थ– कर्मके उदयतै जैसा शरीर धारण करना होइ ताकै योग्य जो प्रथम समयमे ग्रहण कीये पुद्गलस्कंध तिनकूं खलरसभागरूप परिणमायवेकी पर्याप्तिनाम कर्मके उदयतै आत्मामें शक्ति प्रगट होजाना तिस आत्मशक्तिकूं आहारपर्याप्ति कहिए है।

वहुरि तीन शरीर षट्पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गलस्कंध तिनके खलभाग तो हाड इत्यादिक स्थिर अवयवरूप अर रसभाग जो रुधिरादिक द्रव्य अवयवरूप करिकै परिणमायवेकी शक्तिका उपजना सो शरीरपर्याप्ति है।

वहुरि आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतै विस्तरी जो आत्माके योग्यदेशमे तिष्ठतें रूपादिक विषयनिका ग्रहण करनेके व्यापारमे शक्ति प्रगट होना सो जातिनाम कर्मके उदयतै उपज्या सो इंद्रियपर्याप्ति है। वहुरि आहारवर्गणारूप आए जे पुद्गलस्कंधनिकूं उच्छ्वास-निश्वासरूप करिके परिणमायवेकूं उच्छ्वासनिश्वासनाम कर्मका उदयतै शक्तिका उपजना सो उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्ति हैं। वहुरि स्वरनाम कर्मका उदयके वशतै भाषावर्गणारूप आए जे पुद्गलस्कंध तिननै सत्य असत्य उभय अनुभव भाषारूप करिके परिणमायवेकूं शक्तिका प्रगट होना सो भाषापर्याप्ति है।

वहुरि मनोवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिनै अंगोपांगनामकर्मका उदयका वलकरिकै द्रव्यमनरूप परिणमन करावनेकूं द्रव्यमनका वलाधानकरि नोइंद्रियावरण वीर्यांतरायके क्षयो-

पशमविशेषकरि गुणदोषनका विचार तथा स्मरण चिंतवन है लक्षण जाका ऐसा भावमनरूप परिणमनकी शक्तिकी उत्पत्ति होना सो मनःपर्याप्ति है।

भावार्थ– जन्म या लेतेही इंद्रियादिक तो प्रगट होय नही। परंतु शरीरादिकनिके योग्य पुद्‌गलवर्गणा ग्रहणकरि तिनमे आहार शरीर इंद्रियादिक उपजनेकी शक्ति प्रगट होजाना सो पर्याप्ति है शरीर इंद्रियादिक तो परिपूर्ण अवसरपाय होयहै परंतु पुद्‌गलनिमें होनेकी शक्ति प्रगट होजायहै। जैसे आम्र नामा वृक्षकी उत्पत्ति होते तो अंकुर प्रगट होयहैं परंतु उस अंकुरमे पान खूल फल डाहला इत्यादिक होनेकी शक्ति प्रगट होजाय है तैसे अन्य देहयोग्य पुद्‌गल ग्रहण करतेही अंतर्मुत्तंमे शक्तिका प्रगट होना सो पर्याप्ति नाम है।

इहां इतना जानना। जो एकेंद्रिय च्यार पर्याप्तियोग्य द्रव्यग्रहण करेहै सो एकसमयमे ग्रहण करेहै विकलचतुष्क पांच पर्याप्तियोग्य अर संज्ञी पंचेद्रिय छहके योग्य एक समयमे ग्रहण करेहै। अर पर्याप्ति एक क्रमतै अंतर्मुहूर्तमे पूर्ण करेहै। इन छहू पर्याप्तिका काल एकएकका भी अंतर्मुहूर्त्त अर सयस्तका मिलाइए तोहू अंतर्मुहूत्ततै अधिक नही होई क्योकि अंतर्मुहूर्त्तभी जघन्य तो एक आवली एकसमयका है। अर उत्कृष्ट दोयघडी एक समय घाटीका है। मध्यका असंख्यात भेद है। दोय पूर्ण होय सो एक मुहूर्त्त है।

इहां अन्य विशेष जानना। जो पर्याप्तनाम कर्मके उदयते एकेंद्रिय तो चारि पर्याप्ति पूर्ण करेहै। विकलचतुष्क पांच पूर्ण करेहै। संज्ञी पंचेंद्रियके छह पूर्ण करे तदि पर्याप्त नाम कहिए वा पूर्ण कहिए। परंतु जेतै अंतर्मुहूर्तपर्यंत शरीरपर्याप्ति पूरण न करे तेतै निवृत्य-पर्याप्ति कहिएहै। इसका अर्थ ऐसा जो निवृत्ति कहिए शरींरपर्याप्तिकी उत्पति तिस करि अपर्याप्त कहिए पूर्णता नही होइ तिनने निवृत्यपर्याप्ति कहिए। अर शरीर पर्याप्ति अंतर्मुहूर्तमे पूर्ण होजाय तदि पर्याप्त कहिएहै।

बहुरि जो अपर्याप्त नाम कर्मका उदयते एकेद्रियादिक जीव अपने अपने चार पांच छह पर्याप्ति पूर्ण नही करे। स्वासका अठारमा भागही मात्र अंतर्मुहूमेंही मरण करै सो लब्ध्यर्याप्त कहिएहै।

भावार्थ– पर्याप्त अपर्याप्त दोय जीवके भेद है। तिनमे जो अंतर्मुहूर्तमे पर्याप्ति पूर्ण करे सो पर्याप्त कहिए। अर अपर्याप्तके दोय भेद है। एक निवृत्यपर्या त। एक लब्ध्यपर्याप्त जाके पर्याप्त कर्मके उदयते अंतरर्मुहूर्तमे पर्याप्ति नियमते पूर्ण होयगा जेतै पूर्ण नही होइ तेतै अंतर्मुहूतंप्रमाण निवृत्यपर्याप्त कहावेहै। अर जाके अपर्याप्तनाम कर्मके उदयते एकहु पर्याप्ति पूर्ण नही होय सवसका अठारवा भागमेही मरणकरे सो लब्ध्यपर्याप्त कहावेहै।

सो लब्ध्यपर्याप्त सन्मूर्छन तिर्यंचनिमेही होयहै। अर सन्मूर्छन मनुष्यनिमेहू होयहैं।

अर गर्भज तिर्यंच मनुष्य समस्त भोगभूमिके कुभोगभुमिक म्लेंछ खंडके अर समस्त देवनारकी इनमे लब्ध्यपर्याप्तक जीव नही उपजेहै। पर्याप्त अर निर्वृत्यपर्याप्त दोय प्रकारही होयहै। ऐसे पर्याप्त नामा तीजी प्ररुपणा समाप्त करी।

अव प्राणप्ररूपणा संक्षेपकरि कहेहै। स्पर्शनादिक पांच इंद्रिय प्राण अर मनोवल वचनवल कायवल श्वासोच्छ्वास अर आयु। ए दशप्राण है सो पर्याप्तावस्थामे संज्ञी पचेंद्रियके मनविना नवप्राण है। अर चतुरिंद्रियके मन अर कर्ण इंद्रियविना आठ प्राण है। अर त्रींद्रियके नेत्रहू नही तातै सात प्राण है। अर द्वींद्रियके नाशिकाहूं नही तातै छह प्राण है। एकेंद्रियकै रसना इंद्रिय अर वचनवलहु नही तातै च्यार प्राणही है। अर अपर्याप्त अवस्थामे एकेंद्रियके स्पर्शनेंद्रिय अर कायबल अर आयु ऐसे तीन प्राणही है। जातै अपर्याप्त अवस्थामे वचनवल अर श्वासोच्छ्वास अर मनोवल ए नही होइहै। द्वींद्रिय अपर्याप्तके च्यार प्राण, त्रींद्रियके पांच प्राण, चतुरिंद्रियके छह प्राण, असंज्ञीपंचेद्रियकैहू सप्त प्राण है मन वचन वल उच्छ्वास तीन प्राण अपर्याप्तके नही होयहै। ऐसे चौथा प्राणप्ररूपणा समाप्त करि।

अव संज्ञाप्ररूपणकावर्णन करेहै। संज्ञा नाम इहां वांछाका है। सो संज्ञा च्यार प्रकार है। आहारसंज्ञा-१, भयसंज्ञा-२, मैथुनसंज्ञा-३, परिग्रहसंज्ञा-४, ए जे संज्ञा कहिए वांछा इनकरि पीडाकूं प्राप्तभए जीव इस भवविषै विषयनिकूं सेवनकरते तथा विषयनकी प्राप्ति होते वा नही प्राप्ति होते दोऊ लोकमे महान् दुःखकूं प्राप्त होइहै।

इहां ऐसा जनना। जो सुंदर च्यार प्रकारके आहारके देखनेतै तथा आहारकूं यादि करनेतै आहारकी कथाके श्रवणकरनेतै आहारमे उपयोग लगावनेतै तथा उदरकारिंतापणातै अर असातावेदनीयकी उदीरणातै तथा तीव्र उदयते आहार जो विशिष्ट अन्नादिकका भोजन करनेमे वांछा सो आहारसंज्ञा है। वहुरि भयसंज्ञाकी उत्पत्तिका कारणकूं कहेहै। अतिभयंकर व्याघ्रादिक क्रूर मृग सर्प्पादिकका देखना तथा इनकी कथाका श्रवण करना आदि तथा आपका शक्तिरहितपणा इत्यादि बाह्यकारणकरिकै अर भयनोकषायका तीव्र उदयरूप अंतरंग कारणकरि भागनेकी वांछा तथा छिपजानेकी इच्या सो भयसंज्ञा है अव मैथुनसंज्ञाके कारणनिंकूं कहेहै।

पुष्टरसका भोजन करना कामकी कथाका श्रवण करना पूर्वकालमे सेवनकीया कामादिकका याद करना कुशील पुरुषनिकी संगति करना तथा कामकी गोष्टी श्रृंगारादिक कथा स्त्रीनिका हावभाव रूपादिका देखना इत्यादिक बहिरंगकारण अर स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद इनिमे कोऊएक वेदनाम नोकषायकी उदीरणरूप अंतरंगकारणकरि सुरतव्यापाररूप मैथुनमे इच्छा सो मैथुनसंज्ञा हैं।

अब परिग्रहसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारणनिकूं कहे है। वाह्यपरिग्रह धनधान्य आभरण-वस्त्रादि अनेक उपकरणनिका देखना तथा परिग्रहकी कथाका श्रवण करना तथा धनका संबंध होना तथा नानाप्रकारके परिग्रहधारीनिकूं देखना इत्यादिक वहिरंगकारण अर लोभकषायकी उदीरणारूप अंतरंगकारणनिकरि जो परिग्रहका संचयमें परिग्रहका उपार्जनमे वांछाका उपजना सो परिग्रहसंज्ञा है। ऐसें ए च्यार संज्ञा कही।

तिनमे आहारसंज्ञा तो छठा गुणस्थानपर्यंतही है। जातै अप्रमत्तादि गुणस्थाननिमैं असातावेदनीकी उदीरणा नहीं होय है। अर भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा यद्यपि नवमा गुणस्थानतांई तथा परिग्रहसंज्ञा दशमातांई उपचारकरि कही क्योंकि इनकाकारण कर्मका मंदसद्भावतै कहिएहै। अर निश्चयतै तो अप्रमत्तादिगुणस्थाननिमे ध्यानमे लीन रहै। परिणामनिकी विशुद्धताकूं शुक्ल-ध्यानके प्रभावतै समयसमय चढैहै तिनके भय मैथुन परिग्रहका लेशरूपभी परिणाम नहीहै परंतु सत्तामैतै कर्मका नाश मूलतै नहीभया यातै उपचारतै करणानुयोगमे संज्ञा कहीहै। भावनिमे संज्ञा नहीं। ऐसे संज्ञाप्ररूपणा पांचमी वर्णनकरी।

अब गतिमार्गणाका स्वरूप कहेहै। गतिनाम कर्मका उदयतै उत्पन्नहुवा जो जो जीवकै पर्याय सो गति है। एकभवकूं त्यागी अन्यभवकूं प्राप्त होय तदि जो प्राप्तहोनेयोग्य होय सो गति है। सो गति, नारक –१, तिर्यक् –२, मनुष्य –३, देव –४ के भेदकरि च्यार प्रकार है।

उक्तंचगाथासूत्रं– ण रमंति जदोणिच्चं। दव्वे खित्ते य कालभावे य।
अण्णोण्णेहिं जह्मा। तह्मा ते णारया भणिया ॥१॥

अर्थ– जो जीवं नरकगतिसंबंधी आहाराहिकद्रव्यमे तथा एकसमयकूं आदि लेय अपना आयुका अंतपर्यंत कालमे तथा चैतन्यकी पर्यायरूप भावमे नही रमै है रह्यानही चाहेहै अति बुरा लागे है। तथा भवांतरमे उत्पन्नहुवा वैरतातै उपज्या परस्पर नारकीनिके क्रोध तिनकरिके पुरातन अर नवीन नारकी रत कहिए रागी नही होइ तातै इनकूं नरक कहिए। अथवा नरक जे बिल इनमे उपजे तातै नारक कहिए। अथवा नर जे प्राणी तिननै कम्यति कहिए। बाधा करे दुष्ट करे ते नारक है नारकीनिकी गति सो नरकगति कहिए हैं।

उक्तंच गाथा– तिरयंति कुटिलभावं सुविउलसण्णा णिगिदृमण्णा।
अच्चंत पाववहुला तह्मा तेरीछिया भणिया ॥१॥

अर्थ– जा कारणतै ते जीव सुविवृत संज्ञा कहिए आहारादिसंज्ञा जिनक

गूढ नही आहार भय मैथुन परिग्रहादिक जिनके प्रगट होइ। अर प्रभाव सुख द्युति लेश्याकी विशुद्धताकरि अत्यंत घाटि होइ तातैं निकृष्ट है। वहुरि हेय उपादेयका ज्ञानादिककरि हीन पणातैं अज्ञानी है। वहुरि नित्यनिगोदादिककी अपेक्षाकरि अत्यंत पापकी बाहुल्यतासहित है। तिस कारणतैं तिरोभाव जो कुटिलपरिणाम मायचारके परिणामनिकूं अच्यंत किहए प्राप्तहोय ते तिर्यंच कहिएहै।

उक्तंच गाथासूत्र– मण्णंति जदो णिच्चं। मणेण णिउणा मणुक्कडा जह्मा।
मणुब्भवा य सव्वे। तह्मा तं माणुसा भणिदा ॥१॥

अर्थ– जातैं जे जीव हेयोपादेय कहिए त्यागनेयोग्य ग्रहण करनेयोग्यकूं नित्यही जाणैं अर मनकरि निपुण कहिए अनेक शिल्पादिकतामे प्रवीण होय वा मनसोत्कटा कहिए ज्याका चिंतवनादिकमैं दृढ उपयोग होय अर मनु जे कुलकर तिनके संतान है तातैं मनुष्य कहिएहै।

उक्तंच गाथा– दिव्वंति जदो णिच्चं। गुणेहिं अठ्ठेहिं दिव्वभावेहिं।
भासंत दिव्वकाया। तह्मा ते वण्णिया देवा ॥४॥

अर्थ– जातैं जे जीव मनुष्यनिके नही पाइए ऐसे अणिमा महिमादिक ऋद्धिके प्रभावकरि सासते मेरूकुलाचल द्वीप समुद्रनिविषैं 'दीव्यंन्ति' कहिए क्रीडा करैं तथा मोद द्युति स्तुति कांति विजिगीषा गमनादिकने प्राप्त होय तथा गुणकरि प्रकाशमान होय तथा सप्तधातु मल वातपित्तकादि दोषरहित प्रभासहित जिनका शरीर होय ते जीव परमागममे देव कहेहैं। ऐसे तो च्यार गतिका स्वरूप कह्या।

अर जे जन्म मरण भय संभोग वियोग दुःख रोग क्षुधादि अनेक वेदना रहित भए समस्तकर्मबंधतैं छूटिगए सिद्धत्वपर्यायलक्षण सिद्ध भए तिनके चतुर्गति नही है संसारीनिकी अपेक्षा च्यारि गति ऐसे छठी गतिप्ररूपणा समाप्त करी।

अव इंद्रियप्ररूपणा सप्तमी कहेहै। जैसे अहमिंद्रदवे है ते स्वामी सेवकादिरहित स्वयं स्वाधीन हैं। तैसे स्पर्शनादि इंद्रिय है तेहू अपनेअपने स्पर्शनादि विषयनिके जाननेविषैं परकी अपेक्षा नही चाहेहै तातैं इनिकूं इंद्रिय कहिएहैं। ते इंद्रियद्रव्येंद्रिय अर भावेंद्रियकरि दोय प्रकार है। तिनमे लब्धि अर उपयोगरूप भावेंद्रिय है।

मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं उपजी जो जीवकें अपनेविषयके जाननेकी शक्तिरूप विशुद्धिता सो लब्धि है। अर मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैंही अर्थ जो अपना विषय

ग्रहण करनेके व्यापारमे प्रवृत्ति सो उपयोग हैं। ऐसे लब्धि अर उपयोगरूप तो भावेंद्रिय है। भाव नाम चैतन्यकी परणती जाननेरूप भई ताका है।

भावार्थ– पदार्थके ग्रहणकरनेकी शक्ति सो लब्धि है। अर पदार्थके ग्रहणकरनेमे व्यापार सो उपयोग है। वहुरि जातिनाम कर्मका उदय है सहकारी जाके ऐसा देहनाम कर्मका उदयते उपज्या निर्वृत्ति अर उपकरण दोयप्रकार द्रव्येंद्रिय है। इन इंद्रियनिमे अपनेअपने आवरणके क्षयोपशमसहित आत्माके प्रदेश इंद्रियनिके आहार होय तिष्ठेहै सो तो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है। अर आत्मप्रदेशनिकरि सहित शरीरके प्रदेशनिका संस्थान सो वाह्यनिर्वृत्तिहै। अर इंद्रियपर्याप्तिकरी आए नोकर्मवर्गणाका स्कंधरूप जे स्पर्शादिक अर्थके ज्ञानके सहकारी सो अभ्यंतर उपकारण है। अर ताके आश्रय त्वचादिक ते वाह्य उपकरण है ऐसे द्रव्येंद्रियभावें द्रियका स्वरूप कह्या।

जिनके स्पर्शविषै ज्ञान सोही चिन्ह सो एकेंद्रियजीव है जिनके स्पर्श अर रस दोयविषै ज्ञान जो चिन्ह ते द्वींद्रियजीव है। जिनके स्पर्श रस गंधविषै ज्ञान जो चिन्ह ते त्रींद्रियजीव हैं। जिनके स्पर्श रस गंध रूपविषै ज्ञानचिन्ह होइ ते चतुरिंद्रियजीव है। जिनके स्पर्श रस गंध रूप शब्दविषै ज्ञानचिन्ह ते पंचेंद्रियजीव है। ते सर्वजीव अपनेअपने भेदकरी भिन्नभिन्न है। एकेंद्रियजीवके एक स्पर्शही इंद्रिय है। द्वींद्रियादिक जीवनिके जिव्हा घ्राण नेत्रकर्ण इंद्रिय क्रमते बधती होय हैं। पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पतीनिके एकही इंद्रिय है संखादिक द्वींद्रिय है। पिपीलिकादि त्रींद्रिय हैं। भ्रमरादि चतुरिंद्रिय हैं मनुष्यादि पंचेंद्रिय है। स्पर्शनेंद्रिका अनेक प्रकार संस्थान है। रसनेंद्रिय खुरपाकै आकार है। घ्राणेंद्रिय तिलका पुष्पके आकार हैं। नेत्रेंद्रिय मसूरके आकार है। कर्णेंद्रिय यवकी नालीके आकार है। ऐसे इंद्रियप्ररूपणा सप्तमी कही।

अव कायप्ररूपणा अष्टमी कहेहै। जे पुद्गलस्कंधनिकरि संचयरूप होय ते काय है औदारिकादि शरीरमे तिष्ठता आत्मा पर्यायहूकूं उपचारकरि काय कहिएहै। पुद्गलविपाकी शरीरनाम कर्मके उदयकरी शरीरकूंभी काय कहिएहै। जातै जातिनाम कर्मका उदयते अविनाभावी जो त्रसस्थावरनाम कर्मका उदयते उपज्या आत्माके त्रस तथा स्थावरत्वपर्याय सो काय कहिएहै। सो पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति त्रसकायके भेदतै छह प्रकार भगवान् कह्याहै।

पृथ्वी अप् तेज वायु नाम कर्मकी उत्तरोत्त प्रकृतिका उदयकरिकै पृथ्वी अप् तेज वायुरूप जे पुद्गलस्कंध तिनमेतै सोहो वर्ण गंध रस स्पर्शयुक्त जीवनिके देह नियमकरिके होय है तातै पृथ्वीही है काय कहिए शरीर जिनके ते जीव पृथ्वीकाय कहिए। जलरूपही है काय जिनके ते अप्कायिक है। अग्निही है काय जिनके ते जीव अग्निकायिक है।

पवनही है काय जिनके ते जीव पवनकायिक हैं। कोऊ जीव पूर्वदेहकूं छांडि पृथ्वीकायपणाकी पर्यायके सन्मुख हुवा विग्रहगतिविषै वर्तै है सो पृथ्वीजीव कहिए। अर जो पृथ्वीरूप शरीरकूं ग्रहणकर रख्याहै सो पृथ्वीकायिक कहिए। अर पृथ्वीका शरीरकूं छांडिगया अर पृथ्वीमय देह रह्या तिस देहकूं पृथ्वीकाय कहिए।

ऐसेही अपजीव अप्कायिक अप्काय तेजोजीव तेजस्कायिक तेजस्काय, वायुजीव वायुकायिक वायुकाय, ऐसे इन च्यारनीका तीनतीन प्रकार जानना। इन च्यार प्रकारके स्थावरनिके जीवविपाकी वादरनाम कर्मके उदयतें वादर कहिए स्थूलशरीर होयहै। अर जीवविपाकी सूक्ष्मनाम कर्मके उदयतें सूक्ष्मशरीर होयहै।

इहां वादरसूक्ष्मका ऐसा लक्षण जानना। अपना शरीरकरि परका घात होय परकरि अपना घात होय सो वादरशरीर है अर वादरजीव आधारतें तिष्ठेहै। कोऊ पृथ्वी पर्वत जल स्थलादिकके आधार होय हैं। अर सूक्ष्मशरीरकरि परका घात नही होइ परकरि सूक्ष्मदेहका घात नही होइ। जलमे स्थलमे पृथ्वीमे वज्रमे कहांहू रुके नही निकलीकरि चलेजाय है मार्‍या मरे नही छेद्या छिदे नही अग्निमे वलै नही पवनकरि रूकै नही उडे नही ऐसा सूक्ष्मदेहधारी सर्वत्र त्रैलोक्यमें जलमे स्थलमे आकाशमे निरंतर अंतररहित भरे है। आधारकी अपेक्षा नहीं करेहै। समस्त पर्वत भींत वज्रादिक शरीरादिकमे गमनागमन करेहै। इन च्यार प्रकारकें वादर सूक्ष्म जीवनिके शरीरका प्रमाण घनांगुलके असंख्यातवे भाग है।

यद्यपि चोसठी भेद अवगाहनाके कीए तिनमे केतेक वादरशरीरतें केतेक सूक्ष्मशरीरकी अवगाहना वडी है तोहू जिनके वादरपणाका स्वभाव है ते परकरि रूके है। अर जिनशरीरनिका सूक्ष्म परिणमन है ते वादरदेहतें अवगाहनाकरि अधिक है तोहू त्रैलोक्यमे कहांहू नही रूकेहै। अर वादजीव अल्पशरीर होतेहू वादरनाम कर्मके उदयतें परकरि रूकेहै।

जैसे महीन वस्त्रमे जल नहीरूके अर सरस्यूं रूकेहैं। यद्यपि ऋद्धिधारिनिका स्थूलशरीरहू वज्रमय शिला पर्वत जल पृथ्वीमे नही रूकेहै। सो तपका अतिशयका महात्म्य है। जाते तप विद्या मणि मंत्र औषधिनिकी वडी अचिंत्य शक्ति है अतिशयरूप महात्म्य है। स्वभाव देखनेमे आवेहै स्वभावमे तर्क्क नही है।

अव वनस्पतिकाय जीवनिका ऐसा स्वरूप जानना। वनस्पति या नामक स्थावर नाम कर्मके उदयतें वनस्पति कायिक जीव होयहैं। ते दोय प्रकार है। एक प्रत्येकशरीर एक साधारणशरीर। एक जीवका एक शरीर होय सो प्रत्येक वनस्पति है अर एक शरीरकूं अनंत जीव धारण करे देह एक अर जीव अनंत ते साधारण शरीर ताकूं साधारणवनस्पति कहिएहै। तिनमे प्रत्येकशरीरहू दोय प्रकार है।

जिनकै आधार वादरनिगोदशरीर तिष्ठै ते प्रतिष्ठितप्रत्येक कहिए। अर जिनके आधार वादरनिगोद नहीं सो अप्रतिष्ठिनप्रत्येक है।

अव प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की पहिचानि कहेहै। जिस वनस्पतिमे तांतू प्रगट नही भए होय अर लीक धारवा प्रगट नही तथा संधी प्रगट नही भई होय अर तोडतै समभंग होजाय तथा तातूं लग्या नही रहे वा वाकी टेडी नही टूटै तथा छेद्याहुवा फिर उगी आवे सो वनस्पति साधारणशरीरसहित है तातै प्रतिष्ठित प्रत्येक कहिए। सोहू साधारणके आश्रयतै उपचारतै साधारण कहिएहै। अर वनस्पतिमे नसां-कली धारवा तथा पेली तातू प्रगट होजाय वा समभंग नही होय सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है साधारणशरीररहित है।

मूल कंद छालि वकल कूंपल पत्र छोटी डाहाली वा डाहला पेड फूल फल जिनका वरोवरी समभंग होजाय सोही निगोदशरीरसहित प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है। अर वाही वनस्पती केते काल गए पांछै समभंग नहीं होइ तांतु प्रगट होजाय तथा पेली संधी प्रगट होजाय सो निगोदरहित अप्रतिष्ठित प्रत्येक होयहै।

वहुरि जिनके कंदके वा मूलके डाहालाके डाहलीके वकल अतिस्थूल होय सोहू निगोदसहित प्रतिष्ठित प्रत्येक होय है। अर जिनके कंदादिकमे छाली पतली होय ते अप्रतिष्ठित प्रत्येक है निगोदरहित है।

अव साधारणवनस्पतीका स्वरूप कहे है। साधारण नाम कर्मका उदयतै निगोदशरीर होय है। इनकूं साधारणशरीर कहिएहै। सो ए साधारणवनस्पतिशरीर पूर्वे कह्या लक्षणसहित वादर सूक्ष्म दोय प्रकार है। जिनके आहार श्वासोच्छ्वास जन्म मरण समानकालमे होय ते साधारणजीव है।

इहां ऐसा जानना। जो साधारण नाम कर्मका उदयके वशवर्त्ती अनंतजीवनिके उत्पन्न होनेके प्रथमसमयमे आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिकूं खलरसभाग परिणमावनेकी शक्ति समस्त अनंतजीवनिके सदृश समानकासमे प्रगट होय सोही आहारकी पूर्णता है। और कवलाहार ग्रास लेना सो नही जानना। आहारपर्याप्ति अंतर्मुहूर्तमें पूर्ण भए पछै वहुरि आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिकूं शरीराकार परिणमनकी शक्ति समस्त अनंत जीवनिके समान कालमे होय है। वहुरि स्पर्शनेंद्रियके आहार परिणमनशक्ति तथा श्वासोच्छ्वास होनेकी शक्ति अनंतजीनिके समानकालमे होयहैं। तातै साधारण कहिए हैं।

वहुरि प्रथमसमयमें उत्पन्न भए जीवनिकीज्यों तिसही शरीरमे द्वितीयादि समयमे उत्पन्न भए अनंतानंत जीवनिके पूर्वसमयमें उपजे अनंतानंत जीवनिकरि सहित आहारपर्याप्ति सदृशकालमे पूर्ण करे तातैहू साधारण कहिएहै। जिस निगोदशरीरमे जिस कालमे अपनी

स्थितिके क्षयके वशतै एकजीव मरण करेहै तिस कालमे तिसही निगोदशरीरमे समानस्थितिवाले अनंतानंत जीव साथीही मरण करेहै। अर जिस निगोदशरीरमे जिस कालमे एक जीव उत्पन्न होय तिस निगोदशरीरमे सामान्यस्थितिवाले अनंताअनंत जीव साथिही उत्पन्न होय है ऐसेहू साधारणपणा जानना। अर द्वितीयादिसमयमे उपजे अनंतानंत जीवनिको अपनी स्थितिका क्षय होतै साथिही मरण जानना।

एक निगोदशरीरमे अनंतानंत जीव समयसमयप्रति साथिही मरेहै साथिही उपजैहै। जितने असंख्यात कोटाकोटिसागर प्रमाण निगोदशरीरकी उत्कृष्टस्थिति पूर्ण होय।

भावार्थ— निगोदजीवनिको आयु तो अंतर्मुहूर्त्तकी है अर निगोदशरीरकी स्थिति असंख्यातवर्षनिकी यातै शरीर तो वण्यारहै अर समयसमय अनंतजीव उपजावो करे अर समानस्थितिवाले अनंत मरण कीया करे ऐसा जानना वहुरि एक इहां विशेष जानना। एक बादरनिगोदशरीरमे वा सूक्ष्मनिगोदशरीरमे अनंतानंत साधारणजीव केवल पर्याप्तही उपजै तथा एकशरीरमे केवल अपर्याप्त उपजै एकशरीरमे पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ नही उपजै क्योंकि तिनके समान कर्मका उदय है यातै।

अव बादरनिगोदजीवनिके शरीरनिकी संख्या कहे है। इस लोकमें असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिष्ठितप्रत्येक जीनिवके शरीरनिके स्कंध है। अर एकएक स्कंधविषै असंख्यात लोकप्रमाण अंडर है। अर एकएक अंडरविषै असंख्यातलोकप्रमाण आवास है। एकएक आवासमे असंख्यात लोकप्रमाण पुलवी हैं। एकएक पुलवीविषै असंख्यात लोकप्रमाण बादरनिगोद जीवनिका शरीर है। एकएक शरीरविषै अतीतकालके सिद्धनितै अनंतगुणा जीव है।

वहुरि साधारणके दोय भेद है। एक नित्यनिगोद एक चतुर्गतिनिगोद तहां जे अनंतानंतजीव अनादि कालतै त्रसनिकी पर्याय नही पाई निगोदका भवकूंही अनुभवै है ते नित्यनिगोद है। वहुरि चार गतिमे परिभ्रमण फेरि निगोदकूंही प्राप्त होय ते अनित्यनिगोद है।

अव त्रसजीवनिकूं कहेहै। जे द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिकै त्रसकाय है ते त्रसजीव त्रसनालीमांहिही है। उपदाद समुद्घात अर मारणांतिक समुद्घात अर केवल समुद्घातविना अन्य त्रसनालीबाह्य नहीं है। बहुरि पृथ्वी, जल, अग्नि वायुकायिक च्यार प्रकारके जीवनिके शरीर अर केवलीका शरीर अर आहारक शरीर अर देव नारकीनिके शरीर इन भाव शरीरनिके आश्रय वादरनिगोद नही है। अन्य जे अप्रतिष्ठित वनस्पतिकायके शरीर अर द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके शरीर अर समस्त

मनुष्यनिके शरीर ए समस्तही बादरनिगोदके शरीरनिकरि आश्रित है सहित हैं। अर सूक्ष्मनिगोद समस्त त्रैलोक्य है आधारकी अपेक्षा नही हैं।

वहुरि पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय पवनकाय इनि च्यारनिका शरीर जघन्य उत्कृष्ट अवगहना घनांगुलके असंख्यातवैं भाग है। वहुरि पृथ्वीकायिकनिका शरीर मसूरके आकार है गोल है। अप्कायिकनिका जलकी बूंदके आकार है। अग्निकायिक जीवनिका शरीर सूईनिका समूहसमान है तैसा उंचा वहुमुख है। वातकायिकनिका शरीर ध्वजासमान आयत चतुरस्र है लंव चोकोर है। इनका शरीरका आकार कह्या परंतु अंगुलके असंख्यातवे भाग है तातैं नेत्रनिके गोचर नहीं अर जो ए दीखेहै ते असंख्यातशरीरनिका समूह है।

वहुरि वृक्षादिकवनस्पतिनका शरीर अर द्वींद्रियादिक त्रसनिके शरीरनिका आकार अनेकप्रकार है। अर अवगाहनाका प्रमाण घनांगुलके असंख्यातवे भाग तो जघन्य हैं। अर उत्कृष्ट वृक्षनिमे तो कमल हजार योजनतें अधिक उंचा है। बेंद्रियमें संख द्वादश योजन है। त्रींद्रियनिमे कानखिजूऱ्या तीन कोशका शरीर है। चोंद्रिनिमे भ्रमरका देह एक योजनप्रमाण है। पंचेद्रियनिमे मत्सका शरीर हजारयोजनका है। अर मध्य अवगहनाके अनेक भेद है। ते ए उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक एकेंद्रियादिक जीव स्वयं भूरमणद्वीप समुद्रमे है। ऐसे कायप्ररूपणा अष्टमी संक्षेपकरि वर्णन करी।

अव नवमी योगप्ररूपणा कहेहै। अंगोपांग नाम कर्म अर शरीर नाम कर्मका उदयकरिकै मन वचन काय पर्याप्तिरूप परिणमनमे प्राप्तभया जो संसारी जीव ताके लोकमात्र जोअपने समस्त देशनिमे प्राप्त जो पुद्गलस्कंधनिके कर्मरूप परिणमनको कारणरूप जो शक्ति सो भावयोग है बहुरि भावयोगसहित आत्मप्रदेशनिमे किंचित चलनरूप सकंप होना सो द्रव्ययोग है। जैसे अग्निके संयोगकरि लोहाके जलावनेकी दग्ध करनेकी शक्ति होयहै। तैसे अंगोपांग नाम अर शरीर नाम कर्मका उदयकरि मनोवर्गणा वा भाषावर्गणारूप आए पुद्गलस्कंध्रनिका तथा आहारवर्गणारूप आए नोकर्मपुद्लस्कंधनिका संबंधकरि जीवके प्रदेशनिके कर्मनोकर्म ग्रहण करनेका सामर्थ्य उपजै सो योग है।

अब योगका विशेषे कहेहै। सत्य असत्य उभय अनुभयरुप वस्तुविषै जाननेको मन वचनकी प्रवृत्ति होय सो संस्थादिक पदार्थका संबंधतैं सत्यमनोयोग उभयवचनयोग अनुभववचनयोग होयहै। सम्यग्ज्ञानका विषय जो पदार्थ सो सत्य है। ऐसे जलके ज्ञानका विषय जल हैं जातें स्नानपानरुप जलकी अर्थक्रिया ताका सद्भाव है। बहुरि मिथ्याज्ञानका विषय अर्थ सो असत्य हैं। जैसे जलज्ञानका विषय मरीचिकासमूहमे जलका जानना। जिसमे स्थानपानादिरूप जलकी अर्थक्रियाका अभाव है। बहुरि सत्य अर असत्य दोयप्रकारका ज्ञानका विषय जो अर्थ सो उभय है।

इहां उभयनाम सत्य असत्य दोऊनिका है। जैसे कमंडलुमे जलका घटका ज्ञान होना। इहां कमंडलुमे जलका धारणरूप अर्थक्रियाका सद्भाव है यातै सत्यताकी प्रतीति है। अर घटका नामादिककी प्रतीतिका अभाव हैं तातै कमंडलुमे घटका जानना सो उभय है। वहुरि सत्य असत्य दोऊ अर्थ जाका विषय नहीं सो अनुभय है। जाकूं सत्यहू नहीं कह्याजाय अर असत्यहू नहीं कह्याजाय सो अनुभय है। जैसे यह क्यौं प्रतिभासे जाननेमे आवेहै।

इहां ऐसे सामान्यकरिके प्रतिभासमे आया अर्थ सो अर्थक्रियाकरी विशेषनिर्णयका अभावतै सत्य ऐसे कह्या नहीं जाय अर सामान्यग्रहणमें आया तातै असत्यहू कह्या नहीं जाय, तातै सत्य असत्य दोऊरूपके अभावतै अन्यजातिका अनुभयका अर्थ जानना। सत्यपदार्थका संकल्प सो सत्यमनोयोग है। असत्यपदार्थका संकल्प सो असत्यमनोयोग है। सत्य असत्य दोऊरूप अर्थका संकल्प सो उभयमनोयोग है। अनुभयरूप मनका संकल्प जामें सत्य असत्य दोऊ नहीं सो अनुभयमनोयोग है।

ऐसेही वचनयोगहू च्यार प्रकार है। सत्यमनोयोगका अर सत्यवचनयोगका अर अनुभयमनोयोगका अनुभयवचनयोगका। इनि च्यार योगनिका मूलकरण पर्याप्तनाम कर्मका उदय अर शरीर नाम कर्मका उदय है। अर असत्य मन वचनके योगनिका अर उभयमनवचनके योगनिका मूलकारण अवरणका तीव्र अनुभागका उदय है। कोऊ कहे जो दर्शनिचारित्रमोह कर्मका उदयकारण कैसे नही कह्या सो मोहकर्म कारण नही है। जातै असत्य उभयमनवचनयोग तो मिथ्यादृष्टीकीज्यों असंयतसम्यग्दृष्टीके तथा देशसंयमीकैहू होय है तातै असत्य अर उभयमनवचनयोगका कारण आवरणका तीव्र उदयही है।

अव सत्यवचनका भेद कहेहै। जनपदसत्य –१, संमतसत्य –२, स्थापनासत्य –३, नामसत्य –४, रूपसत्य –५, प्रतीतिसत्य –६, व्यवहारसत्य –७, संभावनासत्य –८, भावसत्य –९, उपमासत्य –१०. ऐसे दशप्रकार सत्यका उदाहरण कहेहै। जनपद नाम देशका है। जिस जिस देशमे उपजे जे व्यवहारही जन तिनकै प्रसिद्ध जो वचन सो जनपदसत्य है। जैसे रांध्याहुदा चावलनिकूं महाराष्ट्रदेशविषै भातु कहेहै भेदु कहेहै। आंध्रदेशमे वटकमु तथा कुड कहिएहै। कर्नाटकदेशमें कुलु कहिए द्राविडदेशमें चोरु, मालवदेशमे चोखा कहेहै। इत्यादिक देशसत्य कहिए है।

वहुरि सम्मति जो कल्पनाकरिके वहुतलोकनमें मान्य होय सो सम्मतसत्य है जैसे राजाकी पट्टराणीकूं देवी कहिए तथा पट्टराणीविनाहू कोऊकूं देवी कहे। वहुरि अन्यका अन्यमें स्थापन करना सो स्थापनसत्य है। जैसे काष्ठपाषाणादिककी मूर्तिकूं जिनेंद्र तथा इंद्र ऐसा स्थापन करना जो यह जिनेंद्र है।

वहुरि गुणजात्यादिअपेक्षाविना व्यवहारका प्रवर्त्तनके अर्थि कोऊ मनुष्यका जिनदत्त देवदत्त इंद्र राजा ऐसा नाम कहना सो नामसत्य है। वहुरि जैसे कोऊ पुरुषकूं स्वेत कहना जो केशादिक श्याम है ओष्ठ नखादिक रक्त होतैंकूं प्रधानगुणकरि कहना सो रूपसत्य हैं।

वहुरि दीर्घकी अपेक्षा ऱ्हस्व कहना ऱ्हस्वकी अपेक्षा दीर्घ कहना सो प्रतीतिसत्य है। वहुरि नैगमनयकूं प्रधानकरि जो वचन प्रवर्तै सो व्यवहारसत्य है। जैसे कोऊ जल भरैथा इंधन ल्यावैथा ताकूं कोऊ पूछा काहा करोहो तदि कहे भात रांधूंहू इहां भात तो पक्या तयार होयगा परंतु प्रारंभके संकल्पकूंही भात कहना सों सत्र व्यवहारसत्य है।

वहुरि संभवका परिहारपूर्वक प्रवृत्या वचन सो संभावनासत्य है। जैसे इंद्र है सो जंवूद्विपकूं पलट देनेकूं समर्थ है। यद्यापि कोऊ जंवूद्विपकूं पलटानही अर पलटैगा नहीं तोहू इंद्रमे जंबूद्वीप पलटनका सामर्थ्यका असंभव नही हैं। यातैं संभवनासत्य है। वहुरि अतींद्रिय अर्थविषै शास्त्रोक्तविधिनिषेधका संकल्परूप परिणाम सो भावसत्य है जैसे सूकगया तथा अग्नि-करि पकाया तथा चाकीमे सिला वटी लोडीतै पीस्या तथा जंत्रमें पील्या तथा आमली लवणकरि मिल्या द्रव्य प्रासुक है। प्रासुक सेवनेमें पापपंध नही है। ऐसे प्रासुकमें दृष्टीके अगोचर सूक्ष्म प्राणका पतन होजाय तो कोन जाने परंतु भावमें प्रासुक होगया सो याकूं प्रासुक कहना सो भावसत्य है। वहुरि प्रसिद्ध अर्थके सदृश होना सो उपमासत्य है जैसे चंद्रमुखी कन्या इत्यादिक जानना ऐसे सत्यके दश भेद कहे।

वहुरि अनुभयवचनके नव भेद कहेहैं। आमंत्रणी–१, आज्ञापिनी–२, याचिनो –३, आपृच्छिनी–४, प्रज्ञापनी–५, प्रत्याख्यानी–६, संशयवचनी–७, इच्छानुलोमवचनी –८, अनक्षरी–९, ऐसे नव प्रकार अनुभयवचन हैं। सो देवदत्त इत्यादि आमंत्रणी अनुभय-भाषा है। इसमे सत्यहू नही असत्यहू नही वहूरि एक आज्ञा करूंहू ऐसी आज्ञापिनी भाषा है। एक याचना करुंहूं ऐसी याचिनी भाषा हैं। एक मे प्रश्न करुंहूं सो आपृच्छिनी भाषा है। एक मे जणाऊंहू सो प्रज्ञापनी भाषा है। एक त्याग करूंहूं सो प्रत्याख्यानी भाषा है। संशयरूप कहना सो संशयवचनी भाषा है। आपकी इच्छाके अनुकूल करूंहू सो इच्छानुलोम भाषा हैं। द्वींद्रियादिक जीवनिकी अक्षरात्मक भाषा हैं सो अनक्षरी है। ए नवप्रकार अनुभय भाषा है। जातै इनमे श्रवणकरनेवालेनिके सामान्य अर्थ तो प्रगट हुवा तातै असत्य नही। अर विशेष अर्थ प्रगट नही भया जो कहां कहे है कहां आज्ञा करेगा कहां याचना करेगा कहां पृच्छा करेगा कहां जणावेगा कौन वस्तु है कहां इच्छा है अब कहां कहे है तातै सत्यहू नही क्योंकि विशेष अर्थ प्रगट हुवाविना सत्यहू कह्या जाय नही अर सामान्य अर्थ प्रगट भयाही यातै असत्यहू नही कह्याजाय तातै अनुभय जानना। औरहू अनुभयभाषा इसहीमे गर्भित जाननी।

अव सप्तप्रकार काययोगकूं कहे है। औदारिक–१, औदारिकमिश्र–२, वैक्रियिक

–३,वैक्रियिकमिश्र–४, आहारक–५, आरकमिश्र–६, कार्मण–७, उदार नाम स्थूलका है। यह शरीर वैक्रियकादिककी अपेक्षा स्थूल है यातै औदारिककाय कहिए है। औदारिक कायके अर्थि जो आत्माके प्रदेशनिके कर्म नोकर्मरूप पुद्गलनिके खेंचनेकी ग्रहण करनेकी शक्ति सो औदारिककाययोग है। अथवा औदारिकवर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिकूं औदारिककायरूप परिणमनको कारण जो आत्मप्रदेशनिके सकंपपना सो औदारिककाययोग हैं। सो यो औदारिकशरीर एकेंद्रियादिक समस्त तिर्यंचनिमे अर समस्त मनुष्यनिके होय है। यद्यपि केतेक एकेंद्रियनिके सूक्ष्मशरीरहू होय है तथापि वैक्रियिक आहारादिकनिकी अपेक्षा स्थूलही है। तातै उदारपुद्गलनितै उपजा सो औदारिकशरीर हैं।

अब औदारिकमिश्रकाययोगकूं कहे है पूर्वै कह्या है लक्षण जाका ऐसा औदारिक शरीर जितने अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत पूर्ण नही होई अपर्याप्त अवस्था रहे तितने काल औदारिकमिश्रशरीर कहिए हैं। यो आत्मा पूर्वपर्याय छांडि अन्यपर्यायकूं जाय है तदि मार्गमे एक समय तथा दोय समय तथा तीन समय लगै तहां मार्गमे याके अष्टकर्ममय कार्मणशरीर हैं। फिर अन्यपर्यायमे गया तहां औदारिकादिशरीरके योग्य जे पुद्गलस्कंधनिकूं ग्रहण करना सो आहार है। तहां अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत पर्याप्त पूर्ण नही करे तितने काल औदारिक मिश्रशरीर कहिए हैं।

पर्याप्ति पूर्ण होजाय तदि औदारिकशरीर कहिए है। याकूं मिश्रसंज्ञा ऐसे जाननी जो विग्रहगतिके तीन समयमें कार्मणकाययोगकरि खेंच्या कार्मणवर्गणा ताका संयोगकरि औंदारिकमिश्र कह्या है। अथवा पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ अवस्था मिलनेतै अथवा परमागमें ऐसी रूढी है तातै मिश्र कहिए है।

औदारिक मिश्रकायकरिके आत्माके कर्मनोकर्मके ग्रहण करनेकी शक्तिरूप प्रदेशनिका सकंपपना सो औदारिकमिश्रकाय योग है। सो अपर्याप्त अवस्थाहीमे होयहै।

अब वैक्रियिककाययोगकूं कहे है। जे पुद्गलस्कंध नानाप्रकार शुभअशुभ क्रिया करनेकूं अणिमा महिमादिकशक्तिकूं प्राप्त होने योग्य होय सो वैक्रियिकशरीर है। जो वैक्रियाके अर्थि तिस रूप परिणमनयोग्य शरीरवर्गणाके स्कंधनिके खेंचनेंकी शक्तिसहित आत्माका प्रदेशनिका कंपायमान होना चलना सो वैक्रियककाययोग है। सो वैक्रियिककाययोग देवनिके अर नारकीनिके होय है।

वहुरि इतना विशेष जानना। जो वादरतेजस्कायिक वादरवायुकायिक तथा पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचमनुनिके अपने अपनें औदारिकशरीरही विक्रयाकूं प्राप्त होय है। ते जीव अपृथग्विक्रिया करे है। अपना एकशरीरही विकाररूप छोटा वडा इत्यादिक होय है। भिन्न देह नहीं करिसकै है। अर देव तथा भोगभूमिमे उपजे तिनके तथा चक्रवर्तिके पृथग्विक्रयाहू होय है

अपना एकशरीरका अनेकरूपहू करे है। तिन वादरतेजस्कायिक अर वातकायिक समस्तजीव-निके विक्रिया नहीं है। अपनी संख्याके असंख्यातवे भाग जीवनिकेही विक्रिया है।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोग ऐसा जानना। जो वैक्रियिकशरीर अंतर्मुहूर्त्तमें जेतै पूर्ण नहीं होय तितने अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिकमिश्रकाययोग है। औदारिकमिश्र जो अपर्याप्त-कालमे आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो वैकियिकमिश्रकाययोग है। प्रमत्तसंयतगुणस्थानधारीके आहारकशरीर नाम कर्मका उदयकरि आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिका आहारशरीररूप परिणमनकरि आहारकशरीर होय है।

सो याके होनेका प्रयोजन ऐसा। जो ढाईद्वीपमे वर्तंते तीर्थयात्रादिकके अर्थि विहारमे असंयमके दूरि करनेकें अर्थि ऋद्धिसहितहू प्रमत्तसंयमी मुनीके श्रुतज्ञानावरण वीर्यांत-रायका क्षयोपशमकी मंदता होतै जो धर्मध्यानका निरोध करनेवाला ऐसा श्रुतका अर्थमें संदेह उपजावे तो तिस संदेहका नाशके अर्थि आहारकशरीर प्रगट होय है सो शरीर रसादि सप्त-धातु रहित है। अर प्रशस्त है। अर संहनन जो हाडनका वंधन ताकरि रहित है। शुभ समचतुरस्रसंस्थान शुभ अंगोपांगसहित है। धवलवर्ण ऐसा मांनूं चंद्रकांतीकरि रच्या है। एक हस्तप्रमाण है। प्रशस्त आहारकशरीर आहार बंधन संघात अंगोपांगसहित है। अपना शरीरकरि परका घात नही परकरि आपका घातरहित वज्रशिलादिकका भेदवामे समर्थ वज्रा-दिकमे प्रवेशकरनेकूं समर्थ है।

जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तकालकी स्थितियुक्त है। तिस शरीरपर्याप्ति पूर्णहोतै संतै कदाचित् आहारक शरीरकी ऋद्धियुक्त प्रमत्तसंयतके आहारकका काययोगका कालविषै अपना आयुकर्मका क्षयका वशकरि मरणहू होय है। आहारक ऋद्धियुक्त प्रमत्तसंयमीमुनी प्रवचन-पदार्थमें संशय होतै संतै संशयके दूरी करनेके अर्थि श्रीकेवलीके चरणनिके निकट जाय सूक्ष्म अर्थनिकूं आहरति कहिए ग्रहण करे है तातै याकूं आहारक कहिए है। आहारकशरीर पर्याप्ति पूर्ण होतै आहारकवर्गणाकरि आहारकशरीरके योग्य पुद्गलस्कंधनिके आकर्षणरूप शक्तिसहित आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो आहारककाययोग है।

बहुरि आहारकशरीर अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत पूर्ण नही होय तितने आहारकमिश्रकाययोग है। पूर्वका औदारिकशरीर वर्गणाकरि मिल्याहै तातै मिश्र कहिए है।

अब कार्मणकाययोगकूं कहे है। अष्टविधकर्मनिका स्कंध सोही कार्मण है। कार्मणशरीर नाम कर्मका उदयकरि उपज्या सो कार्मण है। तिस कार्मणस्कंधकरि सहित आत्माके कर्मग्रहणकरनेकी शक्तिसहित आत्माका प्रदेशनिका सकंपपना सो कार्मणकाययोग है। सो विग्रहगतिकालविषै एकसमय दोयसमय वा तीनसमयमे है वा केवलीके समुद्घातसंबंधी प्रतरद्वय

लोकपूर्ण इन तीन समयमेही होय है। अन्यकालमें कार्मणकाययोग नही होय है। इन समस्तयोगनिका परके निरोधविना अंतर्मुहूर्त्तकाल हैं। अर निरोध होय तो एकसमयकूं आदि लेय यथासंभव अंतर्मुहुर्त्तपर्यंत जानना।

वहुरि आहारकऋद्धि अर वैक्रियकऋद्धि युगपत् नही होय है। वहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस शरीर नाम कर्मका उदयकरि यथासंख्य औदारिक वैक्रियिक आहरक तैजस नाम च्यार शरीर होय ते ए नोकर्मशरीर होय है।

इहां नो शब्द किंचित् वा तुच्छ अर्थमे प्रवर्ते है। इनि नोकर्मशरीरनिके कर्म जो आत्माका गुणका घातकपणा तथा गत्यादिकनिमे आत्माकूं पराधीन करनेकी सामर्थ्यका अभाव है। अर कर्मका सहकारीपणाकरी ईषत्कर्मकूं नोकर्म कहिए है। ज्ञानावरणादि अष्टविधकर्मस्कंधका समूह सो कर्मणशरीर है। सिद्धराशिके अनंतवै भाग अर अभव्यराशितै अनंतगुणा ऐसा जो मध्यम अनंतानंपरिमाण पुद्गलपरमाणुनिका स्कंघ ताकूं वर्गणा कहिए हैं।

वहुरि अनंतानंतवर्गणानिका समूह सो समयप्रवद्ध है। एकसमयमे जीवके कर्म अर नोकर्मका समयप्रवद्ध ग्रहणमे प्राप्तहोय वंधे है। इतना विशेष है। इन पंचशरीरके योग्य नोकर्मका समयप्रवद्धका प्रमाण समान नही है। औदारिकका समयप्रवद्धमे परमाणूनिका प्रमाण सर्वतै अल्प है यातै असंख्यातगुणा वैक्रियिकशरीरका समयप्रवद्ध हैं। तातै असंख्यातगुणा आहारकका समयप्रवध्द है। यातै अनंतगुणा तैजसका समयप्रवध्द है यातै अनंतगुणा परमाणु प्रमाण कार्मणका समयप्रवध्द हैं।

वहुरि औदारिकका समयप्रवध्दकी अवगहनाक्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग है। तथापि उत्तरउत्तर शरीरनिका समयप्रवध्दके अवगाहनाका क्षेत्र असंख्यातगुणा क्रमतै घाटि जानना इनिमे परमाणु तो अधिकाधिक है। अवगाहना सूक्ष्म परिणमनतै घाटिघाटि है। ऐसे योगप्ररूपणा संक्षेपकरि कही। याका विशेष अर कर्मनिका सत्तामे रहना सो अर समयप्रवद्धनिका वटवारा सो समस्त कथन गोमटसारतै जानना।

अव दशमी वेदप्ररूपणाका वर्णन करे है। चारित्रमोहका भेद जो पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नाम कर्मका उदयकरि चैतन्यपरिणामविषै पुरुष स्त्री नपुंसक रूप जीव होय है। अर निर्माण नाम कर्मका उदयकरि पुद्गलका पर्यायविशेषविषै पुरुष स्त्री नपुंसक होय है। सोही दिखावेहै।

पुरुषवेदका उदयकरि स्त्रीमे अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भावपुरुष होय है। स्त्रीवेदका उदयकरि पुरुषमे रमनेकी इच्छारूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भावस्त्री

होय है। नपुंसकवेदका उदयकरि दोऊनिकी अभिलाषरूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव नपुंसक होय हैं।

वहुरि पुरुषवेदका उदयकरि निर्माण नाम कर्मका उदयकरि युक्त अंगोपांग नाम कर्मका उदयके वशकरि डाढी मूंछ शिश्नादिलिंगकरि चिन्हितशरीरसहित जीव भवका प्रथम-समयकूं आदिकरि तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यपुरुष होय है।

वहुरि स्त्रीवेदका उदयकरि निर्माण नाम कर्मका उदययुक्त अंगोपांग नाम कर्मका उदयकरि रोमरहित मुख अर कुचयोन्यादि लिंगकरि चिन्हित शरीरयुक्त जीव भवका प्रथम-समयकू आदि लेय तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यस्त्री होय है।

वहुरि नपुंसकवेदका उदयकरि युक्त अंगोपांग नाम कर्मका उदयकरि स्त्रीपुरुष दोऊनिका चिन्हिते रहित देहसहित भवका प्रथमसमयकूं आदि लेय तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यंनपुंसकजीव होय है।

ये द्रव्यभावके भेद वाहुल्तयाकरि देवनारकींनिमे भोगभूमिके तिर्यंच मनुष्यनिमे समान होयहै। जैसा भाववेदतै साहीं द्रव्यवेद होयहैं। अर कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिमे विषमभी होयहै। द्रव्यपुरूष होय अर भावपुरूष तथा स्त्री तथा नपुंसकहू होयहै। अर द्रव्यस्त्री अर भावपुरूष तथा स्त्री तथा नपुंसकहू होयहै। अर द्रव्यतै नपुंसक होय। अर भावतै पुरूष तथा स्त्रीहू होयहै।

चारित्रमोहका भेद जो वेद ताकीं उदीरणाकरिकै वा तीव्र उदयकरिकै परिणामविषै संमोह जो विक्षेप सो उपजै है। तिस संमोहकरिकै यो जींव गुणकूं अर दोषकूं नाही जानेंहै योही वडो अनर्थ है। तातै परमागमकी भावनीका वलकरिकै ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहणकरवेयोग्य है।

अव पुरूषका लक्षण कहेहै।

उक्तंच गाथासूत्र — पुरूगुणभोगे सेदे। करदे लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं।
पुरुउत्तमहि जम्हा। तह्मा सो वण्णिओ पुरिसो ॥१॥

अर्थ— लोककैविषै जो जींव पुरूषगुण जो सम्यग्ज्ञानादिक अधिकगुणनिके समूहविषै शेते कहिए स्वामीपणाकरि प्रवर्त्तै अर पुरुषभाग कहिए नरेंद्रनागेंद्र देवेंद्रादिक अधिक भोगनके समूहविषै भोक्तापणाकरिकै प्रवर्त्तै तथा पुरूगुणकर्म कहिए धर्म अर्थ काम मोक्ष लक्षण जे पुरुषार्थंका धारणरुप दिव्य आचरण करै तथा पुरुत्तमे कहिए परमेष्ठीपदाविषै शेते कहिए तिष्ठै तिस कारणतै द्रव्यभावसंयुक्त जीव सो पुरुष वर्णन करिए है।

स्त्री शद्बका अर्थ कहेहै ।

उक्तंच गाथासूत्र– छादयदि सयं दोसे । णयदो छादेदि परंपि दोसेण ।
छादणसीला जह्मा । तह्मा सा बंणिया इत्थी ।।२।।

अर्थ– जातै स्वयं अपने आत्मकूं दोष जो मिथ्यादर्शन अज्ञान असंयम क्रोध मान माया लोभकरिकै आच्छादन करै । अर युक्तितै कोमलवचन स्नेहसहित अवलोकन अनुकूलप्रवर्तनादिक अर कुशलव्यापारकरिकै पर जो आपतै अन्य पुरुष ताहिकू अपने वशकरिकै दोष जे हिंसा अनृत चौर्य अब्रह्म परिग्रहादिक पापकरिकै आच्छादन करै ताकारणतै आच्छादनस्वभावरुप द्रव्यभावकरिकै स्त्री या नामकरि वर्णनकरि परमागमविषै कही ।

यद्यपि तीर्थंकरनिकी माता वा अन्य सम्यग्दर्शनकी धारक स्त्रीनिकै ये कहे दोष नहीहै तोहू ते स्त्री अतिविरली है । सर्वकठोर आधिक्यताका व्यवहारकरि स्त्रीका लक्षण कह्या है ।

बहुरि जे जीव पूर्वे कहे गुण तिनकरि सहित पुरुष नही अर स्त्रीहू नही दोऊनिके डाढी मूंछि तथा कुचादि चिन्हरहित ईट पकावनेकी अग्निसमान तीव्र कामाग्निकर सहित होय तथा कलुषितचित्त होय सर्वकाल कामवेदनाकरि कलंकित जाका हृदय होय सो जीव नपुंसक परमागममे कह्याहै ।

एकेंद्रियादिक चोइंद्रियपर्यंत अर समस्त सन्मूर्छन अर नरकके नारकी ए तो नियमतै नपुंसकही होयहै । च्यारप्रकारके देवनिमै स्त्री अर पुरुष दोयही वेद है । अर गर्भज तिर्यंकू मनुष्यनिमे तीनो वेद है । ऐसे वेदप्ररूपणाका संक्षेप कह्या ।

अब ग्यारमी कषायप्ररूपणा वर्णन करेहै । अब कषायशद्बकी निरुक्ति जो है ताका अर्थ कहिएहै । संसारी जीवके शुभ अशुभ ज्ञानावरणादि मूल उत्तर प्रकृतिरूप क्षेत्र ताहि कृषति कहिए हलादिकतै खेतज्यों संवारै फलनिपजावनेयोग्य करै तिस कारणकरि क्रोधादिक जीवके परिणाम कषाय है । ऐसे भगवान् जिनेंद्र कह्या है ।

कर्मरूप क्षेत्र कैसा कहे इंद्रियनिका विषयसंबंधतै उत्पन्नभया हर्ष अर शारीर मानसिकदुःख सोही धान्य सो जहां उपजै हैं बहुरि कर्मरूप क्षेत्र कैसा कहै अनादिके पंचपरावर्त्तन जाकी सिव है मर्यादा है । मिथ्यादर्शनादि जीवका संक्लेशपरिणामरूप याका जीव है अर क्रोधादिकषाय नाम भृत्य है । सो प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश भेदरूप कर्मबंधलक्षण क्षेत्रमे बोयाहुवा कालादि सामग्री पाय सुखदुःखलक्षण बहुतप्रकारके धान्यरूप फल अनाद्यनंतसंसारसीममै प्रगट करेहै ।

अथवा सम्यक्त्वकूं देशचारित्रकूं तथा सकलसंयमकूं यथाख्यातचारित्रकूं इस प्रकार-करि विशुद्धपरिणामनिकूं 'कषन्ति' कहिए हिंसा करे घातै इनिकूं कषाय कहिएहै। अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ आत्माका सम्यक्त्वपरिणामकूं 'कषन्ति' कहिए घात करेहै। अनंतसंसारका कारणपणातै मिथ्यात्वकूं अनंत कहिएहै। अनंत जो मिथ्यात्वकूं 'अनुवध्नन्ति' कहिए वांधै यातै अनंतानुबंधी कहिएहै। अप्रत्याख्यानावरणकषाय है सो अणुव्रतपरिणामकूं घातै है। अप्रत्याख्यान नाम ईषत् त्यागका है। सो किंचित् अणुव्रतमात्रकूंहू 'आवृण्वन्ति' कहिए घातै सो अप्रत्याख्यानावरणकषाय है।

वहुरि जो प्रत्याख्यान जो सकलसंयम ताकूं 'आवृण्वन्ति' कहिए घातै सो प्रत्याख्यानावरण है। वहुरि 'सं' कहिए संयम जो यथाख्यातचारित्र ताहि ज्वलन्ति कहिए दग्धकरै सो संज्वलनकषाय है।

ऐसे निरूक्तिका वलकरि कषायनिका अर्थ जानना। अनंतानुबंधी तो तत्वार्थश्रद्धान तो नही होनेदेहैं। अर अप्रत्याख्यानावरण अणुमात्रव्रतकाहू घात करेहै तातै देशसंयमकूंहू घातेहै अर प्रत्याख्यानावरण सकलसंयमकूं नही होनेदेहै। संज्वलनकषाय यथाख्यात संयमकूं घातेहै नही होनेदेहै।

इनकें क्रोध मान माया लोभकरि च्यारच्यार भेद है। ऐसे सोलह कषाय कहे। ये कषाय उदयका स्थानका विशेषकरि असंख्यातलोकप्रमाण है। पाषाणकी लीखसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त क्रोध जीवनै नरकगतिमे उत्पन्न करेहै। पृथ्वीका भेदसमान अनुत्कृष्टशक्तियुक्त क्रोध जीवकूं तिर्यंचगतिविषै उपजावेहै। धूलीमे लींखसमान अंजघन्यशक्तियुक्त क्रोध जीवकूं मनुष्यगतिविषै उपजावेहै। जलमे लीखसमान जघन्यशक्तियुक्त क्रोध जीवकूं देवगतिविषै उपजावेहै।

वहुरि शिलास्तंभसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त मान जीवकूं नरकगतिविषै उपजावेहैं। हाडसमान अनुत्कृष्टशक्तियुक्त मान जीवकूं तिर्यंचगतिविषै उपजावेहै। वहुरि काष्ठसमान अजघन्यशक्तियुक्त मान जीवकूं मनुष्यगतिविषै उपजावेहैं।

बहुरि वेत्रसमान अजघन्यशक्तियुक्त मान जीवनकूं देवगतिविषै उपजावे है। जैसे पाषाण हाड काष्ठ वेत्र है ते चिरतरादि कालविना नमावनेकू समर्थ नही होय है। तैसे उत्कृष्टादिशक्तियुक्त मानकषाययुक्त जीवहू चिरतरादि वहुतकालविना नमनकीया नही जाय है।

वहुरि वांसकी जडसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त मायाकषाय जीवकूं नरकगतिमे उपजावेहै। मींढाका सींगसमान अनुत्कृष्टशक्तियुक्त माया जीवकूं तिर्यंचगतिविषै उपजावे है। गोमूत्रसमान

अजघन्यशक्तियुक्त माया जीवकूं मनुष्यगतिविषैं उपजावेहै। खुरपासमान जघन्यशक्तियुक्त माया जीवकूं देवगतिविषैं उपजावेहैं। जैसे वांसकी जडादिक वहुतकालविना अपनी अपनी वक्रताकूं छांडि सरळपणाकूं नही प्राप्त होय है। तैसे जीवहू उत्कृष्टादिशक्तियुक्त मायाकषायरूप परणया वहुतकालविना सरल नही होय है।

वहुरि कृमिराग अर रथके पहैंवा गांववाका मल अर शरीरका मल अर हलदका रंगसमान उत्कृष्टादिशक्तियुक्त लोभकषाय विषयाभिलाषरूप अनुक्रमतैं नरक तिर्यंच मनुष्य देवगतिमे जीवकूं उपजावेहै।

भावार्थ– नारकादिभवमे उत्पत्तिका कारण सोसो आयुगति आनुपूर्व्यादिक कर्मका बंध करे है। ऐसे कषायप्ररूपणा संक्षेपकरि वर्णन करी।

अव ज्ञानमार्गणा नाम वारमी प्ररूपणा वर्णन करे है। ज्ञानके पांच भेद है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान, ए सम्यग्ज्ञान है। जैसा पदार्थका स्वरूप होय तातैं न्यून नहीं जाने अर अधिक नही जाने जैसा है तैसा जाने सामान्यसंग्रहरूप द्रव्यार्थिकनयकरि ज्ञान एकरूपही है। तोहू विशेष अपेक्षाकरि ज्ञानके पांच भेद हैं। तिनमें मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ए च्यार ज्ञान तो क्षायोपशमिक है। जातैं मतिज्ञानावरणादि तथा वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं उपजेहै। इहां क्षयोपशमका अर्थ ऐसा जानना।

जो घातिकर्मकी प्रकृतिनिका स्पर्द्धक दोय प्रकार है। एक सर्वघातिरूप एक देशघातिरूप है। तहां जो मतिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय कर्मका सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तो उदयाभाव क्षय होय उदय जो रस नही देना सोही क्षय है अर जो उदयावलीमे नही आए ऐसे उपरितन जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनका सत्तामे अवस्थितिरूप रहना सोही उपशम ऐसे सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तो क्षय अर उपशम अर देशघातिस्पर्धकनिका उदय होय तव मतिज्ञान होय है। जातैं देशघातिस्पर्द्धकनिमे अपने प्रतिपक्षीगुणका घातनेका सामर्थ्य नही होयहै। ऐसेही श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं श्रुतज्ञान होयहै। ऐसेही अवधि मनःपर्ययज्ञानहू अपने आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं होई तातैं च्यार ज्ञान क्षायोपशमिक है। अर समस्तज्ञानावरणका अर अंतराय कर्मका अत्यंत क्षयतैं उपज्या केवलज्ञान क्षायिक है।

अव मिथ्याज्ञानकी उत्पत्ति तथा कारण स्वरूप अर स्वामी अर भेदकूं कहेहै। मिथ्यात्वकर्मका उदय तथा अनंतानुबंधी च्याय कषायमें कोऊ एकका उदय होतैं जीवकै कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान विभंगज्ञान ए विपरीतज्ञान होय है। जैसे दुग्ध मिष्ट है तोहू कडवी तुंबीमे प्राप्तहुवा विष होय परिणमेंहै। तैसे मिथ्यादृष्टिजीवके मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञानकूं

कुमति कुश्रुत कुअवधि रूप परिणमननै प्राप्त होयहै। इन तीन कुज्ञानका विशेषरूप ऐसा जानना ।

जो परका उपदेशविनाही अनेकवस्तु मिलाय जीवनिके मारनेकूं विष उपजाय लेनेकी जाकै बुद्धि उपजै तथा सिंह व्याघ्रादिककूं पकडनेके मारनेके काष्ठमय जंत्र वणावनेकी बुद्धि उपजै तथा जलके जीव पकडनेकी तथा तीतर सूवा इत्यादिक पक्षीनिके पकडनेका जाल पींजरा वनावनेकी तथा वनका मृग पकडने मारनेकी जो विनाशिखाये बुद्धि उपजै सो सब कुमतिज्ञान है।

औरहूं जो परजीवनिका धन ठिगनेकूं तथा परधन सोप्याहुवा राखनेकूं तथा परकी स्त्रीके हरनेकूं तथा परके मारनेकूं धनके चोरनेकूं तथा निर्बलजीवनिकी आजीविका जमी जायगा स्त्री धन खोसि लेनेमै तथा अन्यका अपमान करादेनेमे तथा न्यायमे साचा होय ताकूं झूंठा करदेनेमे तथा झूठाकूं सांचा करनेमे तथा परकै दूषण लगावनेमे तथा धर्मात्मापूरूषनिकै चोरीका कुशीलका दोष लगावनेमे परका अपवाद निंदा करानेमें जाकै प्रवलबुद्धि होइ तथा कुदेवनिनिमें जीवाकै देवत्वबुद्धि करादेनेमे तथा पाखंडी कुलिंगनिमे गुरूपणाकी बुद्धि कराय पूजा देनेमे तथा आप व्यसनी पापी होय आपकी प्रशंसा कराय देनेमे तथा अधर्मकूं धर्मकूं धर्म जणाय देनेमे इत्यादि हिंसा झूठ कुशील परधनहरण परिग्रहवधावन रूप महापापनिमे जाकै प्रवीणता होय।

तथा पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति त्रस इनि छकायके जीवनिका घातकरि संसारीक अनेक यंत्र अनेक क्रिया अनेक जगतकै राग उपजावनेवाली रागकारी वस्तु उपजावनेमे जाकै प्रवलबुद्धि उपदेशविना शास्त्रविना जाकै उपजै सो समस्त कुमतिज्ञान है।

तथा ग्राम नगारादिककूं दग्ध करनेका तथा समस्त देश ग्रामनिवासी जीवनिका तथा परकी सेनाके विध्वंस करनेका उमायभूत शास्त्र विष अग्नि उपजाय देनेकी बुद्धिविना शिखाया उपजै सो समस्त कुमतिज्ञान है ।

वहुरि चोरनिके शास्त्र तथा कोटपालपणाका शास्त्र तथा जिनमे हिंसाकी प्रधानता जिनमे उत्तमपुरूषनिके व्यभिचार वतावना उत्तमपुरूषनिके माता अन्य, पिता अन्यतै उपज्या कहना तथा शिकार करना मांसभक्षण करना राजानिका सनातनमार्ग बतावना शिकारमे धर्म वतावना देवीनिके बकरा भैंसा मारी चढावनेका महाफल कहना देवतानिकूं मांसभक्षी कहना पितृ ईश्वरनिकूं मांसपिंड देना सनातनसूं क्षत्रीकुलकूं मांसभक्षी कहना यज्ञका उपदेश देना व्यभिच्यारकूं पुष्ट करना देवनिके मनुष्यिणीसूं संगम कहना कामी क्रोधी शस्त्रधारीनिकूं परमेश्वर कहना तथा कामशास्त्र युद्धशास्त्र मायाचार प्रधानशास्त्र रचना नाना भंडकाव्य वनावना स्त्रीपुरूषनिके कामादिक चरित्र कहना परजीवनिका अपवाद रचना ते कुश्रुत है ।

तथा जिनमें एकांतरूप पदार्थका स्वरूप कहना । तथा देवताके अर्थि हिंसा करनेमे धर्म कहना महा आरंभ हिंसाकूं धर्म कहना पंचभर्त्तारीकूं सती कहना हनुमानादिकनिकूं वानर रावणकूं राक्षस तथा देवतानिका तिर्यंचरूपादिक जामै वर्णन कीया ते समस्त कुश्रुत है । इनके पठन श्रवणका ज्ञान सो कुश्रतज्ञान है ।

वहुरि मिथ्यादर्शनकरि कलंकित जीवके अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमतै जो अवधिज्ञान उपजे सो कुअवधि है । वा याहीकूं विभंगज्ञान कहिएहै मो यो द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादतैं रूपीद्रव्यकूं प्रत्यक्ष जाने है। सो यो विभंग ज्ञान मनुष्यपर्यायतैं तथा तिर्यंचमें तो तीव्र कायक्लेश तप अर द्रव्यसंयमकरिके उपजेहै तातै गुणप्रत्यय है ।

अर देवनारकीनिके तप व्रत संयम नही तातै उनका भावही कारण है। जो देवका भव तथा नारकीका भव पावैगा ताके नियमतै अवधिज्ञान होयगा। तातै देवनारकीनिके भवही प्रत्यय कहिए कारण हैं । तातै देव नारकीनिके भवप्रत्यय अवधि आगममे कहीहै

सो मिथ्यादृष्टि देव नारकीनिके विभंग अवधि कहावे । वा कुअवधि कहावे। सो यो विभंगज्ञान मिथ्यात्वादिक कर्मबंधका बीज है कारण है तथा कोऊके नरकादिकगतिमे पूर्व जन्मका उपजाया पापकर्म ताका फल तीव्रदुःख वेदना ताकरिके ऐसा चिंतवनहू होय हैं। जो मै पूर्वजन्ममे हिंसादिक पंचपाप कीये सप्तव्यसन सेये अभक्ष्यभक्षण निर्माल्यग्रहण अन्यायप्रवृत्ति वहुत आरंभ वहुत परिग्रह ग्रहण कीया ताका फल नरकमे प्रत्यक्ष पाया ऐसा आत्मनिंदा करता पापतै विमुख होय ताके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकूंहू उपजावेहै। ऐसे कुमति कुश्रुत कुअवधि ये तीन ज्ञान तिनका स्वरूप संक्षेपकरि कह्या ।

अव मतिज्ञानका स्वरूप अर भेद कहेहै। यो मतिज्ञान है सो इंद्रियद्वारे जानेहै । इंद्रियनिविना स्वयं जाननेकूं समर्थ नही। अर इंद्रिय है ते स्थूलपदार्थकूं जाने सूक्ष्मकूं नही जाने अर वर्तमानकालवर्त्तीकूं जानें। वर्तमान नही ताकूं नही जानें । अर अपने योग्य क्षेत्रमे तिष्टताकूं जाने। दूर क्षेत्रमे तिष्टताकूं नही जाने। अन्य इंद्रियनिके विषयकूं अन्य इंद्रिय नही जानें। जैसे शब्दकूं नेत्रेंद्रिय नहीजानें। इन इंद्रियनिके स्पर्शादिक स्थूलविषयनिके जाननेकाही सामर्थ्य है । सूक्ष्म जे परमाणु इत्यादिक अर अंतरित जे पूर्वैं भए रामरावणादिक अर दूरवर्ती जो स्वर्ग नरक मेरु इत्यादिककें जाननेकूं असमर्थ है । यो मतिज्ञान जो है सो पांच इंद्रिय छठा मन इनहीतै उपजेहै ।

याका विशेष ऐसा । जो इंद्रिय अर इंद्रियके ग्रहणयोग्यविषयनिके संयोग होतैही

जो वस्तुका सत्तामात्र ग्रहण होय सो दर्शन है। जैसे दृष्टी पडताही वस्तुका प्रकाश होनेमात्र निर्विकल्पग्रहणमे आया सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसेही कर्णादिक च्यार इंद्रियद्वारे सामान्य विकल्परहित ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। अर ताके लगताही जो देख्याहुवा पदार्थका वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहणगे आवै सो आवग्रह नामा मतिज्ञान हैं।

भावार्थ– इंद्रिय अर पदार्थ इनका संबंध होताही जो सामान्यग्रहण होइ जो कुछ देखनेमे आया तथा कुछ श्रवणमें आया तथा स्पर्शनमें आया परंतु कुछ विशेष जाननेंमे नही आया जो कोंनका रूप है वा कहां शब्द है कैसा स्पर्श गंधादिक है ऐसे विशेष जाननेमे नही आवे अर सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण होय सो दर्शन है। अर पछे लगनाही पदार्थका रंग आकारादिकका ग्रहण होइ सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसे प्रथमही ग्रहणमे आया जो यो श्वेत है। ऐसे श्वेतरूप जाण्या पदार्थमे विशेष जाननेकी इच्छा जो ये श्वेत है सो वुगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा अथवा ध्वजा देखीथी तिसमे ध्वजा जाननेकी इच्छा सो ईहा नामा मतिज्ञानका दुसरा भेद है।

अथवा जो यो श्वेत दीखे है सो ध्वजानिकी पंक्ति होसी ऐसे जो वस्तु होय तामै ताहीका ज्ञान होना सो ईहा नाम मतिज्ञान है। ऐसेही शद्बादिकमैहू अन्य इंद्रियद्वारेहू ईहा होय है। सो यो ईहाजान तो प्रमाणरूप है परतु ढीला ज्ञान है।

वहुरि जामें ईहा उपजीथी ताहीका निर्णय होय दृढ होना याका नाम अवाय है। जैसे बुगलांकी पंक्तिमें ईहा नामा ज्ञान हुवोछो और वहुरि पांखनिका उंचा नीचा हलावनेकरि निश्चय भया जो या वुगलांका पक्तिही है। ऐसे निर्णयरूप अवाय नामा तीसरा मतिज्ञानका भेद है।

वहुरि जाका निर्णय होगया तामै वारंवार प्रवृत्ति करिके ऐसा निर्णय हुवा जो कालांतरमे विस्मरण नही होय। सो धारणा नामा मतिज्ञानका चौथा भेद है।

सो ये अवग्रहादिक बारह प्रकार होय है। जहां वहोतका अवग्रह होय। जैसे बहुत गायनिमे कोऊ धोली कोऊ काली कोऊ कावरी कोऊ खांडी कोऊ मुंडी ऐसे बहुत गायनिका ग्रहण सो वहुअवग्रह है। अर सेनाकूं देख्या जाय तहां वहुत जातिका हस्ती घोडा ऊंट वलध मनुष्य इत्यादि अनेक जातिका अवग्रहादिक होय सो बहुविधका है। शीघ्रतातै पडता जो जलका प्रवाहादिक ताका ग्रहण सो क्षिप्रग्रहण है।

वहुरि जलमे मग्न जो हस्ती इत्यादिकका ग्रहण सो अनिःसृतग्रहण है। बहुरि वचनतै कह्याविना अभिप्रायतै जानि लेना सो अनुक्तग्रहण है। बहुरि बहुतकालमे जैसाका तैसा निश्चल-ग्रहण करना सो ध्रुवग्रहण है। बहुरि अल्पका तथा एकका ग्रहण सो अल्पग्रहण है। बहुरि

घोडा हस्ती ऊंट वलध मनुष्यादिकनिमे एकजातिहीका ग्रहण सो एकविधग्रहण है। वहुरि मंदगमन करता अश्वादिकनिका ग्रहण सो अक्षिप्रग्रहण है।

वहुरि प्रगट वाह्य नीकल्या वा प्रगट हुवा ताका ग्रहण सो निःसृतग्रहण है। वहुरि यो घट है ऐंसे कह्या हुवाका ग्रहण सो उक्तग्रहण है। वहुरि क्षणमात्रस्थिति रहता जो वीजली इत्यादिकका ग्रहण सो अध्रुवग्रहण है। ऐंसे अवग्रह वार प्रकार कह्या। तैसेही वारह वारह प्रकार ईहा अवाय धारणा होयहैं। ते सव मिली एकइंद्रियद्वारे अडतालीस भेद भए। तब पांचूं इंद्रिय छठा मन इन छहुनिसूं गुणें ॥ २८८ ॥ भेद अर्थावग्रहके जानने। जातैं नेत्रादिक इंद्रियनिका विषय है सो तो अर्थ है। ताके वहु अदिक विशेषण है। इन वहु इत्यादिक विशेषणकरि सहित सो अर्थ कहिए वस्तू ताके अवग्रह ईहा अवाय धारणा ऐसा संबंध जोडि दोयसै अठचासी भेद जानिए।

वहुरि व्यंजन कहिए अव्यक्त जो शद्वादिक ताका अवग्रहही होयहै। ईहादिक नही होयहै। ऐसा नियम है। जैसा नवा मांटीका सरावाविषै जलका कणा क्षेपिए तहां दोय तीन आदिकणांकरि सींच्या जेतैं आला नही तेतैं तो अव्यक्त है सो व्यंजन है। वहुरि सोही सरावा फेरि सींच्याहुवा मंदमंद आला होय तव व्यक्त है। तैसेहो श्रोत्रादिक इंद्रियनिका अवग्रहविषै ग्रहणयोग्य जे शद्वादि स्वरूप परणया पुद्‌गलस्कंध ते दोय तीन आदिसमयमे ग्रह्याहुवा जेतैं व्यक्त ग्रहण नही होयं तेतैं तो व्यंजनावग्रह है।

वहुरि फेरफेर तिनका ग्रहण होय तव व्यक्त होय तब अर्थावग्रह होय है। ऐसे व्यक्तग्रहणतै पहलै तो व्यंजनावग्रह कहिए। वहुरि व्यक्तग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिए। यातैं अव्यक्तग्रहणरूप जो व्यंजनावग्रह तातैं ईहादिक नहीं होयहै। ऐसे जानना।

वहुरि नेत्रइंद्रिय अर मनइंद्रिय दोऊनिकरि व्यंजनावग्रह नही होयहै। जातैं नेत्रइंद्रिय अर मनइंद्रिय दोऊ अप्राप्यकारी है। ये पदार्थतैं भिडिकरि स्पर्शनकरि नही जानेहैं दूरिहीतैं जानेहैं। जातै नेंत्र इंद्रिय है सो विनास्पर्शा सन्मुख आया अर निकट प्राप्तहुवा अर वाह्य सूर्य चंद्रमा दीपकादिककरि प्रगटकीया ऐसा पदार्थकूं जाणेहैं। अर मन है सोहू विनास्पर्श्या दूरि तिखता पदार्थकूं विचारमे लेहै। यात इन दोऊ इंद्रियनिके व्यंजनावग्रह नही होय है। ऐसे व्यंजनका अवग्रहही होय अर च्यार इंद्रियनिकरि होय। तातैं च्यार इंद्रियनिकरि वहुवहुविधादिक वारह भेदकरि गुणिए तव अडतालीस भेद होयहै। वहुरि पूर्वैं कहे अर्थावग्रहके दोयसै अठचासी भेद अर व्यंजनावग्रहके अडतालींस भेद। दोऊमिलिकरि तीनसे छत्तीस भेद मतिज्ञानके होय है।

वहुरि जलके वारै हस्तीकी सूंडीकूं देखी करि जलमे मग्न जो हस्ती ताका जानना सो अनिःसृत नामा मतिज्ञान है अथवा साध्यतै अविनाभावका नियमका निश्चयरुप जो साधन तातै साध्यका विज्ञान होना सो अनुमान है। अनुमानहू अनिःसृत नामा मतिज्ञानहीमे गर्भित हैं जातै साध्य जो हस्ती ताविना सूंडि नही होनेका नियमरुप है निश्चय जाका ऐसो साधन जो सूंडि तातै साध्य जो हस्ती ताका जानना सो अनुमानप्रमाण मतिज्ञानही है।

वहुरि कोऊकै स्त्रीका मुखका ग्रहणके कालहीमे अन्य वस्तुरूप जो चंद्रमा ताका ग्रहण होना जातै मुखका सदृशपणातै चंद्रमाका स्मरण होना जो चंद्रमासमान मुख है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। अथवा वनमे गोसदृश गवयकूं ग्रहणकरि गौका स्मरण होना जो गोसदृश गवय है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। तथा जैसे रसोईमें अग्निहोतेही धूम उपज्या देख्यां अर जलका ह्रदमे अग्निको अभाव है तातै धूमभो नही देख्या तैसे सर्वदेश सर्वकाल संबंधपणाकरि अग्निके अर धूमके अन्यथा अनुपपत्ति कहिए अग्नि विना धूमनही ही होय ऐसा अविनाभावसंबंधका ज्ञान सो तर्क नाम मतिज्ञान हैं ऐसे अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ये चार मतिज्ञानका भेद जो अनिःसृत ताके विषय हैं। केवलपरोक्ष हैं।

जातै अनिःसृतमतिज्ञानके भेद जे अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ए च्यार एकदेशहू विशदता जो निर्मलताके अभावतै परोक्षही है। वहुरि शेष जे स्पर्शनादि इंद्रिय अर मन इनका व्यापारतै उपजे जे वहु इत्यादिक है विषय जिनका ऐसे मतिज्ञान ते एकदेश निर्मलतातै सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिएहै। ते सर्व मतिज्ञान सम्यक् है। अर प्रमाण है।

अव श्रुतज्ञानका स्वरूप कहेहै। प्रथम तो मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमतै मतिज्ञान उपजेहै पछै मतिज्ञानकरि ग्रहणकिया पदार्थका अवलंवनकरिकै अर वामे श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतै अधिक अन्य अर्थ जानना सो श्रुतज्ञान है। जहां मतिज्ञानकी प्रवृत्तिको अभाव है तहां श्रुतज्ञानकी प्रवृत्तिकाहू अभाव है।

ऐसा नियम है। जव इहां श्रुतज्ञानका प्रकरणविषै श्रुतज्ञान दोय प्रकार है एक अक्षररूप दूजा अक्षररहित। तिनमे ककारादिक तो अक्षर है अर विभक्त्यंत पद है। अर परस्पर अपेक्षासहित पदनिका निरपेक्षसमुदाय सो वाक्य है। सो अक्षर पद वाक्य इनतै उपज्या अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो तो प्रधान है मुख्य है।

जातै देना ग्रहणकरना शास्त्रनिका अध्ययन इत्यादिक संपूर्ण व्यवहारका कारण तो अक्षरात्मक श्रुतज्ञानही हैं। अर अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान लिंग चिन्हतै उपज्या एकेंद्रियादिक पंचेंद्रियपर्यंत जीवनिविषै होयहै। तोहू व्यवहारके प्रवर्त्तावनेमे प्रधान नाही तातै अप्रधान है। जैसे जीव विद्यमान है ऐसा शब्दका ज्ञान तो कर्णइंद्रिकरि उपज्या मतिज्ञान है। इस मतिज्ञानतै जीवका अस्तित्वकूं श्रोता जो वाच्यवाचकका संबंध महतना गोड्यूर्वक जो ज्ञान उपजे है सो

अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अथवा कोऊ घट ये दोय अक्षर कह्या सो घट ये दोय अक्षरनिका कर्णद्वारा जानना सो मतिज्ञान है। अर घटशब्दकूं मतिज्ञानतैं जलका धारणकरनेवाला घटका आकार ज्ञानमे प्रगट होजाना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

बहुरि जैसे पवन देहके लाग्या तदि पवनका शीतस्पर्शका जानना सो तो स्पर्शनइंद्रियद्वारे अनक्षरात्मक मतिज्ञान है। अर पवनका शीतस्पर्शरूप ज्ञानतैं जो वातप्रकृतिवालाके यह अमनोज्ञ हैं विकारकारी है। तथा यो पवन फल फूल उपजावेगा तथा फलफूल बिगाडिदेगा। मेघ बरसावेगा तथा अभाव करेगा। ऐसा ज्ञान प्रगट होना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

इहां श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अनक्षरात्मक कह्या। तिनमे अनक्षरात्मकश्रुतज्ञानके भेदमे पर्याय समास है लक्षण जाका सो सर्व जघन्यकूं आदि लेय आपका उत्कृष्टपर्यंत असंख्यात लोकमात्र भेद है। असंख्यातवार षट्स्थानवृद्धिकरि वर्द्धित है। अर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एक घाटि एकठ्ठी प्रमाण जे अपुनरुक्त अक्षर त्यानै आश्रयकरि संख्यातभेदरूप है। सो एकघाटी एकठ्ठी प्रमाण अपुनरुक्त जे अक्षर त्यानै आश्रयकरि संख्यातभेदरूप हैं। सो एकघाटी एकठ्ठीके अक्षरनिका प्रमाण ऐसा वीस अक्षररूप जानना– १८४४६७४४०७३७०९५५-१६१५।

अब श्रुतज्ञानके वीस भेद जानना, पर्याय–१, पर्यायसमास–२, अक्षर–३, अक्षरसमास–४, पद–५, पदसमास–६, संघात–७, संघातसमास–८, प्रतिपत्तिक–९, प्रतिपत्तिक समास–१०, अनुयोग–११, अनुयोगसमास–१२, प्राभृतप्राभृतक–१३, प्राभृतप्राभृतकसमास–१४ प्राभृत–१५, प्राभृतसमास–१६, वस्तु–१७, वस्तुसमास–१८, पूर्व–१९, पूर्वसमास–२०, ऐसे श्रुतज्ञानका वीस भेद जानना।

तिनमे सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पन्न होनेके प्रथमसमयमे आवरणरहित सर्व जघन्यशक्तिरूप पर्यायनामा श्रुतज्ञान है। सो पर्यायज्ञान समस्तज्ञाननिमे जघन्यज्ञान है। याके फिर आवरण नही। याकेहू जो आवरण होय तो ज्ञानका अभाव होय ज्ञानका अभाव भया तब समस्त आत्माकाहू अभाव होय। तातैं पर्यायज्ञानमे अधिक घटि बनै ठिकाना नही तातैं पर्याय ज्ञान आवरणरहित है। सो सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके जन्मका प्रथमसमयमे सर्व जघन्यस्पर्शनेंद्रियजनित मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षर है दूजा नाम जाका ऐसा जघन्यपर्याय नामाश्रुतज्ञान होय है।

लब्धि नाम श्रुतज्ञानवरणका क्षयोपशमका है। अथवा अर्थ जो पदार्थ ताके ग्रहणकी शक्तिकूं लब्धि कहिए। लब्धिकरि जो अक्षर कहिए विनाशरहित सो लब्ध्यक्षर जानना सो इस पर्यायज्ञानके जाननेकी शक्तिरूप अविभागपरिच्छेदनिका प्रमाण इतना जानना। द्विरूपवर्ग-

धाराविषै दोयका वर्ग –४, अर दूसरा स्थान च्यारका वर्ग –१६, तीजा वर्गस्थान –२५६ चोथा वर्गस्थान पण्णाठ्ठी –६५५३६, पांचमा वर्गस्थान वादाला –४२९४९६७२९६, छठा वर्गस्थान एकठ्ठी –१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६, ऐसे परस्परगुणरूप अनंतानंतवर्गस्थान गए जीवराशिका प्रमाण उपजे है ।

बहुरि ताके उपरि अनंतानंतवर्गस्थान गएं पुद्गलराशिका प्रमाण उपजेहै । बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गए कालका समयकी राशि उपजे है । बहुरि ताके उपरी अनंतानंत वर्गस्थान गए आकाशका प्रदेशांकी श्रेणीका प्रमाण उपजे हैं । बहुरि ताके ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान गए धर्म अधर्म द्रव्यके अगुरुलघुनाम गुणका अविभाग प्रतिच्छेद उपजैहै । बहुरि ताके ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान गए जीवका अगुरुलघुगुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजेहै । बहुरि ताके उपरि अनंतानंतवर्गस्थान गए सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तका जघन्यज्ञान जो पर्यायज्ञान ताके अविभागप्रतिच्छेद उपजे हैं ।

यातै सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका सर्वतै जघन्यज्ञानके जाननेकी शक्तिरूप अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद है । तिनकै ऊपरि द्वितीयादिक भेद षड्गुणी वृद्धिकरि वर्द्धित है । अनंतभागवृद्धि–१, असंख्यातभागवृद्धि–२, संख्यातभागवृद्धि–३, संख्यातगुणवृद्धि–४, असंख्यातगुणवृद्धि–५, अनंतगुणवृद्धि–६. ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण पर्यायसमास ज्ञानके भेद होयहै । सो इन षट्स्थाननिकी वृद्धिका स्वरूप गोमटसार नाम ग्रंथतै जानना । अर या पर्यायसमासज्ञानतैं अनंतगुणा अर्थाक्षरनाम हैं । अक्षर तीन प्रकार है । लब्ध्यक्षर–१, निर्वृत्यक्षर–२, स्थापनाक्षर–३, तिनमैं पर्यायज्ञानावरणतै आदि लेय श्रुतकेवल ज्ञानावरणपर्यंत क्षयोपशमतै उपजी जो आत्माकै अर्थग्रहणकरनेकी शक्ति सो लब्धी कहिए भावेंद्रिय है । तिस रूप जो अक्षर सो लब्ध्यक्षर है । तातै लब्ध्यक्षरकै अक्षरज्ञानकी उत्पत्तिको हेतुपणा है ।

बहुरि कंठ ओष्ठ ताल्वादिक जें स्थान तिनका स्पर्शनादिक जे करणरूप प्रयत्न तिनकरि निर्वृत्तिनाम कहिए उत्पन्नभया है स्वरूप जाका ऐसा अकारादिक तो स्वर अर ककारादिक व्यंजनरूप मूलवर्ण अर मूलवर्णनिका संयोगादिकका संस्थान सो निर्वृत्यक्षर है । बहुरि पुस्तकनिमै अनेकदेशका अनुकूलपणाकरि लिख्या जो संस्थान सो स्थापनाक्षर ऐसे एक अक्षरका श्रवणतै उपज्या सो अर्थज्ञान सो एकाक्षरश्रुतज्ञान है । ऐसे जिनेंद्रभगवान् कह्या है ।

अब शास्त्रका विषयका प्रमाण कहेहै । जो वचनकरि कह्या नही जाय तैसा केवलज्ञानकै गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ तिनकै अनंतवै भाग तो तीर्थंकरका

द्वादशांगश्रुतविषै व्याख्यान कीजिएहै। सो श्रुतकेवलीकैंभी गोचर नही ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिविषै पाइएहैं। अर जो दिव्यध्वनि करिभी नही कह्याजाय तिस अर्थका जाननेकी शक्ति केवलज्ञानकी है। अर आगै अक्षररूप श्रुतज्ञानका कथनविषय प्रथमसूत्रमे कह्याहैं तहांतै जानना। विशेषकथन जाननेके इच्छुक श्रीगोमटसारतै जानना। तथा संक्षेप भगवतीआराधनामैंहू लिख्याहै तहांतै जानना।

वहुरि अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानका स्वरूप संक्षेप प्रथमअध्यायमें लिख्याहै तातै फेरि इहां नही लिख्या।

अव केवलज्ञानका स्वरूप कहेहै। जीवद्रव्यकी शक्तिकूं प्राप्त जे ज्ञानका अविभाग प्रतिछेद जेते है। तेते सर्व व्यक्तकूं प्राप्त भए इसही कारणतै समस्त मोहनीयकर्म अर वीर्यांतरायकर्मका समस्तक्षयतै अरोकशक्तिपणा युक्तिपणाकरि अर निश्चलपणाकरि तो यो ज्ञान संपूर्ण है। अर इंद्रियनिका सहायकी अपेक्षारहितपणातै केवल है। अर प्रतिपक्षी च्यारि घातिकर्मनिका क्षयतै क्रमरहित अंतरालरहितपणाकरि समस्तपदार्थनिमैं प्रापणातै प्रतिपक्षीरहित लोक अलोककूं जाणै सो केवलज्ञान है। ऐसे ज्ञानप्ररूपणा संक्षेपकरि कही।

अव संयमप्ररूपणा तेरमी वर्णन करेहै। जो पंचव्रतको धारण अर पंचसमितिको पालन अर कषायनिका निग्रह अर अशुभ मनवचन कायको त्याग अर पंच इंद्रियनिको विजय याकूं परमागमैं संयम कह्या है। वादर संज्वलनका उदय होतै नियमकरि संयमभाव होयहै। सो संयम सात प्रकार है। सामायिक–१, छेदोपस्थापन–२, परिहारविशुद्धि–३, सूक्ष्मसांपराय ४, यथाख्यात–५, संयमासंयम–६, असंयम–७, तिनमै वादरसंज्वलनका संयमतै अविरोधी देशघातिस्पर्द्धकका उदय होतै वादरसामायिक छेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि ए तीन संयम होयहै। तहां परिहारविशुद्धि संयम है सो प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थानमेहो होयहै। अर सामायिक छेदोपस्थापन दोय संयम प्रमत्तादि चार गुणस्थाननिमैं होयहै। वहुरि सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्तभया ऐसा संज्वलनलोभका उदय होतै सूक्ष्मसांपरायचरित्र होयहै। वहुरि समस्त मोहनीयका उपशमतै अथवा क्षयतै यथाख्यात चारित्र होयहै। सो ग्यारमा गुणस्थानमैं तो मोहका उपशमतैंही होय। अर वारमै तेरमै चोदमै मोहनीयका क्षयतैं होय। वहुरि प्रत्याख्यानावरण जो तृतीय कषायका उदयकरि संयतासंयत वा देशसंयत नाम पंचमगुणस्थानी होय है। अर द्वितीय कषाय जो अप्रत्याख्यानावरणकषायका उदयकरि असंयमभाव नियमकरि होय है। इहां ऐसे जानना। मै सर्व सावद्ययोगका त्यागी हूं ऐसा भावकरि भेदरहित समस्तपापका त्यागस्वरूप एकसंयमरूप होना सो सामायिक है। सो सर्वोत्कृष्ट है। असदृश है। संपूर्ण है। दुःखकरि वडा कष्टकरि प्राप्त होनेयोग्य है। ऐसा सामायिकसंयम होयहै।

वहुरि जो पूर्वे ग्रहणकीया सामायिकसंयमी होय फेरि संयमतै छूटिकरि सावद्य जो

पापसहित प्रवृत्तिमैं लीन होजाय फिर सारद्यव्यापारकूं प्रायश्चित्तादिककरि छेदि जो आत्माकूं पंच महाव्रतादि धर्मसंयममैं आपकूं स्थापन करे सो छेदोपस्थापन संयम होयहै। छेद जो प्रायश्चितरूप आचरणकरिकै फेरि आपकूं संयममे स्थापन करे सो छेदोपस्थापक होयहै। अथवा सामायिक संयममे तो समस्त सावद्ययोगका त्यागरूप भेदरहित संयम ग्रहणकीया था फेर छेद जो पंचमहाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति रूप भेदसहित जो संयम सो छेदोस्थापन है।

जो पंचसमिति त्रिगुप्तिरूप हुवा सर्वकाल प्राणीनिकी हिंसाको परिहार करै सो परिहारविशुद्धिसंयत होयहै। सो जन्मतै तीस वर्षको सर्वकाल सुखी रह्यो होय सो दीक्षाग्रहणकरिकै पृथक्त्ववर्षपर्यंत श्रीतीर्थंकरका चरणांकै निकट प्रत्याख्यान नाम नवमां पूर्व पढ्या होय सो परिहारविशुद्धिनाम ऋद्धिकूं अंगीकार करि तीन संध्याविना सर्वकालमे दोय कोश प्रमाण नित्य विहार करै। रात्रिविषै विहार नही करै। वर्षाकालका नियमरहित है। वर्षाकालहूमैं विहार करै है। परहरिण कहिए प्राणीनिकी हिंसातै रहित हैं। तातै परिहारविशुद्धिसंयम कहिए हे। याका जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त्त है। जातै परिहारविशुद्धिसंयमकूं छांडि अन्यगुणस्थानकूं प्राप्त होजाना संभवेहै। अर उत्कृष्ट अडतीस र्षवरहित कोटिपूर्वप्रमाण याका काल है। जातै तीस वर्षपर्यंत सदासुखरूपकालकूं व्यतीतकरि पाछै संयमी होय श्रीतीर्थंकरके चरणारविंदकै निकट पृथक्त्ववर्षपर्यंत है। अर प्रत्याख्यान नाम नवमो पूर्व पढीकरि पाछै परिहारविशुद्धसंयमी होय।

इहां पृथक्त्वनाम तीनकै ऊपरि अर नवकै माही च्यार पांच छह सात आठको आगममे संख्या कहीहै। परिहारविशुद्धसंयमी हैं सो छहकायके जीवनिकरि व्याप्तमे विहार करताहूं जैसे जलकरि कमल नहीं लिपै तैसे पापसमूहकरि नही लिपेहै।

वहुरि सूक्ष्मकृष्टिगत लोभकूं अनुभव करता उपशमश्रेणीका धारक उपशमक वा क्षपक सूक्ष्मसांपराय संयमी यथाख्यात चारित्रतै किंचित् न्यून होय है। यामैं सूक्ष्मसांपराय एकही गुणस्थान होय है। वहुरि समस्त मोहनीय कर्मकूं उपशम होतै वा क्षय होनेतै आत्मस्वभावमे अवस्थितिरूप यथाख्यातचारित्र है। सो उपशांतकषाकछद्मस्थ तथा क्षीणकषाय-छद्मस्थ सयोगकेवलीजिन अयोगकेवलीजिन ए यथाख्यात संयमी है। वहुरि जे सम्यग्दृष्टि पंच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यार शिक्षाव्रतनिकरि संयुक्त हुवा निर्जरा करेहैं ते देशसंयमी है।

तिनका दर्शनिक-१, व्रती-२, सामायि- ३, प्रोषधोपवास-४, सचित्तविरत-५, रात्रिभुक्तिविरत-६, ब्रह्मचारी-७, आरंभविरत-८, परिग्रहत्यागी-९, अनुमतिविरत-१०, उद्दिष्टाहारत्यागी-११, ए ग्यारह देशसंयमके भेद है।

जो पंच उदुंवर जो अभक्ष्यफल तिनकरि सहित सप्तव्यसनका त्याग करे अर

सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध जाकी बुद्धि होय सो दर्शनिकश्रावक होयहैं। इत्यादि विशेष ग्यारह स्थाननिका कथन श्रावकधर्मका व्याख्यानतैं जानना। इहां ग्रंथ वधनेके भयतैं विशेष नहीं लिख्याहैं।

बहुरि चौदह प्रकार जीवनिविषै अठाईस प्रकार इंद्रियनिके विषयनिविषै जाकै विरति नही सो असंयत है। सो मिथ्यात्व सासादन मिश्र अविरत च्यारि गुणस्थाननिमैं असंयमी है ऐसे संयममार्गणा नाम तेरमी प्ररूपणा समाप्त करी।

अव दर्शनप्ररूपणा चोदमी वर्णन करिए है। सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ तिनको आकार नही करिकै वा भेदका ग्रहण नही करिकै जो सामान्यग्रहण होय स्वरूपमात्रका प्रकाश होय सो दर्शन है ऐसे परमागममें कह्याहै। वाह्य पदार्थनिका जाति क्रिया गुणनिके प्रकारकरि विकल्प भेद नही करिकै अर पदार्थकी सत्तामात्र यामे भासनेमैं आवैहै। सो दर्शन च्यार प्रकार है।

चक्षुर्दर्शन–१, अचक्षुर्दर्शन–२, अवधिदर्शन–३, केवलदर्शन–४, तिनमैं जो नेत्रनिकरि सामान्य सत्तामात्र ग्रहण होय सो चक्षुर्दर्शन है। अन्य च्यारि इंद्रियनिकरि जो सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण सो अचक्षुर्दर्शन है। बहुरि परमाणुकूं आदिकरि महास्कंधपर्यंत मूर्तद्रव्य जितनें तितनें प्रत्यक्ष देखै सो अवधिदर्शन हैं। वहुरि समस्त सूर्यादिकनिका प्रकाश जाकूं उपमा नही ऐसा लोक अलोककूं तिमिररहित क्रमरहित इंद्रियरहित व्यवधानरहित प्रकाशे सो केवलदर्शन है। ऐसे दर्शनमार्गणा नाम चोदमी प्ररूपणा वर्णन करी।

अव लेश्या नाम पंद्रमी प्ररूपणा वर्णन करेहै। द्रव्यभावकरि लेश्या दोय प्रकार है। तिनमैं शरीरका वर्ण सो द्रव्यलेश्या है सो इहां प्रयोजनभूत नही। यातैं भावलेश्या वर्णन करै है।

भंडनका बिगाडनेका जाका स्वभाव होय युद्ध करनेका स्वभाव होय धर्मरहित होय दयारहित दुष्ट होय कोऊके किसीप्रकार वसी नही होय राजी नही होय। उ परिणाम कृष्णलेश्याका धारक जीवकै होय है। अव नीललेश्याका लक्षण कहे है।

जो मंद कहिए स्वच्छंदसंज्ञक होय अथवा क्रियाविषै मंद होय बुद्धिविहीन कहिए वर्त्तमानकार्यकूं जाननेमैं समर्थ नही होय वहुरि विज्ञान विवेकता रहित होय विषय जे पंचेंद्रियविषै तावा लोलुपी होय मानी अहंकारी होय मायाचारी कुटिल आचरणका धारक होय करनेयोग्य कार्यमे आलस्ययुक्त होय परको जाका अभिप्राय जाननेमे नही आवै जाकै निद्रा वहुत होय ठिगनेमे वाहुल्यता होय धनधान्यादिकनिमैं तीव्रवांच्छायुक्त होय ए लक्षण नीललेश्यावानका जानना। अव कपोतलेश्यावानका लक्षण कहे है।

जो परके अर्थि कोप करै। अर परकी बहुत निंदा करैं। अर परके बहुतप्रकार दूषण लगावै। अर शोक बहुत करै। अर जाकै भय बहुत होय। अर परकूं सहि न सकै। अर परका तिरस्कार करै अपनी बहुत प्रशंसा करै। अर परकूं आपसमान जाणि परकी प्रतीति नहीं करै। कोऊका विश्वास नही करै। अर कोऊ आपकी प्रशंसा स्तवन करै तिस उपरि बहोत राजी होय आनंदित होय। अपनी अर परकी हानिवृद्धि नही जानै। अर रणविषै अपना मरण वांछै। अर कोऊ आपका स्तवन करे बढाई करे ताकूं बहोत धन देवे करनेयोग्य नहीं करनेयोग्य विचार नहीं गिणे ए कपोतलेश्यावान जीवके लक्षण है। अब तेजोलेश्या जो पीतलेश्यावानका लक्षण कहेहै। जो करनेयोग्य नही करनेयोग्यकूं अर सेवनेयोग्य नहीसेवनेयोग्यकूं जाणे। समस्तमे समदर्शी होय। दयाविषै अर दानविषै जाके प्रीति होय। अर मनविषै अर वचनविषै अर कायविषै सरल होय। ए तेजोलेश्यावानका लक्षण कहे अब पद्मलेश्यावानकूं कहे है। जो त्यागी होय। अर भद्रपरिणामी होय। अर उत्तम काज करनेका जाका स्वभाव होय। शुभकार्य करनेमें उद्यमी होय। अर जे अनिष्ट उपद्रव आजाय तिनकूं क्लेशरहित सहै। अर साधुनिकी गुरुनिकी पूजामे जाके प्रीति होय सो पद्मलेश्याधारक होय है।

अब शुक्ललेश्यावानका लक्षण कहेहै। जो पक्षपात नहीकरे। अर आगामी विषयवांछारूप निदान नहीकरे। अर समस्त जननीसमान जानै। वैरी मित्रनिमै समानबुद्धि करै। इष्ट-अनिष्टमै रागद्वेषरहित होय अर पुत्र कलत्र मित्रनिमै स्नेहरहित होय ए शुक्ललेश्यावान जीवका लक्षण कह्या। ऐसे छह लेश्याके परिणाम कहे। इन लेश्याके परिणामनिके अनुकूलही च्यारप्रकार आयुका बंध होय है। सो गत्यादिकनिका वर्णन लिखे कथनी बहुत होजाय। याका सोलह अधिकार गोमटसारजीमे कह्याहै कथनी बहुत है सो विशेष जाननेका इच्छक तहांतै जानना। संसारपरिभ्रमणही लेश्याके आधीन है। ऐसे लेश्याकी प्ररूपणा पंद्रमी कही

अब सोलमी भव्यप्ररूपणा कहेहै। जीवनिके अनंतचतुष्टयरूप सिद्धपर्याय होनें योग्य है ते भव्य है। जे सिद्ध होनेयोग्य नही ते अभव्य है। अर केतेक भव्यअनंतचतुष्टयरूप होनेके योग्य है तोहू मोक्ष होनेयोग्य सामग्री अनंतानंतकालहूमे तिनकूं मिलैनही। जैसे सुवर्णपाषाणकूं मल दूरि होनेकी सामग्री नही मिलै तदि सुवर्ण पाषाणतै जुदा नही होय। तैसे केतेक भव्यहू अनंतानंत परिवर्त्तन करतेहू बाह्य मनुष्यगत्यादिक अनेक सामग्री मिलेविना संसारते नहीं छूटे है। अर अभव्य है ते अंधकपाषाणसमान है तिनमें सिद्ध होनेकी योग्यता नहा। ऐसे भव्यप्ररूपणा सोलमी संक्षेपतै कही।

अब सम्यक्त्व नामा सतरमी प्ररूपणा कहेहै। भगवान् सर्वज्ञ वीतरागकरी प्ररूपे

जे द्रव्यभेदकरि छह प्रकार अस्तिकायभेदकरि पंच प्रकार पदार्थभेदकरि नवप्रकार जीवादिक वस्तुनिको श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। सो दोय प्रकार है। एक तो आज्ञासम्यक्त्व दूजा अधिगमसम्यक्त्व है। सो प्रमाणादिकविना आप्तका वचनका आश्रयकरि किंचित् निर्णयरूप आज्ञाकरि जो श्रद्धान भया सो आज्ञासम्यक्त्व है। अर प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोगद्वारकरि विशेषनिर्णय है लक्षण जाका ऐसा अधिगमसम्यत्त्व होय है। सो सम्मक्त्व सरागय वीतरागपणात दोय प्रकार है। तहां सरागसम्यक्त्व हैं सो प्रशम संवेग अनुकंषा आस्तिक्यरूप हैं। तहां कषायनिकी उत्कटताकों अभाव सो प्रशमभाव है। अर संसार देह भोगनिते विरक्तता सो संवेग है। अर समस्त जीवनिके क्लेशका अभाव चहना सो अनुकंषा है।

वहुरि जीवादिक पदार्थ जैसे अपने स्वभावमे अवस्थित है तैसे परमागमतैं निश्चय करना सो आस्तिक्य हैं। तथा आप्तमे व्रतमे श्रुतमे तत्त्वमे आस्तिक्यरूप सरागसम्यक्त्व हैं। आत्मविशुद्धितामात्र वीतरागसम्यक्त्व है। प्रदेशनिका समूहरूप वहुप्रदेशी है यातैं पंच अस्तिकाय कहिए हैं।

वहुरि निरंतर अपने गुणपर्यायनिरूप गमनकरें प्रवर्तैं तातैं छह द्रव्य कहिए। वहुरि निश्चयकरनेयोग्य है यातैं नव पदार्थ कहिए है। अर वस्तुका स्वभाव हैं यातैं तत्व कहिए हैं। ऐसे पंचास्तिकाय छह द्रव्य नव पदार्थनिका श्रद्धानकूं सम्यक्त्व कहिए। सो इन तत्वनिका लक्षश इस ग्रंथनिमें वर्णन है यातैं विशेष इहां नहीं लिख्या है।

वहुरि ए सम्यक्त्व तीन प्रकार हैं। तहां जो दर्शनमोह तीन प्रकार अर च्यार प्रकार अनंतानुबंधी कषायका करणलब्धिका परिणामका सामर्थ्यते क्षयकरिके जो निर्मलश्रद्धान सो क्षायिकसम्यग्दर्शन है। सो प्रतिपक्षीकर्मका अभावते नित्य हैं अविनाशी है। आत्मगुणकी विशुद्धितातैं उपज्या तातैं प्रतिसमय गुणश्रेणीरूप निर्जराका कारण है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि वर्त्तमानभवमेही मुक्त होजाय। तथा देवलोक जायदेवतैं मनुष्य होय निर्वाण जाय तातैं तीन भव भए। अर कोऊ पूर्वे मिथ्यात्व अवस्थामे नरक आयुबंध किया होय अर पाछें क्षायिकसम्यक्त्व होजाय तो प्रथमनरक जाय नरकते निकशि मनुष्य होय निर्वाण जाय। ऐसे तीन भव ग्रहणकरे। अर कोऊ पहिले मनुष्य आयुका वा तिर्यंक् आयुका बंध कीया होय तो कर्मभूमिका मनुष्य तिर्यंच नही होय भोगभूमिमे ननुष्य तिर्यंच होय मरणकरि कल्पवासी देव होय फिर मनुष्य होय निर्वाण जाय। ऐसे च्यार भव ग्रहण करे। इस सिवाय संसारमें नही रहे।

वहुरि क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं सो खोटे उपदेशकरि तथा कुहेतुदृष्टांतकरि तथा इंद्रियनिके भयका उत्पन्न करनेवाला देव मनुष्य तिर्यंचनिका विकाररूप भेषकरि तथा ग्लानिरूप वस्तुतैं उत्पन्न भई ग्लानिकरि तथा वहुत कहीनेंकरि कहां त्रैलोक्यकरिकैंहू क्षायिकसम्यक्त्वी

नहीं चलायमान होयहै ।

वहुरि दर्शनमोहकी क्षयपणाका आरंभ तो कर्मभूमिका मनुष्य केवली श्रुतकेवलीकै निकटही करेहै । अर निष्ठापन सर्व च्यारिगतिमें होयहै । वहुरि दर्शनमोहनीयका भेद सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होते अर छह प्रकृतिनिका क्षयोपशम होते चल मलिन अगाढ इन तीन दोषनिकरि सहित जो तत्वनिका श्रद्धान सो क्षयोपशम सम्यक्त्व होयहै । इहां दर्शनमोहके उदयकूं वेदनेतै अनुभवनेतै याका दूजा नाम वेदकसम्यक्त्व है। वहुरि अनंतानुबंधी च्यार कषायनिका उदयाभाव लक्षण अप्रशस्त उपशमकरि तथा दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिनिका अप्रशस्त उपशमकरिके जैसे कर्दम जाका नीचैं बैठिगया अर उपरि निर्मल जलसमान जो पदार्थनिका श्रद्धान उपजना सो उपशमसम्यक्त्व हैं । उपशमसम्यक्त्व अंगीकार करनेयोग्य जीवकूं कहे है । च्यारूं गतिमे भव्य संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तक विशुद्ध ज्ञानोपयोगी जाग्रच्छुभलेश्यायुक्तकै सम्यक्त्वग्रहण होय है । ऐसे तीन सम्यक्त्व कहे । बहुरि मिथ्यात्व सासादन मिश्रका स्वरूप पूर्वै गुणस्थानप्ररूपणामे कह्या सोही जानना । ऐसे सम्यक्त्वप्ररूपणा सप्तदशमी वर्णनकरी ।

अत्र अठारमी संज्ञाप्ररूपणा वर्णन करे है। मनइंद्रियावरणका क्षयोपशमतै उपज्या जो ज्ञान सो संज्ञा है । सो संज्ञा जाकै विद्यमान होय सो संज्ञी कहिएहै जो शिक्षा क्रिया उपदेश आलापकूं ग्रहण करे सो जीव संज्ञी कहिएहै । हितमै प्रवृत्ति अहितका निषेधरूप जो शिक्षा ताहि ग्रहण करै ऐसा कोऊ मनुष्यादिक अर हस्तपादका चलावनेरूप जो क्रिया ताकूं ग्रहणकरे ऐसा कोऊ बलध इत्यादिक तथा कोरडा चामठी इत्यादिकरि मारन ताडन विधानादिक उपदेश इत्यादिककूं ग्रहण करनेवाला कोऊ गजादिक अर श्लोकादिक पाठ सो आलाप ताकूं ग्रहण करनेवाला कोंऊ चकोर राजसूवा इत्यादिक इस प्रकार मनका अवलंबनकरिकै शिक्षा क्रिया उपदेश आलापकूं ग्रहण करनेवाला जीवकूं संज्ञी कहिए अर शिक्षा क्रिया उपदेश आलापके ग्रहण करनेकूं असमर्थ ते जोव असंज्ञी कहिए ।

वहुरि जे जीव कार्य जो करनेयोग्य ताकूं अर अकार्य कहिए नहींकरनेयोग्यकूं पहलीही विचारे । अर तत्व अतत्वकी शिक्षा ग्रहण करे अर नामकरि बुलाया आवे सो जीव मनसहित है। अर इन लक्षणरहित अमनस्क असंज्ञी है ऐसे संज्ञिमार्गणा नाम अठारमी प्ररूपणा वर्णनकरी ।

अब आहारप्ररूपणा उगणीसमी वर्णन करेहै । औदारिक वैक्रियिक आहारक ए तीन प्रकार शरीर नाम कर्मकी प्रकृतिनिमे कोऊ एक शरीर नाम कर्मका उदय करिके तिस शरिरके अर वचनकै अर द्रव्यमनके योग्य जे नोकर्मवर्गणानिका ग्रहण सो आहार है । औदारिकादिक शरीरनिविषै जो उदय आया कोऊ एक शरीरवर्गणा अर भाषावर्गणा अर मनोवर्गणा इनि वर्गणानिको नियमते यथायोग्यकालविषै यथायोग्य 'आहरति' कहिए ग्रहण

करे सो परमागममे आहार कह्याहै ।

वहुरि विग्रहगतिकूं प्राप्तहुवा जीव अर प्रतरलोकपूरण समुद्रघातकूं प्राप्तहुवा सयोगकेवली जिन अर अयोगकेंवलीजिन अर सिद्धपरमेंष्ठी ए अनाहारक होयहै । विग्रहगतिनै प्राप्तहुवा जीव अर प्रतरलोकपूरणअवस्थामे सयोगीजिन अर अयोगीजिन नोकर्मवर्ग्गणा ग्रहणकरै तातै अनाहारक है । अन्य समस्तजीव समस्तसमयमे आहारवर्ग्गणा ग्रहण करेहीहैं तातै आहारकही है ।

अव समुद्घात केते प्रकार है सो कहेहै । वेदनासमुद्घात १, कषायसमुद्घात २, वैक्रियिकसमुद्घात ३, मारणांतिकसमुद्घात ४, तैजसमुद्घात ५, आहारकसमुद्घात ६, केवलसमुद्घात ७, ऐसे सप्तप्रकार समुद्घात कह्याहै । अव समुद्घातका लक्षण कहेहै । मूलशरीरकूं तो छांडैनही अर कार्मणशरीर तैजसशरीर सहित जीवका प्रदेशनिको शरीरतै वाहिर निर्गमन सो समुद्घात कहिएहै । आहारक अर मारणांतिक तो दोय समुद्रघात तो नियमकरि एकदिशाकोही प्राप्तहोयहै । जातै सूच्यंगुलका असंख्यातवा भागप्रमाण ऊंचा चौडा आत्माका प्रदेश निकसै सो जहांतांई जाना होय तहांतांई मूलशरीरतै लेई तारसा चल्याजाय है वहुरि अन्य पंचसमुद्रघात रहे ते दशोंदिशाकूं प्राप्तहोयहै । इनविषै यथायोग्य चौंडाई लंवाई ऊंचाई पाईएहैं । ऐसे आहारकप्ररूपणा उगणीसमी संक्षेपकरि वर्णनकरी ।

अव उपयोगप्ररूपणा वीसमी वर्णनकरेहै । वसत: गुणपर्यायौ यस्मिन् इति वस्तु । ऐसे वस्तुकी निरुक्ति कही । याका अर्थ ऐसा । जामै गुणपर्याय वसैं सो वस्तु कहिएहै । वस्तुका ग्रहणकै निमित्त जो ज्ञान प्रवृत्तै सो उपयोग है । पदार्थका ग्रहणकै निमित्तज्ञानका व्यापार वा ज्ञानका परिणमन वा क्रियाविशेष सो उपयोग कहिए । सो उपयोग अष्टप्रकारका ज्ञान है । एक साकारोपयोग । एक अनाकारोपयोग । जामै वस्तुका आकार प्रगट होजाय सो साकारोपयोग अष्टप्रकारको ज्ञान हैं ताके मति श्रुत अवधि मन:पर्यय केवल कुमति कुश्रुत कुअवधि नाम है ।

वहुरि वस्तुकी सत्तामात्र अनाकारग्रहणरूप चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन केवलदर्शन ए च्यार प्रकार दर्शनोपयोग है । इहां मति श्रुत अवधि मन:पर्यय ज्ञानकरिकै अपना अपना विषयविषै अंतर्मुहुर्त्तपर्यंत अर्थके ग्रहण करनेकै अर्थि व्यापारप्रवृत्ति करना सो ज्ञानोपयोग है । सो साकारोपयोग है । वहुरि चक्षुइंद्रियकरिकै वस्तुका सत्तामात्र सामान्यग्रहण सो चक्षुर्दर्शनोपयोग है ।

वहुरि चक्षुविना अन्य स्पर्शनादिक इंद्रियनितै सत्तामात्र सामान्य ग्रहण सो अचक्षुर्दर्शन

है तथा मनकै अचक्षुरिंद्रियपणा है यातै अचक्षुर्दर्शनकरि वा अवधिदर्शनकरि जीवादिकपदार्थनिमै विशेषकरिकै निर्विकल्प जो अंतर्मुहूर्त्तकाल सामान्य अर्थग्रहणमे व्यापार लक्षण उपयोग सो अनाकारोपयोग है। समस्तजीवनिका उपयोग लक्षण है। ऐहे उपयोगप्ररूपणा वीसमी समाप्तकरी।

सो अव्याप्ति अतिव्याप्ति असंभवी दोषनिकरि रहित है। जो लक्षण लक्ष्यविषैभी व्यापै अर अलक्ष्याविषैंभी व्यापै सो अतिव्याप्तिदोष है। जैसे जीवका लक्षण अमूर्त्तिक कहिए तो अमूर्तपना तो जीवविषैंभी है अर आकाशादि अजीवविषैंभी है। वहुरि जहां लक्ष्यका एकदेशविषै लक्षण पाईए सो अव्याप्तिदोष है। जैसे जीवका लक्षण रागादिक कहिए तो रागादिक संसारीविषै संभवैनही तातै लक्षण अव्याप्तिदोषसहित है।

वहुरि लक्ष्यतै विरोधी लक्षण होई सो असंभवी है। जैसे जीवका लक्षण जडत्व कहिए सो संभवे नही। ऐसे त्रिदोषरहित उपयोगही जीवका लक्षण है। ऐसे वींसमी उपयोगप्ररूपणा वर्णनकरी।

अव इनमे अष्ट सांतमर्गिणा है।। गाथा। उवसमसुहुमाहारे। वगुव्वियमिस्सणर अपज्यते। सासणसम्मे मिस्से। सांतरगा मग्गणा अट्ठ १, सत्तदिणा छम्मासा। वास पुद्धतं च वार सुमुहुता। पल्लासंखं तिण्हं। वरमवरं एगसमयो दु २, अर्थं ए सात मार्गणा अंतराल-सहित है। उपशमसम्यक्त्व १, सुक्ष्मसांपरायगुणस्थान २, आहारकशरीर ३, आहारकमिश्र-शरीर ४, वैक्रियिकमिश्र ५, लब्ध्यपर्याप्तमनुष्य ६, सासादनगुणस्थान ७, मिश्रगुणस्थान ८, इस समस्तत्रैलोक्यमे उपशमसम्यक्त्ववाला कोऊभी जीव नही पाइए तो सप्तदिनपर्यंतका उत्कृष्ट अंतर है। सूक्ष्यसांपरायगुगस्थानका उत्कृष्ट अंतराल छह महिनेका है। आहारक आहारकमिश्र पृथत्ववर्षका उत्कृष्ट अंतर है। इहां पृथक्त्व नाम तीन वर्ष उपरि नव वर्षके मांहि आगमपाठित जानना। अर वैक्रियिकमिश्रका उत्कृष्ट अंतर वारहमुहूर्त्त हैं बहुरि लब्ध्य-पर्याप्त मनुष्यका अर सासादनगुणस्थानका अर मिश्रगुणस्थानका इन तीनका उत्कृष्ट अंतराल पल्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण असंख्यातवर्षका अंतराल। पछैं कोऊ होयही ऐसा नियम है। अर जघन्य अंतर एकसमयका है ऐसा जानना। नानाजीवनिकी अपेक्षाकरिकै कोऊ गुणस्थान वा मार्गणास्थानकूं छांडिकरि अन्यगुणस्थान वा अन्य मार्गणास्थानकूं प्राप्तहोयकरिकैं फिर उसही गुणस्थान वा मार्गणास्थानने नही प्राप्त होय तितने काल अंतर कहिएहै। सो पूर्वैं कहे। अव औरहू विशेष जानना। प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित देशव्रतीना नानाजीवनिकी अपेक्षा चोदह दिनका अंतर हैं। अर उपशमसम्यक्त्वसहित महाव्रतीका अंतर नानाजीवकी अपेक्षा पंद्रह दिनका अंतर है। ऐसे सांतरमार्गणा वर्णनकीया।

अब मार्गणानिमे गुणस्थानका संक्षेप ऐसा जानना। नरकगतिमे आदिका च्यार गुणस्थान होय है। अपर्याप्तस्थानमे सासादन अर मिश्रविना दोय गुणस्थान है। वहुरि कर्मभूमिके तिर्यंचके पंचगुणस्थान होय है। अपर्याप्तमे मिथ्यात्व सासादन दोयही गुणस्थान होय है। भोगभूमिके तिर्यंचके आदिका च्यार गुणस्थान होयहै। अपर्याप्तअवस्थामे मिश्रविना तीन गुणस्थान होयहै। वहुरि एकेंद्रिय बेंद्रिय त्रींद्रेय चतुरिंरिंद्रिय असैनीपंचेंद्रिय इनके पर्याप्त-अवस्थामे एक मिथ्यात्वही गुणस्थान है। अपर्याप्तमे मिथ्यात्व सासादन दोयभी होय। पंचेंद्रियके चोदह गुणस्थान होयहै। पर्याप्तमें मिश्रविना तीनगुणस्थानही होय। पृथ्वीकाय अप्काय तेजकाय वायुकाय वनस्पतिकाय पर्याप्तमे मिथ्यात्वही एक गुणस्थान होयहै। अर अपर्याप्त-अवस्थामे पृथ्वी अप् वनस्पतिकाय सासादनभी होय। अर तेजस्काय वायुकायक जीवकै अपर्याप्तमे मिथ्यात्वही होयहै। योगनिमें सत्यअनुभयवचनमे तेरह गुणस्थान है अर असत्यउभय वारह आदिके गुणस्थान है। असत्यअनुभयमनोयोगमे आदिके तेरह अर असत्यअनुभयमनोगमेवचन-योगमेआदिके बारह गुणस्थान है। औदारिककाययोगमे आदिके तेरह गुणस्थान है औदारिकमिश्र-काययोगमे मिथ्यात्व सासादन अविरत अर संयोगी ए च्यार गुणस्थान है। वैक्रियिककाययोगमे आदिका च्यार गुणस्थान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोयमे मिश्रविना आदिका तीन गुणस्थान है। आहारक आहारकमिश्रविषै एक प्रमत्तसंयतनाम छठा गुणस्थान है। कार्मणकाययोगमे मिथ्यात्व सासादन अविरत अर समुद्रघाती अपेक्षा सयोगी गुणस्थानहू हैं। अयोगी योगरहित है।

वहुरि तीन वेदनाविषै आदिके नव गुणस्थानही है। ऊपरि वेद नहीहै। वहुरि अनंतानुबंधीकषायमें मिथ्यात्व सासादन दोयही गुणस्थान है। अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषायनिमे आदिकें च्यार गुणस्थान है। प्रत्याख्यानावरणविषै आदिके पांच गुणस्थान है। संज्वलन तीन कषाय ए आदिके नवगुगस्थान पर्यंत है। संज्वलनलोभ दशमगुणस्थानपर्यंत हैं। अर हास्यादिक छह नोकषाय अष्टम गुणस्थानपर्यंत है।

तीन वेद नवमा गुणस्थानपर्यंत है। संज्वलनलोभ दशमगुणस्थानपर्यंत हैं।

वहुरि ज्ञानविषै मतज्ञान अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानविषै अविरतादि वारमा गुणस्थान-पर्यंत नवगुणस्थान होयहै। मनःपर्ययज्ञानविषै छठा प्रमत्तगुणस्थानकूं आदि लेय बारमा गुणस्थानतांई सप्त है। केवलज्ञानविषै सयोगी अयोगी केवलीजिन दोय है। सिद्ध हैही। कुमति कुश्रुत विभंगविषै मिथ्यात्वादि दोयही गुणस्थान है। मिश्रगुणस्थानमे मिश्रज्ञान है।

अब संयमविषै समायिक छेदोपस्थापन दोय संयममे प्रमत्तादिक च्यार गुणस्थान है। परिहारविशुद्धिसंयमविषै छठा सातमा दोयही गुणस्थान होयहै। सूक्ष्मसांपरायचारित्रविषै एक सूक्ष्मसांपरायगुण्थान होयहै। यथाख्यात संयमविषै उपशांतमोहादि च्यार गुणस्थान होयहै। संयमासंयमविषै एक देशसंयमगुणस्थानही होयहै। असंयमविषै मिथ्यात्वादि च्यार गुणस्थान होयहै। दर्षनमार्गणामे चक्षु अचक्षुर्दर्शनमें आदिका वारह गुणस्थान होयहैं। अवधिदर्शनविषै

अविरतादि नव गुणस्थान है। केवलदर्शमे सयोगी अयोगी दोय गुणस्थान होयहै। लेश्यामार्गणाविषै कृष्ण नील कापोत लेश्याविषै आदिका च्यारही गुणस्थान होयहै। पीत पद्मलेश्याविषै मिथ्यात्वादि सप्त गुणस्थान है। शुक्ललेश्याविषै मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान है। अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है। भव्यमार्गणामे भव्यकै चोदह गुणस्थान है। अभव्यकै एक मिथ्यात्व गुणस्थानही हैं। सम्यक्त्व मार्गणाविषै अविरतादि आठ गुणस्थान हैं। क्षयोपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादच्यािर गुणस्थान है। क्षायिकसम्यक्त्वविषैं अविरतादि अयोगीपर्यंत सिद्धहू जानने। संज्ञीमार्गणा विषै संज्ञीकै मिथ्यात्वादि बारह गुणस्थान है असंज्ञीकें पर्याप्तमे एक मिथ्यात्व अपर्याप्तमें सासादनहू होय है। आहारकमार्गणमे आहारक मिथ्यात्वमे मिथ्यात्वादि तेरह अनाहारककै मिथ्यात्व सासादन अविरत सयोगी अयोगी च पंचगुणस्थान होय है। ऐसे श्रीगोमटसारसिद्धातकी आज्ञाप्रमाण वीस प्ररूपणाका वर्वन अतिसंक्षेपतै कीया। इहा विशेष जाननेका इच्छक होय सो मूलग्रंथ गोमटसारजीकी टीकातै जानहू इहां प्रयोजन जानी मंदज्ञानीनिकै गुणस्थानादि प्ररूपणाका ज्ञान होनेके अर्थिहमारी बुद्धिप्रमाण लिख्या है। वहुतज्ञानी होय सो इहां प्रमादके वसतै वा अज्ञानके वसतै जो चूकि लिख्याहोय सो शुद्ध करीदीज्यो इहां प्रसंग जायगांजायगां गुणस्थानादिकनिका आवै यातै मंदज्ञानी जानिले तो कथन समझिमे नीका आजाय यह प्रयोजन जाणि लिख्याहै। अब बंधपदार्थ कहनेकूँ सूत्र कहेहैं।

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥

अर्थप्रकाशिका—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ए पंच बंधके हेतु कहिए कारण है। तहां अतत्वश्रद्धानरूप जो मिथ्यादर्शन सो दोयप्रकार है। एक तो मिथ्यात्वकर्मके उदयते परके उपदेशविनाही तत्वार्थका श्रद्धानका अभावरूप आतमाका परिणाम सो नैसर्गिकमिथ्यात्व है। सो एकेंद्रियादिक सर्व संसारीजीवनिके अनादितै प्रवर्तेहै। याहीकूं अग्रहीतमिथ्यात्व कहिएहै।

बहुरि जो मिथ्यात्व खोटे मिथ्यादृष्टि अन्यपुरुषनिके उपदेशतै प्रवर्त्तै तथा मिथ्याशास्त्रका श्रवणतै मिथ्यागुरूके उपदेशतै प्रवर्तै सो परका उपदेश है निमित्त जाकूं ऐसा गृहीतमिथ्यात्व कहिएहै सो बडा कठिन है।

इहां मिध्यत्व कह्या सो एकांत विपरीत संशय विनय अज्ञान भेदकरि पंचप्रकार है। तिनमे जो अनेकधर्मरूप जो वस्तु तिस वस्तुका एकधर्मग्रहणकरि सर्वथा एकांतरूपही निश्चकरे सो एकांतमिथ्यादृष्टि है। ताका विशेष ऐसा। जो वस्तुकूं अस्तिरूपही कहे। वा सर्वथा नास्तिरूपही कहे। सर्वथा अनेकरुपही कहे। सर्वथा नित्यही कहे गुणपर्यायनिते सर्वथा भिन्नही कहे। सर्वथा अभिन्नही कहे। नयकी अपेक्षाविना सर्वथा वस्तुका स्वरूप कहना सो एकांतमिथ्यात्व है। तिनमें कालवादी तो सर्वथा कालहीकूं कर्त्ता माने है। जो कालही समस्तकूं उपजावेहैं। कालही समस्तका नाश करेहैं। कालही निद्राकूं प्राप्त करेहै। कालही जागृत करे

कालही फलपुष्पादिकरि युत करै कालही रहीत करै। कालही संयोग वियोग करेहै। कालही समस्तकूं जीर्ण करेहै। तातै समस्तजगतकी रचनाका कारण कालही है। ऐसे कालहीका सर्वथा एकांत करेहै।

कितने ईश्वरका एकांत करै है। आत्मा तो अज्ञानी है अनाथ है। आत्माके सुख दुःख जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, ज्ञानीपणा, अज्ञानीपणा, पापीपणा, धर्म्मीपणा, स्वर्गगमन नरकगमन ईश्वर करे है। तथा संसारका कर्त्ताभीं ईश्वर हैं हरताहू ईश्वरहा है। ईश्वरतैंही समस्तकी उत्पत्ति प्रलय है। ऐसे ईश्वरकी कल्पनाकरि सर्वथा एकांत करै है। बहुरि कितनें आत्मवादी समस्तकूं एक आत्माही कहे है। जो आत्मा जगतमे एकही है सो सर्वव्यापी है महान् है पुरूष है देव है सर्वांगनिगूढ है सचेतन है निर्गुण हैं उत्कृष्ट हे इत्यादि स्वरूप आत्माकूं सर्वथा प्ररूपहैं।

बहुरि कोऊ भावीकूंही प्रधानकरि कहेहै। जो जाकै जैसा होना है सो नियमतैं होयगा तिसकूं इंद्रहू अन्यप्रकार करनेकूं समर्थ नही। ऐंसे भवितव्यताकाही एकांत करेहै। बहुरि कोऊ स्वभावहीका एकांत करेहै। जो कंटकाने तीक्ष्ण कोन करेहै। मयूरनै चित्रविचित्र कोन करेहै। कमलनिको सुगंध कोन करेहै। मृग शूकर सिंह व्याघ्र सर्प्प पक्षी इत्यादिकनिके भिन्नभिन्न रूप कोन करे इनको स्वभावही कारण कहहैं। ऐसे स्वभावका सर्वथा एकांत करेहै।

बहुरि केई सर्वथा पुरूषार्थतेही कार्यकी सिद्धि कहेहै। केई पुरूषार्थरहित दैववलतेही कार्यकी सिद्धि कहेहै। बहुरि केई संयोगतेही कार्यकी सिद्धि कहेहै। संयोगविना कोऊ कार्य सिद्ध नही होईसकेहै ऐसे अपेक्षारहित जितनें नयवादी है ते सर्वथापणात एकांतमिथ्यात्वरूप हे

बहुरि अहिंसादिक समीचीन धर्मका फल स्वर्गादिकका सुख है। ताकूं हिंसारूप यज्ञादिकका फल मानना सो विपरीत मिथ्यात्व है। अर जो हिंसाही धर्मका कारण है तो मत्स्यनिके मारनेवाले धीवरादिक अर पक्षीनिके मारनेवाले शाकुनिक अर सूकरादिकनिके मारनेवाले सौकरादिकनिके धर्मकी प्राप्ती होनेका प्रसंग आवै। तातैं हिंसातैं धर्म कदाचित् नहीं होय है। अर जो या कहोहो जो यज्ञविषैं पशुका मारण पापकै अर्थि नहीं है अर अन्यमें पापकै अर्थिही है ऐसा कहनाभी योग्य नहीं दोऊ स्थानमें मारण है सो तो दुःखका कारण समानही हैं। यज्ञवाहिर जैसा मरणमें दुःख होय तैसाही यज्ञमें होय। अर जो या कहो जो स्वयंभू स्वयमेव यज्ञकै अर्थिही पशु रचै है। तातैं यज्ञमें मारनेमें पाप नहीं है तो पशुनिऊपरि चढना क्रयविक्रयादि करना ये अयोग्य हैं जो भगवान् तो यज्ञवास्तै रचे अर फिर चढना सो भगवानकी आज्ञातैं पराङ्मुख भया। बहुरि जो ईश्वर अपने सेवकादिकनितैं यज्ञमें पशु मराय स्वर्ग देहै तो विनायज्ञही स्वर्ग क्यों नहीं पहुचावै। अर जो कहोगें करनीविना स्वर्ग कैसे देताकूं कहिए जो करत्ती करावनेवाला भी तो ईश्वरही है ऐसी खोटी करनी कराय स्वर्ग

देहैं तो परोपकारादि भली करनी कराय स्वर्ग क्यौं नहीं देवै अर जो कहोगे जैसे मंत्रका सामर्थ्यतें दीया विष है सो मरणका कारण नहीं होय है। तैसें वेदोक्तमंत्रनिकें संस्कार-पूर्वक पशुका मरण पापका कारण नहीं है। सो कहना भी नहीं बनै है। जो रज्जु इत्यादिक-विनाही मंत्रका प्रभावतें यज्ञमें स्वयमेव पशु आय पडै तदि तो मंत्रका प्रभावही मानिए सो है नहीं। बहुरि मंत्रतें हूं मारिए तोहू जैसे शस्त्रादिककरि प्राणीनिकूं मारनेवालेके अशुभ अभिप्रायतें पापका बंध होय है तैसैंही मंत्रकरि मारनेवालेकैहू पापकाही बंध होय है। बहुरि स्त्रीनिमें लंपटी क्षूधा तृषादिकसहितकूं तथा कामी क्रोधीनिकूं परमात्मा परमेश्वर मानना। संसारमें उत्पन्न जीव हैं तिनका उपकार अपकार प्रलय करनेवालेनिकूं कृतकृत्य मानना तथा ग्रंथसहितकूं निर्ग्रंथ मानना। केवलीकूं कवलाहारी मानना। पंचभर्त्तारीकूं सती मानना। गृहस्थके केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना। इत्यादिक विपरीत मिथ्यात्वकी जाती हैं।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकूं मोक्षमार्ग कह्या सो एही मोक्षमार्ग है कि अन्य समस्तमतनिमें भिन्नभिन्न मार्ग प्ररूपै हैं सो परस्पर वचनमें विरुद्धता कोऊ प्रत्यक्ष जानने-वाला सर्वज्ञ है नहीं शास्त्र परस्पर मिलैंनहीं तातैं कोऊ निश्चयतें निर्णय नहीं होय सके है। इत्यादिक अभिप्राय सो संशयमिथ्यात्व है।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपः संयमध्यानादिकनिकी अपेक्षारहित गुरुनिके पाद-पूजनादिक विनयकरिही मुक्ति मानै सो विनयमिथ्यात्व है। तथा सर्व देवनिको सर्वशास्त्र-निको सर्वमतनिकों समस्तभेषीनिकूं समान मानि समस्तका विनय करै अर विनयमात्रतैंही अपना कल्याण होना मानैं सो विनयमिथ्यात्व है। बहुरि जो हित अहित परीक्षारहित परिणाम सो अज्ञानमिथ्यात्व है।

जाकै ऐसा विचार होइ जो स्वर्ग तथा मुक्ति नरक कोन देख्या स्वर्गका समाचार कोनकै आया पापपुण्य कहां लगै अर पापपुण्य कहां वस्तु है परलोककों कोन जानैं कोनकै स्वर्गतें समाचार आया स्वर्ग नरक समस्त कहनेमात्र हैं। इहांही स्वर्ग नरक हैं सुक भोगै सो स्वर्ग है दुःख भोगै सो नरक है अर हिंसाकूं पाप कहै हैं अर दयाकूं धर्म कहै हैं सो कहनेमात्र हैं कोऊ ठिकाना हिंसारहित नहीं ही है। सबमें हिंसा है कहां पांव धरनेकूं ठिकाना नहीं हैं। अर ए भक्ष्य हैं ए अभक्ष्य है ऐसा विचार भी निरर्थक है एकेंद्रिय वृक्ष अन्नादिक भक्षण करनेमें अर मांसभक्षण करनेमें तफावत नहीं अर दोऊनिमैंही जीवहिंसा समान है अर जीवनिकै जीवनिकाही आहार भगवान् बताया है अर समस्तवस्तु खावनें-भोगनेंकूंही है इत्यादिक अभिप्रायरूप अज्ञानमिथ्यात्व है। ऐसें तो मिथ्यात्वको बंधका कारण कह्या।

बहुरि छकायके जीवनिका विराधनाका त्याग नहीं करना अर पांच इंद्रिय अर छठा मन इनिकूं विषयनितैं नहीं रोकना सो बारहप्रकार अविरत है सो कर्मबंधका कारण

है। बहुरि भावशुद्धि कायशुद्धि विनयशुद्धि ईर्यापथशुद्धि भैक्षशुद्धि शयनासनशुद्धि प्रतिष्ठापनशुद्धि वाक्यशुध्दि ऐसै अष्टप्रकार शुद्धि अर दशलक्षण धर्म इनविषैं उत्साहरहित परिणाम होइ मंदोद्यमी होई सो प्रमादहै। अथवा स्त्रीकथा राजकथा भोजनकथा देशकथा ऐसें च्यार विकथा अर क्रोध मान माया लोभ ए च्यार कषाय अर पंच इंद्रिय अर निद्रा अर स्नेह ऐसें प्रमादके पनरह भेद हैं।

इनमें तें कोऊ प्रमादमें ऐंसा लीन होइ जो आपकी अर परकी हेयकी उपादेयकी समालि भूलि असावधान हो जाय सो प्रमाद है। सो ए प्रमाद कर्मबंधके कारण हैं। अर पचीस कषाय अर मन वचन कायके पंद्रहू योग ए समस्तहू अर भिन्नभिन्नहू कर्मबंध होनेकूं कारण हैं। तिनमें मिथ्यात्वगुणस्थानमे तो मिथ्यादर्शनादि पंच बंधके कारण है। अर सासादन मिश्र अविरत इन तीन गुणस्थाननिमे मिथ्यात्वविना अविरत प्रमाद कषाय योग ए च्यार बंधकें कारण है। अर देशव्रत है सो संयतासंयत है इसमें विरतपणाहू है अर अविरतपणाहू है। तातै च्यारोंही बंधका कारण है। बहुरि प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें प्रमाद कषाय योग ए तीनही बंधके कारण है। बहुरि अप्रमत्तादि च्यार गुणस्थाननिमें कषाय अर योग दोयही बंधके कारण है। बहुरि उपशांतकषाय क्षीणकषाय संयोगकेवली इन तीन गुणस्थाननिमें केवल योग करिही कर्मका बंध होय है। बहुरि अयोगकेवली बंधरहित है।

ऐमे संसार अवस्थामें आत्मा अनादिकालका कर्मरूप पुद्गलस्कंधनितें मिलरह्या तातै संसारअवस्थामें कथंचित् मूर्तिक कहिए है। तातै नवीन कर्मका बंध होता जाय है। पुरातन निर्जरता जाय है। जैसे सुवर्ण अर पाषाणकै अनादिका संबंध है तैसे जीवपुद्गलकै अनादिहीका संबंध है। जब रत्नत्रयकी परिपूर्णता होइ तदि भिन्नभिन्न होय है। ऐसे संबंधके कारण कहे। अब बंधके स्वरूपकूं कहै है।

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यानपुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

अर्थप्रकाशिका—जीव है सो कषायसहितपणातै कर्मयोग्य पुद्गलनिने ग्रहण करेहै सो बंध है। समस्तलोक ऊपरि नीचे सर्वतरफतै पुद्गलनिकरि गाढा गाढा भर्‍या है। ते पुद्गल अनेकप्रकार परिणमनकी योग्यताकूं प्राप्त होरहेहै। तिनमे अनंतानंत पुद्गलपरमाणु कर्म होनेयोग्यहू समस्तलोकमे भरेहै। जहां आत्माके प्रदेश है तहांह तिष्ठेहै। जब यह आत्मायोगद्वारे सकंप होय कषायसहित होयहै तदि समस्त तरफतै समस्त आत्माके प्रदेशनिकरि कर्मयोग्य पुद्गलनिका ग्रहण होना सो बंध है। तैसे योग कषायनिकरि कर्मयोग्य पुद्गलनिका ग्रहण होय है।

बहुरि जैसे उदरविषैं जठराग्निका आशयके अनुसार आहारका खल रस भागदिरूप परिणमन होयहै। तैसे तीव्र मंद मध्य कषायके आशयके अनुकूल कर्मनिका स्थितिबंध अर

अनुभागबंध होयहै। जातै मिथ्यादर्शनादिकका आश्रयतै आर्द्र जो आत्मा ताकै सर्वतफतै योगनिके विशेषतै सूक्ष्म एकक्षेत्रमे अवगाहकरि तिष्टते अनंतप्रदेशरूप कर्म होनेकेयोग्य ऐसे पुद्गलनिका आत्मातै एकक्षेत्रावगाहरूपकरि परस्पर मिलना सो बंध हैं ऐसे कहिए है। जैसे भाजनविशेषमे क्षेपे जे नानारस बीज फल फूल तिनका मदिराभाव परिणाम होयहै। तैसेही आत्माविषै तिष्ठते पुद्गलनिका योग कषायके वशतै कर्मभावकरि परिणमन जानना योग्य हैं। ऐसे कार्मणवर्गणानिका आत्मातै विभागरहित एकत्वपनाकरियुक्त होना सो बंध है। ज्ञान दर्शन अव्याबाध श्रद्धान अवगाहन सूक्ष्मता अगुरूलघुत्व अनंतवीर्य लक्षण पुरूषका सामर्थ्यकूं बांधेहैं रोकेहै तातै बंध कहिएहै। जैसे कोठचारमे धानका निकलनाभी होय अर प्रवेशकरनाभी होयहै अर संचयभी बन्यारहेहै तैसे सिद्धराशिकै अनंतवै भाग अर अभव्यराशितै अनंतगुणा ऐसा मध्य अनंतप्रमाण कर्मपरमाणु समयसमय नवीन बंधेहै अर इतनाही निर्जरैहै ताहि समयप्रबद्धकहिए हैं। अर ड्योढगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सासतो सत्तामे कर्म मोजूद रहेहै सो याका हिसाब विस्तारसहित गोमटसारजीमे है तहांतै जानना इहां लिख्या कथनी विशेष है ग्रंथ वधेहै। अव बंधका प्रकार कहेहै।

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अर्थप्रकाशिका:—प्रकृतिबंध। स्थितिबंध। अनुभागबंध। प्रदेशबंध। ऐसे बंध च्यार प्रकार है। तहां छह प्रकृति तो स्वभावकूं कहिएहै। जैसे निबका स्वभाव कटुक है सांटाका स्वभाव मीठा है। तैसे समस्त कर्मपुद्गलप्रकृति जो अपना स्वभाव तिसकरि सहित हैं। ज्ञानावरणकी प्रकृति ज्ञानकूं आच्छादन करनेकी है। जैसे देवताका मुखऊपरि वस्त्र होय तदि देवताकी प्रतिमा है। ऐसा सामान्य तो जाण्याजाय परंतु विशेष रंग रूप मुख हस्त पाद नेत्र नासिका नही जानी जाय ऐसा ज्ञानावरणकर्म हैं सो समस्त वस्तूकूं जानने नही देवेहै।

वहुरि दर्शनावरणकी प्रकृति है सो दर्शनकूं आच्छादन करेहै। जैसे द्वारपाल मांही प्रवेशही नही करनेदेयतै सामान्यहू नही जान्याजाय है। वहुरि वेदनीयकी कहां प्रकृति है सुखदुःखकूं उत्पन्न करनेकी है। जैसे मधुकरि लिप्त खड्गकी धारा है। मोहनीय कर्मकी कहां प्रकृति है मद्य धत्तूर मदन कोद्रवकीज्यो मोहोत्पादनता अचेत करनता है। आयुकी कहां प्रकृति है जैसे बेडीमे खोडेमे पग जाका ऐसा पुरूष नही निकलिसकै तैसे भवकूं धारणकरि आयु पूर्ण भएविना भवमेतै नही निकसनेदेहै।

वहुरि नामकर्मकी कहां प्रकृति है चित्रकारी जो नरनारकादि नानाप्रकार शरीरादि करनेरूप है। वहुरि गोत्रकर्मकी कहां प्रकृति है कुंभकारकीज्यो उच्च नीचपणाने प्राप्त करना है अंतरायकी कहां प्रकृति है भंडारीकीज्यो देनेलेनेमे विघ्न करनाहैं। ऐसे स्वभावकूं प्रकृति

कहिए है। वहुरि जे बंधकू प्राप्त भई प्रकृति ते जितने कालतांई अपने स्वभावकूं नाही छांडे सो स्थिति है। जैसे ज्ञानावरणका स्वभाव ज्ञान प्रगट नही होनेदेनेरूप है सो तिस रूप स्वभावकूं जवतांई नही छांडे सो स्थितिवंध है।

वहुरि जेसें छेली गौ भैंसी इनके दुग्धमे तीव्र मंदादिभावकरिकै रसविशेंष है तैंसे कर्मप्रकृतिमे तीव्र मंद रस देनेकीं शक्ति सो अनुभव है याहीकूं अनुभागबंध कहेहै। वहुरि कर्मभावरूप परिणए पुद्‌गलस्कंध तिनका परमाणुके प्रमाणकरि निश्चय सो प्रदेश है। इनि पुद्‌गलनिके प्रदेशनिका जीवके प्रदेशनिकरि मिलना सो प्रदेशबंध है। ऐसे बंधके च्यार भेद है

इहां सूत्रमे विधिशब्द प्रकारवाची है तातै ए समस्त प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश ए बंधके प्रकार है। तहां प्रकृतिबंध अर प्रदेशबंध ये दोय तो योगनिके निमित्ततै होयहै। अर स्थितिबंध अर अनुभागबंध ए दोऊ कषायनिके निमित्ततै होयहै। इन योगकषायनिकी हीनअधिकतातै बंधकैहू विचित्रपना है। इहां कोऊ आशंका करे। पुद्‌गल तो जड है अचेतन हैं इनकै प्रकृत्यादिरूप अनेंकप्रकार परिणमन अर रस देनेका सामर्थ्य कैंसे संभवे। ताकूं कहिएहै। जो अचेतन जड पुद्‌गलनिके तो वडा सामर्थ्य है। जैसे उदरमे प्राप्तभया भोजनरूप पुद्‌गल सो एकक्षणमात्रमे रूधिर मांस हाड चाम वीर्य मल मूत्र केश नख वात पित्त कफादिक नाना प्रकार परिणमनकूं प्राप्त होयहै। अर क्रमतै अपना प्रभाव प्रगटकरि भोगावेहै : वेदनाकूं दूरि करेहैं तथा कालांतरायतांई वेदनाकूं वधावेहै। तथा औषधादि खायाहुवा वहुतवर्षपर्यंत अपना भला बुरा रस देहे अथवा औषधभक्षण कीयाहुवा बहुतकाल रस नहींदेहै। अर कलांतरमे अपना उदयकै योग्य आहार पान तथा क्षेत्र कालादिकनिका निमित्त पाय उदय आवेहै। तैंसे कर्मपुद्‌गलनिकाभी सामर्थ्य जानना।

बहुरि श्वानविषादिक तथा पारो हींगलू मृगांक तामेश्वरादिक बाह्यनिमित्त मिलें उदयकूं प्राप्त होय है। निमित्त नहीं मिलें तेतै शरीरमे मिल्या रहै अपना रस नहीं देवें तैसे कर्मपुद्‌गलनिकाहू स्वभाव जानना। बाह्यनिमित्त मिले रस देवै हैं। तथा मणि मंत्र औषधादिक तथा वचनपुद्‌गलादिक ए नानाप्रकार सामर्थ्यरूप प्रगट देखिए हैं। तैंसे कर्मपुद्‌गलनिका सामर्थ्य जानहु। अव प्रकृतिबंध मूल उत्तरके भेदते दोयप्रकार है। तिनमें मूलप्रकृति कहनेकूं सूत्र कहै हैं।

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥

अर्थप्रकाशिका—आद्य कहिए प्रथम जो प्रकृतिबंध ताके ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र अंतराय ए अष्ट भेद है। कर्मप्रकृतिनिका अष्ट प्रकार स्वभाव है। प्रकृति कहो शील कहो वा स्वभाव कहो। जो कारणांतरकी अपेक्षा नहीं करै

ताकूं स्वभाव कहिए है। जैसे अग्निका उर्ध्वगमनस्वभाव है। पवनका तिर्यंगगमनस्वभाव है। जलका अधोगमनस्वभाव है। अर स्वभाव हैं सो कोऊ स्वभाववान्की अपेक्षा करै है। यातै ये ज्ञानावरणादिक कोनका स्वभाव है। ऐसे कहो तो ये जीव अर कर्म दोऊनिका स्वभाव है। तिनमें आत्माका स्वभाव तो ज्ञान है रागादिक स्वभाव नहीं परंतु मोहनीयके निमित्ततै ज्ञानका ज्ञानस्वभावहू राग द्वेष मोहरूप होई विभावपरिणतिनै प्राप्त होय है। जैसे स्फटिकमणि डाकके संयोगतै विकारी हुवा दीखै तैसे विभावपरिणमनशक्तिहू ज्ञानहीकी है तातै यो ज्ञान अज्ञानीपणाने प्राप्त होई रागादिरूप परिणतिनै प्राप्त होरह्या है। अर रागादिकनिका उत्पादपणा कर्मका स्वभाव हैं।

अव इहां कोऊ कहै। ऐसे तो इतरेतराश्रय दोष आया सो नहीं है। जातै इनके सादिसंबंध होइ जव इतरेतराश्रय दोष आवै। जीवकर्मकै तो कनकपाषाणमें सुवर्ण अर मलका संबंधकीज्यों अनादिसंबंध है। याहीतै अमूर्तजीव मूर्तिकर्मकरि बंधै है। अर जो या कहो जीवकर्मका अस्तित्व कैसे सिद्ध है। ताकूं कहै है। अहं सुखी अहं दुःखी इत्यादि अनुभवते तो आत्माका अस्तित्व स्वतःसिद्ध हैं। अर एक धनवान् एक दरिद्र इत्यादि विचित्रपरिणामनतै कर्मका अस्तित्वकैहू स्वतःसिद्धपना है। ज्ञानकूं जो आवरण कहिए आच्छादन करे सो ज्ञानावरण है। दर्शनकूं आवरण करै सो दर्शनावरण हैं। जो वेदिए सो वेदनीय है। सुखदुःखका उपात्दकपणा वेदनीयकर्मका कार्य है।

जो मोहित करे जाकरि मोहनै प्राप्त होय सो मोहनीय। जिसकरि नरकादिकभवनिकूं प्राप्त होइ सो आयु है। नारकादि नानारूप करे सो नाम है। जाकरि उच्च नीच कहाइए उच्चनीचपणाने प्राप्त करे सो गोत्र है। दातार दे याचकादिकनिके मध्य प्राप्त होइ विघ्न करे सो अंतराय है। कोऊ या कहै जो हित अहितकी परीक्षाका अभाव करनेतै ज्ञानावरण अर मोह ए एकही दीखें है। ताकूं कहिए है। इनके जुदापणा है वस्तुका जैसा स्वरूप है तैसा जाणे तोहू यह ऐसेही है। इस प्रकार श्रद्धानका नही उपजनेदेना सो मोह हैं। अर वस्तुकूं जानने नही दे सो ज्ञानावरण है।

अब कोऊ कहै। पुद्‌गलद्रव्य एक है तिसके आवरण करना अर सुख दुःखादिककूंहू उपजावना ऐसे अनेककार्य करनेमें विरोध है। ताकूं कहिए ए दोष नहीं है। जैसे एक अग्निके दग्धकरना पकावना प्रतापरूप होना प्रकाश करना इत्यादि अनेककार्य विरोधकूं नहीं प्राप्त होय है। तैसे एक पुद्‌गलद्रव्यकैहू आवरण अर सुखदुःखादिका निमित्तपणा नहीं विरोधनें प्राप्त होय है।

बहुरि कर्मके भेद है ते शद्बकी अपेक्षा तो एकतै लेय संख्यात जाननें। सामान्यकरि तो कर्मबंध एक है। जैसे सेना एक है। बन एक है। अर विशेषकी अपेक्षा सेनामें हस्ती

घोडा स्वामी सेवकादि अनेकभेद है। वनमें अशोक वकुल तिलकादि अनेक भेद है। तैसेही विशेषकी अपेक्षातैं पुण्यपापके भेदतैं दोयप्रकार है। अनादिसांत। अनादिअनंत। सादिसांत। ऐहै तीन भेंद है। अथवा भुकाजार। अल्पतर। अवस्थित। ऐसेहू तीन भेद है। प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशतैं च्यार प्रकार हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूप निमित्तकैं भेदतैं पंच प्रकार है। षट्जीवनिकायके भेदतैं छह प्रकार है। राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ रूप हेतुके भेद तैंसप्त प्रकार है। ज्ञानावरणादि विकल्पतैं अष्टप्रकार है। ऐसे संख्येयभेद है। अर अध्यवसाय स्थानके भेदतैं असंख्येय भेदरूप है।

पुद्गलपरमाणुरूप स्कंधके भेदतैं अनंतभेदरूप है। तथा अविभागपरिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद है। कर्म दोयप्रकार है। तिनमें ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ए च्यार कर्म है ते जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य सम्यक्त्व चारित्र दान लाभादिगुणनिकूं घातैं हैं नष्ट करे है तातैं घातिसंज्ञाकूं धारै है। अर आयु नाम गोत्र वेदनीय ए च्यार कर्म ज्ञानावरणादिककीज्यों जीवका गुणनिका घात नहीं करे है तातैं अघातिसंज्ञाकूं धारै है।

अव इन अष्टकर्मनके कहनेका अनुक्रमकी उत्पत्तिकूं कहे है। तहां ज्ञान है सो आत्माके अधिगमका निमित्त है तातैं प्रधान है। तातैं आदिमें ज्ञानावरण कह्या। अर दर्शन अनाकारोपयोग है तातैं अल्प है अप्रगटकूं ग्रहण करे है तातैं पाछैं कह्या परंतु अर्थके ग्रहण करनेकूं कारण तातै अन्यतैं उत्कृष्ट है अधिक है। वहुरि वेदना ज्ञानदर्शनतैं अव्यभिचाररूप है। ज्ञानदर्शनकूं होतैं सुखदुःखकूं वेदए है अनुभवकरिए हैं। ज्ञानदर्शनविना घटपटादिकनिकै वेदना नहीं होइ है। यद्यपि वेदतीयकर्म अघातिनिमें है। तथापि मोहनीयके वलतैं जीवकूं घाते है। तातैं घातिनिकै मध्य मोहनीयकर्मकी आदिमें वेदनीयकूं कह्या है। जातै मोहनीयकर्मका भेद जो रति अरति प्रकृतिका उदयका वलकरि जीवके सुखदुःख रूप साता असाताका निमित्त इंद्रियविषयनिके अनुभव करि जीवकूं घातै है। तातै मोहनीयकी आदिमें वेदनीय कह्या।

वहुरि आयु कह्या आयुका वलकरिही नामकर्मका कार्यभूत जो चतुर्गतिरूप भव ताकी अवस्थिति है तातै आयुकर्मके पीछै नामकर्म कह्या। वहुरि गोत्र कह्या सो नामकर्मतैं प्राप्तभया जो गतिशरीरादिक ताकै आश्रयही ऊंचा नींचा कहावै है तातैं नामके पाछैं गोत्र कह्या वहुरि अंतराय कह्या सो यद्यपि अंतरायकर्म घातिया है तथापि अघातियाज्यों समस्त जीवका गुण घातिवेकों समर्थ नहीं तातै अंतमें कह्या है। अर नाम गोत्र ए दोऊ कर्म वेदनीयका निमित्तपणाकरि अघातिनिकै पाछै कह्या। ऐसे इनका अनुक्रमका प्रयोजन जानना। ऐसै मूलप्रकृतिबंध अष्टप्रकार कह्यो। अव उत्तरप्रकृतिबंधका भेंद कहे है।

पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्विपंचभेदा यथाक्रमम् ।। ५ ।।

अर्थप्रकाशिका–मूलप्रकृति अष्ट कही तिनमें ज्ञानावरणके पंच भेद है। दर्शनावरणके नव भेद है। वेदनीयके दोय भेद मोहनींयके अठाईस भेद है। आयुके च्यारि भेद है। नामके बीयालीस भेद है। गोत्रके दोय भेद है। अंतरायके पांच भेद है। ऐसे भेदरूप उत्तरप्रकृतिबंध कह्या। अव ज्ञानावरणका पांच भेद कहै है।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ।। ६ ।।

अर्थप्रकाशिका–मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण मनःपर्ययज्ञानावरण केवलज्ञानावरण। ऐसे ज्ञानावरणके पांच भेद जानना। इहां प्रश्न। जो अभव्यकें मनःपर्ययज्ञान अर केवलज्ञानके प्राप्ति होनेका सामर्थ्य है कि नाहीं है। जो हे। तो अभव्यपणाकी उत्पत्ति नहीं वणिसकै है। अर जो नहीं है तो वाकै दोऊ ज्ञानका आवरण कहना निरर्थक है। ताकों उत्तर कहै है। द्रव्यार्थिकनयकरिकैं अभव्यकैंहू दोऊ ज्ञानकी शक्ति विद्यमान है। यातैं अभव्यकें मनःपर्ययज्ञान अर केवलज्ञान दोऊ है। अर पर्यायार्थिकनयकरि अभव्यकैं दोऊ ज्ञान नहीं है। जातैं कोऊ कालमे भी इनकी व्यक्ति नहीं होइ शक्तिमात्रही है याहीतैं सम्यग्दर्शन चारित्रमें अभव्यकै नहीं होय है। जैसे सुवर्णकी खानिमैंहू सुवर्ण है। परंतु कोऊ काल मैं सुवर्णपाषाणकूं तो वाह्य अग्न्यादिक परिपूर्णसामग्री मिलते सुवर्ण भिन्न हो जाय किट्टिका भिन्न होजाय। अर अंधकपाषाणकूं वाह्यसामग्रीमिलतैंहूं सुवर्ण अर किट्टिका भिन्न होयही नहीं तैसे भव्य अभव्यपणा जाननां। ऐसे पंचप्रकार ज्ञानावरण कह्या याका उदयकरि जीवकै जाननेकी सामर्थ्यंका अभाव होय है। स्मृति जो देखि सुणी अनुभवी वस्तु ताका विस्मरण होय है। धर्मश्रवणमै उत्सुकताका अभाव होय हैं। ज्ञानका तिरस्कारजनित अनेक प्रकार दुःखकूं अनुभवै है। ऐसे ज्ञानावरणके भेद कहे अब दर्शनावरणके नव भेद कहै है।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्या नगृयद्धश्च ।।७।।

अर्थप्रकाशिका–चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण केवलदर्शनावरण निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि। ऐसै दर्शनावरणके नव भेद है। जाके उदयतै आत्मा चक्षु आदि इंद्रियरहित एकेंद्रिय वा बिकलेंद्रियपणानै प्राप्त होइ तथा पंचेंद्रियपणोभी होइ तोह इंद्रियनिमैं अवलोकनसामर्थ्यं नहींहोइ सो चक्षुअचक्षुर्दर्शनावरण है। नेत्रद्वारें वस्तुका सामान्यग्रहणकूं नहीं होने दे सो अचक्षुर्दर्शनावरण है। चक्षुविना अन्य इंद्रियद्वारे अर्थका सामान्यग्रहणकूं नहीं होनेदे सो अचक्षुर्दर्शनावरण है। अवधिदर्शनद्वारें वस्तुका सामान्यग्रहणका निरोध करै सो अवधिदर्शनावरण है।

केवलदर्शनद्वारैकरि समस्तदर्शन नहीं होने दे सो केवलदर्शनावरण है। मद खेद ग्लानि दूरि करनेकूं शयनकरना सो निद्रा है तथा निद्रादर्शनावरण कर्मका उदयकरि गमन-करतोहू खडो रहिजाय अर बैठिजाय पडिजाय है। वहुरि जो निद्राकी ऊपराऊपरि प्रवृत्ति होइ सो निद्रानिद्रा है। जातैं निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्मका उदयकरि जीव नेत्रनिकूं उघाडि नहीं सके हैं।

वहुरि जो शोक खेद मदादिकतैं उपजि निद्रा तिसकरि पांचों इंद्रिशनिका व्यापारका अभाव हो जाय अंतरंगमे प्रीतिका बलकूं कारण बैठ्याहुवाकैहू नेत्रनिमें शरीरमें विकारकूं जणावै सो प्रचल है। प्रचलादर्शनावरणके उदयकरि जीव है सो नैत्रनिकूं किंचित् उघाडीकरि शयन करे हे। अर सूताहू किंचित् जाने है अर वारंवार मंदमंद सोवै है। अर बठ्याहूवाहू घूमं है नेत्र गात्र चलायमान रहे है। देखतोसंतोहू नहीं देखै हैं।

वहुरि प्रचलाप्रचलादर्शनावरणका उदयकरि लाल वहै मुखते लाल श्रवे है। अंग उपांग चलायमान होय है। बहुरि स्त्यानगृद्धि नाम दर्शनावरणका उदयकरि उठ्योहुवोभी सोवे निद्रामें वीर्यविशेषके प्रगट होनेतै वहुत घोररौद्रकर्म करै। निद्रामें बहुतकर्म करे। ऐसे नवप्रकार दर्शनावरण कह्या। अब दोय प्रकार वेदनीय कर्मकूं कहे हैं।

सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥

अर्थप्रकाशिका–सात असाता ऐसे दोयप्रकार वेदनीयकर्म हैं। जाके उदयतैं देवादिक-गतिविषै उपकारक द्रव्यनिका संबंधकरि प्राणीनिके शारीरमानसिक अनेकप्रकार सुखरूप परिणाम होई सो सातावेदनाय है। अर जाके उदयतैं नरकादिकगतिविषै जन्म जरा मरण प्रियवियोग अप्रियसंयोग रोग वध बंधनादिकरि उपज्या शरीरसंबंधी मनसंबंधी दुःखकूं प्राप्त-होइ सो असातवेदनीय है। जातैं प्रशस्तवेदन सो सातावेदनीय है सो रतिमोहनीय कर्मका उदयके बलकरि जीवकूं सुखका कारण जे इंद्रियनिके विषय तिनका अनुभव करावेहै। अर अप्रशस्त वेदन सो असातावेदनीय है। सो अरतिमोहनीय कर्मका उदयके बलकरि जीवकैं दुःखका कारण इंद्रियनिकें विषय तिनका अनुभव करावेहै। अब अठाईस प्रकार मोहनियकूं कहेहै।

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभवान्यकषाकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

अर्थप्रका–दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय अकषायवेदनीय कषायवेदनीय है नाम जिनके ऐंसे तीन दोय नव षोडश रूप भेदे है। तिनमे दर्शनमोहनीय तीन भेदरूप है।

चारित्रमोहनीय दोयभेदरूप है। अकषायवेदनीय नवप्रकार है। कषायवेदनीय षोडशप्रकार है। तिनमे। सम्यक्त्व। मिथ्यात्व। सम्यग्मिथ्यात्य। ऐसे दर्शनमोहनीय तीन प्रकार हे। अर अकषायवेदनीय। कषायवेदनीय। ऐसे दोयप्रकार चारित्रमोहनीय है। तिनमे हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद ऐसे अकाषायवेदनीय नवप्रकार है। अर अनंतानुवन्धी। अप्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान। संज्वलन। एकएकके क्रोध मान माया लोभ भेदनिकरि षोडषप्रकार कषायवेदनीय है। ऐसे अठाईस प्रकार मोहनीय कह्या।

तहां दर्शनमोहनीय है सो बंधप्रति तो एक मिथ्यात्वरूपही है। अर उदयकूं अर सत्वकूं आश्रयकरि मिथ्यात्व। सम्यक्त्व। मिश्र। ऐसे तीन प्रकार है। तहां जाके उदकरि सर्वज्ञकरि कह्या मार्गतै पराङमुखपणा अर तत्वार्थके श्रद्धानमे निरूत्सुकपणा उद्यमरहितपणा अर हितअहितकी परीक्षारहितपणा सो मिथ्यात्व है। बहुरि जो शुभपरिणामके प्रभावकरि इस मिथ्यात्वका रस रूकिजाय तदि शक्तिकें घटनेतै असपर्थ हुवा आत्माका श्रद्धानकूं रोकनेसमर्थ नही सम्यक्त्वकूं बिगाडि नही सकै अर सम्यक्त्वकूं मलसहित करे सो सम्यक्त्व है। बहुरि जाके उदयतै तत्वनिका श्रद्धान अर अश्रद्धान दोऊरूप मिले भाव होई सो सम्यग्मिथ्यात्व है बहुरि चारित्रमोहनींयके अकषायवेदनीय कषायवेदनीय ऐसे दोय भेद है। इहां अकषायशद्बकरि कषायका अभाव नही जानना। क्योंकी अकारका ईषत् अर्थ है। जैसे याभेड अलोमिका है तो अलोमिका कहनेकरि काछिवाकीज्यो रोमका अभावहीनही नही जानना छेदनेयोग्य रोम वाकै नही तातै अलोमिका कहीहै। तथा जैसे या कन्या अनुदरा है तो उदररहित तो कोऊ हैं नही परंतु गर्भधारणादियोग्य स्थूल उदरके अभावतै अनुदरा कही याका अर्थ कृशोदरी है। तैसे हास्यादिक नव कषायनिकूं अकषाय कहिए है। बा नो अव्ययकाभी ईषत् अर्थ है तातै नोकषाय कहनेकरिहू ईषत्कषाय जानना। इनके ईषत्कसायपना कैसे सो कहेहै जैसं श्वान जो कूतरा सो स्वामीका सहायका अवलंबनतै बहुत बलवान होइ प्राणीनिके मारनेमे वर्तैहै अर स्वामीका सहायका अवलंवन नहीहोइ पीछा फिरि आवै। तैसे क्रोधादि कषायका अवलंवनतै हास्यादिकनिकी प्रवृत्ति होइ अर क्रोधादिकषायकी प्रवृत्तिका अभावतै हास्यादिक नही प्रवर्तै तातै इनकूं अकषाय कहे। जाके उदयते हास्य प्रगट होइ सो हास्य है। अर जाके उदयतै देशादिकनिमें उत्सुकपणा आसक्क्तपणा होजाय सो रति हैं। अर जाके उदयतै देशादिकनिमें अनुत्सुकपणा सो अरति है। जाके उदयतै सोच प्रगट होई सो शोक है। जाके उदयतै उद्वेग प्रगट होइ सो भय है। सो सप्तप्रकार है। समस्तही भय सप्तप्रकारमे गर्भित है। जाके उदयतै अपना दोषका आच्छादन करना अर अन्यका कुल शीलादिकनिमें दोष प्रगटकरि अवज्ञा करना तिरस्कारादि करना ग्लानि करना सो जुगुप्सा है।

वहुरि जाके उदयतैं मार्दवका अभाव अर मायाचारादिककी अधिकता कामका प्रवेश नेत्रविभ्रमादिसुखके अर्थि पुरूषसे रमनेकी इच्छाकूं प्राप्त होइ सो स्त्रीवेद है। वहुरि जाके उदयते निःकपटपणा निश्चलपणा उदारपणा स्त्रीनिमे रमनेकी इच्छारूप परिणाम सो पुरूषवेद है वहुरि जाके उदयते कामकी अधिक्यता भंडनशीलता स्त्रीपुरूष दोऊनिमे रमनेंकी इच्छा सो नपुंसकवेद है। अर जो योनि लिंग कुचादिक शरीरका आकार है। सो नामकर्मकरि रच्या है वेदजनित नही है। ऐसे नवप्रकार अकषाय वेदनी कही।

अव कषायवेदनीय षोडशप्रकार ऐसे जानना। तहां क्रोध मान माया लोभ ऐसे च्यारप्रकार कषाय है। तिनमें स्वरूपके घात करनेके परिणाम तथा परका उपकार करनेका अभाव तथा क्रूरपरिणाम सो क्रोध है। सो पाषाणमे लीख पृथ्वीमे लीख वालुरेतमे लीख जलमे लीख इनके समान च्यार है। वहुरि जाति कुल वल ऐश्वर्य विद्या रूप तप ज्ञान इत्यादिकका मदजनित उद्धततामे परतैं नम्रीभूत नही होनेके परिणाम सो मान है। सो पाषाणस्तंभसमान अर अस्थि कहिए हाडसमान अर काष्ठसमान अर लतातुल्य च्यार प्रकार है। परके ठिगनेके परिणामकरि परिणाम निका कुटिलपणा सो माया है। सो वाणकी जड मींढाका सींग गोमूत्रिका अर अवलेखनी इतने तुल्य च्यार प्रकार है।

वहुरि जो अपना उपकारक द्रव्यमें अभिलाषा सो लोभ है। सो कृमिराग कज्जल कर्दम हरिद्राका रंगतुल्य च्यार प्रकार है। ऐसे क्रोध मान माया लोभ इनकी च्यार प्रकार अवस्या है। अनंतानुबंधी। अप्रत्याख्यानावरण। प्रत्याख्यानावरण। संज्वलन। ऐसे च्यार अनंतसंसारका कारणपणातैं मिथ्यात्वकूं तो अनंतनामकरि कह्या है। मिथ्यात्वके अनुबंधन करनेवाला अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ है सो तो सम्यत्वकूं नहीं होने दे हैं। वहुरि जाके उदयते अ कहिए किंचितहू प्रत्याख्यान जो देशरूपत्याग नएीं हो सके सो अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ हैं।

वहुरि जाके उदयते समस्त महाव्रतरूप त्याग नहीं हो सके सो प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ है। वहुरि जो संयमकी साथिहू प्रज्वलीत रहे आत्माकूं शुद्धोपयोग-रूप नहीं होने दे सो संज्वलन क्रोध मान माया लोभ है। ऐसे षोडशप्रकार कषायवेदनीय कह्या। ऐसे अठाईस प्रकार मोहनीय कर्मके भेद कहै। अब च्यार प्रकार आयुकूं कहे हैं।

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थप्रकाशिका—नारक तैर्यग्योन मानुष दैव ए च्यार आयुके भेद है। जाका सद्भा-वते आत्माका जीवन होय अर अभावते मरण होई यातै जो भवका धारणका कारण सो

आयु है। इहां कोऊ कहै। जीवनका कारण तो अन्नपानादिक है। अन्नपानादिकका लाभतै जीवन देखिए है अलाभतै मरण देखिए है। ताकूं कहे है। अन्नपानादिक तो वाह्यकारण है। मूल उपादानकारण आयुकर्म है। जैसे घटके होंनेविषै मूलकारण तो मृत्तिका है। अर वाह्यनिमित्तकारण चाक कुंभकार दंडादिक हैं। तैसे भवधारणका मूलकारण आयुकर्म है आयुका उपकारक अन्नादिक है। जाका आयु नष्ट हो जाय ताकै अन्नादिक निमित्तकी निकटता होतैंहू मरण देखिए है। अर देव नारकीनिकै अन्नादिकका वाह्य आहारविनाहू जीवन आयुका निमित्ततै होय है। जाके उदयतै तीव्र शीतोष्ण वेदना करनेवाले नरकमें दीर्घकाल जीवनेरूप भवधारण होइ सो नरकायु हैं।

वहुरि जाके उदयते क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक्कृत प्रचुर उपद्रवसहित तिर्यंग्योनिमें वसना होइ सो तिर्यगायु है। वहुरि जाके उदयते शरीर मनःसंबंधी सुखदुःखकरि व्याप्त मनुष्यपर्यायमें जन्म होंइ सो मनुष्यआयु है। वहुरि जाके उदयते शारीर मानसिक सुखादिसहित देवनिमें उत्पत्ति होइ सो देवायु है। कदाचित् प्रियका वियोग महर्द्धिक देवनिका अवलोकन मृत्युका चिन्ह जो माला भूषणादिकका मलिनपणाका दर्शन आज्ञाकी हानि इत्यादिककरि मानसिक दुःखहू प्रगट होय है। ऐसे च्यार प्रकार आयुकर्मकूं कह्या। अव नामकर्मकी बीयालीस प्रकृतिनिकूं कहै है।

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्त्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥ ११ ॥

अर्थप्रकाशिका—गति। जाति। शरीर। अंगोपांग। निर्माण। वंधन। संघात। संस्थान। संहनन। स्पर्श। रस। गंध। वर्ण। आनुपूर्व्या। अगुरुलघु। उपघात। परघात। आतप। उद्योत। उच्छ्वास। विहायोगति। इस प्रकार इकईस अर प्रत्येकशरीर। त्रस। सुभग। सुस्वर। शुभ। सूक्ष्म पर्याप्ति। स्थिर। आदेय। यशःकीर्ती। ए दश अर इनके प्रतिपक्षी दश अर तीर्थंकरत्व ऐसे बीयालीस भेदरूप नामकर्म है। तथा याहीके तिराणवै भेद है सो कहे है। जाके उदयतै आत्मा भवांतरप्रति सन्मुख होइ गमनकूं प्राप्तहोइ सो गति है सो नरकगति। तिर्यंगति। मनुष्यगति। देवगति। ऐसे च्यार प्रकार हैं। जाके उदयते आत्माके नारकभव होइ सो नरकगति नाम है। ऐसेही अन्य भी जाननीं।

बहुरि तिन नारकादिगतिमे व्यभिचारनें नहीं सदृशपणाकरि एकरूप कीया सो जाति है सो पंचप्रकार है। एकेन्द्रियजातिनाम। द्वींद्रियजातिनाम। त्रींद्रियजातिनाम। चतुरिंद्रियजातिनाम। पंचेंद्रियजातिनाम जाका उदयतै आत्मा एकेंद्रियादिक होवै सो जातिनाम

है। वहुरि जाके उदयतै आत्माके शरीररचना होइ सो शरीरनाम कर्म है जाके ऊदयतै औदारिकशरीरकी रचना होइ सो औदारिकशरीरनाम है। जाके उदयतै वैक्रियिकशरीरकी रचना होइ सो वैक्रियिकशरीरनाम जांनना। ऐसेही आहारकशरीर तैजसशरोर कार्मणशरीरनाम है। ऐसे पंच शरीर कहे।

वहुरि जाके उदयतै अंगउपांगनिका भेद प्रगट होइ सो अंगोगांगनाम हैं। तहां शीर पीठ हृदय बाहु उदर नलक हस्त पाद ए तो अंग है अर इनके भेद जे ललाट नासिकादिक उपांग है सो अंगोपांगनाम तीन प्रकार हैं। औदारिकशरीरांगोपांगनाम। वैक्रियिकशरीरांगोपांगनाम। आहारकशरीरांगोपांगनाम। जाके उदयतै अंगउपांगनिकी उत्पत्ति होइ सो निर्माण है। ताके दोय भेद। एक स्थाननिर्माण। एक प्रमाणनिर्माण। सो तिस जातिनामकर्मका उदयकी अपेक्षा नेत्रादिकनिका जहां योग्य तहां स्थानकैमांही तितना प्रमाण रचना रचै सो निर्माण है।

बहुरि शरिरनाम कर्मके उदयके बशतैं ग्रहणकीए जे अहारवर्गणारूप पुद्गलस्कंध तिनका प्रदेशनिका जातै मिलना होइ सो बंधननाम है। सो औदारिक। वैक्रियिक। आहारक। तैजस। कार्मण। भेदकरि पंचप्रकार है। बहुरि जाके उदयतै औदारिकादिशरीरनिका छिद्ररहित अन्योन्यप्रवेशानुप्रवेश करि एकपणा होइ सो संघातनाम है। सो औदारिकसंघातनाम। वैक्रियिकसंघातनाम। तैजससंघातनाम। आहारसंघातनाम। कार्मणसंघातनाम। ऐसे पंचप्रकार संघातनाम है।

जाके उदयतैं शरीरकी आकृति उत्पन्न होइ सो संस्थाननाम हैं। सो छहप्रकार है। समचतुरस्त्रसंस्थाननाम। न्यगोधपरिमंडलसस्थान। स्वातिसंस्थाननाम। कुब्जकसंस्थाननाम। वामनसंस्थाननाम। हुंडकसंस्थाननाम। तिनमे जो ऊपरि नीचे मध्यमे समविभागकरि शरींरके अवयवकी रचना स्थापन होइ जैंसे प्रवींणशिल्पीकरिरच्या समवस्थित चक्रकीज्यों अवस्थान करनेवाला समचतुस्त्रश्रसंस्थाननाम है। बहुरि नाभिकैं ऊपरि तो वहुत देहके पुद्गलनिका स्थापन होय नीचे अल्प संचयका उत्पन्न करनेवाला न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम है सो न्यग्रोधनाम वडके वृक्षके है तिसकी समानतातैं न्यग्रोधपरिमंडल कह्या वहुरि स्वाति जो बंबी तिसकैं आकार नीचे भारीं उपरि हलका शरीर करनेवाला स्वातिसंस्थाननाम है। वहुरि पीटके प्रदेशनिमे वहुतपुद्गलनिका समूह जाकैं होइ ऐसा लक्षणका रचनेवला कुब्जकसंस्थाननाम है।

वहुरि सर्व अंगोपांगनिकी ह्रस्व रचनाका करनेंवाला वामनसंस्थान है। वहुरि सर्व अंगोपांगनिकी ऊंची नींचीं घटती वधती विषमरचना करनेवाला हुंडकसंस्थान नाम है। वहुरि जाके

उदयते हाडनिके बंधानमे विशेष हो सो संहनननाम है। सो छह्प्रकार हैं। वज्रर्षभनाराचसंहनननाम वज्रनाराचसंहनननाम। नाराचसंहनननाम। अर्द्धनाराचसंहनननाम। कीलिकासंहनननाम असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननाम। जो वेढिए बांधिए निशानिकरि हाडनिकूं तिनकों ऋषभ कहिएहै। अर नाराचनाम कीलेनिका हैं जिनतैं कीलित करिए। अर संहनननाम हाडनिकें समूहका है। तहां जाकें उदयतैं ऋषभ जो वेष्टन अर नाराच जो कीलं अर संहनन जो हाडनिके समूह ए तीनो वज्रवत् अभेद्य होय सो वज्रर्षभनाराचसंहनन है वहुरि जाके उदयतें नाराच अर संहनन दोय तो वज्रमय होय अर ऋषभ सामान्य होइ सो वज्रनाराचसंहनन है।

वहुरि जाके उदयतैं वज्रविशेषरहित कीलित हाडनिकी संधि होइ सो नाराचसंहनननाम है। बहुरि जाके उदयतैं हाडनिकी संधी अर्द्धकीलित होइ सो अर्द्धनाराचसंहनननाम है। वहुरि जाके उदयतैं हाड कीलित होइ सो कीलितसंहनननाम है। बहुरि जाके उदयतैं हाडनिकी संधि परस्पर प्राप्त नहीहोई वाहिर नशां स्नायु मांसकरि बंधी होई सो असृपाटिकासंहनननाम है। तेसै संहनन कहै।

अब इहां ऐसा विशेष जानना। जो आठमांस्वर्गपर्यंत तो छहूही संहननवाले मरणकरि उदजैहै। अर नवमा दशमा ग्यारमा बारमा स्वर्गलोकमे असृपाटिकविना पंचसंहननवालेका गमनहै। अर तेरमा चोदमा पंद्रमा सोलमा स्वर्गमें असृपाटिक अर कीलकविना च्यार संहननवालेहींका गमन हैं। अर नवग्रैवेयकनिमे नाराच अर वज्रऋषभनाराच इन तीन संहननवालेहीका गमन है। अर नवननुदिशविमाननिमे वज्रनाराच अर वज्रर्षभनाराच दोयवालेहीका गमन है। अर पंचअनुत्तर विमाननिमें वज्रर्षभनाराचसंहननका धारकहींका गमन है। वहुरि मोक्षहू अर क्षपकश्रेणीहू वज्रर्षभनाराचसंहननके धारकहीकै होय है। बहुरि उपशमश्रेणी उत्तम तीन संहननवालेहीकै होय है।

बहुरि धर्मा वंशा मेघा तीन नरकपृथ्वीपर्यंत तो छहू संहननवाले जा है। अर चौथी पांचवी जो अंजना अरिष्टा पृथ्वीमे असृपाटिका कीलितविना च्यार संहननवालेका गमन है। अर सप्तम माघवींपृथ्वींमे वज्रर्षभनाराचसंहननका धारिहीका गमन हैं। अन्य पंचसहननतै गमन नहीं। बहुरि देव नारकी एकेंद्रिय इनके तो संहननका अभावही है। इनका शरीर सप्तधातुमय नही इनके हाड नही। बेद्री तेंद्री चौंद्री असृपाटिकहि एक संहनग है। कर्मभूमिकी स्त्रीनिके आदिका तीन संहननवीना अर्द्धनाराच कीलित असंप्राप्तसृपाटिक ए तीन संहननही नियमतै होय है। बहुरि भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकै एक वज्रर्षभनाराचसंहननही है। अर कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकै छहु संहनन होय है। पंचमकालमे उपजे मनुष्य तिर्यंचनिकै अंतका तीन संहननही हैं। ऐसे संहनन कह्या।

जिस कर्मका उदयतै शरीरमे स्पर्श प्रगट होई सो स्पर्श नाम कर्म अष्टप्रकार है। कर्कशनाम। मृदुनाम। गुरूनाम। लघुनाम। स्निग्धनाम। रूक्षनाम। शीतनाम। उष्णनाम। ऐंसे जानना। वहुरि जाके उदयतैं देहमे रस प्रगट होइ सो रसनामकर्म पंचप्रकार है। तिक्तनाम। कटुकनाम। कषायानाम। आम्लनाम। मधुरनाम। ऐंसे पंचभेद है। वहुरि जाके उदयतै देहमे गंध प्रगट होई सो गंधनाम दोय प्रकार है। सुगंध। दुर्गंध। वहुरि जाके उदयतै वर्ण प्रगट होइ सो वर्णनाम पंचप्रकार है। कृष्णवर्णनाम। नीलवर्णनाम। रक्तवर्णनाम हरिद्रावर्णनाम। शुक्लवर्णनाम। ऐंसे पंच भेदरूप है।

इहां कोऊ कहे। ए कहै स्पर्श रस गंध वर्ण अचेतनमें कर्मका उदयविना कैसेहै। ताकूं कहिए हैं। ते पुद्गलके स्वभावतैंही परिणत है। पुद्गलनिमे तो स्वयमेव स्पर्शरसादिकका परिणमन हैही। चेतनासहित शरीरके कर्मके उदयकी अपेक्षातै होइ है। वहुरि जाके उदयतै पूर्वले शरीरके आकारविनाश नही होइ सो आनुपूर्व्य है। ताके च्यार भेद हैं। नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यंग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यानाम। मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। जिस कालमे मनुष्य वा तिर्यंचका आयु पूर्ण होइ तदि पूर्वके शरीरतै वियुक्त होइ अर नरकके भवप्रति सन्मुख होइ तीकै मार्गमे आत्माके प्रदेशनिका आकार पूर्वले शरीरके आकारतै नही विगडै सो नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य है। सो याका उदय विग्रहगतिहीमे है। ऐंसेही अन्य तीन आनुपूर्व्य हैं। याका उदय काल विग्रहगतिमे जघन्य एक समयका है उत्कृष्ट तींन समयका है विग्रहगतिविना अन्यकालमें याका उदय नही है।

वहुरि जाकै उदयतैं लोहका पिंडज्यों भान्यापणातैं नीचे नहीं पडैं हलकापणातैं आकका फूल फंचाज्यों उर्ध्व नहीं गमनकरैं सो अगुरुलघुनाम है। यह कर्मकी प्रकृति शरीरसंबंधी जाननी। अर जो अलघुगुरुत्व सर्वद्रव्यनिमें गुण है सो स्वाभाविक है। वहुरि जाके उदयतै अपने शरीरके अदयव वडा सींग लंवा स्तन वडाभारी उदरादिक नितै अनाही घात होय सो उपघात नाम है। अर जाके उदयतै तीक्ष्ण श्रृंग नख सर्प्पकें डाढ इत्यादिक परके घात करनेंवाला अंग होइ सो परघातनाम है।

वहुरि जाके उदयतै आतापकारी शरीर होइ सो आतापनाम है। याका उदय सूर्यके विमानकै वादरपर्याप्तजीव पृथ्वीकायिक मणी है तिनकेही है अन्यके नहीं। वहुरि जाके उदय उद्योतरूप शरीर होइ सो उद्योतनाम है। याका उदय चंद्रके विंवकी मणीनिमे आज्ञानाम चोइंद्रीजीव इत्यादिकमें होइ है। वहुरि जाके उदयतें उछ्वास होइ सो उछ्वासनामकर्म है।

वहुरि जाके उदयतैं आकाशविषै गमन होइ सो विहायोगतिनाम दोय प्रकार है। तहां जो प्रशस्तहस्ती वृषभकीज्यों सुंदरगमनका कारण प्रशस्तविहायोगति है। अर ऊंट

गर्दभादिकज्यों असुंदरगमनका कारण अप्रशस्तविहायोगति है। अर सिद्ध होते जीवनिके अर पुद्‌गलनिकै कर्मका उदयविना स्वाभाविकीं गति है। इहाँ ऐसा नहीं जानना जो आकाशमें गति तो पक्षीनिकै है मनुष्यादिकनिकै नहीं होयगी समस्त जीवपुद्‌गलनिका आकाशहीम गमन है ।

बहुरि जाका उदयतें एक आत्माके भोगनेका कारण प्रत्येक एक शरीर होइ सो प्रत्येकशरीरनाम है । अर जाके उदयतै बहुत आत्माके उपभोगका कारण साधारण एक शरीर होइ सो साधारणशरीरनाम है। जिनके आहारादि च्यारि पर्याप्ति जन्म मरण स्वास उछ्‌वास उपकार उपघात अनंतजीवनिकै समानकालमें होइ सो साधारणजीव है।

भावार्थ। जो एकदेहमें अनंतजीव एकक्षेत्रमै अवगाहनरूप होइ तिष्ठै ते साधारण-शरीरनामकर्मका उदयतें साधारणजीव हैं । जिस कालमें आहारादि पर्याप्ति जन्ममरण श्वासोछ्‌वास एक ग्रहण करें तिस काल अनंतजीवनिकै ग्रहण होय है । तातें ते साधारण जीव कहावे है । साधारणजीव निगोदिया वनस्पतिकायमें है अन्य स्थावरनिमें नहीं।

जाकें उदयतै द्वींद्रियादिप्राणीनिमें जन्म होइ सो त्रसनाम हैं। अर जाके उदयतें पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पतिकायमें उत्पत्ति होंइ सो स्थावरनाम है। बहुरि जाके उदयतै प्रीति उपजै देखतेही अन्यका प्रीतिरूप परिणाम हो जाय सो सुभगनाम है। बहुरि जाके उदयतै रूपादिगुणनिकरि सहितहू परकै अप्रीतिको कारण होइ सो दुर्भगनाम है । जाके उदयतें मनोज्ञस्वरकी उत्पत्ति होइ सो जाका शब्द सर्वकूं सुहावै सो सुस्वरनाम है। अर जाके उदयतें अमनोज्ञस्वर होइ सो दुःस्वर नाम है। बहुरि जाके उदयतें मस्तकादि प्रशस्त अवयव होइ देखें श्रवणकीए रमणीक होइ सो शुभनाम है।

बहुरि जो देखे सुणे रमणीकता नहीं उपजावै सो अशुभनाम है। जाके उदयतै अन्य जीवनिका उपकार तथा घातकै योग्य शरीर नहीं होइ सो तथा पृथ्वी जल अग्नि पवनादिकतै जाका घात नहीं होंइ वा वज्रमें पहाडमै प्रवेश करते शरीर नहीं रुके सो सूक्ष्मशरीर है। बहुरि अन्यके बाधाका निमित्त स्थूलशरीर जाके उदयतै होय सो बादर नाम है।

बहुरि जाके उदयतै आहारादि पर्याप्तिकी रचना होइ सो पर्याप्तिनाम है। सो छह प्रकार है । आहारपर्याप्तिनाम। शरीरपर्याप्तिनाम। इंद्रियपर्याप्तिनाम । प्राणापान-पर्याप्तिनाम। भाषापर्याप्तिनाम । मनःपर्याप्तिनाम। इस प्रकार है । इहां कोऊ कहै । प्राणापानकर्मके उदयतै पवनका निकसना प्रवेश करना फल है । सोही उछ्‌वासकर्मके

उदयतै है इनमे कुछ विशेष नहीं । ताकूं कहै है । इनमें इंद्रिय अतींद्रिय भेद है । जो शीत उष्णकें संबंधतै उपज्या है । दुःख जाकै ऐसा पंचेंद्रियकै जो उछ्वास निःश्वास दीर्घनादरूप कर्णइंद्रिय अर स्पर्शनइंद्रियकै प्रत्यक्ष है ते तो उछ्वासनाम कर्मके उदयतै उपजै है । अर जो प्राणापानपर्याप्तिनामकर्मके उदयतैं कीए समस्त संसारीनिकै श्रोत्रेंद्रियनिकरि नहीं ग्रहणमें आवै तातै अतींद्रिय है । एकेंद्रियकै भाषा मन विना च्यारि है । विकलचतुष्ककै मनविना पांच है सैनी पंचेंद्रियके छह पर्याप्ति है । वहुरि जाके उदयतै आत्मा छहूं पर्याप्तिनिमें एक पर्याप्तिकूंहू पूर्ण करनेकूं नहीं समर्थ होइ सो अपर्याप्तिनाम हे ।

वहुरि जाकै उदयतै रसदिक सप्तधातु अर सप्त उपधातु अपने अपने स्थानमें स्थिरभावकूं प्राप्त होई सों स्थिरनाम है । तथा दुष्कर उपवासादि तपश्चरणतैकूं अंग-उपांगनकै स्थिरपणा बण्यारहै सिथिलपणा नहीं होइ सो स्थिरनाम है । जातैं रसतैं तो रुधिर होय हैं । रुधिरतैं मांस होय है । मांसतैं मेद होइ मेदतै हाड होइ हाडतै मज्जा जो मिजी सो होय मज्जातै वीर्य होय वीर्यतें संतान होइ। ऐसे सप्तधातु कह्या ।

वहुरि वात पित्त कफ सिरा स्नायु चाम जठराग्नि । ए सप्त उपधातु जानने । वहुरि जाके उदयतैं किंचित उपवासादि करनैंतै तथा स्वल्पहू शीत उष्णादिकके संबंधतै अंगोपांग कृश होजाय धातु उपधातुका स्थिरपणा नहीं होइ सो अस्थिरनाम हैं। वहुरि जाके उदयतै प्रभासहित शरीर होइ तथा देखनेवालेकूं इष्ट होइ सो आदेयनाम है । बहुरि जाके उदयतें प्रभारहित शरीर होइ सो अनादेयनाम है । वहुरि जाके उदयतें पुण्यरूप गुणनिकी विख्याततता प्रगट होइ सो यशःकीर्त्तिनाम है । जातें यश तो उज्वलगुण है । अर कीर्त्तिनाम विख्यातताका है । वहुरि पापरूप गुणनिकी विख्याततता जाके उदयतें होय सो अयशस्कीर्त्तिनाम है । वहुरि जाके उदयतै अचिंत्यविभूतिविशेषकरि युक्त अरहंतपणा उपजै सों तीर्थंकरत्वनाम है । ऐसे नामकर्मकी बीयालीस प्रकृतिनिहीका तिराणवै भेद जानने । अब गोत्रकर्मकी दोय प्रकृति कहै है ।

उच्चैर्नीचैश्च ।। १२ ।।

अर्थप्रकाशिका—उच्चगोत्र नीचगोत्र ए दोय गोत्रकर्मकी प्रकृति है । जाके उदयतै लोकपूज्य ऐसा अर जाका महानपणा विख्यात होइ ऐसे इक्ष्वाक्वादि कुलमै जन्म होय सो उच्चैर्गोत्रकर्म हैं । वहुरि जाके उदयतै निंद्य तथा दरिद्रसहित अप्रसिद्ध दुःखकरि आकुल कुलमै जन्म सो नीचैर्गोत्रकर्म है । अव अंतरायकर्मकी पांच प्रकृतिनिकूं कहै हैं ।

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।। १३ ।।

अर्थप्रकाशिका—दान लाभ भोग उपभोग वीर्य इन पांचनिमै विघ्न करनेवाला पंचप्रकार अंतरायकर्म है । जो दान दिया चाहै तोहू जाके उदयतै देनेसमर्थ नही होइ सो

दानांतराय है। बहुरि लाभकी इच्छा करताहू जाके उदयते लाभकूं प्राप्त नहीं होइ सो लाभांतराय है। बहुरि जाके उदयतै भोंगकीया चाहै तोहू भोगनेंसमर्थ नही होइ सो भोगांतराय हैं। बहुरि उपभोग कीया चाहै तोहू जाके उदयते उपभोग करने समर्थ नहीं होइ सो उपभोगांतराय है। बहुरि जाके उदयतै उत्साहरूपक होनेका इच्छकहू शरीरमें सामर्थ्यकूं नहीं प्राप्त होइ सो वीर्यांतराय है इहां गंध अतर पुष्प स्नान तांबूल अंगराग भोजन पानादिक तो भोग है। अर शयन स्त्री आभरण हस्ती घोडा रथ पयादा महल वाग इत्यादिक उपभोग जानने। ऐसे ज्ञानावरणादिकनिका उत्तरप्रकृतिबंध कह्या। अब जो कर्म अपने कर्मस्वभावकों छांडि आत्मातै जुदा जेतैं काल नहीं होइ स्थितिबंध है। सो सो दोय प्रकार है। एक जघन्य एक उत्कृष्ट दोयप्रकार स्थितिबंध है। तिनमें उत्कृष्ट स्थितिकूं कहै कहै।

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोठ्यः परा स्थितिः ॥१४॥

अर्थप्रकाशिका—आदिका तीन जो ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अर अंतराय। इन च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। संज्ञीपंचेंद्रियपर्याप्तकजीवकै ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अंतरायकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटींसागरप्रमाण है। तिनमैंहू ज्ञानावरणकी पांच। दर्शनावरण नव। अंतरायकी पांच। असातावेदनीय एक। इन वीसप्रकृतिनिकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण हैं। अर सातावेदनीय एककी उत्कृष्टस्थिति पनराकोटींकोडोसागरकी है।

बहुरि अन्य जीवनिकी स्थिति आगमतै जाननी। सोही कहे है। एकेंद्रियपर्याप्तके इन च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति एक सागरोपमके सप्तभाग करिए तिनमे तीनभागप्रमाण है। द्वींद्रियपर्याप्तके पचीस सागरोपमके सातभागमे तीन भागप्रमाण है। त्रींद्रियपर्याप्तके पचाससागरोपमके सातभागमे तीनभागप्रमाण है। चतुरिंद्रियपर्याप्तके सौसागरोपमके सप्तभागमे तीन भागप्रमाण है। असैंनी पंचेंद्रियपर्याप्तके हजारसागरोपमके सप्तभागमे तीनभागप्रमाण है। अर संज्ञीपंचेद्रिय अपर्याप्तके अनंतसागरोपमकोटाकोटीप्रमाण उत्कृष्टस्थिति है।

बहुरि एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय असंज्ञीपंचेंद्रिय अपर्याप्तके च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति अपने अपने पर्याप्तिकी उत्कृष्टस्थिति कही तिनमे पल्यका असंख्यातमाभागप्रमाण ऊन है। अब मोहनीयकीं उत्कृस्थिति कहेहै।

सप्ततिर्मोहनीस्य ॥ १५ ॥

अर्थप्रकाशिका—मोहनीयकर्ममे मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्टस्थितिबंध संज्ञीपंचेद्रियपर्याप्तके सतरीकोडाकोडीसागरप्रमाण जानना एकेद्रियपर्याप्तके उत्कृष्टस्थिति एकसागरकी। द्विंद्रियके

पचीस सागरकी। त्रींद्रियकें पचाससागरकी। चतुरींद्रियके सोसागरप्रमाण है। बहुरि पर्याप्तक असंज्ञिपंचेद्रियके एकहजारसागरद्रमाण उत्कृष्टस्थिति जाननी। वहुरि एकेंद्रिय द्विंद्रिय त्रींद्रिय चतुर्रिद्रिय तथा असंज्ञीपंचेद्रिय अपर्याप्तके अपनीअपनी पर्याप्तिकी स्थिति कही तातै पल्यकै असंख्यातभाग घाटी जाननी। अर सैनीअपर्याप्तककै अंत:कोडाकोगीसागरप्रमाणस्थिति जाननी अव नामगोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति कहेहैं।

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

अर्थप्रकाशिका—पंज्ञींदंचेंद्रिपर्याप्तके नामकर्म अर गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति बीसको-डाकोडीसागरप्रमाण है एकेंद्रियपर्याप्तके एकसागरका सातभागमे दोयभागप्रसाण है। द्वींद्रिय-पर्याप्तकें पचीससागरका सप्तभागमे दोयमागप्रमाणहै। त्रींद्रियपर्याप्तकै पचाससागका सप्तभा-गमे दोयभागप्रमाण है। चतुरिरिद्रियपर्याप्तके सोसागरका सप्तभागमे दोयभागप्रमाण है। असंज्ञीपंचेंद्रियकें हजारसागरका सातभागमे दोयभागप्रमाण है। संज्ञीपंचेंद्रियअपर्याप्तके अंत:कोडाकोडीसागरप्रमाण है। वहुरि एकेंद्रियद्वींद्रिय त्रींद्रय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय असैनी अपर्याप्तके अपनेंअपनें पर्याप्तक उत्कृष्टस्थितितै पल्योपमकै असंख्यातवैंभाग ऊन स्थिति जाननी अव आयुकी उत्कृष्टस्थिति कहेहै।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

अर्थप्रकाशिका— आयुकर्मकी उत्कृष्टस्थिति तेतीससागरोपमकी है। संज्ञीं पचेद्रिय पर्याप्तककै उत्कृष्टस्थिति तेतीससागरोपमकी है। असंज्ञीकै पल्यकै असंख्यातवैभागप्रमाण है अर एकेद्रियादिकनिकै आयुका उत्कृष्टस्थितिबंध कोडिपूर्वका जानना। ऐसे मूलप्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध कह्या।

अब उत्तरप्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध कहेहैं। ज्ञानावरण पांच दर्शनावरण नव अंतरायकी पांच असातावेदनीय एक असे बीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध तीस कोडाकोडी-सागरका होयहै। अर सातावेदनींय स्त्रीवेद मनुष्यद्विक इन च्यारका पंद्रह कोटाकोटीसागर-प्रमाणस्थितिबंध है। दर्शनमोहबंधविषै एक मिध्यात्वही है ताकी सत्तरी कोडाकोडीसागरकी स्थिति है। चारित्रमोहनीयमे षोडशकषायनिकी चालीस कोटाकोटीसागरकी स्थितिबंध है हुंडकसंस्थान असंप्राप्तसृपाटिकसंहनन दोय प्रकृतिकी बीस कोटाकोटीसागरकी स्तिति है। वामनकी अर कीलककी अठारह कोटाकोटीकी स्थिति है। कुब्जकी अर अर्द्धनाराचकी षोडशकोडाकोडीकी। स्वातीककी अर नाराचकी चोदह कोटाकोटीकी। न्यग्रोधपरिमंडलका अर वज्रनाराचकी वारह कोटाकोटींकी। समचतुरस्त्रकी अर वज्रर्षभनाराचकी दशकोटाकोटी प्रमाणस्थितिबंध हैं।

वहुरि विकलत्रय अर सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन छहकी अठरहकोडाकोडींसागरकी उत्कृष्टस्थिति है। वहुरि अरति शोक षंढवेद तिर्यंचग्गति तिर्यंगत्यानुपूर्व्यं भय जुगुप्सा नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्यं तैंजस कार्मंण औदारिक ओदारिकअंगोपाग वैंक्रियिक वैंक्रियिकअंगोपांग आतप उद्योत नीचैर्गोत्र त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक वर्ण रस गंध स्पर्श अगुरुलघु उपघात परघात उछ्वास एकेंद्रिय पंचेद्रिय जाति निर्माण स्थावर अप्रशस्त विहायोगति अस्थिर अशुभ दुर्भग दुःस्वर अनादेय अयशःकीर्तिइनी इकतालीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध बीसकोडाकोडीसागरप्रमाण है। अर हास्य रति उच्चगोत्र पुरूषवेद स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय यशःकीर्ति प्रशस्त विहायोगति देवगति देवगत्यानुपूर्व्यं इन तेरह प्रकृतिनिका दशकोडाकोडींसागरप्रमाणस्थिति है। अर आहारक आहारकअंगोपांग तीर्थंकरत्व इन तीन प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध अंतःकोटाकोटींसागरप्रमाण है। अर देवआयु नरकायुका उत्कृष्टस्थितिबंध तेतीससागरप्रमाण है। तिर्यग्मनुष्यआयुका स्थितिबंध तीनपल्यप्रमाण हैं। ऐसे बंधयोग्य एकसोबीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध कह्या सो संज्ञीपर्याप्त पंचेद्रियकेही होयहै। एकेंद्रियादिकनिकें यथायोग्य आगमतै जाननां। सो इनमे देव मनुष्य तिर्यक् आयुविना एकसो सतरह प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंधकूं संक्लेशपरिणामही कारण हैं। उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामतै उत्कृष्टस्थितिवंध होयहै। अर विशुद्ध परिणामनिकरि जघन्यस्थितिबंध होयहै। अर तिर्यक् मनुष्य देवायुको उत्कृष्टविपुद्धपरिणामकरि उत्कृष्टस्थितिबंध होय। अशुद्धपरिणामनिकरि जघन्यस्थितिबंध होयहैं।

वहुरि आहारकद्विक अर तीर्थंकरनाम देवायुष्य इन च्यार प्रकृतिविना एकसो सोलह प्रकृतिनिका सर्वोत्कृष्टस्थितिका बांधनेवाला मिथ्यादृष्टिजीवही आगममे कह्या हैं। अर देवायु आहारकद्विक तीर्थंकरप्रकृति इन च्यार प्रकृतिनिका सम्यग्दृष्टीही बंध करेहै। अब णघन्यस्थितिबंधकूं वर्णन करेहै।

अपरा द्वादशमुहूर्त्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थप्रकाशिका—देदनीयकर्मकी जघन्यस्थिति बारहमुहूर्त्तकी है सो सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानविषैंही बंधै है। अव नामगोत्रकी जघन्यस्थिति कहै है।

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थप्रकाशिका—नामगोत्रकी जघन्यस्थिति आठमुहूर्त्तकी हैं सो सांपरायगुणस्थानमेंही बंधै है। अन्यकर्मकी स्थिति कहै है।

शेषाणामन्तर्मुहूर्त्ता ॥ २० ॥

अर्थप्रकाशिका–ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय मोहनीय आयु इन पांचकर्मनिकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त्तकी बंधै है सो सूक्ष्मसांपरायविषैही है। अर मोहनीयकी जघन्यस्थिति अंनर्मुहूर्त्तकी बंधै है। सो अनिवृत्तिवादरसांपरायगुणस्थानहीमें बंधै है। आयुको जघन्यस्थिति संख्यातवर्षका आयुको धारक मनुष्य तिर्यंचही बांधै हैं। ऐसे स्थितिबंध तो कह्या अब अनुभव बंधकूं कहै है।

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

अर्थप्रकाशिका–विपाक है सो अनुभव है विशिष्ट। कहिए विशेषरूप जो पाक कहिए उदय सो विपाक कहिए। तथा विविध कहिए नानाप्रकार जो पाक सो विपाक है। तहां उपकार अपकार करने है स्वरूप जिनका ऐसे ज्ञानावरणादिक कर्मनिकी प्रकृतिनिका पूर्व आस्रवके निमित्ततै तीव्र मंद मध्य भावकरि जो उदय सो विपाक है। अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव लक्षण जो निमित्त तिनके भेदतै उपज्या जो नानाप्रकारका पाक कहिए उदय सो विपाक है। इस विपाकहीकूं अनुभव कहिए है। शुभपरिणामनिका प्रकर्षपणातै आधिक्यतातै पुण्यप्रकृतिनिमे अधिकरस पडे है सोही प्रकर्ष अनुभव होय है। अर अशुभप्रकृतिनिमैं मंदरस पडै है।

वहुरि अशुभपरिणामनिकी आधिक्यतातैं अशुभप्रकृतिनिमै अधिक रस पडे है। अर शुभप्रकृतिनिमै मंद रस पडे है। ऐंसे कह्या जो अनुभव सो स्वमुख अर परमुखकरि दोय प्रकार प्रवर्तै है। समस्त मूल अष्टकर्मनिका तो स्वमुखकरिही अनुभव होय है। अन्यकर्म अन्यकर्मरूप होइ उदय नहीं आवैं है तातैं स्वमुखोदय कहिए है। अर उत्तरप्रकृति है। तिनमें तुल्यजातीयप्रकृति है। तिनके परमुखकरिभी अनुभव होय है। जैसे मतिज्ञानावरणीय श्रुतज्ञानावरणीयरूप होयकैहू उदय आवे है। असातावेदनीय है सो कारणनिके वशतैं सातावेदनीयरूप भी रस देहै ऐसे परमुखकरिभी उदय आवै है। परंतु दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय परस्पर नहीं पलटै है। दर्शनमोहनीय है। सो चारित्रमोहनीयरूप होइ रस नहीं दे हैं। चारित्रमोहनीय है सो दर्शनमोहनीयरूप होइ उदयमै नहीं आवे है। बहुरि च्यारों आयुभी परस्पर पलटि उदय नहीं आवै है। जो बांधी सोही अपना स्वरूपकरि रस देहै। सोही कहे हैं।

स यथानाम ॥ २२ ॥

अर्थप्रकाशिका–जो प्रकृतिनिका नाम है तैसाही ताका अनुभव है। जैसे ज्ञानावरणका फल ज्ञानका अभाव है। दर्शनावरणका फल दर्शनशक्तिका अवरोध होना है।

ऐसे समस्त मूलप्रकृतिनिका वा उत्तरप्रकृतिनिका जाका जैसा नाम तैसाही फल देहै सोही अनुभव है। अब कहै है। जो कर्म उदयमें आय तीव्र मंद रस दीए पछै आवरण जो पड-दाका आच्छादनकीज्यों जीवके लग्या रहे कि साररहित होइ आत्मातें छूटि पडे है। सो कहे है।

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थप्रकाशिका––तिस अनुभवपाछैं निर्जराही है। जो कर्मबंध भया सो उदयके अवसरमें सुखदुःख देय निर्जरेही। जातैं स्थितिको क्षय होते आत्मा एक समयहू उपरि नहीं रहिसके है। आत्मातै छूटि कर्मपणाके अभावतै अन्यरूप होई परिणमें है। सोही निर्जरा है। सो दोयप्रकार है। एक सविपाकनिर्जरा दूजी अविपाकनिर्जरा। तहां अनेक एकेंद्रियादि-जातिविशेषकरि घूर्णित जो चतुर्गतिरूप संसारसमुद्रमें चिरकालते परिभ्रमण करते जीवके अनेक शुभ अशुभ कर्म है तिनका उदयका काल आय प्राप्त होय तदि जैंसा विकल्पनिकरि बंध कीया तिसरूप भोगतेके उदयावलीरूप नालीकरिकैं जो कर्मरस देय झडे है सो सविपाकनिर्जरा है। सो या सविपाकनिर्जरा च्यारोंगतिके समस्त संसारीजीवनिकैं होय है।

वहुरि जिस कर्मका उदयकाल तो नहीं आया अर तपश्चरणादिक सामर्थ्यके विशेषतै उदीरणा होई कर्म झडिजाय सो अविपाकनिर्जरा हैं। जैसे आम्रफल पालमें शीघ्र पचै तैसे जानना। इहां सूत्रमें च शब्द है सो तपसा निर्जरा च ऐसे आगे कहैगे ताकूंहू जनावे है। इहां कोऊ कहे संवरके पीछे निर्जरा कहना था इहांही क्यों कह्या ताका समा-धान। जो इहां लघु करनेका प्रयोजन है विपाककूं अनुभव कह्या अनुभव नाम भोगनेका है। भोगनेमें आया सो निर्जरैंही है। तातै निर्जरा थोरेंमैं कह्या गया। कर्मकी प्रकृति दो प्रकार है। घातिका अघातिका। तहां ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ए च्यार घातिका है। अन्य च्यार अघातिका है। तिनमैं घातिकाहू दोय प्रकार है। सर्वघातिका अरु देशघातिका। तिनमें ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण तीन अंतराय पांच संज्वलन कषाय चार नोकषाय नव अर सम्यक्त्वप्रकृत्ति एक। ऐसे छबीस देशघातिका है। अर केवलज्ञाना-वरण केवलदर्शनावरण।

वहुरि निद्रा पांच मिथ्यात्व एक अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए वारह कषाय। ऐसे वीस प्रकृति सर्वघातिका है। अर सम्मिथ्यात्वप्रकृति जात्यंतरसर्व-घाति है। तिस सहित एकवीस सर्वघातिका है। ऐसे सैतालिस प्रकृति घातिका है।

वहुरि नामकर्मकी प्रकृतिनिमें पंच शरीर तीन अंगोपांग एक निर्माण पांच बंधन पांच संघात छह संस्थान छह संहनन आठ स्पर्श पांच रस दोय गंध पंच वर्ण एक अगुरुलघु

एक उपघात एक परघात एक आताप एक उद्योत प्रत्येक साधारण शुभ अशुभ स्थिर अस्थिर। ए वासठि प्रकृति पुद्‌गलविपाकी है। इनका विपाक जो उदय सो पुद्‌गलमें आवै है। वहुरि च्यारि आनुपूर्व क्षेत्रविपाकी है। जातै जीवको परलोकगमन करतै पूर्वलादेहका आकारकूं धारता कार्मणशरीरसहित आत्माका गमन होय तदि मार्गमें जीवकें प्रदेशनिकां आकारूप क्षेत्रहीमै इनिका विपाक कहिए उदय हैं तातै क्षेत्रविपाकी है।

वहुरि च्यार आयुकर्म भवविपाकी है इनका विपाक भवधारणरूपही हैं। अर अवशेषप्रकृति अठंतरि जीव विपाकी हैं। तें कोन सो कहै है। च्यार घातियानिकी सैंतालीस दोय वेदनीय दोय गोत्र सत्ताइस नामकर्मकी तिनमें गति च्यार जाति पांच उछ्वास एक विहायोगति त्रस स्थावर शुभग दुर्भग सुस्वर दुःस्वर सूक्ष्म वादर पर्याप्त अपर्याप्त आदेय अनादेय यशस्कीर्ति अयशस्कीर्ति तीर्थंकर। ऐंसे सव मिलि अठंतरि जीवविपाकी कही जीवके उपयोगमें उदय देवै है तातै जीवविपाकी है। ऐसे सत्ताकी अपेक्षा एकसो अठतालीस कही। अब बंधके च्यार भेदनिमै प्रदेशबंधकूं कहै है।

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्टनन्तानन्तप्रदेशाः ॥ २४ ॥

अर्थप्रकाशिका—नाम जो समस्तज्ञानावरणादि कर्मप्रकृति तिनकूं होनेकूं कारण ऐंसे सर्वभवनिमें मन वचन कायके योगविशेषतै सूक्ष्म एकक्षेत्रमै अवगाहकरि तिष्ठते समस्त आत्मप्रदेशनिमै अनंतानंत कर्मप्रदेश है। भावार्थ। एक आत्माके असंख्यात प्रदेश है। तिस एकएक प्रदेशविषै अनंतानंत पुद्‌गलके स्कंध एकएक समयमै बंधरूप होय तिष्ठैं सो प्रदेशबंध है। तें पुद्‌गलस्कंध कैंसे कहै। समस्त ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेकूं कारण है। वहुरि कैसे कहै समस्त त्रिकालवर्त्ती भवनिमै मन वचन कायरूप योगनिके निमित्ततै आवै है। अर सूक्ष्म हैं। इंद्रियगोचर नहीं।

वहुरि आत्माके प्रदेश अर कर्मके प्रदेश क्षीरनीकीज्यों एकक्षेत्रमें अवगाहकरि तिष्ठै है। अर एकएक आत्माके प्रदशमें अनंतानंत कर्मपुद्‌गल तिष्ठै है। ऐसे प्रदेशबंध कह्या। अब बंधपदार्थमें अंतर्भुत जो पुण्यवंध पापवंध कह्या चाहिए तिनमें प्रथम पुण्यप्रकृतिनिकूं कहै है।

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

अर्थप्रकाशिका—साता वेदनीय अर शुभ आयु शुभनाम शुभगोत्र पुण्यप्रकृति है। घातियाकर्म तो च्यारों अशुभही है। अर अघातियामें पुण्य पाप दोऊरूप है। तिनमे अडसठी

प्रकृति पुण्यरूप है तिनके नाम कहेहैं। साता वेदनीय एक अर तिर्यंक् मनुष्य देव ए तीन आयु अर उच्चगोत्र एक अर नामकर्मकी त्रेसठि तिनमे मनुष्यदेवगति दोय अर पंचेंद्रियजाति एक अर शरीर पांच अर अंगोपांग तीन अर निर्माण एक अर बंधन पांच संघात पांच समचतुरस्र-संस्थान एक अर वज्रर्षभनाराचसंहनन एक अर आठ स्पर्श पांच रस दोय गंध पंच वर्ण ए प्रशस्तवर्णादिकनिकीं वीस अर मनुष्य देवगत्यानुपूर्व दोय अर अगुरूलघु परघात आतप उद्योग उछ्वास प्रशस्त विहायोगति प्रत्येंशरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ वादर पर्याप्त स्थिर आदेय यशस्कीर्ति तीर्थंकर ऐसे नामकर्मकी त्रेसठि समस्त अडसठि पुण्यप्रकृति जाननी। अव पापप्रकृतिनिकूं कहेहैं।

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

अर्थप्रकाशिका—एकही पुण्यप्रकृति तिनतै अवशेष रही ते पापप्रकृति है। तिनमे च्यार धातियाकर्मनिकीं सैतालीस प्रकृति अर असतावेदनीय एक अर नरकायु एक नीचगोत्र एक अर नामकर्मकी पचास ए समस्त सो प्रमाण पापप्रकृति है। तिनमे ज्ञानावरणकी पांच दर्शनावरणकी नव मोहनीयकी अठाईस अंतरायकी पांच ऐसे घातीप्रकृति सैतालींस है। अर नरकगती तिर्यग्गति एकेंद्रियादि च्यारि जाति पांच संस्थान पंच संहनन अर अप्रशस्त स्पर्श रस गंध वर्ण बीस अर नरक तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य दोय अर उपघात अप्रशस्त विहायोगति स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्ति साधारणशरीर असुर दुर्भग अस्थिर दुःस्वर अनादेय अयशस्कीर्ति ऐसे नामकर्मकी पचास। अर असातावेदनीय अर नरकायु अर नीचगोत्र ऐसे सो हुई। इहां अष्ट स्पर्श पांच रस दोय गंध व पंच वर्ण ए वीस प्रकृति प्रशस्त अप्रशस्त दोऊरूप है। तिनमे प्रशस्त पुण्यमे कही अप्रशस्त पापमें कही। ऐसे बंधवर्णन कीया।

इहां ऐसा विशेष जानना। जो कर्मकी उत्तर प्रकृति एकसो अडतालिस है तिनमे बंधके कथनमे एकसो बीस प्रकृतिहीं आगममे कहीहैं। जातै पंच बंधन पंच संघात ए दश प्रकृति तो शरीरते अविनाभावी है। औदारिकादिशरीरका बंध होइगा ताके औदारिक बंधनका अर संघातका नियमतै बंध होयहींगा। तातैं शरीरपंचकाही बंधमे ग्रहण कींया अर बंधन संघात तो विनाकह्याही आगया तातै बंधन पांच संघात पांच ऐंसे दश प्रकृति तोए घटि अर स्पर्श आठ रस पांच वर्ण पांच गंध दोय इन वींस प्रकृतिनिमे स्पर्श रस गंध वर्ण ए भेदरहित च्यारहीं बंधमे ग्रहण करीं तातैं सोलह प्रकृति ए घटी।

बहुरि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति है तिनमेतै बंधमें एक मिथ्यात्वहींका बंध होयहै तातै दोय ये घटी। ऐंसे बंधन पंच संघात पंच अर स्पर्शादिकनिके सोलै ऐसे सब मिली अटाईस प्रकृति भई तिनकूं एकसो अडतालीसमे घटाये बंधयोग्य एकसोबीस प्रकृति जाननी।

तिनमे तीर्थंकरप्रकृतिका बंधतो सम्यक्त्वहीमें होइ। तहाँ अविरष्तगुणस्थानकूं आदि लेय अष्टमगुणस्थानका छठा भागपर्यंतहीं होइ। अर तीर्थंकरप्रकृतिका बंधका आरंभ मनुष्यकर्मभूमिककैही होय। अर केवली तथा श्रुतकेवलीकै निकटही होय। वहुरि आहारकद्विकका बंध सप्तमगुणस्थान तथा अष्टमगुणस्थानमेही होयहै। अर आयुका बंध मिश्रगुणस्थानमे नही होय। ऐसा नियम जानना। तिनमे मिथ्यात्वगुणस्थामे तो तीर्थंकर अर आहारकद्विकका बंध नही होय। तातै इन तोन विना एकसो सतरह प्रकृतिहीं बंधयोग्य है।

वहुरि सासादनमे मिथ्यात्व हुंडकसंस्थान नपुसकवेद असृपाटिकसंहनन एकेद्रिय स्थावर आतप सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण विकलत्रयकी तीन नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्य नरकायु ए षोडशप्रकृति मिथ्यात्वभावकरिही बंधेहै तातैं सासादनादिकनिमे नही बंधेहै इनकी मिथ्यात्वहीमे व्युच्छित्ति भइ तातै सासादनमे एकसो एकहीं बंध योग्य है। वहुरि सासादनके अंतमें पचीसकी व्युच्छित्ति है। च्यारि अंनतानुबंधी अर निद्रानिद्रा अर प्रचलाप्रचला अर स्त्यानगृद्धि तथा दुर्भग दुःस्वर अनादेय संस्थान च्यार संहनन च्यार अप्रशस्त विहायोगति स्त्रीवेद नीचगोत्र तीर्यंगति तिर्यग्गात्यानुपूर्व्य तिर्यक्आयु उद्योत ए पचीस प्रकृतिका बंध तो मिथ्यात्वसासादनहीमें होयहै ऊपरि नही। तातें एकसो एकमे घटि तदि छिहतरि चाहिए परंतु मिश्र आयुका बंध होय नही तातै देव मनुष्य दोय आयुबंधका अभाव भया तदि मिश्रगुणस्थानमे चहोत्तर प्रकृति बंधयोग्य है।

वहुरि मिश्रतै तो व्युच्छित्ति नही तातैं अविरतमेंहू चहोत्तर चाहिए परंतु इहां आयुका बंध हींयहै तथा तीर्थंकरप्रकृतिकाहू बंध होयहै तातैं बंधयोग्य सत्तरि है। वहुरि अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय वज्रर्षभनाराचसंहनन औदारिकद्विक मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्व्य मनुष्यआयु इन दशकी व्युच्छित अविरतगुणस्थानमें होयहै तातै देशविरतमे सडसठिहिका बंध होयहै। वहुरि पंचमगुणस्थानमे च्यार अप्रत्याक्यानावरणकी व्युच्छित्ति तदि छठे प्रमत्त गुणस्थानमे त्रेसठिही बंध योग्य है।

वहुरि प्रमत्तगुणस्थानमें अस्थिर अयशःकीर्ति अशुभ असाता अरति शोक इनि छह प्रकृतिके बंधकी व्युच्छित होइ तदि अप्रमत्तगुणस्थानमे बंधयोग्य सतावन तिनमे आहारकद्विक मिले गुणसाठि बंध योग्य है। वहुरि अप्रतगुणस्थानमे एक देवआयुकीं व्युच्छित भई तातै अपूर्वकरणमे बंधयोग्य अठावन प्रकृति है। वहुरि अपूर्वकरणमे पहले भागमे तो निद्रा प्रचलाको व्युच्छिति होह है अर छठा भागमें तीर्थंकर निर्माण प्रशस्त विहायोगति पंचेद्रिय तैजस कार्मण आहारकद्विक समचतरस्रसंस्थान देवगति देवगत्यानुपूर्व्य वैक्रियिक वैक्रियिक अंगोपांग स्पर्श रस गंध वर्ण अगुरूलघु उपघात परघात उच्छ्वास त्रस वादर पर्याप्त प्रत्येक स्थिर शुभ शुभग सुस्वर आदेय ऐसें तीसकी व्युच्छिति होय है।

बहुरि अंतभागविषै हास्य रति भय जुगुप्सा इनि च्यारिकी व्युच्छिति होयहै। ऐसे अपूर्वकरणमे छतीस प्रकृतिकी व्युच्छिति होय है तदि अनिवृतिकरमै बाईस प्रकृतिही बंधयोग्य है। बहुरि अनिवृतिकरणके पंचभागनिमे अनुक्रमतै पुरूषवेद संज्वलन च्यार कषाय इन पांचकी व्युच्छिति होय है तदि सूक्ष्मसांपरायमे सतरह प्रकृति बंधयोग्य है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायके अंतमे पांच ज्ञानावरण पांच अंतराय च्यार दर्शनावरण यशस्कीर्ति उच्चगोत्र इनि सोलहके बंधके व्युच्छिति होय है तदि उपशांतकषाय क्षींणकषाय सयोगोजिन इन तीन गुणस्थाननिमे एक सातावेदनीयही बंधैहै ताकी एक समयकी स्थिति सो बंधके समयमेंही उदय होय निर्जरैहै। अर अयोगी बंधरहित है। ऐसे गुणस्थाननिमे बंधप्रकृति कही मार्गणानिमे आगममे कहीहैं सो जाननी।

बहुरि इनमेहू ज्ञानावरण पांच दर्शनावरण नव अंतराय पांच मिथ्यात्व एक कषाय सोलह भय जुगुप्सा तैजस कार्मण अगुरूलघु उपघात निर्माण वर्णचतुष्क ए सैंतालीस प्रकृति अपनी व्युच्छितिपर्यंत ध्रुव उदयरूप है। इनका उदय समस्त संसारीनिकें अपना व्युच्छितिके गुणस्थानपर्यंत ध्रुवउदयकूं धारेहै। इनि प्रकृतिनिका उदय अनादितैं सासता निरंतर है तातै ध्रुवउदयरूप है बहुरि सैतालींसतो कही सो अर तीर्थंकर अहारकद्विक च्यार आयु इन चोवन-प्रकृतिनिका ध्रुवबंध जानना इनका निरंतर बंध हुवाहीं करेहै। परंतु तीर्थंकर अर आहारक-द्विक ए तीनप्रकृतिनिका बंध है सो तो बंधका प्रारंभकाल पाछै जिन गुणस्थाननिमें बंध सभवे तहां तो निरंतर बंधेहै। अर बंधयोग्य गुणस्थानका अभाव होजायतो बंधकूं नही प्राप्तहोय है अर आयु है सो बंधका प्रारंभ भए पीछैं आयुबंधका त्रिभागका अंतर्मुहूर्त्तके समय है तिनमेही निरंतर बंधेहै अन्य अवसरमे निरंतर बंधी नहीहै।

बहुरि त्रसस्थावरमेंतै एक बादरसूक्ष्ममे एक पर्यात अपर्याप्तमे एक प्रत्येकसाधारणमें एक स्थिर अस्थिरमे एक शुभअशुभमे एक शुभगदुर्भगमे एक आदेय अनादेयमै एक यशअयशमें एक गतिच्यारिमे एक जाति पांचमें एक शरीरतीनमे एक संस्थानछहमे एक आनुपूर्व्य च्यारमें एक ऐसे चोदह प्रकृति नामकर्मकी निरंतर बंधीं हैं। ऐसे तौ बंध कह्या।

अब उदयमें ज्ञानाबरणादि एकसो बाईस प्रकृति है तिनमै ऐसा उदयका नियम है। आहारक शरीरका उदय प्रमत्तगुणस्थानमैही होइ तीर्थंकरप्रकृतिका उदय केवलीहीकै होय है। मिश्रप्रकृतिका उदय मिश्रगुणस्थानमैही होय अन्यमें नहीं होय। सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय क्षयोपशमसम्यक्त्वहीमै होय है। अर आनुपूर्व्यका उदय मिथ्यात्व सासादन अविरत इन तीन गुणस्थाननिमैही होई अन्यमै नहीं होय। इहां इतना विशेष जो सासादनगुण-स्थानमै मरणकरि नरक नहीं जाय यातै नरकानुपूर्व्य मिथ्यात्व अर अविरत इन दोय गुणस्थाननिमैही होय है।

अब गुणस्थाननिमै उदय योग्य प्रकृति कहै है। उदययोग्य प्रकृति एकसो बाईस तिनमें सम्यक्त्वप्रकृति अर मिश्रप्रकृति अर आहारकद्विक तीर्थंकर इन पांच विना मिथ्यात्वगुणस्थानमें एकसो सतरहप्रकृतिनिका उदयकी योग्यता है। बहुरि मिथ्यात्वमें मिथ्यात्व आताप सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण इनि पंचप्रकृतिनिकी व्युच्छित्ति होय अर एक नरकानुपूर्व्यका उदय नहीं तातै सासादनमें एकसो ग्यारह उदययोग्य हैं।

बहुरि च्यार अनंतानुबंधी एकेंद्रिय स्थावर विकलत्रय इन नव प्रकृतिनिका उदय सासादनपर्यंतही है तातैं मिश्रगुणस्थानमें एकसो दोय प्रकृति भई परंतु एक मिश्रप्रकृतिका उदय तो मिलिगया अर तीन आनुपूर्व्यका उदय मिश्रमै होइ नहीं तातै निकासि लिनी तदि सौ प्रकृतिका उदय होइ। बहुरि मिश्रगुणस्थानमें एक मिश्रप्रकृतिकी व्युच्छित्ति होइ तदि अविरतमें नीन्याणवैं प्रकृति रही फिर च्यार आनुपूर्व्य एक सम्यक्त्वप्रकृति ऐसे पांच मिले उदययोग्य एकसो च्यार प्रकृति है। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय अर वैक्रियिक अष्टक मनुष्यगत्यापूर्व्य तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य दुर्भग अनादेय अयश ऐंसे सतरह प्रकृति चतुर्थगुणस्थानके अनंतपर्यंतही हैं। तातैं व्युच्छित्ति भई तदि देशसंयम गुणस्थानमैं उदययोग्य सत्यासि प्रकृति है।

बहुरि प्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय अर तिर्यंच आयु उद्योत नीचगोत्र तिर्यंचगति इन आठप्रकृतिनिकी देशसंयमके अंतमें व्युच्छित्ति होई है तदि प्रमत्तगुणस्थानमें उदययोग्य गुण्यासी प्रकृतिमै आहारकद्विक मिलें इक्यासी उदययोग्य हैं। बहुरि आहारकद्विक अर स्त्यानगृद्धि अर निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला इन पांचकी व्युच्छित्ति प्रमत्तगुणस्थानमें होई है तदि अप्रमत्तमें छिहंतरि उदयके योग्य है। बहुरि सम्यक्त्वप्रकृति अर अंतका तीन संहनन इन च्यारकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमै होई है तदि अपूर्वकरणमें उदययोग्य बहत्तरि प्रकृति है। बहुरि छह नोकषायकी व्युच्छिति अपूर्वकरणमें होई है तदि अनिवृत्तिकरणमें छठी प्रकृति उदययोग्य है।

बहुरि अनिवृत्तिकरणमै तिन वेद संज्वलनक्रोध मान माया इनि छहकी व्युच्छित्ति भइ तदि सूक्ष्मसांपरायमै साठिही उदययोग्य है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायमैं सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति होइ है तदि उपशांतकषायमें गुणसठि प्रकृतिका उदयकी योग्यता है। बहुरि वज्रनाराच अर नाराच दोऊनिकी व्युच्छित्ति उपशांतकषायमैं होइ है तदि क्षीणकषायमें सत्तापन प्रकृति उदययोग्य है। बहुरि निद्रा प्रचला अर पांच ज्ञानावरण अर पांच अंतराय च्यार दर्शनावरण इन सोलहकी व्युच्छित्ति क्षीणकषायमें होई तदि सयोगीगुणस्थानमै एक तीर्थंकर और मिली बीयालीस उदययोग्य है।

वहुरि एक वेदनीय निर्माण स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुस्वर दुःस्वर प्रशस्तविहायोगति औदारिक औदारिक अंगोपांग तैजस कार्मण समचतुरस्रसंस्थान स्पर्श रस गंध वर्ण अगुरुलघु उपघात परघात उछ्वास प्रत्येक ऐसे तीसकी व्युच्छित्ति सयोगी गुणस्थानमै होइ है तदि ओयोगीमैं वारहका उदय होय है। वहुरि एक वेदनीय मनुष्यगति पचेंद्रिय सुभग त्रस बादर पर्याप्त आदेय यशस्कीर्त्ति तीर्थंकरत्व मनुष्यायु उच्चगोत्र इन वारह प्रकृतिनिकी व्युच्छित्ति अयोगी भगवानके होइ है तदि सिद्धपरमेष्ठी समस्त कर्मोदयरहित अनंतज्ञान अनंतसुखमय निरंतर अविनाशी तिष्ठै है। ऐसे इहां गुणस्थाननिमें उदयप्रकृति कही। अर मार्गणानिमै आगमके अनुसार जाननेयोग्य है।

इहां ऐसा अन्यविशेष जानना। गति आनुपूर्व्य आयु ए तीन सदृशस्थानमै युगपतहि उदय आवै हैं। अर आतापप्रकृतिको उदय वादर पर्याप्त पृथ्वीकायकैंही होय है। अर उच्चगोत्रको उदय देव मनुष्य दोय गतिहीमै होइ है। अर स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला इन तीनका उदय कर्मभूमिहीके मनुष्य तिर्यंचनिकै पर्याप्त अवस्थामें उदय आवै है अन्यके नहीं। परंतु आहारक तथा वैंक्रियिक ऋद्धिके प्रगट करनवारेनिकै उदय नहीं होय है। और अव्रतगुणस्थानमे अपर्याप्तअवस्थामें स्त्रीवेदका उदय नहीं अर घमानरकका अपर्याप्तविना अन्य द्वितीयादिपृथ्वीके नारकीनिका अपर्याप्तअवस्थाका अव्रतगुणस्थानमैं नपुंसकवेदकाहू उदय नहीं तातै स्त्रीवेदका अव्रतगुणस्थानमै च्यारों आनुपूर्व्यका उदय नहीं अर नपुंनकका अव्रतमै नरकविना तीन आनुपूर्व्यंका उदय नहीं है।

और एकेंद्रिय विकलत्रय अर स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त इनका उदय तिर्यंचनिहीमें होय अन्यकै नहीं। अर अपर्याप्तका उदय मनुष्यकैभी होय है अर षट्संहनन अर औदारिकद्विकका उदय मनुष्यतिर्यंचहीकै होय है। अर वैक्रियिकद्विक देवनारकीनिकैंही उदय होय है। वहुरि उद्योतप्रकृतिनिका उदय है। सो तेजस्काय वातकाय साधारणवनस्पति पृथ्वीकायविना वादरपर्याप्त अन्यतिर्यंचनिकैं होय है। अर एकेन्द्रियकै अंगोपांग अर संहननका उदय नहीं होय है। ऐसे सामान्य उदयप्रकृति कही।

वहुरि इहां इतना विशेष जानना। जो कर्मप्रकृतिका उदय आवै हैं। तिनकूं वाह्यनिमित्तभी जाननी। इनि कर्मसारिसे पदार्थ है ते कर्मकीज्यों रस देनेके निमित्त है। ज्ञानावरणकीज्यों वस्तुका विशेषज्ञानकूं रोकनेवाला महीन पडदा है। जैसे देवताका मुखऊपरि महिनवस्त्र पडिजाय तदि सामान्य तो ग्रहण हो जाय परंतु समस्त अवयवसहित विशेषग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं होय। दर्शनावरणकीज्यौं वस्तुका सामान्यग्रहणके रोकनेवारा द्वारविषै नियोगी कीया द्वारपाल हैं। सो नोकर्म है। जातै द्वारपाल भाहीं प्रवेश नहीं करनेंदे तदि देवताका सामान्य भी ग्रहण नहीं होंय है।

वेदनीयका सद्वतलपेटी खड्गधारा नोकर्म है । जातै वेदनीयज्यौं याहू सुखदु:ख वेदनाका कारण है। मोहनीयका मद्य नोकर्म है। जातै मोहनीयज्यौं मद्यहू जीवका गुणक घातै है। आयुकर्मका च्यार प्रकार आहार नोकर्मद्रव्य है । जातै च्यार प्रकार आहारकंहू आयुकर्मकीज्यौं शरीरकी स्थितिका हेतुपणा है। वहुरि नामकर्मका औंदारिकादिदेहही नोकर्मद्रव्य है। जातै औदारिक देहकैंहू योगका उपजावना संभव है।

वहुरि गोत्रकर्मका उच्च नीच अंग नोकर्म है । जातें गोत्रकर्मज्यौं उच्च नीच अंगकैंहू कुलादिक प्रगट करनेका सद्भाव है । अंतरायकर्मको भडारी नोकर्म है। जातै अंतरायकर्मज्यौं भंडारिहू भोगादिवस्तुनिकें संयोगमें विघ्न करैं है। ऐसे उत्तरप्रकृतिनिकाभी जानना।

मतिज्ञानादिका रोकनेवाला मतिज्ञानादि कर्म है । त्योंही पटादिककी आडमतिज्ञानकूं रोकै हैं। विषादिक द्रव्य श्रुतज्ञानकूं रोकै है । अवधिज्ञान मन:पर्ययज्ञानका घात करनेवाला कोऊ संक्लेश करनेवाला वाह्यपदार्थ है। केवलज्ञानावरणकै नोकर्म नाही है। केवलज्ञान क्षायिक हैं। याकूं रोकनेवाला संक्लेशकारी वस्तु नहीं है। पंचप्रकारकी निद्राका नोकर्म भैंसीका दही लशुन खलादिद्रव्य है। चक्षुरचक्षु दर्शनकूं रोकनेवाला पटादिक वस्तुकरि आच्छादकता है । अवधिदर्शनकूं रोकनेवाला संस्लेशकारी वाह्यपदार्थ नोकर्म है । केवलदर्शन क्षायिक है याका नोकर्म नही है । सातावेदनीयका इष्ट अन्नपानादि नोकर्म है द्रव्य है। असाता वेदनीयका अनिष्ट अन्नपानादिक नोकर्म है। सम्यक्त्वप्रकृतिका नोकर्म कहै है ।

आप्त अर आप्तका आलय आगम अर आगमका धरनेवाला तप अर तपका धारक ए षट् आयतनहू सम्यक्त्वप्रकृतिकीज्यों सम्यग्दर्शनके घात करनेवारे नहीं। सम्यक्त्वकै चल मल अगाटहीके हेतु है। अर अनाप्त अर अनाप्तका स्थान कुश्रुत अर कुश्रुतका धारक मिथ्यातप अर मिथ्यातपस्वी ए छह अनायतन मिथ्यात्वकर्मके नोकर्म है। मिथ्यात्वज्यौं श्रद्धानके बिगाडनेवाले है। अर छह आयतन अर अनायतन दोऊ मिले हुए मिश्रकर्मका नोकर्म है। अनंतानुबंधी कषायका मिथ्यात्वका आयतनादि षट् अनायतनादिक है।

वहुरि अप्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान संज्वलन कषायनिका जो देशव्रत सकलसंयम यथाख्यातचारित्रके निवारक अपने अपने योग्य काव्य नाटिक कोकादिक ग्रंथ तथा विटजनाकी संगति ए नोकर्म द्रव्यकर्म है। वहुरि स्त्रीपुरुषनिका शरीर स्त्रीवेदका नोकर्म है। वहुरि पुरुषशरीर स्त्रीशरीर है । तें पुरुषवेदका नोकर्म द्रव्यकर्म है। वहुरि स्त्रीपुरुष नपुंसक शरीर है । ते नपुंसक वेदका नोकर्म है। वहुरि विडंवनारूप वहुरूपियादिक हांस्यके पात्रते हांस्य नोकाषायका नोकर्म है।

वहुरि सुपुत्रादिक रतिनोकषायको नोकर्म है। वहुरि इष्टका वियोग अनिष्टाका संयोगादिक अर तिनोकषायका द्रव्यकर्म है। वहुरि सुपुत्रादिकका मरणका शोक नोकषायका नोकर्म है। वहुरि निंदितद्रन्यादिजुगुप्सा नोकषायका नोकर्म है। वहुरि सिंहादिकका संगम भयनोकषायका नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। वहुरि अनिष्टआहार विष मृत्तिकादिक नरकायुका नोकर्म है। तिर्यंग्मनुष्य देवादिकनिका इष्ट अन्नादिक तिर्यंग्मनुष्यआयुका नोकर्म है।

च्यार प्रकारकीं गतिनिका क्षेत्रमे अपनीअपनी गतिका क्षेत्रही नियमकरि नोकर्म है। वहुरि एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेद्रिय जातिनाम कर्मनिका अपनींअपनी द्रव्येंद्रियही नोकर्म द्रव्यकर्म है। वहुरि शरीरनामकर्मका उदयतै उपज्या देहस्कंधही शरीरनामकर्मका नोकर्महै। तिनमै औदारिक वैक्रियिक आहारक तैंजस शरीरनामकर्मका अपनेअपने देहका उदयजनित च्यार देहनिकैं योग्य औदारिकादि शरीरवर्गणा नोकर्म हैं। वहुरि कार्मणशरीरका विस्रसोपचय नोकर्म द्रन्यकर्म है। वहुरि बंधनादिक पुद्गलविपाकीसहित शेष जे जीवविपाकी तिनका देहही नोंकर्म द्रव्यकर्म हैं। जातैं पुद्गलरूप जो जोवका सुखादिकभाव तिनका शरीरवर्गणांही उपादानकारण है।

वहुरि क्षेत्रविपाकीरूप जे च्यार आनुपूर्व्यनिका अपनांअपनां क्षेत्रही नोकर्म द्रव्यकर्म है। वहुरि स्थिरनाम कर्मका स्थिररसरूधिरादिक नोकर्म हैं। अस्थिरनाम कर्मका अस्थिररसरुधिरादिक नोकर्म द्रव्यकर्म है। बहुरि शुभनाम कर्मका शरीरका शुभ अवयव नोकर्म है। अशुभनाम कर्मका शरीरके अशुभ अवयव नोकर्म द्रव्यकर्म है। स्वरानाम कर्मका सुस्वरदुःस्वररूप परणयें पुद्गल नोकर्म द्रव्यकर्म है। वहुरि उच्चगोत्रका लोकपूजितकुलमें उपज्या उच्चदेहही नोकर्म द्रव्यकर्भ है। नीचगोत्रका नीचकुलमे उत्पन्न हुवा नीचदेहही नोकर्म द्रव्यकर्म है। नीचगोत्रका नीकुचसमे उत्पन्न हुवा नीचदेहही नोकर्म द्रव्यकर्म है।

वहुरि दान लाभ भोग उपभोग नाम अंतरायको विघ्न करनेवाला पर्वत नदी पुरूषादिक नोकर्म हैं। बहुरि वीर्यांतरायकर्मको रूक्ष आहारपान द्रव्यही नोकर्म हैं। ऐसे कर्मकें उदयज्यों कार्य करनेवाले वा कर्मके उदयकूं बाह्यनिमित्तरूप कर्मसारिसे नोकर्मद्रव्य कहे। जातै कर्मका उदयहू वाह्य अभ्यंतर अनेककारणनिकरि आवेहै।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव समस्तही निमित्त है। उदयमे आजाय सो तो अपना तीव्र मंद रस देवेहीं। परंतु वाह्यनिमित्त टलिजाय तो निमित्तविना उदय आवै नही। वाह्यसामग्री द्रव्यक्षेत्रादिकका कारण हैं। तातैही अशुभसंयोग छांडिए है। शुभके उदयकूं निमित्त शुभसामग्री मिलाइए है। सारा उपाय ए बाह्यहीं कारण है। इस भरतक्षेत्रमे अबार दुःखमकाल प्रवर्तैहै तातै दुःख होनेंकीं सामग्री ते सुलभ हैं अर सुख होनेकी दुर्लभ है। सो देखिएही है।

जो रोगादिक दुःख उपजनेका कारण ऐसा वस्तु औषधादिक सुलभ है धन खरचेंविनाही आवेहै अर रोगादिक मेटनेकीं औषधादिक धन दीएभी दुर्ल्लंभ है। आक धतूरा वंबूल वहज उपजैहै। सुंदर सुगंध मिष्ट रोगापहारी फल देनेवाला दुर्ल्लंभ है सो सब दुःखमकालका प्रभाव है। कालका निमित्तसूं समस्त मनुष्यादिक वृक्षादि दुःख करनेवाले वहुत उपजैंहै। उपकारवस्तुकी विरलता है।

अव सत्ताकी प्रकृतिकूं गुणस्थाननिमे कहेहै। सत्तायोग्य एकसो अडतालीस प्रकृति है। तिनमे मिथ्यात्सगुणस्थामे एकसो अडतालीसकी सत्ता संभवेहैं। सासादनमे तीर्थंकर आहारकद्विकविना एकसोपैंतालींसकी योग्यता है। मिश्रतैं तीर्थंकरविना एकसो सैंतालीसकी योग्यता है। अविरतमें एकसो अडतालीसकीं है। देशव्रतमे नरकायुविना एकसो सैंतालीस प्रमत्तमे तिर्यंगायु नरकायुविना एकसो छियांलीस है। अप्रमत्तमेभी तिर्यंगायु नरकायुविना एकसो छियालीस है।

वहुरि उपशमसम्यदृष्टीके अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण मूक्ष्मसांपराय उपशांतमोह इन च्यार गुणस्थानरूप उपशमश्रेणींविषै एकएकमे एकसो छीयालींसका सत्व है। वहुरि क्षायिक-सम्यग्दृष्टीकें उपशमश्रेणीके च्यार गुणस्थाननिमें नरक तिर्यंक देवआयु अर च्यार अनंतानुबंधी अर तीन दर्शनमोहकी इन दशविना एकसो अडतीसका सत्व है। वहुरि क्षपकश्रेंणीके च्यार गुणस्थान हैं तिनमे अपूर्वकरणमे तो तीन आयु च्यार अनंतानुबंधी तीन दर्शनमोहनीविना एकसो अडतीस है।

वहुरि अनिवृत्तिकरणका नवभाग है। तिनमै प्रथमभागमे तो एकसोअडतीसहीका सत्व है अर इहांही नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्यं तिर्यंग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य विकलत्रय स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला उद्योत आताप एकेंद्रिय स्थावर सूक्ष्म साधारण इन षोडशकीं व्युच्छित्ति भई तदि अनिवृत्तिरणका द्वितीयभागविषै एकसो वाईसका सत्व है।

वहुरि द्वितीयभागमे आठ मध्यमकषायकी व्युच्छित्ति भई तदि तृतीयभागमे एक सो चोदहका सत्व हैं। ऐंसेही तृतींयभागमे षंढवेद चतुर्थभागमे नपुंसकवेद पंचमभागमे हास्यादिक छह नोकषाय छठाभागमे पुरूषवेद सप्तममे संज्वलनक्रोध अष्टममे मान नवममे माया ऐंसे अनिवृत्तिकरणके नव भागनिविषै छत्तीसप्रकृतिका नाश भया तदि सूक्ष्मसांपरायमे एकसो दोयका सत्व है। वहुरि सूक्ष्मसांपरायमे संज्वलनलोभकी व्युच्छित्ति भई तदि क्षीणमोहमे एकसो एकका सत्व हैं।

बहुरि क्षीणमोहमे निद्रा प्रचला पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण पंच अंतराय ऐसे षोडशका नाश होतै पचासी प्रकृतिका सत्व सयोगींजिनकै है। सयोगीमे व्युच्छित्ति नही है। बहुरि पंच शरीर पंचबंधन पंच संघात षट् संस्थान तीन अंगोपांग छह संहनन पांच वर्ण दोय गंध पंच रस आठ स्पर्श स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुस्वर दुःस्वर देवगति देवगत्यानुपूर्व्यं प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति दुर्भग निर्माण अयश अनादेय प्रत्येक अपर्याप्त अगुरूलघु उपघात परघात उच्छ्वास एक वेदनीय नीचगोत्र एक बहत्तरि प्रकृति अयोगिकै द्विचरमयसमयमै नाशनै प्राप्त होय तदि अयोगीका अंतसमयमे तेरहका सत्व है।

बहुरि अयोगीका अंतका समयमे एक वेदनीय मनुष्यगति पंचेद्रियजाति सुभग त्रस बादर पर्याप्त आदेय यश तीर्थंकर मनुष्यायु उच्चगोत्र मनुष्यगत्यानुपूर्व्यं इन तेरहका नाशकरि एक समयमे सिद्धालयकूं प्राप्त होय है। ऐसे सत्वका गुणस्थाननिमें सामान्यवर्णन कीया। मार्गणानिमे गोमटसारादि आगमतै धारण करना।

अब दशकरणका नामादिक स्वरूप कहेहैं। बंधकरण। १, उत्कर्षणकरण। २, संक्रमणकरण। ३, अपकर्षणकरण। ४, उदीरणाकरण। ५, सत्वकरण। ६, उदयकरण ७, उपशमकरण। ८, निधतिकरण। ९, निकाचनकरण। १०, ऐसे दशकरण जानने। जिवके मिथ्यात्वादिक परिणामनिकरि जो नवोन पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादिकर्मके स्वरूप परिणमे है। अर कर्मस्वरूप होइ जीवका ज्ञानादिगुणानिकूं आच्छादन करे हे सो बंधनाम करण है।

बहुरि कर्मनिकी स्थिति अर अनुभाग पूर्वैं बंधरूप था तिनकी वृद्धिका होना सो उत्कर्षण नाम है। बहुरि जो प्रकृति अपने स्वरूपकूं छांडि परप्रकृतिरूप परिणमनकूं प्राप्त होइ सो संक्रमण नाम है।

बहुरि स्थिति अर अनुभागकी हानि होना सो अपकर्षणनाम है। उदयावली-बाह्य तिष्ठता कर्मकूं स्थितिद्रव्यकूं अपकर्षणका वशतै उदयावलीविषै निक्षेपण करना सो उदीरणानाम है। पुद्गलनिका कर्मरूपकरि अवस्थितपणा सो सत्वनाम है। बहुरि कर्मके निषेक अपनी स्थितिका क्षय होनेतै सदेव झडै सो उदयनाम है। बहुरि जो कर्मस्वरूप परिणम्या पुद्गलद्रव्य उदयावलीविषै क्षेपनेकूं अशक्य होइ सो उपशांतनाम है। अर जो कर्मस्वरूप परिणम्या पुद्गल उदयावलीमै क्षेपणेंकूं अर संक्रमण करनेकूं शक्य नहीं होइ सो निकाचितनाम है। बहुरि जो कर्मपुद्गलद्रव्य उदयावलीमै क्षेपणेकूं अर संक्रमण करनेकूं अर अपकर्षण करनेकूं शक्य नहीं होइ सो निकाचितनाम है। ऐसे कर्मकी दश अवस्था है।

तिनमें मिथ्यात्वगुणस्थानकूं आदिकरि अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत तो दश करण है। अपूर्वकरणकै ऊपरि दशमगुणस्थानपर्यंत उपशांतनिधत्तिनिका चित्तविना सात करण है। ऊपरि सयोगीपर्यंत संक्रमणकरणविना छह कारण है। अयोगकेवलीगुणस्थानविषैं सत्वकरण अर उदयकरण दोयही करण है। यहां इतना विशेष है। उपशांतकषायविषैं मिथ्यात्वप्रकृतिको अर मिश्रप्रकृतिको सम्यक्त्वरूप करणेकरि संक्रमकरणहू है। अन्यप्रकृतिनिका संक्रमकरण-विना छह करणही हैं। ऐसे बंधपदार्थ है। सो परमावधि सर्वावधिज्ञानी तथा मनःपर्ययज्ञानी तो प्रत्यक्ष जानै है। जिनकै एकएक परमाणुका अनंतानंत शक्तिके अंशपर्यंत जाननेका सामर्थ्य है। अन्य जीव तिनका उपदेश्या आगमतैं जानि इस कर्मका विध्वंस करना योग्य है।

ऐसे इस अध्यायमे बंधतत्वका निरूपण है। तहां पहले तो गुणस्थानादि वीस प्ररूपणा वर्णनकरि वहुरि मिथ्यात्व आदि बंधके कारण कही अर बंधका स्वरूप कह्या। आगै तिसके च्यार भेद कहिकरि पहला प्रकृतिबंधकी मूलप्रकृति आठ अर उत्तरप्रकृति एकसो अडतालीस तिनके भिन्नभिन्न नाम कहि अर अष्टकर्मनिकी तथा उत्तरप्रकृतिनिकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कही।

वहुरि अनुभवबंध अर प्रदेशबंधका स्वरूप कह्या। वहुरि पुण्यपापप्रकृतिनिका भेद कह्या। वहुरि बंधकूं अर उदयसत्वकी गिणति गुणस्थानद्वारै कही, बहुरि निरंतरबंधी ध्रुव-बंधयोग्यप्रकृतिनिकूं तथा ध्रुव जिनका उदय तिन प्रकृतिनिकूं कही दशकरणरूप दश अवस्थाका सामान्यवर्णनकरी अष्टम अध्याय समाप्त करी।

॥ इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ऐसे तत्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्रतिसविषैं अष्टम अध्याय समाप्त भया ॥ ८ ॥

– दोहा –

है जातैं तत्वार्थका । अधिगम सबसुखदाय ॥
मोक्षशास्त्र मंगलमय । नमि अष्टम अध्याय ॥ ८ ॥

अष्टमो अध्याय समाप्तः

॥ ॐ नमः परमात्मनै ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

अब नवम अध्याय प्रारंभ करै है ।

– दोहा –

ज्ञानविरागस्वभावतै । करैन कर्मप्रवेश ।
पूर्वकर्म बहु निर्जरै । पाय आप्तउपदेश ॥ १ ॥

बंधपदार्थका व्याख्यानकै अनंतर संवरतत्व कहनेंकूं सूचन करै है । जो यों अष्टप्रकार कर्मनिको बंध है सो अनादिसंतानतै वारंवार सुखदुःखका कारण है । अर समस्त आत्मप्रदेशन ऊपरि इन कर्मनिका दृढ अवस्थान है । अर नानाजातिके शरीरकै उपजावनमैं समर्थ है सो ऐसा बंध कौन उपावकरि नाशकूं प्राप्त होइ यातैं बंधके नाशकै अर्थि संवरका लक्षणकूं कहै है ।

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

अर्थप्रकाकिका–आस्रवका निरोध होना सो संवर हैं । कर्मकें आवनेकें निमित्त जो मन वचन कायके योग मिथ्यात्व कषायादिकनिका निरोध होनेतै जो अनेकदुःखनिका कारण जो कर्म ताकी प्राप्तिका अभाव होना सो संवर है । सो संवर द्रव्य भावको भेदकरि दोय प्रकार है । चतुर्गतिमें भ्रमणरूप जो संसार ताको कारण जो क्रिया ताका अभाव होना सो संवर है । अर भावके निमित्ततै कर्मपुद्गलनिका आगमनका रुकना सो द्रव्यसंवर है । इहां गुणस्थाननिमैं संवर योग्य प्रकृतिनिका कथन अष्टम अध्याय अंतमै कह्याही है । इहां आस्रवका निरोध होना सो संवर कह्या परंतु आस्रवके निरोध कौन कारण करि होइ ऐसा नहीं जाण्या यातैं आस्रवनिरोधके कारण कहनेकूं कहै है ।

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥

अर्थप्रकाशिका– स कहिए कह्या जो संवर सो गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय चारित्र इन छह्प्रकारकरि होइ है। संसारपरिभ्रमणके कारणनितैं आपकी रक्षा करना सौ गुप्ति है। परप्राणीनिकै पीडाका परिहारकी इच्छा करि जो सम्यक्यत्नाचाररूप प्रवृत्ति करना सो समिति है। इष्ट जो नरेंद्र मुनींद्र देवेंद्रादिस्थानमे आत्माकू धारण करैं सो धर्म है।

शरीरादिक परद्रव्य ज्ञानस्वभाव आत्मद्रव्य अन्य धर्मादिक द्रव्यनिका स्वभावनिका वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेंक्षा हैं। क्षुधा तृषादि परिषह बाह्य अभ्यंतर निमित्ततै प्राप्त होइ तिनकूं क्लेशरहित परिणामनितै सहना सो परिषहजय हैं। संसारपरिभ्रमणकूं कारण ऐंसी क्रियाका अभावकरि आचरण करना सो चारित्र हैं ऐंसे गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परिषहजय चारित्र इनकरि संवर होंना कह्या। इहां संवरका प्रकरण होते हू स शब्द सूत्रमे कह्या सो ऐंसा जणावैं है जो गुप्त्यादिकनितैंही संवर होइ है। अन्य जो तीर्थनिम अभिषेक करना दीक्षाग्रहण करना मूंड मुंडावना देवताराधनादिक संवरके कारण नहीं है। जातै राग द्वेष मोहकरि ग्रहणकीया कर्मका अभाव होना अन्यकारणनिकरि नही संभवै है। अब संवरका अन्यहू कारण है ताकूं कहै हैं।

तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

अर्थप्रकाशिका–तपकरि संवर तो होइही है तपतै निर्जराहू होइ है। यद्यपि दशलक्षणधर्मविषै तप आगया तोहू समस्त संवरके कारणनिमें तप है सो प्रधानकारण हैं। यातै प्रधानकूं भिन्न कह्याही चाहिए। तपकें प्रभावतै नवीनकर्मका संवर होइ है। अर सुरातनबंधनरूप भए सत्तामै तिष्ठतेनिकी निर्जराहू होइ है यद्यपि तपका फल स्वर्ग राज्यादिकनिका अभ्युदयरूप है तथापि प्रधानफल कर्मका क्षयकरि मुक्त होना है। गौणफल इंद्र चक्रवर्त्यादिकनिका विभव है। जैसे खेतीका प्रधानफल धान्य उपजना है गौणफल पराल घासादिकहू है। अव गुप्तिका लक्षण कहै है।

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थप्रकाशिका––योग जो मन वचन कायकी क्रिया इनका यथेष्ट आचरणका रोकना सो योगनिग्रह है। सम्यक् कहिए सत्कार लोकरंजनादिक तो इस लोकसंबंधी अर विषयसुखादि परलोकसंबंधीनिकी अपेक्षारहित केवलस्वरूपकी विशुद्धिताकैं अर्थि योगनिका निग्रह सो गुप्ति है। मन वचन कायकी स्वेच्छाप्रवृत्तितें जो आस्रव होइ था सो इनके

निरोधतें संवर होइ है। जो शरीरका परित्याग जेतें नही होय तेतैं संक्लेशका अभावकें अर्थि मन वचन कायके योगनिके रोकनेकी प्रतिज्ञा है। तोहू आहार विहार नीहार प्रश्नादिककी अपेक्षातैं योगनिकी प्रवृत्ति अवश्य होइ। तिस प्रवृत्तिमे समितिरूप प्रवर्त्तनेतै आस्रव नही आवै हैं संवर होइ है। तातै समितिनकूं कहै है।

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

अर्थप्रकाशिका—ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेप उत्सर्ग ए पांच समिति है। इहां पूर्वसूत्रतै सम्यक्पदकी अनुवृत्ति है तातै सम्यक्पद पांचूंनिमे लगाना। तातै सम्यगीर्या। सम्यग्भाषा। सम्यगेषणा। सम्यगादाननिक्षेपण। सम्यगुत्सर्ग। ऐसे इनकी अनादिसिद्धांतमें सार्थकसंज्ञा है। तहां जो मुनी जीवनिके स्थानयोन्यादिकको ज्ञाता होइ अर धर्मकै अर्थि यत्नमे सावधान होय ऐसे साधुके सूर्यका उदय होजाय अर नेत्रनिके विषयग्रहणका सामर्थ्य उपजि आवै अर मनुष्य तिर्यंचनिकें परिभ्रमणतेंओस वरफ इत्यादिक जिस मार्गतै दूरि भई होइ ऐसे मार्गमें अन्यतै मनको रोकी धीरेधीरे पद स्थापन करता शरीरका अंगोपांगादिकनिकूं संकोचरूप करता चूटामात्र आगली भूमिके देखनेमे दृष्टीकूं लगावता संता गमन करे ताके पृथ्वींकाय जलकायादिजीवनिकी विराधनाके अभावतें ईर्यासमिति होइहै।

वहुरि हित मित सदेहरहित वचन बोंले सो भाषासमिति है। तहां जातै अपने संसारका अभाव होइ सो स्वहितवचन है। अर जातै परजीवनिके संसारपरिभ्रमण मिटें सों परहित है। ऐसा वचन कहै जातें अपना अर अन्यका हित होय। अर अनर्थक बहुत प्रलापरहित प्रामाणीकवचन सो मितवचन है।

अर जामें संदेहादिरहित प्रगट अर्थ होय वा प्रगट अक्षरहोय सो असंदिग्धवचन हैं। हित मित असंदिग्ध वचन तो कहै अर मिथ्यात्ववचन ईर्षाके वचन अप्रियवचन कषायके वचन भेद करनेवाले वचन अल्पसारवचन शंकाकूं धारता शंकित वचन भ्रम उपजावनेवाला वचन हास्यके वचन देशकालादिककें अयोग्यवचन सभाके सत्पुरूषनिमे नही बोलनेके वचन कठोरवचन अधर्मकी विधका उपदेशक वचन अतिप्रशंसादिक वचन इत्यादि सदोषवचनकूं छांडि निर्दोष जिनसूत्रके अनुकूल वचन कहै ताके भाषासमिति होइहै।

वहुरि दिवसविषैं एकबार निर्दोष आहार ग्रहण करना सो एषणासमिति है। तिसके धारक गृहादिकपरिग्रहरहित अर गुणरत्ननिकरि भरि देहरूपगाडीकूं बांगवाकीज्यौं। प्रमाणींक आहार देय समाधिपतनकूं प्राप्ति करनेके इच्छक हैं। अर उदरमे उपजी क्षुधादिक दाहक उपशमनके अर्थि औंषधिज्यौं प्रमाणी आहार ग्रहणकरता भोजनके आस्वादनकी लालसारहित

देशकालादि सामर्थ्यसहित उत्तमकुलमे उपज्या अनिंद्य अर उद्गम उत्पादन एषणासंयोजनप्रमाण अंगार धूम कारणादिदोषरहित नवधा भक्तिसहित कृत कारित अनुमोदनादि दोषरहित उत्तम-कुलके उपजेनिकरि भक्तितें दीया अंतराय टालि खडा अपना हस्तरूपही पात्रमे भोजन करे। याचना नही करे हुंकारादि समस्या नही करे। आधा उदर भोजनतै भरे, चोथाई जलतै भरे अर उदरका चतुर्थभाग रीता राखै केवल रत्नत्रय धर्मका सहकारी शरीरकूं जाणि धर्मका पालनके निमित्त आहार लेहै। अर शरीरकी पुष्टता आस्वादनादि दोषररित ग्रहण करे ताके एषणासमिति होइहै।

वहुरि शरीर पुस्तक कमंडलादि धर्मतै विरोधरहित अन्य जीवनितैं विरोधरहित उपकरणनिकूं नेत्रतै देखि पींछितैं सोधि ग्रहणकरना धरना प्रवर्त्तन करना सो आदाननिक्षेपण-समिति है। वहुरि त्रसस्थावरजीवनकूं वाधा जैसे नही होइ तैसे शुद्ध जंतुरहित अंकुररहित मार्गचारिनिकी दृष्टीके अगोचर भूमिमे मलमूत्रादि क्षेपणकरि प्राशुकजलतै शौचक्रिया करे सो उत्सर्गसमिति है। ऐसे संवरकूं कारण पंचसमिति कहीं।

इहां कोऊ शंका करे। ज्यो ईर्यासमित्यादि पंचसमिति तो कायगुप्तिमे अंतर्भुत है फिर भिन्न कैसे कही। ताकूं उत्तर कहेहै। जो प्रमाणीककालपर्यंत समस्त योग निको निग्रह सो तो गुप्ति है। अर गुप्तिमे बहुतकालपर्यंत ठहरनेकूं असमर्थ साधुके अपने कल्याणरूप क्रियामे प्रवृत्ति होय सो समिति है। याहीतै गमन भाषण भोजन ग्रहण निक्षेपण मलमोचनलक्षण समितिकी विधमे जे अप्रमादीं है तिनके गमन भाषणादिद्वारे प्रवेश करतें कर्मनिके निरोधहोनेते संवरकी सिद्धि होइहै। अव धर्मके संवरका हैतुपणातें धर्मकूं कहेहै।

उत्तमक्षमामार्द्दवार्ज्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चिन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

अर्थप्रकाशिका–उत्तमक्षमा। उत्तममार्द्द। उत्तमआर्जव। उत्तमसत्य। उत्तमशौच। उत्तमसंयम। उत्तमतप। उत्तमत्याग। उत्तमआकिंचन्य। उत्तामब्रह्मचर्य। ए दश धर्मके भेद है। आहारके अर्थि परके कुलमे गमन करते साधुके दुष्टजननिकरि कीए दुर्वचन तिरस्कार हास्य ताडन मारणादिक क्रोधकी उत्पत्तिके निमित्तनिकी निकटता होतेहू परिणाममे मलीन-पणाका अभाव सो क्षमा है। वहुरि उत्तम जाति कुल रूप विज्ञान ऐश्वर्य श्रुत लाभ वीर्यनिकूं विद्यमान होतेहू इन कृत मदका नही होना सो मार्द्दव है। अथवा परकरि कीया तिरस्कार होतेहू अभिमानका अभाव सो मार्द्दव हैं।

वहुरि मन वचन कायकी कुटिलता वक्रताका अभाव सो आर्जव है। बहुरि जो परके धन परकी स्त्रीनिमे अभिलाषाका अभाव अर छह कायके जीवनिकी हिंसाका अभाव सो शौच

है अथवा अपने जीवितका लोभ पर जे स्त्रींपुत्रमित्रादिकनिके जीवितका लोभ अर अपने आरोग्यपणा चाहना तथा स्त्रीत्रादिकनिके आरोग्य रहनेका लोभ अपनें इंद्रिय प्रवल रहनेका लोभ तथा स्त्रीपुत्रादिकनिकी इंद्रियाके प्रचलता रहनेंका लोभ अपने उपभोगसामग्री मिलनेंका स्थिर रहनेंका लोभ ऐसे च्यार प्रकार लोभका परिणाममे अभाव होइ समभाव संतोषभावका प्रगट होना सो शौंच है

वहुरि प्रशस्तजनामें सुंदरवचन बोलना सो सत्य है। ताके जनपदादिक दश भेद कहै। कोऊ कहै जो सत्य तो भाषासमितिमे अंतरभूंत है फिर सत्य कैसे कह्या। ताकूं कहेहै। जो संयमी है सो साधुपुरूषमे असाधुपुरूषनिमे हित मितिही कहेहै। जो प्रमाणीक नही कहै तो रागभाव तथा अनर्थदंडादिक दोष आवै तातै भाषासमिति कही। अर इहां ऐसा जो दीक्षित संयमी वा संयमानका भक्त जे श्रावक है ते ज्ञानचात्रादिककी शिक्षादिकमे सत्यवचन सूत्रके अनुकूलवचन धर्मकीं वृद्धिके अर्थि वहुत बोलनाहू युक्त हैं।

अब संयम कहां है सो कहेहै। ईर्यासमित्यादिकमे वर्त्तता मुनीकै जीवनिको रक्षाके अर्थि एकेंद्रियादि प्राणीनिके पीडा करनेका परिहार सो प्राणीसंयम है। अर शब्द रूप गंध रस स्पर्श रूप इंद्रियनिकें विषयनिसे रागका अभाव सों इंद्रियसंयम है। ऐसे प्राणसंयम अर इंद्रिय-संयम दोयप्रकार संयय कह्या। तिस संयमकाहू दोय भेंद है। एक उपेक्षासंयम एक अपहृत-संयम दोय भेद हैं। तहां देशकालके विधानका जाननेवाला अर उत्यष्टसंहननकूं धारता अर मनवचनकायकी गुप्तिका धारक साधुकै जो रागद्वेषकरि लिप्त नही होना सो उपेक्षासंयम है। तथा यांकूं वीतरागसंयमहू कहेहै।

वहुरि उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि अपहृत संयम तीन प्रकार है। तहां प्रासुकवस्तिका प्रासुक आहारमात्रही हैं वाह्यसाधन जाकै अर स्वाधीन वा पराधीन है। ज्ञानचारित्रका करणा जिनकै ऐसा साधुके वाह्यजंतु प्राणीका पडना हो जाय तो उस प्राणीतैं अपना शरीरकूं दूरिकरि प्राणींनिकी रक्षा करै सो उत्कृष्ट है। अर कोमल उपकरतै प्राणीनिकौ दूरि परिहार करै सो मध्यम है। अर अन्य उपकरणकरि प्राणीनिकूं दूरि। करना सो जघन्य अपहृतसंयम है।

अब इस अपहृतसंयमका जाननेकै अर्थि अष्टशुद्धिताका उपदेश भगवान् कह्या है। सोही कहै है। भावशुद्धि कायशुद्धि विनयशुद्धि ईर्यापथशुद्धि भिक्षाशुद्धि प्रतिष्ठापनाशुद्धि शयनामनशुद्धि वाक्यशुद्धि। ऐसे अष्टशुद्धिका नाम कह्या। अब अष्टशुद्धिताकूं कहै है। तहां जो भावशुद्धि है सो कर्मनिके क्षयोमशमकरि उपजें है। अर मोक्षमार्गमै रुचि करिकै जलताकूं प्राप्तभई है अर रागादि उपद्रवकरि रहित हैं। सोही भावशुद्धिता है। याकूं

याकूं होतैंही आचार प्रकाशकूं प्राप्त होय है। जैंसे उज्वल भींतपरि चित्राम दिपै हैं। तैसे जाका रागादिक उपद्रवरहित भावशुद्धि होयगा ताकैंही आचार भूषित होयगा।

वहुरि कायशुद्धि कहै है। जाका काय वस्त्रादिक आभरण अर आभूषणादिरहित है। अर स्नानविलेपनादिसंस्काररहित है। अर शरीरमें पसेव रजादिककरि लिप्तपणाकूं धारै है। अर नेत्र भ्रुकुटि ग्रीवा हस्तपादादिकनितै विकार करनेकरि रहित हैं। अर जाकी सर्वत्र यत्नाचाररूप प्रवृत्ति है। मानू मूर्तिमान प्रशमभावके सुखकूं दिखावेंही है। ऐसी कायकी शुद्धिता होय तातें अन्य जीवनिकै आपतै भय नहीं होय है अर अन्य-जीवनितैं आपकै भय नहीं उपजै है सोही कायशुद्धि है। अब विनयशुद्धिताकूं कहै है। अरहंतादिक परमगुरुनिमे यथायोग्य पूजा स्तवन वंदनादिकमै लीन अर सम्यग्ज्ञानादिकनिमै गुरुनकै अनुकूलप्रवृत्तिकरि युक्त अर प्रश्न स्वाध्याय वाचनां कथा विज्ञप्ति इत्यादिकनिके अंगीकार करनेमै प्रवींण अर देश काल भावनिका यथावत् जाननेमें प्रवाण ऐसी आचार्य-निकै अनुकूल आचरण करनेवाली विनयशुद्धि है। समस्त त्रैंलोक्यकी संपदा मूल हैं। अर या विनयशुद्धिहीं संसारसमुद्रके तिरणेंकूं जिहाज है। ऐंसे विनयशुद्धि कही।

अव ईर्यापथशुद्धि कहै है। नानाप्रकार जीवनिके स्थान तथा जीवनिके उत्पत्ति-योग्य योनिस्थान अर जीवनिके वसनेके आश्रय इनका ज्ञानकरि उपज्या यत्नाचार तिसकरि प्राणीनिकैं पीडाका परिहारकरि जामे गमन होय अर अपना अंतरंगज्ञानका प्रकाश अर सूर्यका प्रकाश अर अपनी इंद्रियका प्रकाशकरि देख्याहुवा क्षेत्रमे गमन होय अर जामै शीघ्रगमन नही होय विलंवतैं गमन नही होय अर संभ्रमरूप विस्मयरूप क्रीडा विकार दिगंतरावलोकनादिदोषरहित गमन होय सो ईर्यापथशुद्धि है। याकूं होतैं संतैं संयम प्रति-ष्ठाकूं प्राप्त होय है। जैसे सम्यक् नीत होते विभवप्रतिष्ठा पावै। ऐंसे ईर्यापथ-शुद्धि कही।

अव भिक्षाशुद्धिकूं कहै हैं। कैंसी है भिक्षा जो भिक्षाकूं जाय है तदि शरीरकूं आगै पाछै नेत्रनितै अवलोकन करि है। गमन जामै अर शरीरका आगला पांछला अंग ऊपरि पीछी फेरनेका है विधान जामैं अर आचारांग सूत्रमै जो भिक्षाका देशकाल कह्या तिसका जाननेमें प्रवीण अर भोजनका लाभमै अलाभमै सन्मानमै अपमानमें समान है। मनकी वृत्ति जामे अर लोंकनिंद्य कुलका वर्जन करनेमे तत्पर अर चंद्रमाका गमनज्यों हीन अधिक गृहमे समान है।

गमन जामै अर दीन अनाथनिके ग्रह अर दानशाला विवाहगृहादिकनिके अत्यंत वर्ज्जनेकरि सहित अर दीनवृत्तिकरि रहित अर प्रासुक आहारके अवलोकनमें सावधान अर

आगममें ज्यो कह्या निर्दोष आहारकी प्राप्तीकरि प्राणीनिकी रक्षामात्रही हैं। फल जाका अर लाभमें अर अलाभमें सुंदर रसरूप आहारमें अर विरस आहारमे समान है। संतोष जामें ऐसी भिक्षा आगममें कही हैं।

भावार्थ ।। मुनीकी भिक्षा सदाकाल ऐसे जानना। जिस अवसरमें अन्यमतनिके भेषीजन भिक्षा लेय आवतें होय तथा बहुत धूमादिक शांत होगई होय चाकीनिके मूसलनिके शब्द होते रचिगए होय तिस कालमै अपने अंगका आगला पाछला भागकूं देखि पींछीसूं सोधि गमन करै। ईर्यापथ सोधते मौनसहित मार्गमै वचनालापरहित धर्मध्यानादि तथा द्वादशभावनादि चिंतवन करता गमन करै। सो आचारांगमै मुनिके आहार करनेयोग्य देशकी अर कालकी प्रवृत्तिकूं निपुण हुवा जानता होय जो देशकी कालकी प्रवृत्तिही नहीं जानै ताकै मुनिधर्म कैसें प्रवर्त्तै। जो इस देशमें उत्तम कुलमै मनुष्यनिकी ऐंसी रीति है ऐसा खानपान है।

धर्मका आचारका मार्गकूं मुनीके आहार देनेकी विधकौ जाननेवाले लोक वसै है की नहीं जाननेवाले वसै है। तथा लोकनिकै ऐसा कालमे भोजन होइ हैं तथा इस कालमै दानमें सावधानी है। तथा इस कालमै ऐसे वाणिज्यादि कर्ममै प्रवर्त्तै है। ऐसे देशकालजनित प्रवृत्ति पहलैही श्रावकादिक धर्मात्माजननितै श्रवणकरि लीनी होय। अर जो भोजनका लाभ हो जाय तो हर्ष नहीं करै अर अलाभ होय तो विषाद नहीं करै अर सन्मान होय तो हर्ष नहीं अर अपमान होय तो विषाद नहीं करैं। अर लोकनिंद्य कुलमै कदाचित् गमन नहीं करै। विनाजाने गमन हो जाय तो अंतरायकरि वनकूं पाछा जाय फिर उस दिवसमै भोजन नहीं करै।

अर जैसे चंद्रमा दरिद्रके घरमेंहू प्रकाश करैं अर धन ऐश्वर्यवान राजाकें घरमैंहू प्रकाश करैं तैसे साधु है सो दरिद्रीका घरमेंहू भोजनके अर्थि प्रवेश करै अर धनाढ्यकैंहू प्रवेश करैं। अर जे दीन अनाथ याचकादिक लोक है। तिनके घरमे प्रवेश नहीं करै। अर जहां दान वठता होंइ विवाहादिक मंगलगान गीतादिक प्रवर्त्तता होय जहां पूजन यज्ञादिक होता होय ऐसे घरमें भोजनके अर्थि प्रवेश नहीं करै। अर आहारकै निमित्त याचना आशीर्वाद धर्मलाभादिक नहीं कहै। अर विवर्णता उदरकी कृशता हस्त नेत्र भृकुटीकी समस्या तथा हुंकारादिक ऐसी दीनवृत्ति कदाचित् नहीं करैं:

तीनबार आदरपूर्वक तिष्ठतिष्ठ इत्यादिक प्रतिग्रहविना खडा नहीं है। जैठातांई अन्यभिक्षुकादिकनिके जानेकी मनाई नहीं होइ तीठापर्यंत जाय विजुलीका चिमत्कारकीज्यों अंग दीषो तथा मतिदीषो बाहुडी अन्य ग्रहणमें प्रवेश करै प्रासुक आहारकूं देखनेमें तत्पर

अयोग्य जैंसातैंसा नहीं ग्रहण करे। अर आचारांग आगममें कही ज्यो छीयालीस दोष वत्तीस अंतराय चोदह मल इत्यादिकरहित शुद्धविधकरि निर्दोष आहारकू ग्रहणकरि प्राणनिका रक्षामात्रही फल जानै है। आहार करनेकरि भोजनका आस्वादन इंद्रियवल दीर्घजीवनादिफलकूं नहीं चाहै है । जातै चारित्ररूप संपदा तो भोजनकी शुद्धतातै है। जैसे साधुजननकी सेवा गुणसंपदाकूं कारण है । लाभमे अलाभमें सुंदररसरूप भोजनमें नीरस विरस भोजनमै समभाव करि जो संतोषी होय तिसहीके भिक्षाशुद्धि है।

भिक्षाकी पांच वृत्ति है। गोचरीवृत्ति । अक्षमृषणवृत्ति । उदराग्निप्रशमनवृत्ति। भ्रमराहारवृत्ति । गर्त्तपूरणवृत्ति। ऐसे पंचप्रकार भिक्षावृत्ति । तिनमें जैसे लीला आभरणादिसहित श्रेष्ठस्त्रीकरि ल्याया घासकूं गौ चरै हैं। परंतु तिस स्त्रीकी रूपसंपदा आभरणादिकके देखनेमें लीन नहीं होइ है जैंसा घास धऱ्या तैंसेकूं चरबेमेंही लीन है तैसे साधुहू भिक्षाके देनेवाले मनुष्यनिका कोमलललित रूप सौंदर्य वेष विलास देखनेमें निरुत्सुक हुवा शुष्क आहार द्रव कहिए जलघृतादिकनिकरि रहित आहारमै तफावत नहीं विचारता जैसा रस नीरस शीत उष्ण कठिन कोमल जैसा दातारकरि दीया तैसा भक्षण करे है। तातै गौकीज्यों चार कहिए भक्षण तातै गोचरीवृत्ति कहिए है।

अथवा जैंसे वनके नानास्थाननिमें तिष्ठतै अपनेंयोग्य धासकूं गौ चरै है अर वनके स्थानशोभा संपदा देखनेमें तत्पर नहीं होइ है। तैंसे साधुहू गृहस्थका दीया योग्य आहारहीकूं भक्षण करे है। गृहस्थका महल मकान सुवर्ण रूपामय मृत्तिकामय पात्र धन समृद्धिसहितपणा रहितपणाके देखनेंमें लीन नहीं होय तिनके गोचरीवृत्ति वा गवेषणावृत्तिकरि आहार कहिए है।

वहुरि जैंसे वणिक् रत्नाके भारकरि परिपूर्ण भरी गाडीकूं कोऊ घृतादिकतै वांगी अपने वाछित देशकूं प्राप्त करे है। तैसे मुनिहू गुणरत्ननिकरि भरी देहरूप गाडीकूं निर्दोष भिक्षा देय अपने वांछित समाधिपतनकूं प्राप्त करै है समाधिमरणपर्यंत लेजाय है। सो अक्षमृषणवृत्तिकरि भिक्षा है।

इहां अक्षमृषण नाम गाडीकूं वांगनेंका है। बहुरि जैंसे भंडारमे लाग्या अग्निकूं जैसातैसा जलकरि गृहस्थी बुझावेहै तैंसे साधुहू उदरमे प्रम्वलित भई क्षुधारूप अग्निकूं रस नीरस भोजनकरि वुलावै सो उदराग्निप्रशमनवृत्ति नाम भिक्षा है वहुरि जैंसे भ्रमर है सो पुष्पकूं वाधा नही करता गंध ग्रहण करैंहै तैंसे साधुहू दातारके किंचित बाधा नही उपजावता आहारकूं ग्रहण करै सो भ्रमराहारवृत्ति है। बहुरि जैसे गृहस्थ है सो अपना गृहमे भया

खाडाकूं भाटारे तकि जोडो इत्यादिककरि भरिदेहै तैंसे साधुहू उदररूप खाडाकूं लूखा सचिक्कण शींत उष्ण जैसा प्राप्तभया भोजन तिस करि पूर्ण करेहै सो गर्त्तरपूरणवृत्ति है। ऐसे भिक्षा पंचप्रकारवृत्तिकरि होय सो भिक्षाशुद्धि है।

वहुरि साधु हैं सो अपनें नख रोम नासिका मल कफ वीर्य मूत्र मलादिकको क्षेपण करै। सो देशकालकूं जाणि जैसे कोऊ जीव मात्रकें वाधा नही होइ परिणाम नही नही विगडै मार्गमै आवनें जावनेवालेनिका परिणामकै मलीनता नही आवै ऐसी प्रासुक चौपट-रूप भूमि होइ तहां क्षेपण करै सो प्रतिष्ठापनशुद्धि है। वहुरि शयनासनशुद्धिका इच्छक मुनि है सो जहां स्त्रीनिका आरजार होय नीचपुरूष तिष्टते होइ तथा चोर मद्यपानी सिकारी कुकर्मादि करनेंवाले होय तथा श्रृंगारके विकार शरीरके विकारकरि सहित उज्वलवेषके धारनेंवाली वेश्या कुलटादिक जहां होइ। तथा क्रीडासामग्रीसहित तथा गीत नृत्य वादित्रादि-करी व्याप्त होय। ऐसे स्थाननिकूं दूरिहितें छांडें तथा तिर्यंच रागींपुरूष मार्गके आवनेंजावनें वालेनिके स्थानकूं छांडिकरि अकृत्रिम गुफा वृक्षनिके कोटरादिक तथा कृत्रिम शून्यगृहादिक अपने अर्थि नही रच्या ऐसे जंतुवाधारहित प्रासुकस्थाननिमे तथा वनके प्रदेश पर्वतनिके शिखर वालूके टीवा इत्यादिक निर्दोषस्थानमे शयनासन करै तिनकै शयनासन है।

वहुरि वाक्यशुद्धिताका धारक साधु हे सो ऐसा वचन बोले। जो पृथ्वीकायिकादि छह कायके जीवनिका घात नही होइ। तथा पृथिव्यादिकनिका आरंभकी प्रेरणारहित होइ। अर कठोर निष्ठुर परकं पीडाका प्रेरक नही होइ। जिस वचनतै मिथ्यात्व असंयमादिक नही होइ। कषायनका संघरहित राग द्वेष मोहका नाशकरनेमे तत्पर होइ। व्रतशील उपदेशादिक जाका प्रधान फल होइ सांसारिकफल नही होइ। अर आपका परका हितरूप होइ प्रामाणीक अल्प अक्षररूप होइ मधुर होइ मनोहर होइ संयमीके योग्य होइ ऐसा वचनका उच्चारण करना सो वाक्यशुद्धि है। समस्त चारित्रसंपदा वाक्यशुद्धिके आधार है। ऐसे अपहृतसंयममे अष्टशुद्धि कही।

वहुरि जो कर्मका क्षयके निमित अनशनादिक तपका करना उतमतप है जैसें अग्निकरि तपाया सुवर्ण मलकूं छांडि शुद्ध होय है तैसै तपकरि तपाय अत्माहू कर्ममलकरि रहित शुद्ध होयहै। बहुरि चेंतन अचेतनलक्षण परिग्रहका त्याग सो त्यागधर्म है। बहुरि जो आत्मस्वरूपतें अन्य जो शरीरादिकनिमे संस्कारादिकनिका अभावकै निमित ए हमारा ऐंसा ममत्वरूप अभिप्रायका अभाव सो आकचन्य है। वहुरि पूर्वें जो कलागुणनिकरि चतुर ऐसी स्त्रीनिकूं अनुभवकरि तिनकूं स्मरण करनैका त्याग। तथा स्त्रीमात्रकी कथा श्रवण करनेका त्याग। तथा रसि सुगंधादिकरि बासित स्त्रीनीका संसर्गसहित शय्या आसनादिकनिका संसर्गका

त्याग करना। तथा विषयानुरागरहित होइ ब्रह्म जो अपना शुद्ध आत्मा तिस विषै जो चर्या कहिए प्रवर्तन करना सो ब्रह्मचर्य है। ऐसे संवरके अर्थि दशलक्षणधर्मका धारणकह्या।

इन क्षमादिक दशधर्मनिकै उतम विशेशण है सो दृष्टप्रयोजनादिक जो ख्याति लाभ पूजदिककी निवृतिके अर्थि जानना। अर समस्त जो ए उत्तमक्षमादि गुण इनके प्रतिपक्षी जे क्रोधादिक तिनमै दोष जाणि भावनीं करना योग्य है। सोही कहेहैं। उत्तमक्षमातैं व्रतकी अर शीलकी रक्षा होइहै। इस लोक परलोकमै दुःखका संगम नही होयहै। अर समस्तजगतमै सन्मान सत्काराादि प्रगट होयहै। अर क्रोधके वशतैं धर्म अर्थ काम मोक्षका नाश होयहै तातैं क्षमाहीं करना योग्य है।

वहुरि अन्य कोऊ क्रोधके निमित्त दुर्वचन निंदादि प्रगट करि है तो ऐंसा विचारै जो यो मूनै निंदेहै दोष कहेहै तें दोष हमारे मांही विद्यमान है कि नहीहै। जो है तो सत्य कहैहैं। तो सत्य कहनेवाला हमारा निंदक नही है उपकारक हैं। अव मोकूं ए दोष अंगीकार नही करना शीघ्रत्याग करना। सत्य कहनेवालेमै दोष कोंन अज्ञानी करै। यह मेरा उपकारक है जो कुगतिमै डूबतेकूं हस्तावलंवन देहै। अर झूटे कहैहै तो यो कहनेवावाला अज्ञानीं है अज्ञान-भावतै कहेहैं आपके कर्मबंध करेहै। अर हमारे निर्जरा होयहै। अर जो यो दुर्वचन कहे अर मैंहू क्रोधरूप होजाऊं तो मूझमे अर इममे भेद कहां रह्या। अर गाली दुर्वचन ए वस्तुत्वकरि देखिए तो शब्दरूप परणमे पुद्गलस्कंध है हमारे लगैं नही। अर जो यो दुर्वचन कहेहै सो मेरे देहकूं नामकूं जातिकुलकूं कहेहै सो ए पर पुद्गल है। मैं इनसूं भिन्न हूं। बहुरि जाकूं दुर्वचन कहे सो मैं नही अर मै हूं ताकूं वचन पहूंवे नही।

वहुरि जो यो दुर्वचन कहेहै सो परोक्ष कहेहै प्रत्यक्ष तो नही कहेहै। अज्ञानी प्रत्यक्षभी कहेहै। अर जो प्रत्यक्ष केहै तो विचारै जो ताडना तो नही करेहै। अज्ञानी ताडनाहू करेहै। अर ताडन करे तो मोकूं प्राणरहित तो नहीं कीया। अज्ञानी मारीभी डारेहै अर जो मारिडारे तोहु चिंतवे जो एकवारमरण तो अवश्य होइहीगा इसने मेरा धर्मघात तो नही कीया। संसारमे मरण सवकूं आवेगा। यो त्रैलोक्यपूज्य परउपकारक अनंतभवनिमे दुर्लभ यो उत्तमक्षमादि-धर्म हमारा मतिविनसों अर हमाराही पूर्वकृत कर्म है जो मै पूर्वे अशुभकर्म बांध्या सो उदय आया है पर पुरूष तो निमित्तमात्र हैं। इस पापका फल नरकमे उदय आवता अव सहजही रस देय निर्जरे है। अर हे आत्मन् तूं वीतरागकूं जाने है। अर वींतरागधर्मकी उपासना करे है। यातैं तोकूं तो वीतरागता वधावनाही श्रेष्ठ है।

वहुरि केते उपकारी जन तो पदके सुखके अर्थि धन देवे है जमी जायगा देवे है शरीरकूं देवेहै ऐसे है। अव यो मोकूं दुर्वचनादि कहिकरिहीं सुखी होजाय तो मेरे इस शिवाय

कहा लाभ है। मेरे निमित्ततैं कोऊ प्राणीके दुःख मति होहू। अर अशुभकर्म तो मे कीया अर अब उदयकूं भोगता अन्यकूं दूषण द्यूं सो तो मेरी बडी मूढता हैं। अर ऐठैं तो दुर्वचनही सहूंहू अर संकलेंश परिणामकरि नवीनकर्म बांधूहुं सो याका फल तिर्यंचमे मारिडारना नासिका फोडी रज्जू सांकल घालना वारंवार मारना वहुत बोझ भार लाधना मर्मस्थाननिमे लाटी चामठि लोहमय आयुधनकीं चोब देना दृढ बांधना क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादिजनित हजारां वेदना भोगना पराधीन रहना सो तो थोरे कालनैं उदय आवेगा ताते वैर विरोध छांडि समभावकूं अंगीकार करि जिनेंद्रभाषित परमोपकारक आत्माका रक्षक ऐसा उत्तम क्षमाधर्मंहीका शरण ग्रहणकरि धारणकरना श्रेष्ठ है।

वहुरि मानकषायका अभावतें मार्द्दवधर्मंका धारक पुरुषविषै पुरुजन अनुग्रह करे है। साधुपुरुष है ते मार्द्दवयुक्तकूं साधु माने है उत्तम जानै है। यातै सम्यग्ज्ञानादिकनिको पात्र होय है। तातै स्वर्गमोक्षफलकी प्राप्ति होइ है। इस लोकमे कीर्ति विस्तरे है। अर मानकरि मलिन मनविषैं व्रत शील नहीं तिष्ठे है नष्ट हो जाय हैं। साधुजन मानीका संसर्गका परित्याग करे है। लोकमें अपकीर्ति होइ है। अभिमानीको जगत् वेरी हो जाय है। संपूर्ण आपदाका मूल एक अभिमान है। तातै मानकषाय छांडि मार्दवधर्म धारना श्रेष्ठ है।

बहुरि सरलहृदयमै समस्तगुण वसै है। सत्यप्रतीती कीर्ति समस्तगुण सरलपरिणामीकूं प्राप्त होय है मायाचारीकों गुण नही आश्रय करै है। मित्र भी अवज्ञा करै। प्रतीति सांचधर्म समस्त नष्ट हो जाय दुर्गतिकूं प्राप्त होइ। तातैं आर्जवधर्म धारना श्रेष्ठ है। वहुरि शौचधर्मीका इहांही वडा सन्मान होय है। समस्त विश्वासादि गुण यामें बसे है। क्लेशित परिणाम नही रहे है। समभाव संतोषभावतै इहांही वडा सुखकूं पाय स्वर्गमोक्षपद पावे हैं। अर लोभीमे समस्त दोषही वसे है।

गुण अवकाश नही पावे है। लोभींमें समस्त पाप कृतघ्नता धर्महीनता अकीर्ति वैर हिंसादिकमहापाप बसै हैं। इस लोक परलोकमें अचिंत्यकष्ट लोभीमें आवे है। यातै लोभत्यागी शौचधर्म धरना श्रेष्ठ है। वहुरि सत्यबोलनेवालेमे समस्त गुणनिकी संपदा बसे है। असत्यवादीकी बांध वादिकभी अवज्ञा करे है। मित्र है ते असत्यवादीकों छांडे है। अर इहांही जिव्हाका छेद सर्वस्वहरणादि कष्ट भोगी दुर्गतिमें जाय है। तातै सत्यधर्म धारना श्रेष्ठ है। बहुरि इस मनुष्यपर्यायमें आत्माका हित एक संयमही है। संयमी यहांही देवनिकरि पूजनीक है। परलोकके फलकूं तो कोन कही सकै। अर संयमरहित है सो प्राणीनिकी हिंसामें विषयनिके अनुरागमे नित्यप्रवर्त्तनकरि दुर्गतिका पात्र होय है।

ताते संयमधारण करनाही श्रेष्ठ है । बहुरि परिग्रहत्यागही आत्माका हित है। जिसजिस परिग्रहतें रहित होइ तिसतिसतै जीवके खेद क्लेश दूरि होय है। पापरहित परिणाम होय हैं। दुर्ध्यान नष्ट होय है। परिग्रहकी आशा बहुत बलवान है। इस जीवके परिग्रहकरिकैं तृप्ति नाही उपजै है। वडवानलज्यों आशारूप खाडाकूं कोन पूर्ण करें। यो आशारूप गर्त दिनदिन ऐसा बधै है । जामैं त्रैलोक्यकी संपदा आजाय तोहू नही भरै। समस्त जीव विषयनिकी वांछाकरि सदाकाल कलुषित हो रहे है। तातैं उत्तमत्याग-धर्म धारनाही श्रेष्ठ है। बहुरि शरीरादिकनिमें निर्ममत्वपणातै संसारतै परमनिवृत्तिरूप होय है। शरीरादिकनिमे कीया है स्नेह जानें ऐसे पुरुषके सर्वकाल संसारपरिभ्रमणही जानना। ताते शरीरादिक समस्त परवस्तुमें ममत्व छांडि अपने स्वरूपकूं आकिंचन्य भावना सोही आकिंचन्य श्रेष्ठ धर्म है।

बहुरि ब्रह्मचर्यकूं पालन करता पुरुषकूं हिंसादिक दोष नही स्पर्शन करे है। जो सास्वता गुरुकुलमे बसैं तिस विषैं गुणसंपदा बसे है। अर जो रूपवती स्त्रीनिका हाव भाव विलास विभ्रमकें वशीभूत है ताहि पाय अपने आधीन करे है जो इंद्रियनिके बसि होना है। सो अपनें आत्माका घात करना हैं। तातैं ब्रम्हचर्य धारण करना श्रेष्ठ है। ऐसे उत्तम क्षमादिकनिमे अर इनके प्रतिपक्षी क्रोधादिकनिमे गुण दोष विचारपूर्वक क्रोधादिकनिका अभाव होते संतैं इनके निमित्ततैं आवते कर्मकें आस्रवके अभावतें महान् संवर होय हैं। अब संवरको कारण द्वादश अनुप्रेक्षाकूं कहै है।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोक-
बोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनुमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

अर्थप्रकाशिका—अनित्य अशरण संसार एकत्व अन्यत्व अशुचि आस्रव संवर निर्जरा लोक बोधिदुर्लभ धर्मस्वाख्यात इन बारहके स्वरूपको वारंवार चिंतना सो अनुप्रेक्षा है। इस जीवके अनित्यभावना नहीं रची तदि देह धन कुटुंबादिकनिके अर्थि महापापमें प्रवर्तै है। ए इंद्रियविषय धन यौवन जीवितव्य जलबुद्‌बुद्‌जों अथिरस्वभाव हैं। गर्भादि अवस्था-विशेष है ते संयोगवियोगरूप है। मोहतें अज्ञानी नित्यता मानें है। संसारमें अपना ज्ञान-दर्शनोपयोग स्वभावतें अन्य कोऊ वस्तुका संयोग ध्रुव नहीं है। जन्म हैं सो मरणकरि सहित है। यौवन जराकरि ग्रस्त है।लक्ष्मी विनाशसहित है। जहां संयोग है तहां अवश्य वियोग है। इंद्रियनिके विषय इंद्रधनुष्यवत् चंचल है। देखते देखतें नष्ट होय है। इंद्रिय-निका सामर्थ्य अवश्य दिनदिन घटै है। जैसे मार्गमें सन्मुख आवता पथिकजनका संसर्ग क्षणमात्रका हैं तैसे मित्र बंधु जननिका संबंध अत्यन्त अल्पकाल जानहूं। नाना भोजन पान सुगंध वस्त्र आभरणादिककरि बहुतकाल लालना पालना कीयाहू देह क्षणमात्रमें विनसे

हैं। अर लक्ष्मी चक्रीनिकीहू स्थिर नहीं । तातें समस्तकूं अनित्य चिंतवन करना सो अनित्यभावना है । ऐसे चिंतवन करतेके समस्त देह धन कुटुंबादिकनिमें आसक्तताका अभावतें वियोग होतैंहू परिणाममें पीडा नहीं उपजे है ।

बहुरि अशरणभावना भावनेतें सांसारीक संबंधकूं अपनें रक्षक नहीं जाणै है । जैसे एकांत वनमें वलवान् अर क्षुधावान् अर मांसका इच्छक ऐसा व्याघ्रकरि पकडा मृगका वालककूं किंचित शरण नहीं है । तैसे जन्म जरा मरण रोग प्रियका वियोग दुष्टका संयोग वांछितका अभाव दारिद्रच दुर्जनादिकतैं उपजे दुःखकरि पीडित प्राणीकै कोऊ शरण नहीं हैं ।

वहुत पुष्ट कीया अपना शरीरहू भोजनप्रति सहायी है । कष्टमें नहीं । कष्ट आवतें आत्माके अपना शरीरही महादुःख उपजावै है । अर वडे यत्नतें संचयकीया धनहुं परलोककूं नहीं जाय है । अर जिनकूं सुखदुःखमें सामिल होय भोगे ऐसे मित्रहुं मरणकालमै नहीं रक्षा करे है । अर समस्त वांधवहू रोगसहितकी रोगतें रक्षा नहीं करे है । इस संसारमें मरण कहां नहीं देखो हो । जामैं स्वर्गलोकको इंद्र ताकूं । अणिमादिक अनेक ऋद्धिनिके धारक असख्यात देवहू क्षणमात्रभी नहीं रक्षा करि सके तो अन्य ग्रह पिशाच योगिनी यक्ष क्षेत्रपाल मंत्र तंत्र यज्ञ होम औषधि वैद्य रसायनदिक कोन रक्षा करनेमें समर्थ होइ । मरण तो आयुकर्म नाश होनेतैं है अर आयुकर्म कोऊ देनेकूं समर्थ नहीं । यातें देवनिका इंद्रहू आयु पूर्ण भए रक्षा करनेमे समर्थ नहीं है ।

अन्यकी कहां कथा । अर जों मरण करते मनुष्यकी देव देवी मंत्र तंत्र क्षेत्रपालादिक रक्षा करते तो मनुष्य अक्षय हो जाते । देखहू नाना प्रकार रक्षाका उपायकरिकैंहू कोऊ वलवान् ऐश्वर्यवान् धनवान् ज्ञानवान् शूर वीर तथा निर्बल निर्धन रंक अज्ञान अशक्त मरणतैं नहीं बचै है । ऐसे प्रत्यक्ष देखताहू जो ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्ष मंत्र तंत्रादिककूं शरण माने है सो यो महान् मिथ्याभावकूं उदय है । ऐसे अन्य असातादिक कर्मके उदयकूंहूं निवारण करनेकूं कोऊ शरण नहीं है । एक सम्यग्भावतें आचरण कीया धर्मही शरण है ।

जातें शरण दोय प्रकार है । एक लौकिकशरण एक अलौकिकशरण । तिनमें लौकिकशरण तो चेतन अचेतन मिश्र भेदकरी तीन प्रकार है । तिनमै राजादिक तथा देवतादिक तो लौकिकजीवशरण है । मनुष्यादिक सहित नगरग्रामादिक लौकिक कमिश्रशरण है ऐसेही पंचपरमेंष्ठी अलौकिकजीवशरण हैं । इनिके धातुपाषाणादिमय प्रतिविंव जिनसिद्धांतके पुस्तक वाक्यादिक अलौकिक अजीवशरण है । धर्मोपकरणसहित साधुनिका समूह अलौकिकमिश्रशरण है । ऐसें व्यवहारशरण कह्या । निश्चयशरण तो उत्तमक्षमादिकरूप परिणमनकूं प्राप्तभया ऐसा

शुद्ध वीतरागपरिणतिरूप अपना आत्माही आपके शरण है। जातै निश्चयतैं तो क्रोधादिरूप परिणया आत्मा आपही आपका घातक है। अर क्षमादिक परिणमननै प्राप्त होइ तदि आपही आपका रक्षक है।

अन्यकूं रक्षक घातक समझना सो मिथ्याभाव है। एक भलै प्रकार आचरणकीया धर्महीकूं शरण जानहु। मित्रधनादिक कोऊ रक्षक नहीं है। ऐसे अशरणानुप्रेक्षा चिंतवन करतेकै मै नित्य अशरण हूं ऐसे भावतै सांसारीक समस्त बंधमें ममत्वके अभावतें भगवान् सर्वज्ञकथित वचनहीमें लीनता उपजे है। ऐसे अशरणभावना कही।

अब संसारभावनाका ऐसा स्वरूप है। संसारनाम परिभ्रमणका है। इस संसारमे एक शरीरकूं छांडेहै अन्यकूं ग्रहण करेहै। ऐंसे निरंतर एकएककूं छांडना अर नवींन नवीन ग्रहणकरना तथा नाना प्रकारकी देहनिमें परिभ्रमण करना सो संसार है जब पापका उदय आवेहै तदि नरकनिमे प्राप्त होइ नानाप्रकार वचनके अगोचर ताडन मारन छेदन भेंदन शूलारोपण वैंतरणींनिमज्जन शाल्मलीघसीटन तथा असुरांकरीं कीया दुःखशरीरसंबंधी मानसिकदुःख क्षेत्रजनितदुःख परस्परकींया दुःख ऐसे पंचप्रकारके घोर दुःखनिकूं असंख्यातकालपर्यंत नरकधरामे भोगेहै। जिनकै नेत्रका टिमकारामात्रहू सुखरूप नहीहैं। अर तिलतिलमात्र खंड करेहू घांणीमे मीलेहूंआयु पूर्ण भएविना मरणकूं प्राप्त नही होयहै। पाराकीज्यों देहके खंडखंडहू मिलिजायहै।

वहुरि कदाचित नरकमेतै आयु पूर्ण करी निकले तो नानाप्रकारकी तिर्यंचयोनिको प्राप्तहोइये। तहां गर्भविषेंही छेदन मारणादि दुःखकूं प्राप्त होयहै। तथा क्षुधा तृषा शीत उष्णजनित घोरवेदना भोंगेहै। जहां परस्पर मनुष्यनिकीज्यों अपगा सुखदुःख कहना श्रवण करना गोष्टा करना उपाय करना हैनाही। सदाकाल क्षुधादिवेदनाकरि पीडित भयभीत रहेहै। अनेक तिर्यंच मारि खाजायहैं। दुष्ट मनुष्य मारि भक्षण करेहै। जेठैतेठैं हेरिकरि मारेहैं।

तथा नासिका फाडि जेवडा शांकल घालि बांधेहै बहुतभार लादेहैं मर्मस्थाननिमे तीक्ष्ण मारननितै मारेहै। भागने छिपने नही देहै अपना दुःख सहीं सकेनही कोऊ पुकार सुने नही। रोगादिककी तीव्र वेदना होतैहू मर्मस्थाननिमे चोट देय मारेहै। उछलेहै पडेहै अत्यंत पराधीनता भोगेहै। जिनके कार्य करनेकूं समर्थ वचन नही हस्तादिक अवयव नही कोनसूं दुःख कहै कोंन पूछं कोन सुनै। कोऊ राजादिक सहाय करेनहीं। अर अशक्त होय पडे तो कोन उठावे जलने थलमै कर्दंममे शीतमे तावडामे वर्षांमै पडाहुवाकूं असमर्थ जाणि काकादिक दुष्टपक्षी तीक्ष्ण लोहसमान चूंचनिकरि नेत्रनिको सिलेजाय हे अर मर्मस्थाननिमें काटियटि

खाय है। ऐसे तिर्यंचगतिका घोरदुःख प्रत्यक्ष दीखेहै। जो अन्यायकरि परका धन खाय है। लोभी व्यसनी होय कुदान लेवेहैं। तथा तिर्यंचनिमे पक्षी है तेहूं अत्यंत दुःखरूप रहेहैं। छोटि शाखानिकूं दृढ पकडी भयभीत भए क्षुधातृषाकी वाधा तीव्र पवनकी वांधा वर्षाका पतनकूं शीत बरफके पडनेकूं गडेनिकी मारकूं अत्यंत भोगते अंधकारकी भरी रात्रीकूं भयभीत भए एकाकी पूर्ण करेहै। ऐसी तिर्यंचगतिमे मायाचारके परिणामतैं भोले असमर्थ जीवनिके धन विषयभोग-निकूं हरनेतैं अनेकपर्यायनिमे असंख्यातकालपर्यंत दुःख भोगेहैं। कोंन कहनेकूं समर्थ है।

बहुरि कदाचित् मनुष्य होय तो तहांहूं गर्भवासविषै संकुचितअंग हुवा महाघ्राणके स्थानमे नव दशमास पूर्णकरि योनिसंकट महादुःख भोगी वाहिर आवेहै बहुरि वाल्य अवस्थामे नानाप्रकारका रोगजनित दुःख तथा मातापिताका मरण होनेकरि वियोगजनित दुःख क्षुधा शींत उष्णजनित वेदनाकूं सहता महान दुःख भोगेहै। वहुरि विषयभोगनिकी चाहजनित दरिद्रजनित अपना भयतें उपज्या अलाभतैं उपज्या घोर दुःख भोगेंहै। अर कोऊ पुण्ययुक्तहूं मनुष्य होय ताकैहू इष्टका वियोग अनिष्टका संयोगजनित दुःख देखिएही हैं। कोउकैं तो स्त्रीही नहीं है कोऊकैं स्त्री है तो पुत्र नही पुत्र है तो धन नही धन है तो निरोगशरीमहीनीरोगशरीर है तो धनका नाश होजाय तथा पुत्र कपूत होइ तथा स्त्रीका पुत्रका मरण हो जाय तथा वैरीसमान वांधव होयहै राजा लूटेहैं अग्नि दग्ध करेहै तथा धनवान् होइ निर्धन होजायहै। इत्यादिक दुःख मनुष्य-पर्यायमे प्रत्यक्ष देखहु। बहुरि देवपर्यायमेह इष्टवियोगादिक दुःख तथा महर्द्धिककदेवनिकी संपदा देषि तथा विषयांकीं तृष्णातैं दुःख तथा स्वर्गं लोकतें पतन होनेका घोरदुःख भावेहै ऐसे संसारीजींव अनंतकालतै चतुर्गतिनिमैं नानादुःख भोगता अनंतपरिवर्त्तन पूर्णकीए।

परिवर्त्तन नाम परिभ्रमणका है। सो परिवर्त्तन द्रव्य क्षेत्र काल भव भावकरि पांच प्रकार है। तहा द्रव्यपरिवर्त्तन कर्म नोकर्म भेदकरि दोय प्रकार है तिनमैं नोकर्मपरिवर्त्तन कहेहै। याका स्वरूप ऐसा। जो औदारिक वैक्रियिक आहारक लक्षण तीन शरीरनिके विषै किसहीं शरीरसंबंधी षट्पर्याप्तनिकै योग्य पुद्गलनिकूं एक जीव एकसमयविषें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंधादिकरि तीव्र मंद मध्य भावकरि यथासंभव ग्रहणकीए अर द्वितींयादि समयनिमैं जीर्ण कीए तिनका ऐसा क्रम जानना। जो एकजीव उकससयमै अभव्यराशितै अनंतगुणा अर सिद्धराशिके अनंतवै भाग ऐंसा मध्य अनंतका जो प्रमाण तितना परमाणुको पुंज एकसमयप्रवद्ध कहावे सो ग्रहण करेहै अर इतनाही निर्जरेंहै। तिनमै कोऊ समयप्रवद्ध तो ऐसा है जामै कदे ग्रहण नही कीए ऐसे परमाणु है सो तो अगृहीतसमयप्रबद्ध है। अर जामैं पूर्वै ग्रहण कीए परमाणुनिकाही समूह है सो गृहीतसमयप्रबद्ध है। अर जामै केते अगृहीतका समूह सो मिश्रसमयप्रबद्ध है।

इहां कोऊ कहे। अगृहीतपरमाणु कैसे हैं। ताका समाधान। सर्वजीवराशींके प्रमाणकूं समयप्रबद्धके परमाणुनिका प्रमाणकरि गुणिए जो प्रमाण आवै ताकौं अतीतकालके

समयनिका प्रमाणकरि गुणिए जो प्रमाण होइ तिसतैंभी पुद्गलद्रव्यका प्रमाण अनंतगुण है। जातै जीवराशितै अनंतवर्गस्थान गुण पुद्गलराशि होइ हैं। तातै अनादिकाल नानाजीवनिकी अपेक्षाभी अगृहीतपरमाणु लोकविषै विशेष पाइएहै। बहुरि एकजीवका परिवर्त्तनकालकी अपेक्षा नवीन परिवर्त्तनका प्रारंभ भया तब सर्वही अगृहीत भए पोछै ग्रहे ते गृहीत होयहै। इस अपेक्षाहू अगृहीत मिश्रगृहीत यथासंभव जानना।

तिनका काल द्रव्यपरिवर्त्तनमे ऐसा। जो नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तनका प्रथमसमयतै आरंभ करिए है। जो पहलै समय अगृहीतग्रहण होइ फेरि दूजैं समयगृहीत वा मिश्र ग्रहण होजाय सो गिणतीमे नही। अगृहींतही ग्रहण होइ सो दूजीवार गिणतीमै आवै फेर अगृहींतही ग्रहण होइ सो तृतीयवारकी गिणतीमै आवै। ऐसे अगृहींतग्रहण निरंतर अनंतबारही ग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होइ फेर अनंतबार निरंतर अगृहीतग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होंइ सो तीनवार मिश्रग्रहण भया। ऐसे अनंतवार अग्रहीतग्रहण होय एकएकवार मिश्रग्रहण होतै होतैं मिश्रगृहणहू अनंतवार होजाय तदि फेंर अनंतवार अगृहीतग्रहण करि एकवार गृहीतग्रहण करै बहुरि अनंतवार अगृहीतग्रहण करि एकवा रमिश्रग्रहण करै। फेरि अनंतवार अगृहीतग्रहण करै तदि एकवार मिश्रग्रहण करैं तदि दोयवार मिश्रग्रहण भया।

ऐसे अनंतवार अगृहीतग्रहणकरि एकएकवार मिश्रग्रहण करतै फिर अनंतवार मिश्रग्रहण हो जाय तदि फेरि अनंतवार गृहीतग्रहण करि एकवार गृहीतग्रहण होय ऐसे दोयवार गृहीतग्रहण भया। ऐसी पलटनितैही अनंतवार गृहीतग्रहण हो चुकै तदि पुद्गलपरिवर्त्तनका चतुर्थभाग भया। फिर ऐसेही निरंतर मिश्रग्रहण अनंतवार हो जाय तदि एकवार अगृहीतग्रहण होय। फिर अनंतवार मिश्रग्रहण हो जाय तदि एकवार अगृहीतग्रहण होय। ऐसे अनंतवार अगृहीतग्रहण हो चुके फिर अनंतवार मिश्रग्रहणकरि एकवार गृहीतग्रहण होय। ऐसे निरंतर गृहीतग्रहणहू अनंतवार होजाय बहुरि पुद्गलपरिवर्त्तनको द्वितीय चतुर्थांश पूर्ण होइ है।

बहुरि निरंतर मिश्रग्रहण-अनंतवार होय चुकै तदि एकवार गृहीतग्रहण हो। फिर निरंतर अनंतवार मिश्रग्रहण होजाय तदि एकवार गृहीतग्रहण। ऐसे अनंतवार गृहीतग्रहण हो जाय तदि फेर निरंतर मिश्रग्रहण अनंतवारकरि एकवार अगृहीत ग्रहण करे। ऐसे अगृहीतग्रहण अनंतवार हो जाय तदि पुद्गलपरिवर्त्तनका चतुर्थांश पूर्ण होय है।

बहुरि निरंतर गृहीतग्रहण अनंतवार होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण करै। फेंरि निरंतर अनंतवार गृहीतग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होय। ऐसे अनंतवार

मिश्रग्रहण होजाय तदि निरंतर गृहीतग्रहण अनंतवारकरि एकवार अगृहीतग्रहण करैं। ऐसे अनंतवार अगृहीतग्रहण हो जाय तदि पुद्गलपरिवर्त्तनको चतुर्थांश पूर्ण होय। फिर लगतेही समयविषैं जे नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तनके प्रथमसमयमै ग्रहणकरि द्वितीयादि समयमें निर्जरारूप कीए। ऐसे अनंते नोकर्मके समयप्रवद्धपुद्गल थे तेही अथवा तिनसमानही शुद्ध गृहीतरूप आयकरि ग्रहण होय तदि यो समस्त मिल्यो हुवो नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तन होय है।

अव कर्मपुद्गलपरिवर्त्तन ऐंसे जानना। जे पुद्गल एकसमयविषैं एकजीव अष्ट-प्रकार कर्मस्त्रभावकरि ग्रहण कीए। ते समयाधिक आवलीकालकूं उल्लंघनकरि द्वितीयादि-समयनिमै निर्जीर्ण भए। ते कर्मयोग्यपुद्गल पूर्वोक्त नोकर्मद्रव्यपरिवर्त्तनकीज्यों तिसही क्रमकरि तिसही प्रकारकरि तिस जीवकै जेतैं काल कर्मभावकूं प्राप्त होइ है। तिष्ठै है तितने यो समस्त मिल्योहुवो कर्मपुद्गलपरिवर्त्तन होय हैं। ओर समस्तविध नोकर्मपरा-वर्त्तनकीज्यों जाननेयोग्य है। ये कर्म नोकर्मद्रव्यरूप दोऊ पुद्गलपरिवर्त्तनका समानही काल है। ऐसे द्रव्यपरिवर्त्तनका स्वरूप संक्षेपकरि कह्या।

अव क्षेत्रपरिवर्त्तन कहै है। क्षेत्रपरिवर्त्तन दोयप्रकार है। एक स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन। एक परक्षेत्रपरिवर्त्तन। तिनमै स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन कहै है। कोऊ जीव अंगुलिकै असंख्यातवें भागप्रमाण जीव सूक्ष्मनिगोदीयाकी जघन्य अवगाहनाकरी उपजी अर अपना स्वासकै अठारवेंभाग जो आयुप्रमाण जीयकरि मऱ्या सो फिर उस देहतैं एकप्रदेश अधिक अवगा-हनाकरि उपजी अपनी स्थितिप्रमाण जीवता रहि फेंरि मरी दोय प्रदेश अधिक अवगाहना पावै। ऐसे पूर्वले देहतैं एकएक प्रदेश अधिक महामत्स्यका देहकी अवगाहनापर्यंत समस्त अवगाहनाके भेदनिकरि अनुक्रमतैं समस्त अवगाहना समाप्त करै अर बीचीबीची अनंतवार अन्यअन्य अवगाहना धारै सो इहां गिणीनहीं। जातैं एकप्रदेश अवगाहना पायवेका अव-सरको अनंतभवनिमें आवै है। तातै एकएक प्रदेशकी अधिकता करिकै अनंतानंत कालमै समस्त अवगाहना पूर्ण करै है। तदि यो समस्त स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन होय है।

अव परक्षेत्रपरिवर्त्तन कहै है। कोऊ जीव सूक्ष्मनिगोदका लब्ध्यपर्याप्तक होय ताकी समस्त अवगाहनातै जघन्य अवगाहना है यातै अन्य जघन्य अवगाहना नहीं सो इस जघन्य अवगाहनाकरि लोकाकाशका मध्यका अष्टप्रदेशाने अपने शरीरका मध्यका अष्टप्रदेशांमें करि उपजी अर अपनी स्थिति पूर्ण होते मरण करी। फेंरि सोही जीव तैसेही तिस अव-गाहनाकरि लोकाकाशका अष्ट मध्यप्रदेशांनै अपने शरीरकै बीचिकरि दूजीवार तीजीवार इत्यादिक घनांगुलका असंख्यातभागका जेता प्रदेश होइ है तितनाही वार तहांही उपजी

उपजि मरे। अर बीचिमै अनंतवार अन्यअन्य क्षेत्रनिमैं उपजै सो इस परिवर्त्तनके प्रमाणमैं नहीं। पाछैं एकप्रदेश उस क्षेत्रतै अधिकक्रमें उपजैं ऐसे एकएक प्रदेशकी अधिकताकरि समस्तलोक तीनसैंतियालीस घनराजूप्रमाण समस्तप्रदेशनिकूं अपनें जन्मक्षेत्रपणांकूं प्राप्त करै सो परक्षेत्र परिवर्त्तन है। भावार्थ ऐसा है। सो सूक्ष्मनिगोद जीवकी जघन्य अवगाहनाकूं आदि लेय महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहनापर्यंत कोऊ ऐंसी अवगाहना वाकी नही रहीं जो यो जीव नही पाइ। वहुरि लोकका मध्यतें लेय नीचे ऊपरि तिर्यक् समस्तलोकाकाशका प्रदेशनिमें ऐसा कोऊ एक प्रदेश नहीं है। जहां इस जीवनै जन्ममरण नहीं कीया।

अव कालसंसारकूं कहै हैं। कोऊ जीव उत्सर्प्पिणी कालका प्रथमसमयविषैं उत्पन्न हुवा फिर अपनी आयु समाप्तकरि मरण करै। फिर वीसकोडाकोडीसागरमें उत्सर्प्पिणीकाल आवैं ताके पूजे समयमें जन्म ले अर दूजासमयमेंही जन्म लेना कहां होइ कोऊ अनंते उत्सर्प्पिणीं जावतेंहू दुजै समयमेंही उपजनेका संयोग मिले। ऐसेही उत्सर्प्पिगीका तीसरा समयमें चतुर्थमै पंचममें ऐसे उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका वीसकोडाकोडीसागरका जेंता समय होय तितना निरंतर जन्मकरि पूर्णकरै अर ऐसेही समस्तसमय मरणकरि पूर्णकरै। जो यो जन्ममरणको समुदितरूप काल सो कालपरिवर्त्तन है। भावार्थ। उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका ऐसा कोऊ समय वाकी नही है। जिसमें यो जीव अनंतानंतवार जन्ममरण नहीं कीया।

अव भवपरिवर्त्तन कहै है। कोऊ जीव नरकगतिमें जघन्य आयु दशहजार वर्षकी धारणकरि उपज्या फिर मरणकरि संसारनै परिभ्रमणकरि द्वितीय बार भी दशहजार वर्षंकी आयु पावै जो एक दो समय घडी दिन वर्ष अधिक पावै सो गणतीमें नहीं। तृतीयबार चतुर्थवार पंचमवारकूं आदिकरि दशहजार वर्षका जेता समन होय तींतनीवार तो दशहजार वर्षप्रमाणही आयुपाय मरै पाछैं एकसमय अधिक इत्यादि तेतीससागरका जेता समय होय तितनी समय यो उत्तर आयुकरि व्यतीत करै सो नरकभवपरिवर्त्तन जानना।

ऐसेही तिर्यंचगतिमें सघन्य आयु अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण पाय फिरि समाप्तकरि अतर्मुहूर्त्तका जेते समय होय तेतना प्रमाण जघन्य आयु धारि पछै एकसमय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्यपर्यंत समस्तस्थितिविषैं जन्मधारि पूर्ण करै सो तिर्यग्भावपरिवर्त्तन जानना। ऐसेही मनुष्यआयुकूं अंतर्मुहूर्तकूं आदि लेय तीनपल्यपर्यंत पूर्ण करै। देवगतिमें नरकगतिज्यों दशहजार वर्षकूं आदि लेय इकतीस सागरपर्यंत पूर्ण करै सो देवभवपरिवर्तन है। इकतीस सागरतें अधिक आयुके धारक अनुदिश अनुत्तर चोदह विमानिमे उपजें देवनिकै परिवर्तन नहीं होय। जातैं उनके नियमतें सम्यक्त्व है। सम्यग्दृष्टीकै संसारमें

भ्रमण होय नहीं । ऐसे च्यार आयुसंबंधी समस्त परिवर्तनका मिल्या हुवा काल भवपरिवर्तनका जिनेंद्र कह्या है ।

अब भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं । योगस्थान अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कषायाध्यवसायस्थान स्थितिस्थान इन च्यारनिके परिवर्त्तनतै होइ है। सो इन च्यारनिका स्वरूप ऐसा । जिनतैं प्रकृतिबंध प्रदेशबंध होइ ऐसे प्रदेशपरिस्पंदलक्षण योग तिनसे जे घनादिस्थान ते योगस्थान है ।

बहुरि जिन कषाययुक्तपरिणामनितें कर्मनिका अनुभागबंध हो है तिनके जघन्यादिक स्थानतें अनुभागबंधाध्यवसायस्थान है । अर जिन कषायपरिणामनितें स्थितिबंध्र हो है तिनके जघन्यस्थानतें इहां कषायाध्यवसायस्थान कहे है। अर बंधनरूप जे कर्मनिकी स्थिति तिनके जघन्यादिस्थानतें स्थिति स्थान कहिए । कोऊ पंचेंद्रियसंज्ञक पर्याप्तक मिथ्यादृष्टीजीव है । सो आपके योग्य सर्वमें जघन्य ज्ञानावरणकर्मकी अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाण बांधै है। जातें संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टीके अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाणतें घाटि नहीं बंधै हैं। कोटिसागरके ऊपरि अर कोटाकोटीके मांही ताही अंतःकोटाकोटीसागर कहिए है। तिस जघन्यस्थितिकूं आदि लेय एकएकसमय अधिकताकरि तीस कोटाकोटीसागरकी उत्कृष्ट स्थितिपर्यंत भेदकूं लीए ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति है। अर एकएककषायाध्यवसाय स्थानकूं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कारण है । बहुरि एकएक अनुभागबंधाध्यवसायस्थानकै योगश्रेंणीकै असंख्यातवैं भागप्रमाण योगस्थान है ।

अब परिवर्त्तनके आरंभका क्रम ऐसा । जो संज्ञीपर्याप्तका मिथ्यादृष्टीके ज्ञानावरणकर्मकी अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाणजघन्यस्थितिबंध होय । अर तिस स्थितिकूं कारण जघन्यही कषायाध्यवसायस्थान अर तिस जघन्यकषायाध्यवसायस्थानकूं कारण जघन्यही अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होइ अर जघन्यही योग्यस्थान होई ।

बहुरि योगस्थान तो पलटीहू दूजो होय अर अनुभागकषायस्थिति जघन्यही बंधै । फिर योगस्थान तीजो होजाय अर वै तीनो जघन्यही रहै । फिर योगस्थान चोथो पांचवो छठो इत्यादिक श्रेणीके असंख्यातवै भागप्रमाण योगस्थान पलटीजाय अर स्थित्यादि तीनो जघन्यही रहै। ऐसे श्रेणीकै असंख्यातभागप्रमाणयोगस्थान पलटिजाय तदि स्थितिस्थान अर कषायस्थान तो जघन्यही रहै । अर अनुभागस्थान दूजा होय । फिर दूजा अनुभागस्थानकै योग्य श्रेणीकै असंख्यातवैभागप्रमाण योगस्थान क्रमतें पलटिजाय तदि फिर अनुभागस्थान तीसरा होई । फिर इस ऊपरि योगस्थान श्रेणींकै असंख्यातवैभागप्रमाण पलटिजाय तदि अनुभागस्थान चोथा होय ।

इस क्रमतैं एक अनुभागस्थानकैं योगश्रेंणीकैं असंख्यातवैंभागप्रमाण योगस्थान पलटतैं पलटतैं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होजाय तदि एककषायाध्यवसायस्थान पलटै। तदि स्थितिस्थान तो जघन्यहीं रह्या अर कषायस्थान दूसरा भया। अर अनुभागस्थान पहला अर योगस्थान पहला भया फिर श्रेंणीकै असंख्यातवैंभागप्रमाण योगस्थान पलटिजाय तदि तो एक अनुभागस्थान पलटै। अर ऐसै असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग पलटि जाय तदि एककषायाध्यवसायस्थान पलटैं। ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थानभीं पलटि चुकै तदि अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाणजघन्यस्थितितै एक समय अधिक कर्मकीं स्थिति बांधै। ऐंसे श्रेणींकै असंख्यावैंभाग वार योगस्थान पलटिजाय तदि तो एकअनुभागस्थान पलटैं अर असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग पलटि जाय तदि एककषायस्थान पलटै। अर असंख्यातलोकप्रमाण कषायस्थान पलटिजाय तदि एकसमय अधिक होय स्थिति पलटै।

ऐसे एकएकसमयकरि अधिकतातै ज्ञानावरणकर्मकीं तीसकोटाकोटींसागरकी स्थिति समाप्त करै। फिर दर्शनावरण वेदनीय अंतरायकी तीसकोटाकोटीसागरकी अर नामगोत्रकर्मकी वीस कोटाकोटीसागरकी अर आयुकी तेतीससागरकी ऐसाही क्रमकरि पूर्णकरै। फिरि एकसो अडतालीस उत्तरप्रकृतिनिकी अर असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर प्रकृतिनिकी स्थिति पूर्णकरे तदि एकवभपरिवर्त्तन होइहै। ऐंसे पंचप्रकारके परिवर्त्तन अनंते कोए। ऐसे अनेक कुयोनि अर कुलकोटिनिके बहुतसंकटरूप संसारमे कर्मयंत्रकरि प्रेरित प्राणी पिता पुत्र होय पुत्र पौत्र होयहै माता भहण भार्या पुत्रीं होयहैं वहुत कहां कहिए आपही आपकै पुत्र होयहै। इत्यादि संसारका स्वभावका चिंतवन सो संसारानुप्रेक्षा है। ऐंसे संसारभावनांकूं चिंतवन करनेवाला पुरुष संसारका दुःखतै भयभीत होय संसारतैं विरक्त होयहै। विरागयुक्त होय तदि संसारका नाशके अर्थि यत्न करेहैं। ऐंसे ससारभावना कही।

बहुरि जन्म जरा मरण रोग वियोगादिकनिके महादुःखखनिमे आपकूं असहाय एकाकी चिंतवन करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है। संसारविषै मैं एकाकी अनादिकालतैं हुं। कोऊ मेरे स्वजन नही है। अर परिवार नहीहै जो मेरे व्याधि जरा मरणादिक दुःखकूं दूरि करे। एक धर्मही मेरा सहायी है शरण है अविनाशी है। ऐंसे चिंतवन करना सोही एकत्वभावना है। ऐंसे चितवन करतेकै स्वजननिविषै प्रीति नही उपजैहै। परजननिमे द्वेष नहो उपजैहै। तातैं समस्तमें प्रीति वैर छांडि मोक्षके अर्थिही यत्न करेहै। ऐंसे एकत्वभावना कही।

वहुरि शरीरादिकनितै अपना स्वरूपकूं अन्य चिंतवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है। यो शरीर इंद्रियगम्य है अर मे आत्मा अंतीद्रिय हूं। अर शरीर अज्ञानी है अर मै आत्मा ज्ञानीहूं। शरीर अनित्य है मै आद्यंतवन् है मै अनादि अनंत हूं। संसारमे परिभ्रमण करता जो मै ताक अनंतशरीर व्यतीत भए। ऐसे शरीरादिकनितैं अपना अन्यपणाकूं चिंतवन करना

सो अन्यत्वभावना हैं। ऐसे चिंतवन करते जीवकै शरीरादिकनिमें ममत्वके अभा तै आत्मकल्याणहीमे उद्यम होयहैं।

शरीरका अशुचिरूप चिंतवन करना सो अशुचिभावना है। जातैं शुचिपणा दोय प्रकार है लौकिक लोकोत्तार भेदतैं। तिनमे आत्माके कर्मकलंकका नाश होय अपने स्वरूपमे अवस्थित होना सो तो लोकोत्तारशुचिपणा है। इसका कारण तो सम्यग्दर्शनादिक है तथा सम्यग्दर्शनादिकके धारक साधु हैं। तथा साधुनिकी आधाररूप निर्वांणभूम्यादिक मुक्त होंनेके उपाय तातैं शुचिनामके योग्य है।

वहुरि लौकिकशुचिपणा अष्टप्रकार हैं। कालशौंच अग्निशौच भस्मशोच मृत्तिकाशौच गोमयशौच जलशौंच ज्ञानशौच ग्लानिरहितपणाशौच। ऐसे है परंतु ए अष्टप्रकार शौच लौंकिक है। ते शरीरने शुद्धिकरनेकूं समर्थं नहीं। जातें शरीर तो अन्यजलादिकशुचिद्रव्यनकूं अशुचि करेहै। शरीरका आदिकारण तो महा अपवित्र माताका रूधिर पिताका वीर्यं है। अर उत्तारकारण आहारका परिणमनादिक है सो मनुष्य तिर्यंचनिके कवलाहार है सो ग्रहण होत प्रमाण कफके स्थानकूं पायकरि अतिद्रवरूप हुवा अधिक अशुचि होयहै। पछै पित्ताशयने प्राप्त होई पच्याहुवा महा अशुचिही होयहै। फिर पक्याहुवा वाताशयकूं पाय वायुकरिके खलरसभावकरि भेदने प्राप्तहोयहै।

तहां मलमूत्रादिक तों खलभागरूप है। रूधिर मांसके मेद मज्जा वीर्य ये रसभाग है यातैं समस्त अशुचिका पात्र शरीर है। याकी अशुचिता दूरि करनेकूं कुंकुम चंदन कर्पूंरादिकनिके अनुलेंपन तथा स्ननादिक समर्थ नहीं है। अंगारकीज्यों आपके अश्रितद्रव्यनिकूं शीघ्रही अपने स्त्रभावज्यों अशुचि करेहै। ऐसे स्मरण करतेकें शरीरतै विरक्तता होइ तदि संसारसमुद्रके तरणके अर्थि चित्तकूं धारेहैं। ऐसे अशुचिभावना कहीं।

वहुरि मिथ्यात्व अविरत कषायनिकें द्वारे कर्मंनिका आगमन तांकूं आस्रव कह्या जो संसार परिभ्रमणका कारण आत्माका गुणनिका घातक है। इद्रियनिकी आतापकरि संसारमे महाक्लेश भोगें है। तथा मोहके उदयके वशतें जीवके परिणाम होइ है ते समस्त आस्रवही हैं। इन मिथ्यात्वादिक आस्रवभावतें पुण्यपापरूप कर्मका आगमन होय है सो संसारमे परिभ्रमण करावें है। ऐसे आस्रवनिके दोषनिकूं चिंतवन करना सो आस्रवभावना है। ऐसे चिंतवन करतेके उत्तमंक्षमादिदशलक्षणधर्मंमे दृढबुद्धि होय है। आस्रवनिके निरोधमे यत्न करेहै।

वहुरि सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका विजय योगनिका निरोध ए संवरहीके नाम है। तथा तीन गुप्ति पंचसमिति दशलक्षणधर्म अनुप्रेक्षा परिषहजय उत्कृष्टचारित्र

इनतैं परमसंवर होयहै। जो पुरूष समस्तविषयतैं विरक्त होइ संवर करेहै ताकै संसारपरिभ्रमणका अभाव होयहै। ऐसे संवरभावना कही।

वहुरि जो सम्यग्ज्ञानी अहंकारमदरहित हुवा निदानरहित वीतरागभावनातैं तप करेहै ताके वडी निर्जरा होयहै। समस्तकर्मनिकी शक्तिका उदय होना सो अनुभव है सोही कर्मके रसका अनुभव है। अर रस दींया पाछे निर्जरेही है। सो निर्जरा संसारीजीवके च्यारोंही गतिमे अवसरपाय होय सो सविपाकनिर्जरा है। अर तप व्रत संयमके प्रभावतैं होय सो अविपाकनिर्जरा है। जैंसेजैसे संयमीनिके उपशमभावकी तपकी वृद्धि होय तैंसेतैसे निर्जराकी वृद्धि होयहै। जो साधु कषायनिका निग्रह करिकैं दुष्टनिकरि कीए अनेकप्रकारके दुर्द्धर उपसर्ग सहेहै। शरीरकूं विनाशिक जडस्वभाव जानि अपना ज्ञानदर्शनस्वभावकूं अखंड अविनाशी अनुभव करता संक्लेशरहित मन अर इंद्रियनिका निग्रहकरि अपने स्वरूपमे लीन होइहै तिनके परमनिर्जरा निरंतर भावना करना उचित है। ऐसे निर्जराभावना कही।

अव लोकभावना कहैं है। सर्वतरफ अनंतानंतक्षेत्ररूप आकाशद्रव्य है। ताका अत्यंतमध्यविषै षड्द्रव्यनिका समुदायरूप लोक हैं। सो समस्त चोदह राजू ऊंचा है। अर दक्षिण उत्तर नीचै उपरि मध्यमै समस्त सात राजू हैं। अर पछैं उपरि अनुक्रमतैं सात राजू ऊंचापर्यंत घटि मध्यलोककै निकट राजूप्रमाण है।

वहुरि ताकै उपरि क्रमकरि वधतावधता साढातीन राजू ऊंचा जाय ब्रम्हस्वर्गका अंतके निकट पांच राजू विस्तार हैं। वहुरि ताकैं उपरि क्रमकरि घटताघटता लोकका अंतविषै एकराजूप्रमाण है। याप्रकार लोकका पूर्वपश्चिम विस्तार है। इस लोककै मध्यमें एकराजू लंबी एकराजू चौंडी चोकोर चोदहराजू ऊंची लोकका नींचला वातवलयका अंतसूं उपरि लोकका अंतपर्यंत त्रसनाली है। त्रसजीव इस त्रसनालीमैंही है। नरक भुवनलोक मध्यलोक व्यंतरलोक तिर्यग्लोक ज्योतिर्लोक स्वर्गलोक मुक्तिस्थान समस्त त्रसनालीकै मांही है। त्रसनालीकै वाह्य उपवाद अर मारणांतिक अर केवलसमुद्घात विना त्रसका गमनहीं है। अर स्थावरजीव समस्तही लोकमें है। अर विकलत्रयजीव तथा असंज्ञीपंचेंद्रिय तिर्यंच है। ते कर्मभूमीकें एकसो सत्तरिक्षेत्रमें है। अर अंतका स्वयंभूरमणद्वीपका अर्द्धभागमें समस्तस्वयंभूरमणसमुद्रमें अर ताकै वारै च्यार कोणनिमेंही है। ओर समस्त असंख्यातद्वीपसमुद्रनिमै नहीं है।

ओर ऊर्ध्वलोक अधोलोकमेंहू विकलचतुष्क नहीं है। अर मनुष्य अढाई द्वीपमेंही है। अढाईद्वीपवारै आधास्वयंभूरमणद्वीपपर्यंत हैमवतक्षेत्रकी जघन्यभोगभूमिके तिर्यंचनिसमान

पंचेंद्रियतिर्यंचही है। अर लवणोदधि कालोदधि अर अंतको स्वयंभूरमणसमुद्र इन तींन समुद्रमेही जलचरजीव है। अन्य असंख्यातनिमैं नहीं है। ओर समस्तरचनाकी कथनी तृतीय अध्यायमैं वर्णंन करीही है। इस लोकके अंतमैं नीचै ऊपरि मध्यमें सर्वत्र तीनपवन व्याप्त है।

बहुरि तीनसैतेतालीस राजूप्रमाण आकाशरूप क्षेंत्रके समस्त प्रदेशनिमें तिलमे तेलकीज्यों धर्म द्रव्यके अर अधर्मद्रव्यके असंख्यातप्रदेश व्याप्त हो रहे है। अर तिसही असंख्यातप्रदेशरूपलोंकाकाशमैं अनंतानंतजीवद्रव्य तिष्ठै है। अर याहीमें जीवराशितें अनंतानंतगुणें पुद्गल तिष्ठैं है। इस लोककेही असंख्यातप्रदेशनिमे एकएक भिन्नस्वरूपकरि कालद्रव्य तिष्ठे है। ऐसे छहुं द्रव्यनिका समुदायरूप लोकाकाशविषै यो जीव अनंतानंकालम मिथ्यात्वके वशतै परद्रव्यनिमें आपा मानि परिभ्रमण करै हैं। पुद्गलजनितपर्यायहीमें अहंकार मानि रह्यो हैं। सो लोकभावनाका चिंतवन करनेतै समस्तद्रव्यनिका भिन्नभिन्नगुणपर्यायनिकरि स्वभाव जाननेंतै जीवद्रव्यका स्वभाव जाने तदि जीवद्रव्यमें अपना आतमाभी है। ताहि निश्चयकरि परके उलद्गाडतै आपकूं निकाशि मोक्षके अर्थि यत्न करै। ऐसे लोकभावना कही।

बहुरि रत्नस्वभावका प्राप्ति होना अतिदुर्ल्लंभ है। जातै एकनिगोदशतीरमें अतीत कालके सिद्धनितै अनंतगुण जीव है। ऐसे निगोद शरीरनितें तथा पंचप्रकारकेस्थावर जीवनितै समस्तलोक तिरंतर व्याप्त है। तहां त्रसपणा पावना वालुकासमुद्रमै हीराकी कांणकावत दुर्ल्लंभ है। अर त्रसनिमेहू विकलत्रयजीवनिकी बाहुल्यता है। तातै पचेंद्रिय पावना बहुत दुर्लभ है। जैसे गुणवंतनिके कृतज्ञता पावना बहुत कठिन है। अर कदाचत् पंचेंद्रियहू होय तो तिनमै पशू सिंह व्याघ्र मृग पक्षी सर्प्पादिकनिकी बहुत पर्यायनिमे जाय उपजै चोहटेंमैं रत्नराशिका पावना दुर्ल्लंभ तैसे मनुष्यपणा बहुतदुर्ल्लंभ है। अर मनुष्यपणा प।यकरि छूटि फेरि मनुष्य होना ऐसा दुर्ल्लंभ है जैसे दग्धहुवा वृक्षके पुद्गलनिका फिरि वृक्षरूप होना दुर्ल्लंभ हैं। अर कदाचित् मनुष्यपणाभी हो जाय तोहू हित अहितका विचाररहित पशुसमानमनुष्यनिकरि भऱ्याकूंदेश बहुत है। तातैं पाषाणनिमें मणिकीज्यों उत्तमदेशपावना अतिदुर्ल्लंभ है। अर कदाचित् उत्तमदेशहु पावै तो पापकर्ममें लीन ऐसे कुकर्मके करनेवाले कुल बहुत है। तातै शीलविनयसंयमादिनिकनिकों धारनेवाला कुल अत्यंत अल्प है। अर कुलहू उत्तम पाजाय अर अल्पआयुही मरिजाय तो एती सामग्री निष्फल होइ है।

अर दीर्घायुभी होइ तो इंद्रियपरिपूर्णता दुर्लभ। अर इंद्रियसामग्री पाजाय तो बल रूप नीरोगपणा पावना अतिदुर्ल्लंभ है। अर समस्त प्राप्त हो जाय अर जो सम्यक्-

धर्मको ग्रहण नही होइ तो नेत्ररहित मुखज्यौ व्यर्थ है। यो धर्मही अतिकठिन प्राप्त होय है। अर धर्मकूं प्राप्तहोयकरिकैहू जो विषयनिके सुखमैं रंजायमान होय है। सो भस्मकै अर्थि चंदनकूं दग्ध करै है। अर विषयसुखनितैं जो विरक्त नही ताकै तपकीं भावना धर्मकी प्रभावना संक्लेशरहितसुखरूप समाधिमरण नहीं होय है। समाधिमरण होय तदिहीं बोधिलाभ फलवान् हैं। ऐसे चिंतवन करना सो बोधिदुर्ल्लभत्वानुप्रेक्षा हैं। याकूं भावनेतं बोधिकूं प्राप्तहोय कदाचित् प्रमादी नही होय है। ऐसें बोधिदुर्ल्लभत्वभावना कही।

अव धर्मभावनाका संक्षेप ऐसा। जो धर्म है सो वस्तुका स्वभाव है। यातैं जो रागद्वेष मोहादिक परद्रव्यका उदयरूप मलकरि रहित अपना निर्विकारज्ञानदर्शनरूप होना सो धर्म है। अपने स्वरूपकै वाहिर दिशाविदिशामैं आकाशमें पातालमें नदीमें समुद्रमैं पहाडमें मंदिरमे प्रतिमामे शास्त्रादिकनिमैं धर्म नही धऱ्या है। द्रव्य खरचें मोल नही आवै है। कोऊका दियाहुवा नही आवै देहादिकनिका बलकें आधीन वा नानावेषधारणादिककै आधीन नही है। ए तो समस्तक्रियाकांडादिक बाह्यनिमित्तमात्र है। जब तौ आत्मा रागादिकपरिणतितैं छूटि शुद्धवीतरागरूप ज्ञानपरिणतिकूं प्राप्तहोय तिसकाल धर्मरूप है। जातै मंदिरमेहू जाय धनहरण करेगा वा किसी स्त्रीकूं अवलोकन करैगा तथा कामसेवन करैगा भोजनादि विकथादि हिंसादि आरंभ करेगा तो मंदिरमे तो नही करै ये तो धर्मायतन है याकूं धर्म जाणि सेवन करेगा ताकै कल्याण होयगा धर्म परिणति होनेकूं सहकारीकारण है।

धर्मरूप तो चेतनही परणमेगा जड तो धर्मरूप नही होयगा। जातै देखिए है। क्रोधमानादिक है ते ज्ञानमे मोहजनितविकार है। ए विकार दूरिहोय तदि आत्मा अपना उत्तमक्षमादिक स्वभावकूं प्राप्तहोइ सोही धर्म हैं। यातें क्रोधविकाररहित आत्माका उत्तमक्षमारूप होना। अर मानकषाय छांडि मार्दवरूप होना। माया छांड आर्जवरूप होना। लोभ छांडि शौचरूप होना। असत्य छांडि सत्यरूप होना।

विषयनिमें प्रवृत्तिरूप असंयमभाव छांडि संयमनियमरूप होना देहादिकपरवस्तुमे ममत्व छांडि अकिंचनरूप होना। विषयनिमें राग छांडि ब्रम्हरूप आत्मामै चर्या करना ए समस्त दशलक्षणरूप आत्माका स्वभाव है। आत्माकी दशलक्षणरूप परिणति होय सोही धर्म है।

वहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रहू आत्माका स्वभावही है श्रद्धान ज्ञान आचरण हैं ते आत्माहीकी परिणति है। अर समस्त अन्यजींवनिकी दया अर अपनी दयारूपपरिणतिभि आत्माहीकी है। तातें दशलक्षणरूप रत्नत्रयरूप जीवदयारूप जिनभक्तिरूप

इन रूप आत्माकूं हुवाविना अन्यत्र कोऊ प्रकार धर्म हैनही धर्महीं संसारका दुःखका अभावको कारण है। सो अहो परमोपकारक धर्मकूं भगवान् अरहंतदेवस्वाख्यात कहिए भलेप्रकार वहुत-सुंदर कह्या है। ऐसे चिंतवन करना सो धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा है। ऐसे चिंतवन करताकें धर्मानुरागतै धर्ममे प्रयत्न होयहै। ऐसे अनित्यत्वादि अनुप्रेक्षाके चिंतवनतें उत्तम क्षमादि-धरणेंते महान् संवर होयहै ।

अब परिषहनिके जयकूं आगै कहेगें सो ह्यालि पूछेहै जो परिषह कोनअर्थि सहिए यातें सूत्र कहैहै ।

मार्ग्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परषहाः ॥ ८ ॥

अर्थप्रकाशिका— रत्नत्नयमार्गतैं नही छूटनेकेअर्थि अर कर्मकी निर्जराके अर्थि परीषह सहनेंयोग्य है। जे क्षुधादिक परिषह स्ववशें होय सहेहै ताके कर्मके वशलै रोगादिक शीत उष्णादिकवेदना आवतें परिणाम धर्मतै नही चलेहै संयमतै नही छूटेहै। जातें जो अनशनादि-तपकरि तथा आतापनयोग वृक्षमूल अभ्रावकाशादिकजनित परिषहनिकरि अपना शरीरकूं मनकूं साधि राख्या होय सी पराधीन आया मनुष्यतिर्यंचदेवनि कृत उपसर्गतातै तथा मरणके कारण रोगनिकूं होतेहू धर्मके मार्गतें चलायमान नही होयहैं अर कर्मनिकी वडीं निर्जरा करेहै यातै सदाकाल शरीरका मनका स्तंभनकें अर्थि परिषह सहना उचित हैं। जो परिषहनिकूं जीतेंहै सो संवरकूं आश्रयकरि समस्तसंसारका नाश करनेकूं समर्थ होय ज्ञानध्यानरुप आयुधनि-करि कर्मनिका मूल छेदनिकरि निर्वाणकूं प्राप्त होयहै। याहीतें अब परिषहनिकूं कहेहै ।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचना-लाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥

अर्थप्रकाशिका—। क्षुधा । १, तृषा । २, शीत । ३, उष्ण । ४, दंशमशक । ५,नाग्न्य ६,अरति । ७, स्त्री । ८, चर्या । ९, निषद्या । १०, शय्य । ११, आक्रोश । १२, वध । १३, याचना । १४, अलाभ । १५, रोग । १६, तृणस्पर्श । १७, मल । १८, सत्कारपुरस्कार । १९, प्रज्ञा । २०, अज्ञान । २१, अदर्शन । २२, ऐसे द्वाविंशतिपरीषहके नाम कहे । क्षुधातृषादिक ए वाईसपरिषह शरीरसंबंधी अर मनसंबंधी अत्यंतपीडाका कारण समभावनितें सहना । इनके जीतनेमें मोक्षके अर्थिनिकूं बडा यत्न करना ।

कैसें जीतना सो कहेहैं। अत्यंतक्षधारूप अग्निकूं प्रज्वलित होतें धैर्यरूपजलकरि जो शांत करे ताके क्षुधापरीषहका विजय होयहै। कैसेक है साधु जिनके वस्त्रादिककरि शरीरका

समस्तसंस्कार नही है। अर शरीरमात्र उपकरणकरि संतुष्ट है। अर संयमका विनशनेका कारण दूरीहीतैं परिहार करेहै। अर कृत कारित अनुमत संकल्पित उद्दिष्टादिक दोषनिकरि रहित है भोजन जिनके। अर देशकालादिककी योग्य अपेक्षाकरि है प्रवर्त्त जिनके। ऐसे त्यागीनिके अनेक उपवास अर मार्गके चलनेतैं अर रोगके उपजनेतैं तथा तपके वर्द्धनतैं तथा स्वाध्यायके करनेतैं उपज्या खेदतैं वा वेलांका उल्लंघनतैं अवमोदर्यादिकतैं तथा असातावेदनीयकी उदीरणादिकतैं तथा नानाप्रकार आहाररूप इंधनका अभाव इत्यादि कारणनितैं जैसे पवनकरि प्रज्वलित अग्निकी शिखाकीज्यों शरीर इंद्रिय हृदयकै क्षोभ करनेवाली जठराग्निकरि प्रज्वलितक्षुधाकी वेदना उत्पन्न होय ताका इलाजकूं अकालविषैं अर संयमके विरोधीद्रव्यनिकरि आप नही करैं अर अन्यकरि कीयाहू वाकूं नही सेवन करैं अर मनविषै संयमके घात करनेवाले द्रव्यनिका सेवनकूं नही धारण करेहै। अर ऐंसा विषाद नही करे या वेदना दुस्तर है अर काल महान् है दिन वडो है कैसे पूर्ण होयगा। अर जिनके हाड चाम नख कलेवरमात्र देह रहिगया तोहू आवश्यक क्रियामे नित्य सासता उद्यमी है। अर पराधीनबंदिग्रहादिकमैं तिष्ठता मनुष्य तथा निर्धन रोगीमनुष्य तथा पींजरेनिमें दृढबंधननितैं बंधे तिर्यंच तिनकैं क्षुधाकी पीडा पराधीनता अवलोकनकरि संयमरूप कुंभमे धारणकीया धैर्यरूपजलकरि जे क्षुधारूप अग्निकूं शांत करते क्षुधाकृतपीडाकूं नहीं गिणैंहै तिन साधुनिकै क्षुधापरीषहका विजय होयहै।

वहुरि तृषावेदनीकी उदीरणाके कारण होतेहू ज्यो तृषाके वस नही होना सो तृषापरीषहसहना हैं। देखहू वीतरागीमुनीके स्नानका अवगाहना अंगऊपरी चलके सींचनेका तो यावज्जीव त्याग हैं। अर पक्षीनिज्यो एकस्थानमे ध्रुव जिनका बसना नही है। अर परके घर अतिक्षार सचिक्कण रूक्ष प्रकृतिविरूद्ध आहार ग्रहणकीया है। अर ग्रीष्मऋतुका आताप अर पित्तज्वर अर अनशनादितप इनकरि उर्णाकूं प्राप्तभइ जो शरीर अर इंद्रियानिमे मथनकरनेवाली तृषा तीका इलाजमे अनादररूप मन जिनका। अर ग्रीष्मके तीक्ष्णसूर्यकी किरणनिकरि संतापित जो वनभूमि तिसमैं तिष्ठै है। अर निकट तिष्ठता जलका हृद तिसमें मनकूं नही चलावते जलकायके जीवनिकैं वाधाका परित्यागकी इच्छातैं जलकी चाहरहित है जैसे जलका संबंधरहित वेली म्लनताकूं प्राप्त होय तैसे म्लानीकूं प्राप्त जो शरीरलता ताही नहीं गिणतै तपका परिपालनमे तत्पर है। अर भिक्षाका अवसरमैंहू अपनी चेष्टा आकारसमस्यादिकरि अपने पीवनेयोग्यभी जलादिकप्रति प्रेंरणा याचना नही करते अपना धैर्यरूप कुंभमे धारणकीया शीतलसुगंध ध्यान रूप जलकरि तृषारूप अग्निकी शिखाकूं बुझावे है तीन साधुनिके तृषापरिषहसहना होय है ।। २ ।।

वहुरि जो शीतके कारतनिकूं निकट होतै शीतका इलाजकी वांछारहित हुवा संयमका परिपालन करेहै । ताकें शीतपरिषहसहना जानना । वस्त्रनिका है परित्याग जिनके अर

पक्षीनिकीज्यो रहनेंका स्थानका नही है निश्चय जिनके अर शरीरमात्रही हैआधार जिनके अर समस्तहीं ऋतुमे वृक्षनिके नीचे तथा चोंहटै तथा गुफादिक वा नदी तलावक टत रात्रीकूं ध्यानादिसहित व्यतीत करनेंकी है प्रतिज्ञा जिनके अर शिशिरऋतुमें पडता ऊस अर वरफ पाला अर महान् शींतपवनका घात करि हत्या है शरीर जिनका तोहू शीतके दूरि करनेमे समर्थं अग्नि इत्यादिकनिकूं चिंतवन नही करेहै। अर ऐंसा विचारे है जो है आत्मन् तूं नरकनिविषैं दुःसह शीतवेदना असंख्यातकालपर्यंत अनंतवार कर्मंके वसि होय होगीहै। या वेदना तो कुछ है नही ।

ऐसे चिंतवन करता परमार्थं विगडनेका भयतें शीत दूरि होनेके इलाजकी वांछा-प्रति विचार नहीं करे है। शीतके दूरि करनेमें समर्थ विद्या मंत्र औषध पत्र वल्कल त्वचा तृण चामडादिकनिका संबंधमे कदाचित् मनकूं नहीं चलावे है। अन्यका देहतुल्य अपना देहकूं मानि रहे है। धैर्यरूप गर्भगृहमें विवेकरूप दीपकके उद्योतमें निजस्वरूपकूं अवलोकन करते आनंदसहित रात्रिकूं व्यतीत करै है। अर जो पूर्व्वकालमे भोगे जे श्रेष्ठ स्त्रीनिकूं नवीन यौवनकरि पुष्ट कुच नितंब भुजनिका अंतरालकरि शीतका निवारण ताहि नहीं स्मरण करें हैं। कामके सुखका रसकी खानि जो पूर्वे भोग्या स्थानमे असारपणा जानि चिंतवन नहीं करै है। शीतकी तीव्र वेदना होतेहू विषादरहित संयममे तीव्र उत्साहसहित तिष्ठे तिनके शीत वेदनाका सहना होय है।

बहुरि ग्रीष्मादिजनित दाहके इलाजकी वांछाका अभावतें चारित्रकी रक्षा करना सो उष्ण परिषहका सहना होय है। ग्रीष्मर्तृका सूर्यकी अतिकठोंरकिरणनिकरि संतापित है देह जिनका । अर तृषाकी वेदनातै उपज्या तथा अनशनतपकरि पित्ताके प्रकोपकरि अर तावडेकरि मार्गके खेदकरि उपजी है उष्णता जिनकें। अर पसेव शोष दाहकरि अत्यंत पीडित है । तोहू जलके भवनमे निवासकूं जलके अवगाहनकूं चंदनकर्पूरादिकके लेंपकूं जलके छणिकाव आसीभूमिका स्पर्श नीलकमल केलिके पत्रनिकरि पवन जल तूलिका चंदन चंद्रमाकी किरण कमल बर्फ इत्यादिक पूर्वकालमै अनुभवे शीतल द्रव्यनिकी चाहरहित है।
चित्त जिनका अर ऐसा विचार करें है जो संसारमें बहुतबार अतितीव्र उष्ण-वेदना पराधीनहुवा भोगी है। अब तो मैं कर्मक्षयका कारण तप करनेमें उद्यमी हूं तातै संयममे विरोध करनेवाली क्रियामे अनादरकरि चारित्ररक्षण करना। ऐसे जलभावकें धारक साधुके उष्णपरीषहसहन होय है ॥ ४ ॥

बहुरि दंशमशकपरीषहसहनकूं कहै है। त्याग कीया हैं शरीरका आच्छादन जिनने अर कहा हूं नहीं बांध्या है। स्थान जिनने वस्त्रादिककूं त्यागकरि अर कोऊ क्षेत्रमें अपना स्थानका नेम नहीं बांध्या है। अर परके कीए मठमाकन गुफा दरांडदिकनिमें रात्रंदिना

वसे है। तहां डांस मछर मक्षिका पीहूं जूरावां उटकण कीडा कीडी बीछू इत्यादिक तीव्र वेदनाके उपजावनवारे अनेक जीवनिके तीक्ष्णडकनिकरि मर्मस्थानमें भक्षणकीएहू अपने परिणाममे विषादकूं नहीं होइ है। अपने कर्मके उदयकूं चितवन करै है। अर विद्या मंत्र औषधादिक इलाजकरि तिनका अभावकूं नहीं इच्छा करै है। कर्मरूप वैंरिके भंगप्रति उद्यमयुक्त होय समस्त जीवनिकी दयाप्रति उद्यमी होय वसे है। तिनकै दंशमशकपरिषहसहन होय है ।। ५ ।।

वहुरि जैसा माताका गर्भतै उपज्या तैसा नग्नरूप धारण करना सो नग्नपरींषहसहन है । गुप्ति सतितिका विरोधी जो परिग्रह ताका त्यागकरि परिपूर्ण ब्रम्हचर्य इस नग्नतामें वसे है। अर वांछारहित मोक्षका कारण चारित्रका आधारहू नग्नपणाही है। अर नग्नपणा कोऊ संस्कारतें नहीं बण्या है। स्वतैंसिद्ध हैं। अर विकाररहित है। अर मिथ्यादर्शनकरि सहित पुरुषहू यातें वैर नहीं करै है अर परममंगलरूप है। ऐसा नग्नपणाकूं प्राप्तहुवा साधु है। सो स्त्रीके रूपकूं महा अशुचि दुर्गंध देखे है । अर वैराग्यभावनाकरि मनके विकारकूं रोकै है।

शीतउष्णदिकसमस्तपरिषहनिकूं सहै है । यातै नग्नपरिषहका विजयही परमकल्याण है। अर अन्य भेषी है । ते मनके विकारकूं निरोध करनेकूं असमर्थ हैं। अर देहके विकारकूंहू रोकनेकूं समर्थ नहीं है। तातैं कौपीन वस्त्र भोजन पात्रादिक आभरणधारण करै है। तातै नग्नपणाका परिषहका विजय धन्य दिगबरही धारण करै है ।। ६ ।।

वहुरि संयममें अत्यंत रति धारै है तातैं वाह्य अरतिकूं दिगंवर जीतै है। इतने कारण अरति उपजनेके विद्यमान है। क्षुधा तृषा शीतउष्णादिककी वाधा संयमकी रक्षा इंद्रियनका दुर्ज्जयपणा व्रतनिका परिपालनका भार सर्वकाल अप्रमादीपणा देशांतरनिकी अनेक भाषानिका अजानपणा कठोर चपल बनके प्राणीनिका संगम प्रचुरभयानकवनका वास कठोरभूमिमें शय्या आसनादिकका नियम अर एकविहारपणा इत्यादिक कारणनितें उत्पन्न भई दुःखकारी अरति तीनै धैर्यके विशेषतें निवारण करता साधुजनके संयममैं रतिकी भावनातें विषयनिके सुखको विषका आहारका सेवनजों परिपाककालमे कटुक चिंतवन करें है। तिनके अरतिपरिषहका विजय होय है।

वहुरि सुंदरस्त्रीनिका रूपका अवलोकन स्पर्शनादिकतै पराङमुखपणा सो स्त्रीपरिषहका जीतना हैं। एकांतवन वगीचेनिके महलभवनादिक स्थानमें तिष्ठते साधुनिके रागद्वेषसहित यौवनको मद आभरण वस्त्रादिकनिका मद उन्मादसहित मद्यपानादिकरि उन्मत्त हावभावविलासविभ्रमनिकरि सहित स्त्री आय नानाप्रकारकी वाधा करतासताहू स्त्रीनिके

नेत्र मुख भ्रुकुटीका विकार शृंगार आकार विहार विलास लीलाकरि कटाक्षनिका विक्षेप तथा सुकुमार सचिक्कण कोंमल उन्नत पुष्ट ऐंसे कुच अर उज्वल कृश उदर अर विस्तीर्ण जघन और रूप गुण आभरण सुगंध वस्त्रमाल्यादिकनिके अवलोकन स्मरणतें अत्यंत दूरि-वर्ती है मन जिनका देखनेस्पर्शनेकी अभिलाषारहित है। तथा स्त्रीनिके कोमल स्नेहके भरे श्रृंगाररसकूं पुष्ट करनेंवाले गीत वादित्रनिके श्रवणप्रति निरादररूप वर्तें है। संसार-समुद्रके मध्य पतनतैं अतिभयभीत तिनकै स्त्रीपरीषहका सहन होय है।

बहुरि मार्गके गमनके दोषनिका निग्रह करना सो गमनपरीषहका विजय है। बहुत कालपर्यंत गुरुनिके संघमैं ब्रम्हचर्यंका कीया है अभ्यास जानै। अर जाण्या है बंधे मोक्षका पदार्थका स्वरूप जाने। अर कषायनिका निग्रहमें तत्पर। अर द्वादशभावनाम स्थापी है। बुद्धि जानै। अर नानादेशनिके व्यवहार अर भाषामै प्रवीण। ऐसे साधुकै गुरुनिकी अज्ञातैं संयमोनिकी भक्तिके अर्थि तथा ग्रामकै नजीक एकरात्रि वसना नगरकें समीप पंचरात्रि वसनेंका वर्षाॠतुविना उत्कृष्टनियम है। यातै पवनज्यों निःसंगपणान प्राप्तभया देशकालादिप्रमाणकरि मार्गविषैं गमनकूं करते भयानीक वनीकै प्रदेशनिमें सिंह-कीज्यों निर्भयपणातैं सहायकूं नहीं वांछा करता कर्कश कंटक कंकरादिकनिकें भिदनेकरि उत्पन्नभया है चरणनिमें खेद जिनकै। तोहू पूर्वें कीया जो यानवाहनादिऊपरि चढि गमन ताकूं नहीं स्मरण करतेकैं गमनजनित दोषनिका परिहारतै चर्यापरिषहसहन होइ है॥ ९॥

बहुरि स्वयं संकल्पकीया जो आसन तातैं चलायमान नही होना सो निषद्यापरिषहका विजय होयहै। संयमके क्रियाके जाननेवाला अर धैर्यही है सहाय जाकै अर उत्साहवान् अर शमशान् उद्यान वन शून्यगृह पर्वतनिको गुफा दरांडा इत्यादिक पूर्वें परचैं नही कीए ऐंसे स्थानमे तिष्ठते साधु है सो उपसर्ग रोग विकार प्रगट होतै आसनतैं चलायमान नही होयहै। मंत्रविद्यादिक इलाजकूं नही करेहै। अनेक क्षुद्रजीवनिकी बाधा होतैंहूं। काष्ठपाषाण-वत् निश्चल रहेहै। पूर्वें अनुभव कींए जे कोमल गद्दी गदडा सिंहासनादिक तिनके सुखरूप स्पर्शादिकनिकूं नही चिंतवन करेहै प्राणीनिकी पीडाका परिहारमे उद्यमी है। ज्ञानध्यानभाव-नामे बुद्धिकूं धारैहै तिनकें निषद्यापरीषहका सहन होयहै॥ १०॥

बहुरि आगमकी आज्ञाप्रमाण शयनतैं नहीं चिगना सो शय्यापरिषहका सहन हैं। स्वाध्याय अर ध्यान मार्गमैं गमनकरि खेदसहित ऐसे। अर कठोरभूमि कठै नींची कठै ऊंची ऐंसी विषमभूमि अर प्रचुर कांकरा कांकरी ठींकरानिके खंडनिकरि सहित अर सडकी तथा अतिशीत अतिउष्ण भूमिविषै मुहूर्तप्रमाणनिद्राकूं प्राप्तहोते ऐसे। अर जैसे करींलीया तैसे एकपसवाडै वा दंडतुल्य वा सूधे शयन करते ऐसे। अर शरीरमे बहुत बाधा होतेहू संयमके पालनेकै अर्थि हलनचलन नही करते ऐसे। अर व्यंतरादिक दुष्टदेवनिमै त्रासरूप कीए तोहू भागनेउठनेप्रति अभिलाषरहित ऐसे।

अर मरणका भयकी शंकारहित ऐंसे। अर पडा काष्ठकिज्यो वा मृतकशरीरकीज्यों पलटनेकरि रहित ऐंसे। अर व्याघ्र सिंह महानसर्पादिक दुष्टजींवनिकरि भऱ्या यौ वन है इहांतै शीघ्र निकसि जाना भला है कदि रात्रि पूरी होसी इत्यादिकविषादकूं नही धारते ऐंसे पूर्वं गृहस्थावस्थामे भोगी जो लूण्या घृतवत् कोमल शय्या ताकूं नही यादि करते ऐंसे। ज्ञानी वीतरागी साधुकें सम्यक् आगमोक्त शय्यातै नही चिगना सो शय्यापरिषहका सहना जानना ॥ ११ ॥

बहुरि अनिष्टवचनका सहना सो आक्रोशपरीषहका विजय है। तीव्र मोहकरि सहित मिथ्यादृष्टि आर्य म्लेंछ दुष्ट पापाचारी उन्मत गर्विष्ठ इत्यादिकनिकरि कहे क्रोध रूप अग्निशिखाकूं वधावनेमारे हृदयमे शूलसमान कठोरवचन मर्मछेदके वचन श्रवण करेहैं तोहू परिणाममे कलुषित नहीं होयहै। अर रोष करै तो भस्म करदेनेका सामर्थ्य है तोहू साम्य-भावका धारक साधु है सो उनकी करूणाही करेहै। जो इनकै कर्मका उदयकरि अज्ञानभाव है। हमारे देखनेकरि इनकै दुःख उपज्या है। कर्मकै परवश है इनको अपराध नही मेराही अशुभकर्मका उदय है। ऐंसे चिंतवन करता परकरि कहे दुर्वचननिकरि कलेसकूं नही प्राप्तहोय ते अनिष्टवचननिकूं सहेहै। तितिनकें आक्रोशपरिषहका सहना होयहै ॥ १२ ।

बहुरि मारनेवालेमें रोषका अभावरूप होना सो वधपरींषह सहना है। ग्राममैं उद्यानमें वनीमे नगरमैं रात्रिदिन एकाकी अर आच्छादनरहित नग्नमुनिकूं क्रोधके भरे चोर भिल्ल म्लेंछ तथा पूर्व अवस्थाके वैरी मिथ्यादृष्टि धर्मके द्रोही दुष्टलोक नानाप्रकारके ताडन आकर्षण घसीटन बंधन पाषाण लाठी शस्त्र चावक इत्यादिकनिकरि मारै है तोहू वैररहित भए है ऐंसा विचारे है। जो शरीर अवश्यविनाशीक है। जैसे मेरा व्रत शील-भावना ध्यानका नाश नहीं होय अर समभावतै शरीरका पतन होय सो श्रेष्ठ है। जैसे दग्ध होताहू चंदन सुगंधकूंही देहै तैसे क्रोधकरिकै मारन ताडन करताहू दुष्टवैरीप्रति उत्तम-क्षमाके बलकरि अपनें कर्मकी निर्जरा करतेहू धैर्यके धारी विकारपरिणामकूं प्राप्त नही होय है। तिनके बंधपरिषहका विजय होय है ॥ १३ ॥

बहुरि प्राणनिका नाश होतेहू आहारादिकनिके अर्थि दीनतारूप प्रवृत्तिका अभाव सो याचनापरीषहका विजय है। क्षुधाकरि तथा मार्गके खेदकरि तपकरि रोगादिककरि जनका वीर्यं नष्ट होगया अर शुष्कवृक्षकीज्यों आर्द्रतारहित है। शरीर जाका ऊंचे प्रगट भयें है हाड नसाजाल जाकै। अर नीचै गडीगए हैं नेत्र जिनके। अर सूकिगए है अधर ओष्ठ जिनका। अर कृश भया है कपोल जाका। अर संकुचित भई है शरीरकी त्वचा जाकै। शिथिल हुवा है गोडा टकूंण्या कटी जंघा बाहु जाका। अर मौनकूं धारणकरि है

गमन जाकै। अर ग्रहस्थनिकै घर अन्य किसीका रोकना नहीं तहांपर्यंत शरीरका दर्शन-मात्र है व्यापार जिनकै। अर मदरहित है अपने आधीन चित्त जाका। अर प्राणनिको अंत होतैंहूं आहार वस्तिका औषधादिकनिकूं दीनवचनकरि मुखकी विवर्णताकरि हस्तादिककी समस्याकरि उदरकी कृशताकरि कदाचित् याचना नही करता रत्नका व्यापारी मणिकूं दिखावें तैसे दीनतारहित है शरीरका दिखावना जाके। जैसे जगतमें वंदनाकीया-हुवा अपने हस्तका प्रकाशन करे तैसे दातार भोजनके पात्रतैं ग्रास उठाय देवनेंकूं हस्त करें तदि साधु अंजुलीकूं ऊंची करे है हस्तपुटका दीनतारहित आहारका अवसरमें धारणा करते साधुके याचना परीषहका सहना होय है। अवार निकृष्टकालके प्रभावतैं दीन अनाथ पाषंडिनिकरि व्याप्त जगतमें जिनेंद्रके मार्गकूं नहीं जानते याचना करेहै। तिनकें याचनो-परिषहका सहना नही है॥ १४॥

बहुरि आहारादिकका अलाभ होतेंहू लाभकीज्यो संतुष्ट जो साधु ताकें अलाभपरिषहका विजय है। पवनकीज्यो अनेकदेशनिमैं है गमन जिनका। अर एकदिनमें एककाल भोजनकै अर्थि नगरग्राममैं प्रवेश करेहै। तथा एक उपवास दोय तींन पांच उपवासादिकके पारणैं नगर ग्राममे आवेहै तहां एकवार शरीरका दिखावनामात्रही में प्रवर्तेहै। अर देहीं इत्यादिक याचनारूप अयोग्यवचनकरि रहित है। अर आजि आहारका लाभ होयगा कि कालि होयगा ऐसे संकल्परहित हैं। अर देहका इलाजरहित है। अर एकग्राममैं भिक्षाका लाभ नही होय यो अन्यग्राममें गमन कदाचित् नही करै। अर हस्तपुटमात्रही जिनके पात्र है। अर बहुतदिन बहुतगृहामें परिभ्रमण करतेंहूं भोजनका लाभ नही होतेंहू संक्लेशरहित है चित्त जिनका। अर यो पुरूष दाता नही अन्य दाता है इत्यादिक परिक्षारहित है परिणाम जिनका अर लाभतैंभी अलाभकूं परमतप मानि संतोषकूं धारते साधुके अलाभपरिषहका विजय होयहै॥ १५॥

बहुरि नानाप्रकारकी व्याधि होतेहू इलाजप्रति वांछाका अभाव सो रोगपरिषहका विजय है। यो शरीर दुःखको कारण है। अशुचिताको भाजन है। जीर्णवस्त्रकीज्यों अवश्यत्यागनेयोग्य है। अर वायु पित्त कफ संनिपातके निमित्ततैं अनेकज्वर काशश्वासादिक अनेकरोगनकरि पीडित है ऐंसे अपने शरीरकूं अन्यका शरारकीज्यों माने है। वीतरागपरिणामतें नही छूटैं है। देहका इलाजतैं अपूठा है चित्त जाका। रत्नत्रय इस देहविना नही रहे। यातै रत्नत्रयका सहकारी देहका अकालमे नाश नही होनेंकै अर्थि आचारांगकी आ। माण निर्दोष आहार ग्रहण करेहै। जिनके जल्लोषधादिक अनेक ऋद्धि तपके प्रभावतैं उपजी है तोहू शरीरमे निस्पृहपणातै प्रतिकारींकी नही वांछा करता रोगकूं पूर्वकर्मकृतफल जानि समभावतैं सहते ऐसा विचारेहैं जो कर्मरा ऋण चुकैं है। अब ऋणरहित भयो ऐसे चिंतवन करतेकैं रोगपरीषहका विजय होय हैं॥ १६॥

तृणकंटकादिकनिका निमित्ततैं उपजी वेदनाकूं सहते साधुकै तृणस्पर्शविजय होय है। शरीरमे व्याधि अर मार्गमै गमन अर शीतउष्णताजनित खेदके दूरि करनेके अर्थि आपके निमित्त नहीं संवारे ऐसे सुके तृण पत्र कठोरभूमि कंटक काष्ठफलक शिलातलादिक प्राशुक देशनिमै शय्या वा आसनादि करनेतैं तृणादिककरि बाधानै प्राप्तभया है शरीर जाका। अर उत्पन्नभया है खाजिका विकार जाकै। तोहू तृणकंटक कठोर कांकरिभूमिका स्पर्शजनित दुःखकूं नही अनुभव करतेकैं तृणपरी षहसहना होय है ॥ १७॥

बहुरि अपना शरीरका मल अर आगंतुकमलका संचयका नाश होनेका संकल्पको अभाव सो मलपरीषहका सहन जानना। जीवनिकी पीडाका परित्यागकै अर्थि यावज्जीव स्नानका त्याग है प्रतिज्ञा जाकैं। अर पसेवरूप कर्दमकरि लिप्त है सर्व अंग जाका। अर खाजि दाध कोढकीं उत्कटतासहित हैं काय जाका। अर नख रोम डाढी मूंछके केशनिका अर सहज वाह्यमलका मिलापकारण अनेक चामकै मध्य है विकार जाकैं। अर अपने शरीरमे अर परके मलका संचय दूरि करनेमे नही है मन जाका। कर्ममलरूप कर्दमका नाश करनेमे उद्यमी अर पूर्वैं भोग्या स्नानविलेपनादिकका स्मरणतैं पराङमुख है चित्तकी वृत्ति जाकी ऐसे साधुकै मलपरीषहका सहन कहिएहै ॥ १८॥

बहुरि जिन साधुनिका सन्मान अपमानविषैं समरूप होय सत्कारपुरस्कारका अभिलाष नहीं होंइ तिनके सत्कारपुरस्कारविजय है। मैं चिरकालतैं ब्रम्हचर्यका सेवन कीया है। महातपस्वी हूं स्वमतपरमतका निश्चयका ज्ञाता हूं। हितकारी उपदेश देनेंमें तत्पर हूं। रत्नत्रयमार्गमें प्रवीण हूं। अर बहुतवार वादीनिका विजय कीया है। ऐसा हूं तोहु मोकूं प्रमाण नहीं करै है। भक्ति नही करे है हर्षतैं खडा होइ आसनादिक नहीं देहै। ऐसे परिणाम कदाचित नहीं करै है। अपने आत्मकल्याणकूं ध्यावें है। सत्कारपुरस्कारकूं नहीं वांछा करै। ताकै सत्कारपुरस्कारपरीषहका विजय होय हैं। पूजाप्रशंसारूप तो सत्कार है। अर नाममें क्रियाके आरभमें अग्रेसर करना वा प्रधानकार्यमें बुलवाना सो पुरस्कार है ॥१९॥

बहुरि बुद्धिके मदका अभाव करना सो प्रज्ञापरीषहका विजय है। मै अंगपूर्वप्रकीर्णकनिमें प्रवीण हूं अर समस्तग्रंथ तथा अर्थका निश्चय करनेवाला हूं। त्रिकाल विषय अर्थके जाननेवाला हूं। शब्दशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके जाननेमें निपुण हूं। हमारे अग्रभागविषैं अन्य पंडितजन सूर्यका उद्योतकरि तिरस्कारकूं प्राप्तहुवा आग्याका उद्योतज्यों अवभासे है। इस प्रकार प्रज्ञाका मदका अभाव करना सो प्रज्ञापरीषहका जीतना है ॥२०॥

बहुरि आपके अज्ञानपणाकरि आपका तिरस्कार होना अर ज्ञानकी अभिलाष करतेंहू ज्ञानका नहीं होना ऐसा अज्ञानजनितपरीषहका जीतना सो अज्ञानपरीषहका सहना

है। यो अज्ञानी हैं। कुछ नहीं जानें है पशुसमान हैं। इत्यादिक तिरस्कारके वचननिकूं मैं सहूंहूं। अर अध्ययन करनेमें अर अर्थके ग्रहण करनेमें अर तिरस्कार सहनेमें अशक्त हूं। अर वहुतकालका दीक्षित हुं। अर नानाप्रकारके तपके भारकरि व्याप्त हूं। अर सकलसामर्थ्यमें उद्यमी हूं। अर अनिष्टमनवचनकायकी प्रवृत्तिकरि रहित हूं। तोहू अब भी मेरे ज्ञानका अतिशय नहीं उपज्या। ऐसे विकल्पनिकूं स्वप्नहूमैं नहीं करे ताके अज्ञान-परीषहका विजय जानना ॥ २१ ॥

बहुरि दीक्षादिकनिकूं निरर्थक जाननेका अभाव सो अदर्शनपरिषहका सहन है। मैं संयमीनिमें मुख्य हूं। अर दुर्द्धरतपका आचरण करनेवाला हूं परमवैराग्यभावना करि शुद्धमनका धारक हूं। सकलपदार्थनिके तत्वका जाननेवारा हूं अर्हंतके आयतन साधुजन अर धर्म इनका पूजक हूं। ओरूंहूमेरा ज्ञानका अतिशय प्रगट नहीं भया। महान उपवा-सादिक आजचण करनेंवालेनिकै प्रातिहार्यविशेष प्रगट होय है सो यह बात तो प्रलापमात्र है कहनेंकी है। अर या दीक्षाहू निरर्थक है। अर तन्ननिका पालनाहू निष्फल है। हमके तो कुछं प्रभाव प्रगट हुवा नहीं दर्शनविशुद्धिताके योगतै इत्यादिक चितवन नहीं प्रगट होय ताकै अदर्शनपरीषहका विजय होय है ॥ २२ ॥

ऐसे विना संकलपही उपजे द्वाविंशतिपरीषह तिनकों सहता संक्लेशचित्त नहीं होय है। तिसके रागादिकपरिणामजनित आस्रवका अभावतैं महान् संवर होय है। अब गुण-स्थाननिमें परिषहनिकूं कहै है।

सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

अर्थप्रकाशिका—सूक्ष्मसांपराय तों दशमगुणस्थानवर्त्ति अर छद्मस्थ वीतराग जो उपशांतकषाय क्षीणकषाय है। नाम जिनके ऐसे ग्यारमा बारमा गुणस्थानवालेनिकै चोदह-परीषहही है। क्षुधा। तृषा। शीत। उष्ण। दंशमशक। चर्य्या। शय्या। वुध ॥अलाभ। रोग। तृणस्पर्श। मल। प्रज्ञा। अज्ञान। ए चतुर्दश है। अव शेप नान्य। अरति। स्त्री। निषद्या। सत्कारपुरस्कार। आक्रोश। याचना। अदर्शन। इन अष्टपरीषहका सद्भाव नहीं है। अर ए चोदह परीषहहू सत्तामात्र है। जैसे सर्वार्थसिद्धिके देवनिकै समस्त-पृथ्वीका गमनका सामर्थ्य है परंतु जानेंका प्रयोजन नहीं अर रागभाव नहीं तातै गमन नहीं। तैसे सूक्ष्मसांपरायकै तो मोहको अत्यंत मंद उदय अर छद्मस्थ वीतरागके मोहका अभाव तातें वेदनीयका तथा ज्ञानावरण अंतरायके सद्भावतै चोदह परीषह उपचारतैं कहे तोहू मोहनीयके अभावतै मुख्यपणातै अभावही है। अब केवलीकै कहै है।

एकादश जिने ॥ ११ ॥

अर्थप्रकाशिका—जिनेंद्रभगवानकै ग्यारह परीषह कल्पै हैं। वेदनीयकर्मके उदयकें सद्भावतें भगवान केवलीजिनकै ग्यारह परीषह है। कोऊ कहैगा ग्यारहपरीषह है तो क्षुधादिककाहू प्रसंग आया। सो नहीं है। जातै अघातिकर्मका उदयका प्रभावतै वेदनीयकर्मके क्षुधादिक वेदना उपजावनेकी सामर्थ्यका अभाव है। जैसे मंत्र औषधादिकके बलतै क्षीण भई है। मारणशक्ति जामै ऐसा विषद्रव्य मरणकै अर्थि नहीं कल्पना करिए है। तैसे ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीए है घातिकर्मरूप इंधन जानै अर प्रगट भया हैं अनंत ज्ञानादिकचतुष्टय जाकै ऐसे केवली जिनके अंतरायकर्मका अत्यंत अभावतें निरंतर शुभनोकर्मपुद्गलनिका संचय होनेतै प्रक्षीण भया हैं। सहाय बल जाकै ऐसा वेदनीयकर्म अपना वेदनारूप प्रयोजन उपजावनेकूं असमर्थ है। यातै भगवान् जिनके वेदनीयका उदय होतेहूं क्षुधाका अभाव निश्चय करना।

संसारीजीवनकै वेदनीयकर्मके उदयतै। क्षुधा। १,तृषा। २,शीत। ३,उष्ण। ४,दंशमशक ५, चर्या। ६, शय्या। ७. बध। ८, रोग। ९, तृणस्पर्श। १०, मल। ११, ए ग्यारहपरीषह होयहै। यातै केवलीजिनकैहूं वेदनीयकर्मका उदय है तातै कर्मकूं कारण देखि केवलीकें ग्यारह परीषह कहें। परंतु मोहनीयकर्मकें बलतै वेदनीयकर्म प्रवल होइ आहारादिककी इच्छारूप क्षुधादिक परीषह उपजावे था अब वेदनीयके मोहनीयकर्मकें सहायका अभावतै वेदना देनेरूप शक्ति नही रहीं तब क्षुधादिक वेदना कैसे उपजावे। अर असातावेदनीकी उदीरणा होय तदि क्षुधा उपजैंहै। सो वेदनीयकर्मकी उदीरणा छठा गुणस्थानपर्यंतही है उपरि नहीहै। तदि वेदनीयकी उदीरणाविना केवलींकै क्षुधादिकबाधा कैसे होय। जैसे निद्रा प्रचलाकर्मका उदय तो बारमा गुणस्थानपर्यंत है परंतु उदीरणाविना निद्रा नही व्यापैहै। अर जो निद्राकर्मके उदयतेंही ऊपरके गुणस्थाननिमे निद्रा आजाय तो प्रमादींकै ध्यानका अभाव होजाय।

बहुरि जैसे संज्वलनका मंद उदय होतें अप्रमत्तगुणस्थानमै प्रमादका अभाव है। जातै प्रमाद है सो संज्वलनका तीव्र उदयमे होयहैं मंदउदयमे नही होय। तथा वेदनीयके तीव्र उदयतै संसारीजीवकै मैथुनसंज्ञा होयहै। अर वेद नवगुणस्थानतांइ है। परंतु वेदके मंद उदयतें श्रेणी चढेहुवे संयमीनिकै मैथुनसंज्ञाका अभाव है मंद उदयतै मैथुनमै वांछा नही उपजैहै। तथा निद्रा प्रचला कर्मका उदय तो बारमा गुणस्थानतांई है। परंतु मंद उदयतै निद्रा नही व्यापैहै। तैसेहीं केवलीभगवानकै वेदनीयका मंद उदयतै क्षुधातृषापिक नही उपजैहै।

बहुरि शक्तिरहित असातावेदनीयहू केवलीकै क्षुधादिकवेदना उपजावनेकूं समर्थ नही है। जैसे स्वयंभूरमणसमुद्रका समस्त जलकूं एक सरसूंका अनंतवा भागप्रमाण विषकी कणिका

विषरूप करनेंकूं समर्थ नहीं तैसे अनंतगुण अनुभागका धारक सातावेदनीयका उदयसहित केवलीभगवानकूं अनंतभागखंड असंख्यातवार जाका होयगा ऐसा असातावेदनीयकर्म क्षुधादिक वेदनाकूं नही उपजाय सकेहै। अर जो थे या कहो आहारविना केवलीका देहकी स्थिति कैसे रही। तो या जाणों आहारविना देवनिका शरीरकी स्थिति कैसे है जैसे देवनिका शरीरकी स्थिति कवलाहारविना है तैसे केवलीका देहकी स्थितिहू है। अर जो थे या कहो देवनिके तो मानसिक आहार है तो केवलीकैहू निरंतर शुभसूक्ष्मशरीरके बलाधानका कारण ऐसे नोकर्मपुद्गलनिका ग्रहणरूप आहार हैही। अर जो थे या कहो केवलीका देह तो मनुष्यका है मनुष्यदेह औदारिक है इस देहकी स्थिति कवलाहारविना कैसें होय। तातैं देहवत् कवलाहारही उचित है। ऐंसे कहो सो ठीक नही। जो मनुष्यके तपश्चरणजनित ऐसा प्रभाव प्रगट होय है जो त्रैलोक्यमे ऐंसा सामर्थ्य नही।

अर भगवान् केवलीकैं अनंतवीर्य प्रगट भया। अन्यमनुष्यनिके इंद्रियजनित ज्ञान केवलीके अतिद्रियज्ञान केवलीजिनकूं अन्यमनुष्यनिके समान कैसे कहोहो। अर मनुष्यनिके अर केवलीजिनकै समानता होजाय तदि आत्मा अर परमात्मामे भेद काहेका रह्या। जिस काल क्षपकश्रेणी चढै है तिस कालविषै अधःप्रवृत्तिकरणका परिणामनितैं च्यारि आवश्यक होय है। प्रमत्त तो समयसमयविषै कषायनिकी मंदतातैं परिणामनिकी अनंतगुणी उज्वलता। १, अर स्थितिबंधापसरण कहिए पूर्वे कर्मकी स्थिति बांधि ताका समयसमय अनंतगुणा घटना। २, अर सातावेदनीयादि प्रशस्तकर्मनिका अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति ताका समयसमय अनंतगुण वधना। ३, अर असातावेदनीयादिक अप्रशस्तकर्मकी प्रकृतिनिका अनुभाग समयसमय घटना ४, जातै अशुभप्रकृतिनिमै विषहालाहलरूप शक्तिका तो अभाव होय है अर निंब कांजीरूप रस रहिजाय हैं। ५, ऐसे च्यार आवश्यक तो अधःप्रवृत्तिकरणतै होय है।

अर अपूर्वकरणतै गुणश्रेणीनिर्जरा। १, अर गुणसंक्रमण। २, अर स्थितिकांडकोत्कीर्ण ३, अर अनुभागकांडकोत्कीर्ण। ४, च्यार आवश्यक अपूर्वकणतै होयहै। यातै केवलीभगवानके असातावेदनींय आदि अप्रशस्तप्रकृतिनिका रस असंख्यातवार अनंतअनंतका भागलागिकै घटि-गया तदि असातामे सामर्थ्य कहां रही जो केवलीके क्षुदादिवेदना उपजावे।

बहुरि असातावेदनीयका बंध तो छठा गुणस्थानपर्यंतही है अर सप्तमगुणस्थानसूंही असातावेदनीयका बंध नही एक सातावेदनीयकाही बंध है। अर ग्यारमा बारमा तेरमा गुणस्थानमे जो सातावेदनीयका बंध है सो एक समयकीहू स्थिति नही पावै है। जातैं स्थितिका कारण कषाय तो मूलतै गया तदि साताका उदयरूप होताही बंधेहै। तदि पूर्वका बांध्या असाताका मंद उदय वर्त्तमानकालका साताका उदयरूप होय परिणमेहै। तब क्षुधादिक वेदना कौन उपज्यावै। जैसे अमृतके समुद्रमे मिल्याहुवा एक दग्धहुवा विषका कण रस नहीं दे सकेहै।

वहुरि वडी मूढता प्रगड दीखै है। जो तीन लोकके पतिकरि वंदनीय देवाधिदेव परमपूज्य अर्हंत् भट्टारककूं अर जगतके विषयी रंक पुरुषनिकूं समान कहना इस सिवाय अन्य मूढता नहीं है। अर जगत्‌विषैं भी प्रसिद्ध हैं। जो मणि मंत्र औषध विद्या तप इनका अचिंत्य प्रभाव है। चिंतामणि अर अन्यपाषाण कैसे समान होय। अर अन्य तारा अर सूर्य कैसे समान होय। तातैं नानावेदनाका नष्ट करनेमे समर्थ ऐसा केवलज्ञानको होतैं केवलीके आहार निहार मानना अनंतसंसारका कारण है। अर प्राणीनिका जीवना तो आयुकर्मके उदयके आधीन है। केवल आहारमात्रतैंही नहीं है। जातैं भोगभूमिके मनुष्यनिका तो शरीरतीन कोसप्रमाण है। अर तीन पल्यका आयु है। अर तीन दिन गए पीछै बोरप्रमाण आहार करे है।

वहुरि अंडेमें पक्षी अपनी माताका उदरकी ऊष्माहीतैं वृद्धीने प्राप्त होय है तातै पक्षीनिकै उजाहार है। एकेंद्रियनिके जल पवनादिकही आहार हैं। सो लौकिकजनहूं कितने जीवनिकै पवनकाही आहार कहे है। नारकीनिकै कर्मनिका भोगनाही आहार हैं। देवनिके मानसिक आहार है। तैसे केवलीजिनकै नोकर्मपुद्‌गलनिका आहार है।

वहुरि अन्यमनुष्यनिकीज्यो केवलीजिनके वेदनीके उदयतैं कवलाहार मानोहो तो सयोगीके द्रव्यमनका सद्‌भावतें मनका विकल्पहू मानो। अर द्रव्येंद्रिय विद्यमान है। तातें इंद्रियजनितज्ञानहू मानो। अर शुक्ललेश्या विद्यमान है तातै कषायहू केवलीकै माननेका प्रसंग आवैगा। जिस मुनिके कायवलऋद्धि होय है ताकैही ऐसा समर्थ्यं होय है। जो त्रैलोक्यकूं चलायमान करे तो केवलीका सामर्थ्य कोन कहीसके।

वहुरि भक्षण करनेकी इच्छाकूं बुभुक्षा कहिए है। सो भगवानके मोहनीयकर्मका अभाव भया तदि भोजनकी इच्छा काहेतै भई। अर मोहनीयकर्मका अभाव होते भी जो इच्छा मानोहो तो स्त्रीभोगनेकी इच्छाकाहूं सद्‌भाव आया। तदि वीतरागताकूं जलांजलि दीनी वीतरागता कहां रही।

वहुरि जो केवली भोजन करे है सो नित्य एकवार करै है कि अनेकवार करे हैं कि एकदिन दोय दिनकें आंतरे करे है कि छ महीना बरस दिनके अंतरतें करे है। उनके कितने दिनके अंतरकरि भोजन है। जो प्रमाण कहोगा तो उनकी शक्तिका प्रमाण आगया तदि अनंतशक्ति कहना वृथा है। वहुरि भोजन करै हैं सो क्षुधाकी वेदनांते करैं है कि रसनेंद्रियका स्वादकै अर्थि करे है। जो क्षुधाकि वेदना नहीं सहिजाय यातैं करै है। तो क्षुधासमान वेदनाही नहीं। तदि केवलीके अनंतसुख कहना वृथा भया। अर जो रसनेंद्रियका स्वादके अर्थि करे है। तो अतींद्रियात्मक स्वाधीनसुखका अभाव आया। भोजनके आधीन सुख रह्या तदि स्वाधीन परमेश्वरपणाका अभाव आया।

वहुरि भोजनकूं आस्वादे है। सो केवलज्ञानतें आस्वादै है कि रसनेंद्रियतें आस्वादै है। जो केवलज्ञानतै आस्वादै है। तो दूर समस्त त्रैलोक्यमें वर्त्ततेकूं आस्वदन करे है फेर कवलाहारसूं कहां प्रयोजन रह्या। अर रसनेंद्रियतें आहारका स्वाद लेहै तो केवलीके इंद्रियजनित मतिज्ञानका प्रसंग आया तदि केवलज्ञानका अभाव आया। वहुरि केवली त्रैलोक्यमें वर्त्तंते समस्त जीवनिका मरण ताडन त्रासन मांस रुधिरादिकनिकूं प्रत्यक्ष देखता भोजनका अंतराय कैसे टालें है। अल्पशक्तिका धारक श्रावकहू ऐसे घोरकर्मनिकूं देखें तो अंतराय करे है। केवली कैसे भोजन करे है।

वहुरि भोजनकी इच्छामात्रतें सप्तमगुणस्थानका धारक तथा श्रेणीमें तिष्ठता साधु छठै गुणस्थानकूं प्राप्त होय है प्रमादी कहावे है। तो केवली भोजन करता प्रमादी कैसे नहीं होय। यह वडा आश्चर्य हैं। ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीए है। च्यारघातिकर्म जिनने। अर अनंत अरोक ज्ञानदर्शनसुखवीर्य जिनके प्रगट भया ऐसा भगवान् केवलीके अंतरायकर्मके अत्यंत अभावतेंनिरंतर समयसमय शुभसूक्ष्मपुद्गलनिके संचय होनेतें ओदारिकशरीर कवलाहारविनाही अनंतशक्ति धारण करे है। तातै बहोत कहांताई लिखिजाय केवलीके आहारकी असत्यकल्पनाकरि मोहनीयकी सत्तरीकोटाकोटीसागरकी स्थिति निरंतर बांधना उचित नहीं।

निरस्त भया है। घातिकर्मका चतुष्टय जाके ऐसे जिनभगवानके वेदनीयका सद्भाव होतेहूं द्रव्यकर्मका सद्भावतै एकादशपरीषह नहीं होय है। जातै मोहनीयका सहायविना वेदनीयकर्म क्षुधादिकवेदना नहीं करि सकै है। अर वेदना नहीं करै है तोहूं वेदनीयका कर्मपरमाणुके सद्भावतें उपचारतै ग्यारह परीषह कहे है। जैसे समस्त ज्ञानावरणका अभावकरि सकलपदार्थनिका अवभास केवलज्ञान प्रगट होतेंहू केवलीभगवानके उपचारतै ध्यान कह्या। भगवानके सकलपदार्थ एककालमें युगपत् प्रत्यक्ष भए। तदि एकाग्रचिंतानिरोधध्यान जो एकपदार्थकूं आलंबनकरि ध्यावे सो कहां रह्या। तोहू ध्यानका फल कर्मका नाश होनेके सद्भावतै उपचारतें ध्यान कह्या। अथवा इसही वाक्यतै केवलीजिनके ग्यारहपरीषह नहीं हैं। जातैं उपचारतें परीषह कहे है सो उपचार झूठा है।

जैसे किसि बालकमैं क्रूरपणा शूरपणा देखि उपचारतें सिंह कहीदीया। तीक्ष्ण नखदंत कपिल नयनके सावलीका धारनेवाला सिंह नहीं है। परंतु सिंहका केई धर्म देखि सिंह कहना सो उपचार है। तथा लौकिकजन कहेहै। वस्त्र आभरण मेरा है। यह देश मेरा है। यह राज्य हमारा है। यह नगर हमारा है। ऐसे समस्त कहना उपचार है सो झूठा है। तातें जिनेंद्रकें उपचारतै कहे ग्यारह परीषह नहीं है। अब बहुत कथनी कीए ग्रंथबिस्तार बधिजाय तातैं श्वेतांवरपराजयादितें विशेषकथन जानना। अब समस्तपरीषह कहां है सो कहै हैं।

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थप्रकाशिका—प्रमत्तकूं आदिकरि नवमगुणस्थानताई बादरसांपराय कहिए स्थूल-कषाय है। इनमें समस्त बाईस परीषह होयहै। अब कौन प्रकृतिका उदयतें कौन परीषह होय सो कहै है।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थप्रकाशिका— ज्ञानावरणकूं होतसंतें प्रज्ञा अर अज्ञानपरीषह होयहैं। इहां कोऊ कहे ज्ञानावरणके उदय होतें अज्ञानपरीषह होना तो ठीक है परंतु प्रज्ञापरीसह कैसें होय प्रज्ञा तो ज्ञान है सो आत्माका स्वभाव है। सो ज्ञानावरणके उदय कैसें होय। जो प्रज्ञाका मद-जनित परीषह होयहै सो ज्ञानावरणका उदय होतेंही होयहै। जातें क्षयोपशमतें उपजी मंदप्रज्ञा सोही मद उपज्यावैहै। जाके सकलज्ञानावरणका नाश होजायगा ताहे प्रज्ञाका मद नही उपजैगा प्रज्ञाका मद होयहै सो क्षयोपशमज्ञानीके होयहै क्षयोपशमज्ञानीके ज्ञानावरणको उदय-विद्यमान हैही।

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थप्रकाशिका— दर्शनमोहकूं होतसंतें अदर्शनपरीसह होयहै। अर अंतरायके उदयतें अलाभपरीसह होयहै।

चारित्रमोहे नग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थप्रकाशिका— चारित्रमोहकूं होतसंतें नाग्न्य। १, अरति। २, स्त्री। ३, निषद्या ४, आक्रोश। ५, याचना। ६, सत्कारपुरस्कार। ७, ए सात परीषह होयहै। अब अवशेष परीषहनिके निमित्तकूं कहैहैं।

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

अर्थप्रकाशिका— कहैं तिनतें शेष जें क्षुधा। १, तृष्णा। २, शीत। ३, उष्ण। ४, दंशमशक। ५, चर्या। ६, शय्या। ७, वध। ८, रोग। ९, तृणस्पर्श। १०, मल। ११, ए ग्यारह परिषह वेदनीय कर्मके होतसंतें होयहै। अब एककालमें युगपत् कितने परिषह होय तातें सूत्र कहैहै।

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥

अर्थप्रकाशिका– एक जींवके युगपत् एककालमे उगणीस परिषह होयहैं अधिक नही। जातैं शीत उष्णमेतैं एककाल एकही होय अर शय्या चर्या निषद्या इन तीननिमें एककालमे युगपत् एकहीं होय। तातैं तीन घटनेतैं युगपत् उगणींसही कहें। ऐसे परिषहनिका प्रकरण कह्या। अव संवरनिर्ज्जराका कारण चारित्रकूं कहेंहै। सो चारित्र चारित्रमोहका उपशम क्षय क्षयोपशम लक्षण जो आत्मविशुद्धिरूप लब्धि तिसकीं सामान्य अपेक्षाकरि तो एक प्रकार है। प्राणींनिकैं पीडा अर इंद्रियनिका दर्पका निग्रहकी शक्ति अपेक्षा दोय प्रकार है। उत्कृष्ट मध्य जघन्य विशुद्धिताकी प्रकर्षता अप्रकर्षता तातें तीन प्रकार है। सराग वींतराग सयोगीं अयोगीकी अपेक्षा च्यार प्रकार है। तोहूं पंचप्रकारकरि कहेहै।

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातमिति चारित्रम्।१८।

अर्थप्रकाशिका– सामायिक। १, छेदोंपस्थापना। २, परिहारविशुद्धि। ३, सूक्ष्मसांपराय। ४, यथाख्यात। ५ ऐंसे पंचप्रकार चारित्र है। व्रतनिका धारण समितिका पालन कषायनिका निग्रह अशुभमनवचनकायकी प्रवृत्तिरूप दंडनिका त्याग करना इंद्रियनिका विजय जिस जीवके होय ताकै संयम जानना। तहां समस्त सावद्ययोगका अभेंदकरि जामै त्याग होय सो सामायिकचारित्र है वहुरि कोऊ सामायिकसंयमरूप होय फेर चिगकरि सावद्यव्यापाररूप हुवा फिर प्रायश्चित्ततै सावद्यव्यापारतै उपज्या दोषकूं छेदि आत्माकूं व्रतधारणादिरूप संयममें धारण करिए सो छेदोपस्थापन है। अथवा। व्रत समिति गुप्त्यादिकका भेदरूप चारित्र सो छेदोपस्थापन है। वहुरि प्राणीनिकी पीडाका परित्यागकरिकै विशिष्टशुद्धिता जाके होय सो कहेहै।

जन्मतै तीस वर्षप्रमाण जाकीं अवस्था होय। अर जन्मदिनको आदि लेंय सर्वकाल सुखी रह्यो होय अर तीस वर्ष पीछै जिनदीक्षा ग्रहणकरि श्रीतीर्थंकरांकाचरणारविंदसेवनकरतो तीर्थंकरांका चरणांकै मूल प्रत्याख्यान नाम नवमा पूर्व पढयाहोय। अर जीवनिका निरोध जीवनिका प्रगट होनेका काल जीवनिका प्रमाद उत्पत्ति योनि देश द्रव्यस्वभावके विधानका जाननेवाला होय। प्रमादरहित होय महावीर्यका धारक होय। बडी निर्जरा जाकै होय। दुर्धर चर्याको आचरण करनेवाला होय। तीन संध्याकूं वर्जनकरि अन्य अवसरमे दोय कोशप्रमाण विहार करनेवाला होय। रात्रिकें विषै विहाररहित होय। वर्षाकालका नियमरहित होय। ऐंसा साधुकें परिहारविशुद्धि होय अन्यकै नहीं होय।

इनूके शरीरतें जीवकी विराधना नही होयहै। परिहारविशुद्धिचारित्रका जघन्यकाल अंतर्मुंहूर्त्त है। छटो अर सातमो दोय गुणस्थानमै यो संयम है। जो अंतर्मुहूर्त्तमे गुणस्थान

पलटिजाय तो संयम छूटिजाय। अर उत्कृष्टकाल अडतीस वर्षघाटि कोटिपूर्व है। कैसे सो कहेंहै। उत्पत्तिदिवसतैं तीस वर्षका दीक्षित होय अष्टवर्ष तीर्थंकरनिकै निकट रह्या पाछैं परिहारविशुद्धिसंयम उपजै अर कोटीपूर्वका आयु तातै अडतीस वर्ष घाटि कोटिपूर्व रहै। वहुरि सूक्ष्मकषागुणस्थानमे सूक्ष्मसांपरायचारित्र है। जो सूक्ष्म अर स्थूलहिंसाका त्यागमे असावधान नही। अर अखंडित जिनकै उत्साह है। अर सम्यग्दर्शनज्ञानमहापवनकरि संधुक्षित जो प्रशस्त परिणामरूप अग्निकी शिखाकरि दग्ध कीयाहै कर्मरूप इंधन ज्यां। ध्यानविशेषकरि शिखारहित कीयाहै कषायरूप विषका अंकुरा ज्यां। नाशकैं सन्मुख कीयाहै सूक्ष्मकोहबीज ज्यां। ऐसे साधुकै सूक्ष्मसांपरायचारित्र होय है।

समस्त उपशांत तथा क्षीणमोहके होनेतैं यथाख्यातचारित्र होय है। जैसा निर्विकार आत्माको स्वभाव तैसो समस्त मोहनीयके उपशमतैं वा क्षयतैं प्रगट होगयो तातैं यथाख्यातचारित्र है। सो उपशांतकषाय क्षीणकषाय वा सयोगी अयोगी जिनके होय है। सामायिक छेंदोपस्थापन संयम हैं। सो प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इन च्यार गुणस्थाननिमें होय है। अर परिहारविशुद्धि छठे सातमे दोयही गुण स्थानमें होय। सूक्ष्मसांपराय एक सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानहीमें होय है।

इहां और विशेष जानना। सामायिकछेदोपस्थापनाकी जघन्यविशुद्धिताकी लब्धि अल्प है। तातै परिहारविशुद्धिचारित्रकी जघन्यविशुद्धिता अनंतगुणी है। तातै परिहारविशुद्धिताकी उत्कृष्टविशुद्धिता अनंतगुणी है। तातैं सामायिकछेदोपस्थापनाकी उत्कृष्ट विशुद्धिता अनंतगुणी हैं। तातैं यथाख्यातचारित्रकी संपूर्णविशुद्धिता अनंतगुणी है सो घाटि बाधिरहित है। अब निर्जराका कारने तपके भेदनिमें वाह्यतपके भेद कहे है।

अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

अर्थप्रकाशिका—अनशन। १। अवमोदर्य।२। वृत्तिपरिसंख्यान।३। रसपरित्याग।४। विविक्तशय्यासन। ५। कायक्लेश। ६। ऐसे छह प्रकार बाह्य तप है। तहां लौकिक ख्याति पूजा देवताआराधन मंत्रसाधनादिककी नहीं अपेक्षा करिकै जो संयमकी सिद्धिके अर्थि रागका उच्छेदके अर्थि कर्मका विनाशके अर्थि ध्यानकी स्वाध्यायकी सिद्धिके अर्थि इंद्रियनिका विजयके अर्थि कामका नाशके अर्थि निद्राप्रमादका विजयके अर्थि जो भोजनका त्याग सो अनशनतप है। सो अवधृतकालका अर अनवधृतकालका भेदतै दोय प्रकार है। तिनमें एकवार भोजन तथा एक उपवास दोय तीन पांच पक्ष मास छमास इत्यादिक

कालकी मर्यादाकरि जो अशनत्याग सो अवधृतकालअनशन है। अर यावज्जीव भोजनका त्याग करि संन्यास करना सो अनवधृतअनशन है।

बहुरि संयमका पालन निद्राका विजय त्रिदोषका उपशमन आलस्यका अभाव अनशनजनित बाधाका अभाव कायोत्सर्गकी दृढता ध्यानकी निश्चलता संतोष स्वाध्यायकी सुखसिद्धिकै अर्थि जो अल्प आहार करना अर्द्धभोजन चतुर्थांशभोजन एकग्रासपर्यंत लेना सो अवमोदर्यतप है। बहुरि संयमीमुनीका एक गृह पांच गृह सात गृहादिमै भोजनके अर्थि नियम करना तथा एक पाडामें वा दोय पाडामें तथा रसता चहोटादिकका नियम तथा दातारका भोजनका नियम तथा पात्रका निगमकरि भोजनके निमित्त नगर ग्रामादिकमें जावना अर संकल्पमाफिक भोजनका भोग मिले तो लेना नहीं मिले तो पाछा वनमें आय उपवास धारणा सो वृत्तिपरिसंख्यान है। इस तपतै आशाका अभाव अंतरायकर्मकी निर्जरा अर परमसंतोष होय है।

बहुरि इंद्रियनिका दमन तेजकी हानि संयमका भंगका अभाव लालसाका नाशकै अर्थि इंद्रियनिका दमनकै अर्थि तेजकी हानिके अर्थि संयमका घातकूं दूरि करनेकें अर्थि जो घृत दुग्ध तैल गुड लवण छह प्रकार रसनिका त्याग करना सो रसपरित्याग तप है। कोऊ कहै रसवान वस्तुको त्याग सो नहीं है। जातै समस्तही पुद्गल रसवान् है रस-रहित कोऊ नहीं। तातै रसपरित्यागकरि घृत तैल दुग्धादि रस ग्रहणका त्याग जानना। जो रसवान्का त्याग करिए तो रसवान् तो समस्त आहार है। तदि समस्त आहार त्यागका प्रसंग आजाय। अर आहारविना देह रहे नहीं देहविना रत्नत्रय कोंनके आधार होय। रत्नत्रयधर्मविना कर्मका अभाव नहीं तातै रसशब्दकरि घृतादिरसविशेष ग्रहण करना।

इहां कोऊ कहै। जो साधु आहारके निमित्त मोन धारणकरि जाय है। अर आपके निमित्त कीयाहुवा आहार ग्रहण नहीं करै है। अर गृहस्थकूं अपना त्यागकूं जणावै नहीं हैं। तदि रसनिका त्यागका निर्वाह कैसे होय। सो ऐसा जानना। जो गृहस्थ् पात्रमैतैं भोजन उठाय साधुका अंजलीरूप पात्रमें धरै है। तदि साधु नेत्रकरि अपन भोजनकूं अवलोकन करै है। तिसमें दुग्ध दधि घृत गुडादिककरि संयुक्त होय सो तो दृष्टीतैंही अवलोकनमें आवे है। अर लवणका अनुमान देशादिककी रीतीसों होजाय है। जो कितने देशनिमें तो रोटी पुडी खीचडी बडा सेव कचोरी इत्यादिकमें लवणका संयोग नहीं होय है। कितने देशमें लवणसहितही होय है। अर लाडू मोदक घेवर खीर पूवा इत्यादिकमैं लवण नहीं होयहै। सो देशकालका ज्ञाता समस्तरीति जाणि त्याग ग्रहण करै

है। कदे छह रसका त्याग करे है। कदे एक रसका कदे दोय च्यारका ऐसे अपनी इच्छापूर्वक रसनिका त्याग सो रसपरित्यागतप है।

वहुरि प्राणीनिकी पीडारहित प्राशुक क्षेत्रविषैं निवासकूं इच्छा करता साधु है। सो एकांतमें व्रह्मचर्य स्वाध्याय ध्यानादिककी सिद्धिके अर्थि शयनआसन करै है। जिस स्थानमें विषयी कषायी रागीनिका संचार नहीं होय स्त्रीनिका नपुंसकनिका तिर्यंचनिका संचार क्रीडादिक नहीं होय इंद्रियनिका विषयनिकूं पुष्ट करनेवाली सामग्री नहीं होय। ऐसा पर्वतनिका दराडा गुफा मठ वनखंडादिक निर्जन प्रदेशनिमें शय्या आसन करैं तिनके विविक्तशय्यासननाम तप होय है।

वहुरि शरीरमें ममत्व त्यागी जिनेंदका मार्गतैं अविरोध ऐसा अनेक प्रकार कायके कष्टरूप तप करे सो कायक्लेशतप है। कठोरभूमिमें वहुतकाल आसनकी अचलताकरि तिष्ठना। मौन धारना। ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके शिखर अचल कायोत्सर्गादिक धारणकरि तीव्र आतापनयोग धारण करना। वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचै वर्षाकृत घोरवाधा सहना। शीतऋतुमें नदीकी तीर तथा चोहटै दृढशय्यासनकरि रात्री व्यतीत करना। सर्प बीछु कांनखिजूरे डांस इत्यादिक जंतुनिकरि करि वाधा तथा दुष्टमनुष्य व्यंतरादिक देव सिंह व्याघ्रादिकनिकरी करी तीव्र वाधाकूं समभावनितैं सहना सो कायक्लेश तप है। सो यह तप देहके आया दुःख सहनेके अर्थि अर विषयसुखनिमै अभिलाष मेटनेकै अर्थि अर प्रवचनकी प्रभावनाकै अर्थि कायक्लेश तप आचरण करीए है।

ऐसे क्लेशका कारण होतैंहू ज्ञानाभ्यासमें आत्मानुभवमे लीन रहे है। चित्तमें क्षोभ नहीं करे है। साम्यभावतैं नहीं चिगै है ते साधु धन्य है। इहां सम्यक्पदकी अनुवृत्ति लेणी तातैं सम्यक्तप है। सो यंत्रमंत्रादिककी सिद्धिकै अर्थि नहीं धारे है। तथा जगतके जनकरि पूजा-प्रशंसाकै अर्थि नहीं करे है। केवल आत्माके सहनशीलता अर कर्ममलका क्षपणकै अर्थि करे है।

कोऊ कहै परिषहमे अर कायक्लेशमे कहां भेद है ताका उत्तर। जो स्वयमेव उदे आवै सो परिषह है। अर अपनी बुद्धिपूर्वक अंगीकार करै सो कायक्लेशतप है। अर इन छह प्रकारकें तपकै वाह्यपणा कैसे सो कहेहै। अनशनादि वाह्यतपकी अपेक्षातैं ए तप है। तथा वाह्यइंद्रियनिकें ग्रहणमे आवेहै। तथा गृहस्थतकरिभी करिएहै तथा वाह्यलोकनिकूं प्रत्यक्ष दीखैहै तातै याकै वाह्यपणा जानना। कर्मरूप इंधनकें दग्ध करनेतै तप कहिएहैं। तथा देहके अर इंद्रियनिके ताप करनेतै तप कहिएहै। अव अभ्यंतरतपकूं कहिएहैं।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

अर्थप्रकाशिका- । प्रायश्चित विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान । ए छहप्रकार अभ्यंतर तप है । ए तप अन्यमतीनिकरि नही कीए जाय तथा वाह्य द्रव्यकी अपेक्षा नही करेहै तातै अभ्यंतरनाम है । अव इन अभ्यंतर तपके भेद कहनेंकूं सूत्र कहेहैं ।

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

अर्थप्रकाशिका- नवप्रकार प्रायश्चित हैं । विनय च्यार प्रकार है । वैयावृत्य दश प्रकार है । स्वाध्याय पंचप्रकार है । दोय प्रकार व्युत्सर्ग है । ऐसे ध्यान पहली पंच प्रकार तपके भेद कहे । अव प्रायश्चित्तके नव भेद कहनेकूं सूत्र कहेहै ।

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

अर्थप्रकाशिका- । आलोचना । १, प्रतिक्रमण । २, आलोचना अर प्रतिक्रमण दोऊ सो तदुभय । ३, विवेक । ४, व्युत्सर्ग । ५, तप । ६, छेद । ७, परिहार । ८, उपस्थापना ९, ए नव भेद प्रायश्चितके कहे । जो प्रमादतै उपज्या दोषका अभाव होनेकूं अर भावनिकी उज्जलता होनेकूं अर परिणाम शल्य दूरि करनेकूं । अर अनवस्थाका अभावके निमित्त अर मर्यादाका लोप नहीं होनेकै अर्थि अर संयमीकी दृढ आराधनादिककी सिद्धिकैं अर्थि नवप्रकारको प्रायश्चित अंगीकार करिएहै । प्राप्र: जो साधुजन ताके चित्त जाविषै होय सो प्रायश्चित्त है । अथवा प्राय: जो अपराध ताकी चित्त कहिए शुद्धिता सो प्रायश्चित है । तहां जो एकांतमें तिष्ठतें अर प्रसन्नमनका धारक अर देशकालके जाननेवालें ऐसे वीतरागी गुरूके आगे शिष्य हैं सो विनयकरिकै दश दोषरहित हुवा आपका प्रमादकूं प्रगट करि जनावना सो आलोचना हैं । सो आलोचना गुरूनिकूं दश दोष टालिकरि करैं ।

तें दोष कोन सो कहेहै । जो आचार्य हमारे ऊपरि प्रीति अनुग्रहरूप होय अल्प प्रायश्चित देवेगे ऐसे अभिप्रायतै गुरूनिकी भेंट पीछी कमंडलादिककरि अर आलोचना करे सो आलोचना आकंपितदोषसहित है । बहुरि गुरूनिकूं ऐसा जणावै जो मै प्रकृतिवलरहित हूं रोगी हूं उपवासादि करनेंकूं समर्थ नहीं हूं । जो मोकूं अल्प प्रायश्चित दीजीए तो मैं हूं दोष आलोचना करूं । ऐसे आचार्यनै अपना स्वरूपका अनुमान कराय आलोचना करेहै सो अनुमापित दोषसहित आलोचना है । बहुरि अन्यकरि नही देख्या दोषकूं तो छिपावैं अर अन्यके प्रगटहुवा दोषकूं आलोचना करै सों दृष्टदोष है । बहुरि अल्पदोष हुवा होय ताकूं तो नही जणावै अर स्थूल दोषकूं आलोचना करै सो बादरनाम दोष है । बहुरि महान दुस्तर

प्रायश्चित्तका भयतैं महान् दोषकूं तो छिपावैं अर वाकै अनुकूल अल्प दोष जणावै सो सूक्ष्म-दोष है। वहुरि गुरूनिकूं पूछै जो है भगवान् ऐसा दोष जाकैं होय ताका कहां प्रायश्चित्त है ऐसा उपायकरि गुरूनिकूं पूछै सो प्रछन्नदोष है। वहुरि पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिकादि प्रतिक्रमणका दिवसमे वहुत यतीनिके समुदायका शब्दमे अपना दोषकूं कहे सो शद्वाकुलित दोष है।

वहुरि जो यो गुरूनिको दीयो प्रायश्चित्त है सो योग्य है कि नही तथा आगममे है कि नहीं ऐसीं शंका करि अन्यसाधुनिकूं पूछना सो वहुजनदोष है। बहुरि कुछ प्रयोजन विचारि गुरूनिकूं दोष नही जणावैं अर आपणै समान अन्य साधुकूं दोष जणाय महानहू प्रायश्चित्त ग्रहण करैं सो सफल नही सो यो अव्यक्तदोष है। बहुरि गुरूनिकूं तो आलोचना नही करै अर अन्य मुनि आपसमान अपराधी जाणि वाकूं पूछै जो म्हारै याकै अपराध समान है जो याकूं प्रायश्चित दींया सो मोकूं करना युक्त है ऐसे आपका दोषकूं छिपावै ताकै तत्सम-दोष है। ऐसे दश दोषरहित आलोचना करै। संयमी आलोचना करै सो एकांतमे एकाकी गुरूकूं आलोचना करै अर अर्जिकाकी आलोचना एकगणिनी दूजी अर्यिका तीजा गुरू तिनके आश्रय चोडें प्रकाशमे होयहै। जो साधु लज्जाकरि तिरस्कारके भयकरि अपना दोषकी आलोचना करि दोषकूं सोधन नही करैं। तो नही जाण्या है लाभ अर खरच जाने ऐसा अधमऋणवानकीज्यों क्लेशित होयहै। अर आलोचना कीए विना महानहू तप वां छितफलकूं नहीं देवेहै।

वहुरि आलोचना करिकैहू गुरूनिका दीयाहुवा प्रायश्चित्तग्रहण नही करैं सो विना-बीजके संस्कारकीया धान्यकीज्यों फलकूं नही देवेंहै अर आलोचना अर पूर्व ग्रहणकीया प्राय-श्चित्त मज्जनकीया दर्प्पणमैं रूपज्यों देदीप्यमान होयहै। बहुरि कर्मके वशतैं उपज्या प्रमादके उदयतैं उपज्या जो दोष सो ह्यारे मिथ्या होहु। ऐसे परिणामनिमैं पापकूं खोटा जानि विरक्त होय मिथ्या में दुःकृत इत्यादिक प्रगट करना सो प्रतिक्रमण है। वहुरि कोऊ कर्म तो अलोचनामात्रकरि शुद्ध होइहै। कोऊ प्रतिक्रमणतैं शुद्ध होयहै। कोऊ आलोचन अर प्रति-क्रमण दोऊनितैं शुद्ध होयहै सो तदुभय है। वहुरि दोषसहित आहार पान उपकरणका संसर्ग भया होय तो ताका त्याग करना। आपको दोषतैं न्यारा करना सो विवेक है। वहुरि कालका नियमकरि कायोत्सर्ग करना सो व्युत्सर्ग है। वहुरि अनशनादितप ग्रहण करना। तथा उपवास वेलातेंला पंचोपवास पक्षमासादिकनिका उपवास करना सो तप है।

वहुरि दिवस मास संवत्सरकी मर्यादाकरि दीक्षाका घटावना सो छेदनाम प्रायश्चित है। कोऊ साधु वहुतकालका दीक्षित होयकरिकैहू कोऊ दोष ऐसा करैं जो ताका छेद नामा प्रायश्चित होय। ऐसे कोऊ वीस वर्षका दीक्षित था फिर दोषके वशतैं दशवर्षकीं दीक्षा छेदीं

गई तो अव आपको दश वर्षकाहीं दीक्षित मानै । दश वरशतै एक दिवस पहलीकाभीं दीक्षित होय ताकूं आपतै वडा मानै वंदनादिक पहली करैं । वहुरि पक्षमासादिकका नियमकरि संघतै वाह्य करना सो उपस्थापनप्रायश्चित्त है । ऐंसे नव प्रकार प्रायश्चित्त कह्या । इहां ऐंसा जानना । जो प्रमादजनित दोषका तो सोधना शल्यका मेटना भावनिकी उज्जलता करना मर्यादमें रहना इत्यादिककी सिद्धिके अर्थि प्रायश्चित्त है । यद्यपि प्रायश्चित अनेक प्रकार है तोहू सामान्य नवभेद कहे । तहां देश काल अवस्था संहनन बुद्धि इत्यादिक देखि यथा योग्य प्रायश्चित देहै । अर शिष्य है सो आचार्यनिकी आज्ञाप्रमाण श्रद्धानकरि प्रायश्चित्त ग्रहण करे ताकै शुद्धिता होयहै । अव विनयनाम अभ्यंतरतपकूं कहैहै ।

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ।। २३ ।।

अर्थप्रकाशिका-ज्ञानविनय दर्शनविनय चारित्रविनय उपचारविनय । ऐसे विनयतप च्यारप्रकार है । तहा जो आलस्यरहित होय अर देशकालादिककी विशुद्धिताका विधानमें विचक्षण शुद्धमनकरि वहुत सन्मानपूर्वक जिनसिद्धांतनिका ग्रहण अभ्यास स्मरणादिक करै सो ज्ञानविनय है । वहुरि निःशंकितादिगुणकरि सहित होय शंकादिकदोषरहित तत्वार्थनिका श्रद्धान सो दर्शनविनय है ।

वहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके धारकनिका पंचप्रकारचारित्रके श्रवणमात्रतेंही रोमांचादिसहित अंतरंगमें उपजना । परमहर्षका होना मस्तकविषें अंजुलिकरना भावनिमें चारित्रके अंगीकार करनेमे परिणाम राखना सो चारित्रविनय है । वहुरि पूजवेयोग्य जें आचार्यादिक त्याने प्रत्यक्ष होते उठि खडा होना सन्मुख गमन करना अंजुली करना बंदन करना पश्चाद्गमन करना सो उपचारविनय है । वहुरि आचार्यादिक प्रत्यक्ष नहीं होइ परोक्ष होते अंजुली जोडना गुणनिका महिमा करना वारंवार स्मरण करना उनकी आज्ञा-प्रमाण प्रवर्त्तन करना सो उपचारविनय है । इम विनय नाम तपतें ज्ञानका लाभ आचारकी विशुद्धिता सम्यक् आराधना इत्यादिकनिकी सिद्धि होय हैं । तातें विनयभावनाकरि निर्वाणकी प्राप्ति निकट है । अव वैयावृत्य तपकूं कहै है ।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगरएकुलसङ्घसाधुमनोज्ञानाम् ।। २४ ।।

अर्थप्रकाशिका- आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ए दशप्रकारके साधु इनका वैयावृत्य करना सो वैयावृत्य तप है । कायकी चेष्टाकरि वा अन्यद्रव्यकरि व्यापार करना आचार्यादिकनिकी टहल करना सो वैयावृत्य है । तिनमें जिनतै व्रताचरण करिए सो आचार्य है । उसे तो निरुक्ति है । अर याका विशेष । जो

सम्यग्ज्ञानादिकगुणनिका आधार ऐसे महत्पुरुषनितें स्वर्गमोक्षके सुखरूप अमृतके बीज जे अहिंसादिकव्रत तिनकों अपनें हितके अर्थि भव्यजीव आचरण करे ते आचार्य है। जो व्रत शील भावनाके आधार होय अर जिनकी निकटतानैं साधुजन विनयपूर्वक प्राप्त होय श्रुतको अध्ययन करिए सो उपाध्याय है।

वहुरि जे महान उपवासादिकमैं तिष्ठै ते तपस्वी है। वहुरि श्रुतज्ञानके शीखणेमै तत्पर अर निरंतरव्रतभावनामें निपूण सो शिष्य है। बहुरि जिनका शरीर रोगादिककरि क्लेशरूप होय ते ग्लान मुनि है। वहुरि वृद्धमुनिनिका समुदाय सो गए है। वा वडेमुनिनिकी परिपाटिका होय सो गण है। वहुरि दीक्षा देनेंवाले आचार्यका शिक्ष सो कुल है। वहुरि च्यार प्रकारके मुनिका समूह सो संघ है। बहुरि बहुतकालका दीक्षित होय सो साधु है।

वहुरि जाका उपदेश लोकमान्य होय वा स्वयं उपदेशविनाही लोकनिमें पूज्य होय प्रशंसावान् होय सी मनोज्ञ है। अथवा समस्तलोक जाकूं महाविद्यावान् कहै प्रशस्तवक्ता कहै महाकुलवंत कहै ऐसें लोकमान्य होय जिनमार्गका गौरवके उत्पादनका कारण होय सो मनोज्ञ हैं। अथवा असंयतसम्यग्दुष्टीहू मनोज्ञ है।

ऐसे आचार्यादिक दशप्रकार कह्या तिनके शरीरसंबंधी व्याधि अर दुष्टमनुष्य तिर्यंचनिकृत उपसर्ग वा क्षुदादिकपरिषह। तथा मिथ्यात्वादिककी उत्पत्ति होजाय तो प्रासुक औषध भोजन पांचन वस्तिका काष्ठफलक तृणानिका संस्तर धर्मोपकरणादिककरि इलाज करै। अर सम्यक्त्व छूटिगया होय तो उपदेश देय फेरि सम्यक्त्वग्रहण करावै इत्यादिक वैयावृत्ति है। अर जो भोजन पान औषधादिक वाह्यसामग्री नहीं होय तो अपना देहकरिकै टहल करै। कफ नासिकामल मूत्र विष्टादिकनिकें दूरि क्षेपै जैसे सुख होय तैसे शरीरकरि टहल सेवा करै। जैसे धर्ममें लीनता होजाय तैसे उपदेश करै धैर्यधारण करावै तिनके अनुकूल आचरण करै सो समस्तवैयावृत्य करनेतें रत्नत्रयकी विशुद्धिता ग्लानिको अभाव प्रवचनमें वात्सल्यता इत्यादिकगुण प्रगट होय है। तातैं वैयावृत्यहीमें प्रवर्त्तन करना उचित है। इहां विषयके भेदतै वैयावृत्य दशप्रकार कह्या है। अब स्वाध्यायतपकूं कहे है।

बाचनाप्रछनानुप्रेक्षम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

अर्थप्रकाशिका—वाचना। १। पूछना। २। अनुप्रेक्षा। ३। आम्नाय। ४। धर्मोपदेश। ५। ऐसे पंचप्रकार स्वाध्यायतप है। तहां निर्दोषग्रंथका तथा ग्रंथके अर्थका तथा ग्रंथ अर्थ दोऊनिका विनयवान् धर्मका इच्छक भव्यपात्रकूं शिखावना पढावना सो बाचना है। वहुरि जो आपके शब्दमें शब्दके अर्थमें संशय होय तो संशयका दूरि करनेके अर्थि तथा

अपने निश्चयरूप दृढपरिणाम होनेके अर्थि विनयसहित होय वहुज्ञानीनिसूं प्रश्न करना सो प्रच्छना स्वाध्याय हैं । आपका ज्ञानकी उन्नति परका तिरस्कार परकी हास्य प्रगट-करनेकूं प्रश्न नहीं करै हैं। अर प्रश्न करै सों उद्धत होय नहीं करै हसतो संतो नहीं करै वहुत उत्कट शब्दकरि सभानिवासींनिकै क्षोभ करतो नहीं करे। वहुतप्रलाप नहीं करे। विनयपूर्वक अल्पअक्षरनिमें प्रश्न करै सो प्रच्छनानाम स्वाध्याय है।

वहुरि गुरुनिकी परिपाटीतें जाण्याहुवा अर्थको मनकरि अभ्यास करना वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है। वहुरि इस लोकसंबंधी फलकूं नहीं वांछा करता शीघ्रता अर विलंवनरूप जे घोषणाके दोष तिनकरि रहित जो पाठ करना सो आम्नायनाम स्वाध्याय है। वहुरि दुष्टप्रयोजनका परित्यागतै उन्मार्ग दूरि करनेके अर्थि संदेहका दूर करनेकों अर अपूर्व पदार्थके अर्थि धर्मके उपदेशरूप कथन करना सो धर्मो-पदेशनाम स्वाध्याय है। सो स्वाध्यायतै बुद्धिका अतिशय प्रगट होय है। प्रशस्तअभिप्राय होय है। प्रवचनकी स्थिस्ति होय है। संशयका उच्छेद होय है। परवादीकी शंकाका अभाव होय है। परमसंवेग जो धर्मानुराग वा संसारदेहभोगनितै विरक्तता होय हैं। तपकी वृद्धि होय हैं। अतिचारनिकी शुद्धिता होय है। अव स्वाध्यायके अनंतर कह्या जो व्युत्सर्ग ताहि कहै हैं

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थप्रकाशिका– वाह्य अर अभ्यंतर दोय प्रकारका उपधि जो परिग्रह ताका त्याग सो व्युत्सर्ग है। तहां आत्मातै वाह्य जें धन शरीरादिकका त्याग सो वाह्य उपधित्याग है। वहुरि क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भयादिक दोषनितै निवृत्ति होना सो अभ्यंतरव्युत्सर्ग है। सो त्याग करना है सो कालका नियमकरिभी होयहै अर यावत्जीवभी होयहै । सो यो कायोत्सर्ग निःसंगपणो करेहै । निर्भयपणो करेहैं। जीवितकी अशाका अभावके अर्थि दोषनिका छेंदके अर्थि मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके अर्थि कायोत्सर्गतप अंगीकार करना योग्य है। वाह्य अभ्यंतर परिग्रहत्यागी ज्ञायक शुद्ध आत्मस्वभावमे निश्चल तिष्ठना सो कायोत्सर्ग है। अब ध्याननामतपकूं कहेहै ।

उत्तकसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्त्तात् ॥ २७ ॥

अर्थप्रकाशिका– उत्तमसंहननके धारकपुरुषके एकाग्रचिताका निरोध सो ध्यात है सो ध्यान उत्कृष्टपणे अंतर्मुहूर्तपर्यंत है। आदिका तीन संहनन है सो उत्तमसंहनन है तेंदी ध्यानके कारण है । अर ध्यान है सो उत्कृष्टपणें अंतर्मुहूर्त्तपर्यंतही रहेहै। तिनमे मोक्षको कारण

वज्रऋषभनाराचही हैं। चित्तकी वृतिकूं अन्यक्रियातें रोकिएककैं विषै निरोध करे सो एकाग्रचितानिरोध है सोही ध्यान है। भावार्थ। अर्थकी एकपर्यायकूं अवलंवनकरि चित्तकी वृत्तिका ठहरना सो ध्यान है। सो उत्तमसंहननके धारकके अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ठहरैं अन्य संहननववालेके इतने काल एकाग्र डहरनेमे असमर्थपणा हैं इहां एकाग्रवचनतें वैयग्रचका अभाव जानना नानापर्यायनिमे भ्रमण करै सो वैयन्य सो तो ज्ञान है ध्यान नाही।। इहां कोऊ पूछें। जो साधुपुरूषके वहुतकाल ध्यनाअवस्था कैसे कहिए। ताका समाधान। जो एक ध्येयकूं छांडि दूजे ध्येयविषैं उपयोग आवैं ऐंसे अन्यअन्य ध्येयमे ध्यानका संतान चल्या आवे जेतें एकाग्र ठहरैं ऐसे वहुतकाल कहनेमे विरोध नाही।

वहुरि इस सूत्रमे ध्याता ध्यान ध्येय ध्यानका काल ए चार कहेहै। सामर्थ्यतें याके प्रवर्त्तनकी सामग्री जानिएहै। तहां उत्तमसंहननका धारी पुरूष है सो ध्याता है। एकाग्र-चिताका विरोध होना सो ध्यान है। एककूं प्रधानकरि चित्तकूं रोके सो ध्येय है। अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट याया काल है। इस सूत्रमे समस्त ध्यानको वर्णन मही संग्रह कीयो है। जातै ध्यानक प्राभृतग्रंथनिमे सकलध्यानकें लक्षणवर्णन है। इहां तो प्रसंगपाय सामान्यलक्षण कह्या है। अव ध्यानके भेद जनावनेकूं सूत्र कहेहै।

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थप्रकाशिका– आर्त्त रौद्र धर्म्य शुक्ल ए च्यार प्रकार ध्यान है। तिनमे आर्त्त रौद्र दोय अप्रशस्त है। अर धर्म्यशुक्ल दोय प्रशस्त है। तिन प्रशस्तध्याननिकूं कहेहै।

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थप्रकाशिका– परे कहिए अंतके धर्म अर शुक्ल ये दोन ध्यान मोक्षके हेतु है। इसही वचनतें पहिले कहै जे आर्त्त रौद्र तें अप्रयस्तध्यान हैं संसारके कारण है। अव आद्यका आर्त्त ध्यानका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहेहै।

आर्त्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥

अर्थप्रकाशिका– अमनोज्ञका संयोग होता संता तिसके वियोगके अर्थि जो चिंतवन सो आर्तध्यान है। विष कंटक शत्रु शस्त्रादिक जो अननोज्ञवस्तु ताका वियोग मरैं कैसे होय ऐसे वारंवार चिंतवन करना सो अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान है। तथा और दूसरा भेदकूं कहेहै।

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थप्रकाशिका– मनोज्ञवस्तुका वियोग होतैं तिसके संयोगकै अर्थि वारंवार चितवन करे सो इष्टयोगज नाम आर्तध्यान है। अव आर्तका तिसरा भेद कहैंहै।

वेदनायाश्व ॥ ३२ ॥

अर्थप्रकाशिका– दु:खरूप रोगादिककीं वेदनाका चिंतवन करना सो वेदनाजनित आर्तं है। वेदना होते वारंवार रोगका इलाजमें चिंतवन करना मनकी स्थिरताका अभाव होना धैर्य छूटि जाना तथा अंगमे विक्षेंप शोक विलाप रूदनादिक होना सो वेदनाजनित आर्त है। अव रागके विशेषतै वा कामकरि आतुररतातै तथा परभवमे विषयसुखमे लंपटतातै चोथा आर्तध्यान होय ताका स्वरूप कहनेंकूं सूत्र कहेहै।

निदानं च ॥ ३३ ॥

अर्थप्रकाशिका–आगामी भोगनिकी वांछा सो निदान है। हमारे संपदा होजाय कुटुंवकी वृद्धि होजाय ऐंसे तथा स्त्रीकी प्राप्तिके निमित्त तथा राज्यकी ऐश्वर्यकी महल-मकानकीं इद्रियनिकाभोगांकी वैरीनिका घातकी वांछा करै सो निदान नाम आर्त्तध्यान है। सो यो च्यारप्रकारको आर्त्तध्यान कृष्ण नील कापोत लेश्यामें उपजें। अज्ञानतें उत्पन्न होय है। अपने पुरुषार्थतै उपज्याया है। पापमें प्रयोग रखणेका परिणाम याका आधार है। नानासंकल्पका करनेवाला है। धर्मके आश्रयकूं त्यागि कषायनिका आश्रयस्थान है। उपशमभावका अभाव करनेवाला है। प्रमाद इसका मूल है। अशुभकर्मके ग्रहणका कारण है। कटुकविपाकरूप असाताका बंध्र करै हैं। तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण करावै है। अब इस आर्त्तध्यानका स्वामीकूं कहे है।

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ३४ ॥

अर्थप्रकाशिका–सो यो आर्त्तध्यान अविरत जें मिथ्यात्व सासादन मिश्र इन चार गुणस्थानिमें तथा देशविरतमें प्रमत्तगुणस्थानके धारकनिके भी होय है। परंतु प्रमत्तगुण-स्थानके धारकनिके निदान नहीं होंय है। अन्य तीन आर्त्त कदाचित् होय है। अर मिथ्यात्वकूं आदि लेय छठा गुणस्थानपर्यंत उत्तरोत्तरगुणस्थाननिमें कषायकी मंदतातै आर्त्तध्यानहू मंद होय है। अब रौद्रध्यान कहनेकूं सूत्र कहैं है।

हिंसानृतस्तेयविषसंरक्षभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥

अर्थप्रकाशिका–हिंसा अनृत स्तेय विषयरक्षण इनतै रौद्रध्यान होय है। सो अव्रती अर देशव्रतीनिके होय है। हिंसा असत्य चोरी परिग्रह इनके चिंतवनतैं रौद्रध्यान होय है। सो मिथ्यात्वादि चार अव्रतरूप अर देशव्रत इन पंचगुणस्थाननिमें होय है। देशव्रती-कैहू हिंसारूप विवाहादिकके आरंभतैं अर परिग्रहकी रक्षातैं रौद्रध्यान होय है। परंतु नरकादिकको कारण रोद्रपरिणाम नहीं होय है। जातैं देशव्रतीके अन्यायप्रवृत्तिका अभाव है। अर सकलसंयमीके रौद्रध्यान नहीं होय है। जो रौद्रध्यान होजाय तो सकलसंयमका अभाव हो जाय। तातै देशव्रतीपर्यंतही रौद्र होय है। अर कृष्ण नील कापोत लेश्याके आधारही रौद्रध्यान होय है। अब धर्मध्यान कहनेकूं सूत्र कहै है।

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

अर्थप्रकाशिका– आज्ञाविचय अपायविचय विपाकविचय संस्थानविचय ॥ ऐसे च्यार प्रकार धर्मध्यान है। तहां जो आगमकी प्रामाण्यतातै अर्थका निश्चय करना सो आज्ञाविचय है। जो उपदेशदाताका तो अभाव होय अर अपनी बुद्धिमंद होय अर कर्मका प्रबल उदय होय अर पदार्थनिका स्वरूपके सूक्ष्मपणा होय तातै समझनेमें नहीं आवै तथा हेतु दृष्टांत जाननेमें नही आवै तहां सर्वज्ञका प्ररूप्या आगमकूं प्रमाण करिकै अर गहनपदार्थमं ऐसा निश्चय करै जो योही तत्व हैं। इस प्रकारही है अन्य नही अन्यप्रकार नहीं ऐसा चिंतवनकूं आज्ञाविचय कहिए है। अथवा सम्यग्दर्शनकरि जाका परिणाम उज्जल होय अर अपने अर परके मतके सिद्धांतकरि पदार्थनिका निर्णयका ज्ञाता होय। अर सर्वज्ञके कहे सूक्ष्मपदार्थनिकूं निश्चय करिके अर ए पदार्थ ऐसे ही है। इस प्रकार अन्य जीवनिकूं जानावनेंका इच्छक होय सो पुरुष श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतें अपने सिद्धांततैं जैसे विरोध नहीं आवै तैसे व्याख्यानके अवसरमें प्रमाण नय हैतु इत्यादिक करि सभानिवासीं भव्यजन-निकूं जिनभाषित सत्यार्थ तत्व जणावै तथा ताकें समर्थनके अर्थि तर्क नय प्रमाणका युक्त कर-नेमें तत्पर होय चिंतवन करै सो सर्वज्ञकी आज्ञाप्रकाशनपणातें आज्ञाविचय धर्मध्यान होय है।

बहुरि अपायविचयकूं कहै है। जिनका मिथ्यादर्शनकरि ज्ञाननेत्र ढकीगया तिनका आचार विनय उद्यमादिक समस्त संसारका बधावनेंके अर्थि होय है। अविद्याका आधिक्यतै संसारपरिभ्रमण वधैही है। तथा जैसे जन्मके आंधें बलवांन् है तोहू सन्मार्गतै छूटिहुए कल्याणरूप मार्गका उपदेशदाताविना नीच उच्च पर्वत विषमपाषाण कठोर स्थाणु

कंटकसमूहकरि व्याप्तपृथ्वीमें पडे हुए उद्यम करतेहूं सन्मार्गंने प्राप्त होनेकूं समर्थ नहीं होय है।

तैसेही सर्वज्ञप्रणीतमार्गंतै विमुख पुरुष मोक्षकी वांछा करैं हैं तोहू उपदेशदाताविना सत्यार्थमार्गकूं नही जाननेतैं दूरिही नष्ट होय है। ऐसे सन्मार्गका अभाव चिंतवन सो अपायविचय धर्मध्यान है। अथवा मिथ्यादृष्टिनिकरि कह्या उन्मार्गतें ए प्राणी कैसे टलैं। तथा अनायतन सेवाका अभाव कैसे होय। तथा पापके कारण वचन अर पापकी भावनाको अभाव कैसे होय। ऐसे चिंतवन करना सो अपायविचयधर्मध्यान हैं।

बहुरि कर्मके फलका अनुभवनकूं गुणस्थाननिमें तथा मार्गणास्थाननिमै तथा उदीरणाकूं चिंतवन करना सो विपाकविचयधर्मध्यान है। बहुरि जो लोकका संस्थानका तथा द्रव्यनिका स्वभावका तथा द्वादशभावनाका चिंतवन सो संस्थानविचयधर्मध्यान है। सो असंयत प्रमत्त अप्रमत्त संयत इन च्यारगुणस्थाननिमे होय है। अब शुक्लध्यानके स्वामीकूं कहै है।

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

अर्थप्रकाशिका आद्यके दोय शुक्लध्यान है। ते सकलश्रुतधारक श्रुतकेवलीके होय है। च शब्दकरि धर्मध्यानहू होय है। परंतु श्रेणी नहीं चढै तेतैं धर्मध्यान है अर दोऊ श्रेणी निमें शुक्लध्यान नहीं है। ऐसे मोहके उपशमावनेवालेके तो पहला शुक्लध्यान अर मोहके क्षपावनेवाले आदिके दोय शुक्लध्यान कहै। अब अन्य दोय कीनके होय यातै सूत्र कहे है।

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थप्रकाशिका– अंतके दोय शूक्लध्यान सयोगकेवली अयोगकेवलीजिनके होयहैं. छद्मस्थकै नही होयहै। इहां आचार्यंनिनै ऐसे कह्याहै। जैसे अंधकारमे मुष्टिकरि अभिघात करना तिसकें सदृश शुक्लध्यानका कहना है। जातै मोहनीयका उपशम तथा क्षयविना इस ध्यानका अनुभव नहीं होयहैं। तातैं शुक्लध्यानके ध्याताकी विशेषताप्रति हमने व्यापर नही कीयाहै। क्योंकि इस ध्यानका लक्षणविशेषका उपदेश नही प्राप्तभयाहै। अब शुक्लध्यानके नामविशेष कहेंहै।

द्रव्यकूं ध्यावता द्रव्यकूं छांडि पर्यायकूं ध्यावेहै पर्यायकूं छांडि द्रव्यकूं ध्यावेहै या तो अर्थसंक्रांति है अर श्रुतका एकवचनकूं अवलंवनकरि अन्यकूं अबलंबन करें। वाहूकूं छांडि अन्य अवलंबन करै सो व्यंजनसंक्रांति है। अर काययोगकूं त्यागि अन्ययोगकूं ग्रहण करें अर उसहूकूं त्यागि अन्य-योगकूं ग्रहण करें सो काययोगसंक्रांति है। ऐसे परिवर्तनकूं विचार कहिएहै। ऐसे कह्या जो च्यार प्रकार शुक्लध्यान तथा धर्मध्यान अर गुप्त्यादिक वहुप्रकारके उपाय तिनकूं संसारका अभावके अर्थि मुनीश्वर ध्यावनेकूं योग्य है। अब इस ध्यानका आरंभविषैं ऐसा परिकर होयहैं। जदि उत्तमशरीरका संहननकरिकै परिषहनिकी बाधाके सहनेकी शक्तिरूप अपना आत्मकूं जाने तदि ध्यानका परिचयके अर्थि आरंभ करै। कैसे करे सो कहेहै।

पर्वतकी गुफा कंदर दरी द्रुमनिके कोटर नदीनकें तट स्मशान जीर्णवगीचा शून्य-गृहादिकनिमैं कोऊ एक स्थान ध्यानके योग्य होय तथा सर्प मृग पशु पक्षी मनुष्यादिकनिकें रहनेवसनेका स्थान नहीं होय। अर उस स्थानकमें उत्पन्नभए तथा अन्यस्थानकनितैं आए ऐसे द्वींद्रियादिक जीवनिकरि रहित होय। अर जहां अती गरमीकी उष्मा नहीं होय अती शीतकी बाधा नहीं होय। अर जामैं अतिपवन नहीं होय अतीवर्षाकी बाधा नही होय अती वडा नहीं होय वाह्य अभ्यंतर विक्षेपका करनेवाला नहीं होय। ऐसा अनुकूलस्पर्श-सहित पवित्र पृथ्वीतलके विषैं सुखरूप तिष्ठता। अर बांध्यो है पल्पंकासन जानें। ऐसो शरीरकूं सरल करिकैं कठोरता वक्रता रहितहुवा अपना अंक जो गोदि ताकै विषैं वाम-हस्तका तलउपरि दक्षिणहस्तकी हथेलीकरि तिष्ठै। अर नेंत्रनिकूं अति ऊघाडै नहीं अर अति मींचै नहीं अर दंतनिकरि दंतनिका अग्रभाग मिल्याहुवा रहै अर किंचित् मात्र उन्नत मुख होय। मध्यका अंग उदर सरल होय। कठोरतारहित होय। परिणामकरि मस्तक ओष्ठ गंभीर होय मुखवर्णं प्रसन्न होय। टिमकारणेरहित स्थिर अर सौम्यदृष्टी होय। अर निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष विचिकित्सा इनकरि रहित होय अर मंदमंद स्वासोस्वासका प्रचार होय।

इत्यादिक परिकरसहित साधु है। सो मनकी वृत्तिकूं नाभिऊपरि वाह्य हृदयविषैं तथा मस्तकविषै तथा अन्यस्थानमें जहां परिचयकरि राख्या होय तहां निरोधकरि निश्चल मोक्षाभिलाषी हुवो प्रशस्तध्यानकूं ध्यावैं तिस ध्यानविषै एकाग्रमन हुवा उपशम कीया है राग द्वेष मोह जाने। अर निपुणपणातैं निग्रहकरि है। शरीरका हलन चलन क्रिया जाने अर मंद कीया उछ्वासनिश्वास जानै। अर भलेप्रकार निश्चल कीया है अभिप्राय जानें। ऐसा क्षमावान् हुवा वाह्य अभ्यंतर द्रव्यपर्यायनिमें ध्यावता ग्रहणकीया है। श्रुतज्ञानका सामर्थ्य जाने ऐंसा अर्थ अर अक्षर जें है।

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपतक्रियानिवर्त्तीनि ॥ ३९ ॥

अर्थप्रकाशिका– पृथक्त्ववितर्कविचार। एकत्ववितर्कविचार। सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। व्युपरतिक्रियानिवर्त्ति। ऐंसे चार प्रकार है। इनिका आगैं लक्षण कहेंगे तिनतैं सार्थकपणा जानना। अव शुक्लध्यानका अवलंवन कहेंहै।

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

अर्थप्रकाशिका– प्रथमशुक्लध्यान तों तीन योगनिविषैं होयहै। अर दूजा शुक्लध्यान तीन योगनिमेतैं एकयोगमे होयहै। अर तीजा शुक्लध्यान काययोगके विषैंही होयहै। अर चौथा शुक्लध्यान अयोगीकेहीं होयहै। अव प्रथमध्याका विशेष जाननेकूं सूत्र कहेंहै।

एकाश्रये सवितर्कविचारेपूर्वो ॥ ४१ ॥

अर्थप्रकाशिका– पूर्वो कहिए आदिके दोऊ ध्याननिका आधार परिपूर्णश्रुतज्ञान है जिनकें पूर्वनिका ज्ञान प्रगट भया होय तिनकेही आदिके दोऊ ध्यान होय है। वहुरि वितर्क जो श्रुत अर विचार जो अर्थयोगशब्दनिका पलटना ताकरि सहित है। इनमे विशेश कहेंहैं।

अविचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

अर्थप्रकाशिका– दूजा शुक्लध्यान विचाररहित हैं। जातै प्रथम शुक्लध्यान तो वितर्कविचार दोऊनिकरि सहित है। अर दूजा शुक्लध्यान वितर्ककरि सहित हैं। अर विचार-सहित नही। अब वितर्कका लक्षण कहेहै।

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

अर्थप्रकाशिका– विशेषताकरि तर्क कहिए विचारिए सो वितर्क है। वितर्क नाम श्रुतज्ञानका हैं। अव विचारका लक्षण कहेहै।

विचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

अर्थप्रकाशिका– व्यंजनयोगका पलटना सो विचार है। इहां ऐंसा विशेष हैं। अर्थनामकरि तौ ध्यान करनेयोग्य द्रव्य वा पर्याय है। अर व्यंजननाम शद्वका है। अर मन वचन कायकी क्रियाकूं योग कहिएहै। संक्रांतिनाम पलटनेका परिभ्रमणका है। तिस ध्यानमे

तिनमें अर काय अर वचन जे है। तिनमें भिन्नभिन्नताकरि परिभ्रमण करता ऐसा ध्यावनेवाला ध्याता वलका उत्साहपूरिपूर्ण नहीं ताकीज्यों अनिश्चलज्यों मन ताकरिकै जैसे अतीक्ष्ण कहिए भोंटा शस्त्रकरिके बहुतकालमें वृक्ष छेंद्या जाय तैसें मोहनीयकी प्रकतिनिकूं उपशम करता वा क्षपावता साधु पृथक्त्ववितर्कविचारध्यानकूं भजनेवाला होय है। ऐसे पुथक्त्ववितर्कविचारध्यान कह्या।

अव इसही विधकरि मूलसहित समस्त मोहनीयकूं दग्ध करनेतै अनंतगुणा विशुद्धयोगविशेषकूं आश्रयकरिके ज्ञानाकरणकी सहायभूत बहुतप्रकृतिनका बंधकूं निरोध करता अर स्थितिकूं घटावता वा दोय करता श्रुतज्ञानका उपयोगसहित हुवा अर्थव्यंजनयोगनिकें पलटनेका अभावकरि अचल हुवा है मन जाका ऐसा क्षीणकषायगुणकूं प्राप्तहुवा वैडूर्यमणिकीज्यो कर्ममलका लेपरहित हुवा ध्यान करिकै फिर पाछा नही वाहुडैहै यातैं याकूं एकत्ववितर्कशुक्लध्यान कह्या। ऐसे एकत्ववितर्कशुक्लध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीयाहै घातिकर्मरूप इंधन जाने। अर देदीप्यमान प्रगट हुवाहै केवलज्ञानरूप सूर्य जाकैं ऐसा जैंसे मेघपटलमे हुवा सूर्य मेघपटलकूं दूरि होतेही प्रगट होय अपनी प्रभाकरि प्रकाशमान होयहै। तैसे आचरणकर्मकूं दूरि होतेही अपनीं प्रभाकरि प्रकाशमान होयहै। तैंसे आवरणकर्मकूं दूरि होतेंही अपनी प्रभाकरि प्रकाशमान भगवान् तीर्तंकर तथा अन्यकेवली लोकेश्वर जें इंद्रादिक तिनकरि वंदनीय पूजनीय होयहै। अर उत्कृष्टताकरि किंचित् ऊन कोटीपूर्वकीं आयुप्रमाण आर्य देशनिमे विहार करेहै। अर जदि आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहिजाय अर जो वेदनीय नाम गोत्र कर्मकी स्थितिभी जो अंतर्मुहूर्तकीही होय।

तदि सर्वं वचनमनका योग अर बादरकाययोगका अवलंबरूप होय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानकूं प्राप्त होनेकूं योग्य है। अर जो आयुकर्मकी स्थिति तो अंतर्मुहूर्तकी होय अर वेदनी नाम गोत्र इन तीन कर्मनिकीं स्थिति अधिक होय तो योगी अपने आत्मप्रदेशनिके चार समयकरि दंड कपाट प्रतर लोकपूरणरूप विस्तारणतैं अर चार समयकरिही प्रदेशनिके संकोचतै चार कर्मनिकी स्थितिकूं अंतर्मुहूर्तप्रमाण आयुकी स्थितिकै समानकरिकै अर पूर्वशरीरप्रमाण होय सूक्ष्मक्रियातै अप्रतिपातिध्यानकूं प्राप्तहोय। पछै समुच्छिन्नक्रियानिर्वत्तिध्यानकूं आरंभैं है। इस अवसरमें सासोच्छ्वासका प्रचार समस्त मनवचनकायके योग समस्तप्रदेशनिका चलनहलनरूप क्रियाका निषेंध भया तामैं समुच्छिन्नक्रियानिर्वतिध्यान कहिएहै तिस समुच्छिन्नक्रियानिर्वतिध्यान होतें समस्त बंध अर आस्रवका निरोध अर अवशेंष समस्त कर्मका नाशका सामर्थ्य उत्पन्न होनेतै अयोगकेवलीके संपूर्ण संसारका दुःखका नाश करनेवाला साक्षात मोक्षका कारण संपूर्ण यथाख्यात ज्ञानदर्शनकी परिपूर्णताकूं प्राप्त होय है। सो भगवान् अयोगकेवली

तिस अवसरमे ध्यानरूप अग्निकरि दग्धकींया हैं समस्तमलकलंकका बंध ज्यां जैसे किट्टपाषाण- रहित जातिवान् सुवर्णकीज्यीं अपने शुद्धरूपकूं पाय निर्वाणकूं प्राप्त होयहै ।

इहां ऐसा जानना । जो यथाख्यातचारित्र तो पूर्वे वारमे गुणस्थानहीमे होगया । परंतु चारित्रकी परिपूर्णता जो चोरासी लाख उत्तरगुण अर अठारहजार शील इनकी परिपूर्णता चोदमा गुणस्थानकेही अंतमे होयहै । तातैं यथाख्यातचारित्रकीं परिपूर्णता इहां लिखि है । अर यथाख्यातचारित्ररूप ज्ञानदर्शनहीका परिणमन हुवाहै । अर जो पहलीही रत्नत्रयपरिपूर्ण होगया होय तो मोक्ष उसही कालमे भया चाहिए । तातें जहां रत्नत्नयकी पूर्णता भई तिसही समयमे मोक्ष होय ऐंसा जानना । यद्यपि भगवान् केवलीकै एकाग्रचितानिरोधध्यानही हैं । एकएक- पदार्थका चिंतवन तो क्षयोपशमज्ञानीकै होयहै । भगवान् केवलीकै युगपत् सकलपदार्थ प्रत्यक्ष होगया । अव ऐसा पदार्थ कोऊ वाकी रह्या नहीं जाका ध्यान करै । कृतकृत्य है कुछ करना जानना वाकी नही रह्या तथापि आयुकूं पूर्ण होने अर अन्य तीन कर्मकी स्थिति पूर्ण होतैं योगनिका निरोध अर कर्मनिकी निर्ज्जरा स्वयमेंव होयहै ।

अर ध्यानतैंहू योगनिका निरोध अर कर्मकी निर्ज्जरा होयहै । यातैं ध्यानकासा कार्य देखि उपचारतैं ध्यान कह्याहै । सत्यार्थध्यान नहीहै । केवलीभगवानके अनंतानंतपरिणति- सहित त्रिकालवर्ती समस्तपदार्थ हस्तरेखावत् प्रगट भया अव ध्यावनेंकूं कोऊ वाकी रह्या नही जाका ध्यान करैं । ऐंसे दोय प्रकार तप है सो नवीन कर्मका निरोधका हेतुपणातै संवरको कारण है । अर पूर्वके वांधें कर्मनिके नाश करनेके निमित्तपणातै निर्ज्जराका हैतुहू है । अैठे कही जो परीषहकें जयतै अर तपश्वरणतै कर्मकी निर्ज्जरा होयहैं । तहां ऐंसै नहीं जाण्यागया जो समस्तसम्यग्दृष्टीनिके समानही निर्ज्जरा है कि भिन्नभिन्न है । समस्तके निर्ज्जरांसमान नाहीहै । यातैं सूत्र कहेहै ।

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोह- क्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसङ्खयेयगुणनिर्ज्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थप्रकाशिका—सम्यग्दृष्टि । १ । श्रावक पंचमगुणस्थानी । २ । विरत कहिए महा- व्रती मुनि । ३ । अतंतानुबंधीका विसंयोजन करनेवाला । ४ । दर्शनमोहकूं क्षपावनेवाला । ५ । चारित्रमोहका उपशम करनेवाला । ६ । उपशांतमोह । ७ । क्षपकश्रेणी चढता । ८ । क्षीण- मोह । ९ । जिन । १० । इनके आदिके अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत अनुक्रमतैं असंख्यातगुणी निर्ज्जरा होइ है । प्रथमसम्यक्त्वकूं आदिकरि दशस्थाननिके धारकनिके परिणामकी विशुद्धिताका आधिक्यतातै अंतर्मुहूर्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी निर्ज्जरा होय है ।

इहां ऐसा जानना। जैसे कोऊ मद्यपानीके मद्यका एकदेशका अभावतैं अप्रगट कुछ ज्ञानशक्ती प्रगट होय है। तथा जैसे प्रचुरनिद्रामें शयन करता पूरुषके एकदेशनिद्राका अभाव होतेही कुछ थोरा स्मरण उत्पन्न होय है। तथा जैसे विषकरि अचेत पुरुषकें किंचित् विषके दूरि होनेतें चेतनाका अवलंबन होय है। तथा जैसे पित्तादिविकारकरि मूर्छित पुरुषके विकारका अंश किंचित दूरि होतै अप्रगट चेतना प्रगट होय है। तैसे निगोदादि एकेंद्रियपर्यायमें अनंतानंतकाल परिभ्रमण करतें कोऊ विशेषलब्धितें द्वींद्रियादिक त्रसनिमें जन्म पावै है। फिर वारंवार निगोदिमें जाय है। फिर अनंतानंतकालमें अतिकठिन त्रसपर्याय पाय फिर निगोदिमै पृथ्वीकायादि एकेंद्रियमें जाय है।

पंचेंद्रियपणा पावना अतिदुर्लभ है। अर पंचेंद्रियभी होय तो क्रूर तिर्यंच होय दीर्घकाल नरकमें व्यतीत करे है। केचित् नरक तिर्यंचसूं निकसि मनुष्यपणामें घुणाक्षरन्यायकरि उपजे हैं। जैसे कोऊ घुणनामा जीव धान्य तथा काष्ठादिकमें उत्पन्न होय उसकूं भक्षण करतें स्वयमेव अक्षर उकीरि आवै तैसे मनुष्यजन्मकूं प्राप्त होय हैं। तिसमैंहू उत्तमदेश कुल इंद्रियपरिपूर्णता पाय अर संक्लेशका अभावतै विशुद्ध अभिप्राययुक्त होय भव्य होय अर जाका आत्मा कषायमलरहित होय तोहू सम्यक उपदेशका अभावत सत्यार्थमार्गकूं नहीं प्राप्त हुवा।

कुगुरुनके उपदेशतै मिथ्यादृष्टी होय फेर संसारमे अनंतानंतकालमै ज्ञानावरणकर्मका एकदेशका उपशमतें परिणामनिकी विशुद्धितायुक्त हुवा उपदेश लब्धिसंयुक्त होय सत्यार्थउपदेशकूं प्राप्त होनेतें अथवा मुनींद्रनिसंबंधी श्रद्धान ज्ञान पाय कर्मका अभावतैं सत्यार्थश्रद्धानकूं प्राप्त होता मिथ्यात्वके उपशम करनेंकूं कारण तीन करणपरिणामनिकूं प्राप्तें होय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है।

तिस प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहली तीन करण होय है। तिसमैं अनिवृत्ति करणका अंतसमयमें वर्त्तता विशुद्धिताकरि विशुद्ध जो सातिशय मिथ्यादृष्टी ताकें जो आयुकर्मविना सप्तकर्मनिकी निर्जराका जो गुणश्रेणीनिर्ज्जरा द्रव्य असंख्यातगुण है। तातैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकूं प्राप्त होतेही अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातका गुणकारकूं लीए गुणश्रेणीनिर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं देशसंयतगुणस्थानीके अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत निर्ज्जराहोने योग्य कर्मपुद्गलरूप गुणश्रेणी निर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं सकलसंयम ग्रहण करनेका आदिका अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातका गुणकाररूप कर्मकी निर्जरा होने योग्य द्रव्य असंख्यातगुणा है। सो सकलसंयम प्रथमही अप्रमत्तसंयतनाम सप्तमगुणस्थानहीमें होय हैं। छठा प्रमत्तगुण स्थान तो सप्तमतै पडाहुवाकै होय हैं।

तातैं अनंतानुबंधी च्यार कषायकूं द्वादशकषाय नवनोकषायरूप परिणमन कराय दे तींन करणके प्रभावतै ताकै असंख्यातगुणा गुणश्रेंणी निर्ज्जराद्रव्य है। सो अनंतानुबंधीका विसंयोजन अविरत देशविरत प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत इन च्यार गुणस्थाननिहिमैं होय है। जिस गुणस्थानमें विसंयोजन करै ताहि अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी निर्ज्जरा होय है। अर अनंतानुबंधीका विसंयोजनतै दर्शनमोहकूं क्षपावनेवालाके गुणश्रेणी निर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। सो दर्शनमोहकी क्षपणाहूं करणत्रयका सामर्थ्यतें केवली श्रुतकेवलीकै निकट मनुष्यहीके अविरतादि च्यार गुणस्थाननिमें होय है।

तहांही अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत गुणश्रेणीनिर्ज्जरा होय है। तातैं अपूर्व करणादि तीन गुणस्थानी कषायके उपशम करनेवालेके गुणश्रेणी निर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तात उपशांतकषाय गुणस्थानी सकलमोहनीयकूं उपशम कीया ताकै गुणश्रेणींनिर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। ततै क्षपकश्रेणींवाला अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवालेकें गुणश्रेणीनिर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातें समुद्घातकेवलीजिनके गुणश्रेंणीनिर्ज्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है।

भावार्थ। इन ग्यारह स्थाननिकूं प्राप्त होय तिनकें आदिके अंतर्मुहूर्तपर्यंत परिणामनकी विशुद्धिताकी अधिकताकरि समयसमयप्रति असंख्यातगुणी आयुविना सप्तकर्मके परमाणुद्रव्यनिकी निर्ज्जरा होयहै। इहां निर्जरा तो स्थानस्थानप्रति असंख्यातगुणीं है। अर निर्जरा होनेका काल असंख्यातवें भाग घटताघटता है। इहां समुद्घातजिनके गुणश्रेणी निर्जराका काल अंतर्मुहूर्त है सो समस्ततें अल्प है। यातै संख्यातगुणा काल स्वस्थानजिनके है। यातै क्षीणकषायके संख्यातगुणा है। ऐसे सातिशयमिथ्यादृष्टीपर्यंत वधनावधता है तोहू सातिशयमिथ्यादृष्टिकैहूं गुणश्रेंणीं निर्ज्जराका काल अंतर्मुहूर्त्तही है। जातै अंतर्मुहूर्तके भेद बहुत है। ऐसे गुणश्रेणीनिर्ज्जराके स्थान कहे। अव साधुपणामैहु केते भेद हैं। तिन भेदनिकूं कहेहै।

पुलाकबकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥

अर्थप्रकाशिका— पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रंथ स्नातक ए पंचप्रकारके निर्ग्रंथ है। तहां जो उत्तरगुणनिकीं भावनाकरिके तो रहित होय। अर व्रतनिविषैंहू कोऊ काल कोऊ क्षेत्र विषै कदाचित् परिपूर्णकूं नही प्राप्त होतें पुलाक ऐंसे नाम पावै है। जातै पुलाक ऐंसा नाम परालसहित शालीका है। सो अशुद्धपरालसहित ध्यानकी उपमा देय साधूकूं पुलाक कह्या है। जातै याकै कोऊ क्षेत्र कालके योगतै मूलगुणनिमे विराधना होंय है तातै शुद्धताका मिलापतैं याकूं पुलाक कह्या है। बहुरि जाकै बाह्य अभ्यंतर परिग्रहका अभावके अर्थि तो निरंतर उद्यम है। अर व्रत जाकें अखंडित हैं। मूलगुणनिमे बाधा नही है। अर शरीर पीछी कमंडलू पुस्तकादिकनिका संवारनेंमे शोभित करनेंमे जाका परिणाम है। अर धर्मका यश प्रभाव

अपना प्रभाव यशकूं जानेहै। तथा जाके संघकी धर्मकी प्रभावनाके अर्थि शुद्धिकी वांछाहू है। संसारीके प्रयोजनके अर्थि नहीहै। वा अपनें साता रहनेकूंहू भला जानेहैं। जातै परमार्थतें एहू प्ररिग्रहही है। जो संघ तथा उपकरणका हर्ष सोही भया छेद यातै कर्बूरित आचरणकरि युक्त है तातें वकुश कह्या। इहां वकुशनाम कर्बुंरितका है। उज्जलमे किंचित् मलिनतातैं कर्बुंरित कह्याहै।

वहुरि कुशील दोय प्रकार हैं। एक प्रतिसेवानकुशील। एक कषायकुशील, तहां जाकै उपकरण शरीरादिकतें भिन्नपणा नहीं भया अर मूलगुण उत्तरगुर्णनिकी परिपूर्णता है। कथंचित् कोऊ प्रकार उत्तरगुणनिमें विराधनाहुवा होजाय है ते प्रतिसेवनाकुशींल हैं। वहुरि ग्रीष्मऋतुमें कदाचित् गोडे नीचै जंघा कहावें ताका प्रक्षालनहू हैं। अन्य कषायनिका उदयकूं तो वशीकीया अर संज्वलनमात्रका उदयपणांके आधीनपणातै कषाय कुशील कहावे है।

वहुरि जाकै मोहकर्मका उदयका तो अभाव भया अर अन्य कर्मका उदय ऐसा है। जैसे जलमें दंडतै लहरि पडे ते शीघ्रही विलयमान होजाय हैं। तैसे प्रदेशनिका तथा उपयोगका मंदमंद चलना है। सो प्रगट अनुभवमें नहीं आवै है तिनकी निरर्थसंज्ञा है।

तिसमें ग्यारमो वारमो दोय गुणस्थान है। तिनमें ग्यारमा गुणस्थानमें तो मोहका उपशमही है सो उपरि चढैनही पडैही। सो दशमै गुणस्थान आवै अर मरण करै तो अहमिंद्रनिमें जाय उपजै। अर बारमे गुणस्थानक्षपकश्रेणीवालो जाय सो अंतर्मुहूर्त गए केवलज्ञान केवलदर्शन उपजावै ते निर्ग्रंथ है। यद्यपि पांचप्रकारका मुनि वस्त्र आवरण आयुध गृह कुटुंव धन धान्यादिक रहितपणातै समस्तनिर्ग्रंथही है। तथापि मोहनीयकर्मका सद्भावतें निर्ग्रंथ नही कीया कह्या।

व्यवहारकरि निर्ग्रंत है। परमार्थतें तो समस्त मोहनीयका अभाव भया निर्ग्रंथपणा प्रगट क्षीणकाषयी बारमा गुणस्थानधारककैही होय है। बहुरि समस्तघातिकर्मनिका नाशकरि केवलीजिन भए तिनके स्नातक ऐसी संज्ञा प्रगट होय है। स्नात वेदसमाप्तौ इस धातुका स्नातक शब्द वणे है। सो वेद जो ज्ञान ताकी पूर्णता जहां होय तहां स्नातकसंज्ञा प्रगट होय है।

इहां कोऊ कहै। जैसे चारित्रका भेदतें गृहस्थ है। सो निर्ग्रंथनाम नहीं पावे है। तैसेही पुलाकादिमुनिनकेहू उत्कृष्ट मध्य चारित्रका भेदतै निर्ग्रंथपणा नहीं बणें है। ताकूं

कहिए है। जो ऐसे नही है। जैसे ब्राम्हणजाति आचार अध्ययनादिके भेदकरि भिन्न है। तोहू ब्राम्हणपणाकरि सर्वही ब्राम्हण है। तैसे इहांहू जानना। वहुरि सम्यग्दर्शन अर निग्रंथरूपकरि समस्तपुलाकादिक समान है। अर भूषण वस्त्र आयुधकरि समस्तही पुलाकादिक रहित है। तातैं समस्त पुलाकादिकनिमें निग्रंथशब्द वर्त्तै है। अर जो या कहो पुलाकमुनिके कोई अवसरमैं व्रतका भंग भी क्षेत्रकालके वशतैं होय है ताकूं भी निग्रंथ कहोहो तो श्रावकके भी निग्रंथपणा कहनेका प्रसंग आया। ताकूं उत्तर कहे है।

श्रावककें नग्नरूप नहीं कैसे निग्रंथपणा आवै नहीं आवे। अर जो कहो अन्य-मिथ्यादृष्टी नग्न भी रहे है। तिनके निग्रंथ कहनेका प्रसंग आया सो नहीं है। जातै अन्य भेषीनिके सम्यग्दर्शन नहीं है। नग्नपणामात्र तो वावलाकै तथा वालकके है तिर्यंचकेहू है सो निग्रंथ कहावै नहीं। जो सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञानपूर्वक संसारदेहभोगनतैं विरक्त होय नग्नपणा धारे है तिनमें निग्रंथशब्द प्रवर्त्तै है। अन्यमें नहीं प्रवर्तै। अव पुलाकादिकनिग्रंथनिके अन्य विशेष जणावनेकूं सूत्र कहे हैं।

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ।। ४७ ।।

अर्थप्रकाशिका—संयम श्रुत प्रतिसेवना तीर्थ लेश्या उपपाद स्थान ए अष्टभेदरूप अनुयोगनिकरिहू पुलाकादिक मुनिनिके भेद साधणे व्याख्यानकरणें तहां पुलाकादिक कोन संयममे है सो कहे है। तहां पुलाक वकुल प्रतिसेवनाकुशील हैं। ते सामायिक छेदोपस्थापन परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय इन चार संयमनिमे वर्त्तै है। अर निग्रंथ स्नातक ए दोय एक यथाख्यातसंयमविषें प्रवर्त्तै है।

अब श्रुत कहे है। पुलाक वकुश प्रतिसेवनाकुशील ए तीन उत्कृष्टताकरि अभिन्नाक्षर दशपूर्वधारी होय है। अर कषायकुशील अर निग्रंथ ए दोय चोदहपूर्वधर होय है। अर जघन्यकरि पुलाकके आचारांगमें आचारवस्तु होय है। अर बकुशकुशील निग्रंथनिके अष्ट प्रवचनमात्रका ज्ञान होय है। अर स्नातक है ते केवली है। इनके श्रुत नही होय हैं।

बहुरि प्रतिसेवना जो विराधना ताहि कहे हैं। पुलाकमुनिके तो पंच महाव्रत एक रात्रिभोजनत्याग इन छह व्रतनिमे परके बसतैं जबरीतैं एक कोऊ व्रतकी विराधना हो जाय है। जातें महाव्रतनिमे मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनातें पंचपापनिका त्यागरूप है। तिनमे अपनी सामर्थ्यकी हीनतातें कोऊ भंगमे दूषण लागैं है।

बहुरि वकुश दोय प्रकार है। एक उपकरणवकुश एक शरीरवकुश। तिनमे उपकरणनिमें आसक्त कमंडलु पींछी पुस्तकादिकनिकी भूषा कहिए शोभायमान ताका अभिलाषकरि संस्कारका सेवनतैं उपकरणबकुशके विराधना जाननी। बहुरि शरीरका संस्कार करनेरूप शरीरवकुशके विराधना है। बहुरि प्रतिसेवताकुशील निग्रंथ अर स्नातक इनके प्रतिसेवना जो विराधना सो नाही है। जाका त्याग होइ ताकूं कोइ कारणकरि सेवन करि फिर सावधान होय फेरी नहीं सेवन करे है। यातैं प्रतिसेवना नहीं है। इहां प्रतिसेवनाकूं विराधनाहू कहिए है।

अब तीर्थ कहेहै। समस्ततीर्थकरनिके तीर्थमे पंचप्रकारके मुनि होयहै।

अब लिंग कहेहै। लिंग दोय प्रकार है। एक द्रव्यलिंग एक भावलिंग। तहां भावलिंगकरि तो पांचूहीं भावलिंगी है। सम्यग्दर्शनसहित संयमपालनेमे सावधान है। अर द्रव्यलिंगकरि भेद है। कोऊ आहार करेहै। कोऊ अनशनादितप करेहै। कोऊ उपदेश करेहै। कोऊ अध्ययन करेहै। कोऊ ध्यान करेहै। कोऊ तीर्थंविहार करेहै। काहूकैं दोष लागेहै। कोऊ प्रायश्चित लेहै। कोऊ दोष नही लगावेहैं। कोऊ आचार्य हैं। कोऊ उपाध्याय है। कोऊ प्रवत्तक है कोऊ निर्यापक है। कोऊ वैयावृत्य करेहै। कोऊ ध्यानकरि श्रेणी चढेहै। कोऊ केवलज्ञान उपजावेहै। इत्यादिकप्रवृत्तिकरि भेद है। अर नग्न दिगंबरपणा सबके है इसमे भेद नही है। ऐंसा लिंगभेंद नहीं। जैंसे रक्त पीत श्वेत स्यामवस्त्र धारै कोइ जटा धारै कोंऊ कौपीन धार कोऊ पालकी चढै कोऊ हस्ती चढै रथ चढै सो ए सब भेद मिथ्यादृष्टीनिकैं कालके निमित्ततैं हैं।

अब लेश्या कहेहै। पुलाककै तो तींन शुभलेश्याहीं है। याकै बाह्यप्रवृत्तिका अवलंवन नहीहै। अपने मुनिपणाका साधनसैंही राचि रहेहै। बकुश अर प्रतिसेवनाकुशीलकैं छहूभीं होयहै अपि शब्दकरि अन्य आचार्य तीन शुभही कहेहै। कषाय कुशीलकैं कापोतादिक च्यार है। अन्य आचार्यनिके अभिप्रायतै तीन शुभही हैं। अर निग्रंथ स्नातकनिके एक शुक्लही है। अयोगी लेश्यारहित है।

अब उपपाद कहे। पुलाकमुनिका उत्कृष्ट उपपाद उत्कृष्ट आयुके धारक सहस्रारस्वर्गके देवनिमे अठारह सागरकी आयुका धारक उपजै। अर वकुश प्रतिसेवनाकुशीलका उत्कृष्ट उपजना बाईस सागरका आयुके धारक आरण अच्युत कल्पमें जानना। अर कषायकुशील अर ग्यारमा गुणस्थानवाले उपशांतमोह है ते निग्रंथ है। तिन निग्रंथनिका उत्कृष्ट उपपाद तेंतीस

सागरकी स्थितिका धारक सर्वार्थसिद्धिमैं होयहै। बहुरि इन पंचप्रकार पुलाकादिक समस्तनिका जधन्य उपपाद दोय सागर आयुका धारक सौधर्म ईशानस्वर्गमे है। अर स्नातककैं निर्वाणही होयहै।

अब संयमकी लब्धिके स्थान कहै ते कषायके निमित्ततैं असंख्यात लोकप्रमाण होयहै। तहां सर्वजघन्यलब्धिस्थान पुलाक अर कषायकुशीलके है। ते दोऊ युगपत् असंख्यात संयमलब्धिस्थाननिकूं प्राप्तहोय तीठा पाछैं पुलाककी व्युच्छित होयहै। बहुरि कषायकुशील अर प्रतिसेवनाकुशील अर वकुश युगपत् असंख्यातस्थान साथि प्राप्त होय पाछैं वकुशकी व्युच्छित्ति होयहै। पाछैं तहांतैं प्रतिसेवनाकुशील अर कषाय कुशील साथि गमनकरि प्रतिसेवनाकुशींलकीं व्युच्छित्ति होयहै। तहांतैंहू असंख्यातस्थान जाय कषायकुशीलकी व्युच्छित्ति होयहै। यातै ऊपरि अकषायस्थाननिकूं निर्ग्रंथप्राप्ति होयहै। सोहू असंख्यातस्थान जाय व्युच्छित्तिकूं प्राप्त होयहै। याकै ऊपरि एकस्थानको प्राप्तहोय स्नातक निर्वाणणकूं प्राप्त होयहै। ऐसे ए संयमस्थानमें हैं ते अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा स्थानस्थानप्रति अनंतगुणा है।

ऐसे इस अध्यायमे संवरतत्व निर्जरातत्वका निरूपण है। तहां संवरका कारण गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षाके भेंद परीषहका विशेषकरि भेदनिका कथन अर चारित्रके भेद तपके वारह भेंद ताके उत्तरभेद तथा ध्यानके चारभेदनिका निरूपण कीया। बहुरि गुणश्रेणीरूप निर्जराके दशस्थान अर पुलाकादिक पंचप्रकार मुनिनिका स्वरूप कही अध्याय पूर्ण कीया।

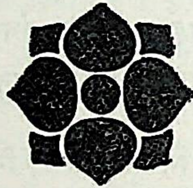
इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थप्रकाशिका– ऐसे तत्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा दशाध्यायरूप मोक्षशास्त्रविषैं नवम अध्याय समाप्तभया।

– दोहा –

॥ है जातै तत्वार्थका। अधिगम सबसुखदाय ॥
॥ मोक्षशास्त्र मंगलमय। नमो नवम अध्याय ॥ १ ॥





नवम अध्याय समाप्तः

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

अव दशम अध्यायका प्रारंभ करे है ।

– दोहा –

आरिरज विघ्न निवारिकै । निरावरणनिर्दोष ।
नमो आप्तके परमपद । होय मोक्षसुख पोष ॥ १ ॥

अव अंतविषै कह्या जो मोक्षपदार्थ ताके स्वरूप कहनेका अवसर है । तथापि मोक्षकी प्राप्ति केवलज्ञानपूर्वक है तातै पहिले केवलज्ञानकी उत्पत्तिकों कहिए हैं ।

मोहक्षयान्ज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

अर्थप्रकाशिका– मोहनीयकर्मका क्षयतैं अंतर्मुहूर्त्त क्षीणकषायनाम पाय पछै युगपत ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायका क्षय करि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय हैं । इहां पहली मोहका क्षय काहतैं होय है सो कहे है । परिणामनिके विशेषतैं सो कहे हैं । पूर्वे कही जो विध तिसकरि अर परमतपका विशेषकरि परिणामनिकी उज्जलताकी आधिक्यतातैं शुभप्रकृतिनमे रस प्रचुर हो जाय है । अर अशुभप्रकृतिनिमे रसविनष्ट हो जाय है । तहां कोऊ वेदकसम्यग्दृष्टी अविरत देशविरत प्रमत्तसंयत इन च्यार गुणस्थानमध्यको इस एक गुणस्थानमें तीन करणपरिणामनिकरि अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभकूं अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय नव नोकषायरूप परिणमन करै सोही अनंतानुबंधीका विसंयोजन है । सो अनंतानुबंधीका विसंयोजनकरि ।

वहुरि अंतर्मुहूर्त स्थिति रही फिर तीन करणकूं प्राप्त होय क्रमतें मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षयकरि क्षायिकसम्यग्दृष्टी होय अर कर्मकी हानि होनेतें महान् विशुद्धताकरि शुद्धहुवो सप्तमगुणस्थानमे अधःकरणके परिणामनिकरि पूर्ववत् अपूर्वकरण क्षपक ताने प्राप्त होय तहां नवीन शुभपरिणामनितै पापप्रकृतिनिका स्थिति अनुभागका नाश करि अर शुभप्रकृतिनमे अनुभाग वधाय अनिवृत्तिकरणकरि अनिवृत्तिबादरसांपरायनाम पाय तहां अप्रत्याख्यानावरण अर प्रत्याख्यानावरणरूप अष्टकषायनिको क्षयकरि फिरि नपुंसक वेदका नाशकरि फिर स्त्रीवेदका नाश करें। फिर नोकषाय षट्ककूं पुरुषवेदमे क्षेपकरि इनका नाश करें।

वहुरि पुरुषवेदकूं क्रोधसंज्वलनमें मायासंज्वलनकूं लोभसंज्वलनमे संक्रमणके विधानका क्रमकरि वादरप्रकृष्टिका विभागतें नाशनें प्राप्त करिके अनिवृत्तिवादरसांपरायक्षपकभावकूं पाय लोभसंज्वलनकूं सूस्मकरि सूक्ष्मसांपरायक्षपकभावका अनुभवकरि समस्त मोहनीयका मूलतें नाशकरि क्षीणकषायकूं चढिकरि उत्तारण कीया है। मोहका भार जानें ऐसा क्षीणकषायगुणस्थानका द्विचरमसमयमें निद्राप्रचलाका विनाशकरि अंतका समयविषें पंचज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण पंच अंतराय इन चोदह प्रकृतिका नाशकरि तिसके अनंतर समयविषै ज्ञानदर्शन है। स्वभाव जाका अर अचिंत्य है। विभूतिविशेष जाका अर जाके कोऊ प्रतिपक्षी नाहीं ऐसा केवलनामा आत्माका असहायपर्यायकूं प्राप्त होय केवली होय है।

कैसाक है केवलीं। कर्मके लेपरहित है। अर कमलकीज्यों निर्मल है। अर त्रिकालवर्त्तीसमस्तद्रव्यनिका गुणपर्यायनिके स्वभावकूं युगपत् साक्षात् जाननेवाला है। अर सर्वत्र अरोक है दर्शन जाकै। अर प्राप्तभया है समस्त पुरुषार्थ जाकै। जैसे वर्षाकालकूं व्यतीत होतें अपनी क्रिरणनिका समूहकरि आल्हादकारी सौम्य है दर्शन जाका ऐसा चंद्रमाकीज्यों उज्जल है। देदीप्यमान है मूर्ति जाकी ऐसा त्रैलोक्यनाथ भगवान् केवली होय। अव कहै है। जो अवरोधकरिरहित अनंतवीर्यादिसंयुक्त केवलज्ञानकूं अर इसका लाभ होनेंका कारणनिकूं तो जान्या। अव मोक्षका लक्षण तो कहां है। अर कोन हैतुतै मोक्ष होय सो कहो यातै सूत्र कहै हैं।

बन्धहेत्वभावनिर्ज्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

अर्थप्रकाशिका—बंधके कारणनिका अभाव अर निर्ज्जराकरिके समस्तकर्मका अत्यंत अभाव सो मोक्ष है। तहां मिथ्यादर्शनादि बंधके कारणनिका अभावतें तो नवीनकर्म नही बंधै। अर पूर्वें बंधें कर्मनिकी गुप्त्यादिकनिर्ज्जराके कारणनिकरि निर्ज्जरा हो जाय तदि भवमे स्थिति करनेके कारण आयुकर्म नाम गोत्र वेदनीय कर्मका अत्यंत अभावतें मोक्षही होय हैं। तहां चरमशरीरीकै नरक तिर्यंच देव इन तीन आयुका तो पहली बंधहीका

अभाव है। जातैं चरमशरीरीकै भुज्यमान एकही आयुका सत्व होय है। पराभवका आयु नहीं बांधे है ऐसा नियम है। अर असंयतादि चारि गुणस्थानमिमेतैं कोईएक गुणस्थान-विषैं दर्शनमोहनीय कर्मकी तीन प्रकृति अर चार चार अनंतानुबंधी ऐसे सात प्रकृतिनका क्षय करे।

वहुरि नवम गुणस्थानका नवभाग है। तिसके पहले भागमे निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि नरकगति तिर्यंचगति एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय ए च्यार जाति नरकगत्यानुपूर्व्यं तिर्यंगत्यानुपूर्व्यं आताप उद्योत स्थावर सूक्ष्म साधारण इन षोडशप्रकृतिनिका युगपत् नाश करे है। अर दूसरा भागमें अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण इन आठ कषायनिका क्षय करें। अर तीसरा भागमें नपुंसकवेदका चोथामें स्त्रीवेदका पांचमांमै छह हास्यादिकनिका छटामै पुरुषवेदका सातमामैं संज्वलन क्रोधका आठमामैं मानका नवमामैं मायाका। ऐसे नवमा गुणस्थानमें छत्तीस प्रकृतिनका नाश करे है। दशमगुणस्थानमें संज्वलनलोभका नाश करे है।

वहुरि क्षीणकषाय छद्मस्थ वीतरागनाम वारमा गुणस्थानमें द्विचरमसमयमें पंचज्ञानावरण पंच अतराय दर्शनावरण ४ निद्रा १ प्रचला १ ऐसे सोलह प्रकृतिनिका नाश करे है। इहां पर्यंत सोलह प्रकृतिनिका नाश करि केवलज्ञान उपजाय चोदमा अयोगीगुण-स्थानमे पच्यासी प्रकृतिनिका नाश करै है।

तहां उपांत्यसमय जो अंतका समयका पहला समय तहां द्विचरम कहिए तिस विषै दोय वेदनीयमेतैं। एक वेदनीय। १, देवगति। १, पांच शरीर। ५, पांच बंधन। ५, पांच-संघात। ५, छह संस्थान। ६, छह संहनन। ६, तींन अंगोपांग। ३, पंचवर्ण। ५, दोयगंध २, पंचरस। ५, अष्ट स्पर्श। ८, देवगत्यानुपूर्व्यं। १, अगुरुलघु। १, उपघात। १, परघात १, उच्छवास। १, प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति। २, अपर्याप्तक। १, प्रत्येकशरीर। १, स्थिर १, अस्थिर। १, शुभ। १, अशुभ। १, दुर्भग। १, सुस्वर। १, दुःस्वर। १, अनादेय १, अयशस्कीर्ति। १, नीचगोत्र। १, निर्माण। १, ऐसे बहत्तरीं प्रकृतिनिका क्षय करै है। वहुरि अयोगीका अंतसमयविषै। एक वेदनींय। १, मनुष्यगति। १, मनुष्यआयु। १, पंचेंद्रिय-जाति। १, मनुष्यगत्यानुपूर्व्यं। १, त्रस। १, बादर। १, पर्याप्तक। १, सुभग। १, आदेय १, अयशस्कीर्ति। १, तीर्थंकर। १, उच्चगोत्र। १, ए तेंरह प्रकृतिनका अत्यंत नाशकरि मोक्ष होय है।

इहां प्रश्न। जो कर्मका बंधके संतानकैं आदिका अभाव है तातैं अंतहू नही भया चाहिए। ताकूं उत्तय कहेंहै जो ऐंसा एकांत नहीहै। जातै प्रत्यक्ष देखिएहै। जैसे बीजका अर

अंकुरका अनादिसंतान हैं तोहू अग्निकरि बीज दग्ध होजाय तदि फिर अंकुरा प्रगट नही होयहै। ऐसे अंत देखिएहै। तैसे मिथ्यादर्शनादि कारणतें संसारका अनादिसंतान होतैहू ध्यानरूप अग्निकरि कर्मबीज दग्ध होजाय तदि भयरूप अंकुराके उत्पादका अभावतै मोक्ष होयहै। द्रव्यकर्म है सो पुद्गलपरमाणुनिका स्कंध है सो कर्मकषायरूप परिणया है सो कर्मरूप पर्यायका नाश होयहै। पुद्गलद्रव्यपणाकरि विनाश नही होयहैं। अब कोऊ पूछैंहै जो पुद्गलमयी द्रव्यकर्मकी प्रकृतिनका नाशतेही मोक्ष हैं कि भावकर्मकाभी नाश होयहैं यातें सूत्र कहेंहै ।

औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

अर्थप्रकाशिका– जीवकें औपशमिकादिकभाव अर पारिणामिकमे भव्यत्वभावनिके अभावतें मोक्ष है। इहां भव्यत्वका ग्रहण है सो अन्य जीवत्वादिकका अभावका निषेधकै अर्थि है। औपशमिक क्षायोपशमिक औंदयिक अर पारिणामिकमै भव्यत्व इनकाहू मुक्तजीवकै अभाव नहीहै। अव मुक्तजीवकैं जें क्षायिकभाव है तिनको कहेंहै ।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्तज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थप्रकाशिका– केवलसम्यक्त्व ज्ञान दर्शन सिद्धत्व इन भावनिविना अन्यभाव निका मुक्तजीवकें अभाव है। इहां कोऊ कहै। जो मुक्तजीवकें चारही मात्र अवशेष रह्या कह्या तो अनंतवीर्यकाहू अभाव आया। ताकूं कहेंहै। ये दोष नहीहै। अनंतवीर्यादिक है ते ज्ञान-दर्शनतै अविनाभावीं है तातें अनंतज्ञानदर्शनकी लारही अनंतवीर्य हैं। जातै अनंतवीर्यरूप सामर्थ्यकरि हीनहै अनंतज्ञीनदर्शनकी प्रवृत्तिभी नही होयहैं। अर अनतसुख है सो अनंतज्ञानमयही हैं। ज्ञानविना जडकै सुखवेदना हैंनही ।

कोऊ कहै। जो दुःखरूप समुद्रमै डूब्याहुवा समस्तजगतकूं जानते देखते सिद्धनिके करूणा उत्पन्न होय। करूणातै कर्मका आस्रव होनेका प्रसंग आवै है। सो नही हैं। भक्ति स्नेंह करूणा वांछा क्रिया ए समस्त रागभावके भेद है। वीतरागकै समस्तरागके अभावतें समस्तआस्रवका अभाव है। अर जो कारणविनाही मुक्तजीवके बंध कल्पना करिए तो मुक्ति होनेका अभाव आवैगा। मुक्त हुवा पाछै बंधका सद्भाव ठहरैगा। अर जो या कहोगे मुक्तजीवकैहू स्थानवान्पणो है। तातें पतन होयगा सो नहीं है। जातें आस्रवका अभावतें पतन नही। जिस नावमें जल प्रवेश करैगा सो डूबैगी। मुक्तजीवकै आस्रव नही तातै पतनहूं नहीं है। वहुरि जाकै कर्मका बंधकरि भारीपणो हैं ताका पतन होयहै। जैंसे भारी जो तालका फल ताकै वृक्षनै वंध्री बीटके संयोगका अभावतै पतन देखिए हैं। अर गौरवरहित

आकाशका पतन नही देखिए है। अर मुक्तजीवकै गौरवता है नाही तातै पतनको अभाव है। अर जिसकें मतमै स्थानवानपणाही पतनका कारण ताकै समस्तपदार्थनिका पतन ठहैरगा।

वहुरि कोऊ कहै सिद्धक्षेत्र तो अल्प हैं तिसमैं अनंतानंतसिद्ध है तातैं परस्पर उपरोध होयगा सो नहीहै। अवगाहनशक्तिका योंगतैं जैसे मूर्तिमान्‌पदार्थनिमैंहू अनेकमणिदीपकादिकनिका प्रकाश अल्पक्षेत्रनिनैंहू परस्पर नहीरूकेहै। तो अवगाहनशक्तियुक्त अमूर्तिकमुक्तजीव कैसे परस्पर अवरोध करैं। वहुरि मुक्तजीवनिकै अमूर्त्तिकपणातैंही जन्ममरणक्लेंशादिक वाधा नहीहै यातै वांधारहितपणातैंहीं अनंतसुखी तिष्ठैंहै। वहुरि आकाशकूं तो परमाणुकरि अवगाह्यक्षेत्रकूं आदि लेय एकएक प्रदेशकी वृद्धिकरि कलनारूप आकाशका परिमाणकूं कल्पना कीया परंतु मुक्तजीवका ज्ञानकूं उपमा देनेकूं कोऊ पदार्थ नही अर संसारिकसुख है सोहू तंद्रियादिकनिकै आधीन अर वेंदनापूर्वक अर अंतसहित हैं। अर मुक्तजीवनिका सुख स्वाधीन सास्वता वेदनारहित है तातै मुक्तजीव उपमारहित है। वहुरि कोऊ कहै मुक्तजीवनिकें मूर्त्ति नही तातै आकारको अभाव होयगो सो नहीहै। चरमदेहका जैसा आकार है तैसा आत्मप्रदेशनिका आकार है।

फिर कोऊ कहै। जीवकी रचना आकार तो शरीरकें अनुकूल है। शरीरका बंधनमें था तदि शरीरके आकार था। अव शरीरका अभाव भया तदि स्वाभाविक लोकाकाशकें प्रदेशनिप्रमाण विस्तारकूं प्राप्त होना योग्य है। ताकूं उत्तर कहै है। जो ऐसे नही है। आत्माके प्रदेशनिका संकोच विस्तारका कारण नामकर्मं था नामकर्म जैसा शरीरमे प्रवेश करावे था तैसा संकोचविस्तार था नामकर्मका अभावतै दीपक वत्‌ संहार संकोच विसर्प्पंण विस्तार दोऊका अभाव जानना। अव कोऊ कहैं।

जिस देशमें कर्मका अभाव होय तिसही स्थानमें मुक्तजीवका अवस्थान प्राप्त हुवा चाहिए। जातें मुक्तजीवके बंधका अभाव भया अर भारीपणाका अभाव हैं। तातें अधोगति संभवे नही हे। अर योगनिका अभावतै तिर्यंगगति नही संभवे है। तातै सहाही अवस्थानयुक्त है। ताकूं उत्तर कहे है। जैसे अनेकदिशामें गमनके निमित्तका अभाव है। तैसे उर्ध्वंगमनके निमित्तका अभाव नहीं है।

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्‌ ॥ ५ ॥

अर्थप्रकाशिका—समस्तकर्मका अभाव भए पीछै उर्द्धगमन करेसे सो लोकका अंतपर्यंत जाय है। अब ऊर्ध्वंगमनका कारण कहे विना ऊर्ध्वंगमन कैसे निश्चयकीया जाय तातें ऊर्ध्वंगमनका हेतु कहे है।

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्‌बन्धच्छेदत्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थप्रकाशिका—पूर्वप्रयोगतें असंगतें बंधकें छेदतैं तथागतिपरिणामतें इन चार हेतुनितै ऊर्ध्वंगमन होय हैं। अत्र इन चार हेतुनिका दृष्टांतके अर्थि सूत्र कहे है।

आविद्धकुलालचक्रवव्द्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थप्रकाशिका—इहां पूर्वसूत्रमें कहे हेतु तिनका यथासंख्य दृष्टांत जानना। सोही कहे है। जैसें कुंभकारके प्रयोगतै भया जो हस्तका अर दंडका अर चाकका संयोगतातै चाकका फिरना होय है। फिर जो कुंभकार फिरावता रहिगया तोहू पूर्वके प्रयोगतै जहां-तांई फिरनेका संस्कार नही मिटै तहांतांई फिर बोही करे। तैसेही संसारमें तिष्ठता जीवहू मुक्तिकी प्राप्तिके अर्थि वारंवार चितवन अभ्यास करे था सो मुक्ति भए पीछै अभ्यास नहीं रह्या तोहू पूर्वले संस्कारतें मुक्तिगमन होय है।

बहुरि जैसे तूंवा मृत्तिकाके लेपतै भाऱ्याहुवा जलमें डूबी रह्या था मृत्तिकाका लेप दूरि होतेही तूंवा जलकै ऊपरिही आजाय। तैसे कर्मके भारकरि दब्या परवश भया आत्मा तिस कर्मके संबंधतै संसारमें नियमतै पडा है। फिर कर्मका लेप दूरि होय तव ऊर्ध्वंही गमन करे है।

बहुरि जैसे एरंडका डाडामें तिष्ठता एरंडबीज सो डोडाकूं सूकिकरि फूटतैही ऊंचा उछलै है। तैसे मनुष्यादिभवमे राखनेवाला गतिजात्यादि नामकर्म तथा आयु नाम गोत्रके बंधन टूटतैही आत्मा ऊर्ध्वं गमन करे है। बहुरि जैसे तिर्यग्गमन करावनेवाला पवनका अभाव होय तदि दीपककी शिखा ऊर्ध्वंही गमन करे है। तैसे नानागतिमे गमन करावनेका कारण कर्मका अभाव होतें आत्माका ऊर्ध्वंगमनही होय है। जैसे अग्निका ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। तैसे जीवकाहू ऊर्ध्वंगमनस्वभाव है। जैसे अग्निशिखा पवनकी प्रेरी तिर्यग्गमन करै अर पवनका अभाव भए ऊर्ध्वंगमन करे है। तैसे कर्मका प्रेरचा जीव चतुर्गतिमें परिभ्रमण करे है। कर्म अभाव भए ऊर्ध्वंगमन करै है। इहां कोऊ पूछें मुक्ति भए पछै आत्माका ऊर्ध्वगमनस्वभावही है। तो लोकके अंतमेही कैसे ठहऱ्या फिर ऊंचाही कोन हेतुतें नहीं जाय। ताका उत्तर कहे हैं।

धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

अर्थप्रकाशिका—मुक्त आत्मा है सो लोकका अंतमे जाय तिष्ठें है परे अलोकमे नही जाय है जातैं आगें गति उपकार करनेवाला धर्मास्तिकायका अभाव है। अर धर्मास्तिकायका अभाव समस्तलोकमे भी मानिए तो लोक अलोकका विभागका अभाव हो जाय।

आगे पूछे है। मुक्त भए जीव तिनके गति जाति आदिक तो कारण नाही तातैं इन विषैं भेदका व्यवहार नाही है कि कछु भेदव्यवहार कीजिए। ताका उत्तर कथंचित् भेद भी करिए ताका सूत्र कहे है।

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।। ९ ।।

अर्थप्रकाशिका–क्षेत्र काल गति लिंग तीर्थ चारित्र प्रत्येंकबुद्ध बोधितबुद्ध ज्ञान अवगाहना अंतर संख्या अल्पवहुत्प इनि वारह अनुयोगनिकरि सिद्धजीवनिकूं भेंदरूप साधने। प्रत्युत्पन्ननय अर भूतप्रज्ञापननय इन दोऊ नयनिकी विवक्षाकरि क्षेत्रादिक वारह अनुयोगनितैं सिद्धनिमे भेद साधनेयोग्य है। तहां क्षेत्रकरि तो कोंन क्षेत्रमे सिद्ध होय है। प्रत्युत्पन्ननय अपेक्षाकरि सिद्धक्षेत्रविषैं अथवा अपने आत्मप्रदेशनिविषैं सिद्ध होय हैं। अथवा आकाशके प्रदेशनिविषैं सिद्ध होय है। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि जन्म अपेक्षातें पनरह कर्मभूमिका जन्म्या जीवहीकै सिद्धगति होय है। तथा पंद्रह कर्मभुमिमे जन्म्या मनुष्यकूं कोऊ देव आदि अन्यक्षेत्रमे लेजाय तो अढाई द्वीपप्रमाण समस्तमनुष्यक्षेत्रतें सिद्ध होय हैं। इहां प्रत्युत्पन्नग्राहीनय वर्त्तमानपदार्थकूं ग्रहण करे है सो ऐसा नय ऋजूसूत्र है। तथा शब्द समभिरूढ एवंभूत भी याहीं नयका परिवार है।

वहुरि कालकरि कोंनसे कालमैं सिद्ध होय है। तहां प्रत्युत्पन्नग्राहीनयकी अपेक्षाकरि एकसमयमे सिद्ध होय है। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि सामान्यकरि तो उत्सर्पिणी असवर्पिणी दोऊ कालमैं सिद्ध होय है। अर विशेपकरि अवसर्पिणी का सुखमदुःखमा जो तीजा काल ताका अंतभागविषै अर दुखमासूखमा जो चोथा काल समस्तके विषैं उपज्या अर दुखमसुखमका उपज्या पंचमकालके विषैभी मोक्ष होय है। अर दुखमकालमैं अर दुःखमदुःखमकालमैं उपज्या सिद्धगति नही पावै है। अर विदेहक्षेत्रका उपज्या कोइ देवादिक हरिले जाय सो समस्त उत्सर्प्पिणीकें विषैं सिद्ध होयहै।

बहुरि गतिविषैं प्रत्युत्पन्नग्राहीनयकीं अपेक्षा सिद्धगतिविषैंही सिद्ध होयहै। अर भूतविषयनयकी अपेक्षाकरि मनुष्यगतिहीमें सिद्ध होयहै।

बहुरि लिंगकै विषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षाकरि वेदरहितही सिद्ध होयहै। भूतग्राहीनयकी अपेक्षाकरि भाववेद तीनोंहीकरि क्षपकश्रेणी चढी मोक्ष पावेहै। द्रव्यकरि पुरूषवेदहीतै सिद्ध होयहै। अथवा। निर्ग्रंथलिंगकरिही सिद्धगति होयहै। भूतविषयनयकी अपेक्षा पूर्वं जाकै सग्रंथीपणा था तहीकै मोक्ष होयहै।

बहुरि तीर्थंकरि कोऊ तो तीर्थंकर होय मोक्ष पावेहै। अर केई सामान्यकेवली होय मोक्ष पावेहै। तिसमैंहू कोऊ तो तीर्थंकर विद्यमान होय तिस समय मोक्ष पावेहै। केई तीर्थंकर-निकूं नहीं विद्यमान होतैं मोक्ष पावैहै।

बहुरि चारित्रविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो चारित्रनिका अभावहीकरी सिद्ध होयहै तहां चारित्रका नामही नही। अर भूतग्राहीनयकी अपेक्षामैं अनंतर अपेक्षा तो नथाख्यात-चारित्रकरिही मोक्ष पावैहै।

अर अंतरकी अपेक्षा सामायिक छेदोपस्थापना सूक्ष्मसांपराय यथाख्यातचारित्रकरिही मोक्ष पावेहै। तथा कोऊकै परिहारविशुद्धि होय तब पांचूंहीतैं मोक्ष पावेहै। बहुरि प्रत्येकबुद्ध तो अपनी शक्तिकरि स्वयमेवही ज्ञान पावेहै। अर बोधित कहिए परके उपदेशतं पावै। तहां केई तो प्रत्येकबुद्ध मोक्ष पावैहै। केई बोधितबुद्ध मोक्ष पावेहै। बहुरि ज्ञानकरि प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो केवलज्ञानकरिही सिद्ध होयहै। अर भूतग्राहीनयकी अपेक्षाकरि केई तो मति श्रुत इन दोय ज्ञानकरिहीं केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावेहै। केई मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इन चारों ज्ञानकरि केवल एपजाम मोक्ष पावेहै। केई मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानकरि केवल उपजाय मोक्ष पावैहै।

बहुरि अवगाहन उत्कृष्ट पांचसे पचीस धनुष्यकी हैं। अर जधन्य साढा तीन हस्त-प्रमाण कछु घाटि है मध्यके नानाभेद हैं। इनमे एकएक अवगाहनातैं मोक्ष पावैं है। प्रत्युत्पन्न-नयकी अपेक्षा देशोनकहीं है। बहुरि सिद्ध होते जीव अंतरकरिभी सिद्ध होय अर अंतररहितभी सिद्ध होय है। तहां जो सिद्ध होय है तिनकै अंतर जघन्य तो दो समय है। अर उत्कृष्ट अष्ट-समयपर्यंत निरंतर सिद्ध होय हैं। बहुरि अंतर जघन्य तो एकसमय है। अर उत्कृष्ट छह महिना है। बहुरि संख्या जघन्यकरि तो एकसमयमें एकही सिद्धगति पावै है। अर उत्कृष्ट एकसमयमें एकसों आठ जीव मोक्ष पावै है।

बहुरि क्षेत्र आदिकएकादशकरि अभिन्ननिके परस्पर भेदतैं संख्याकी विशेषतातै अल्प-बहुत्व कहिएहै। तहां प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा सिद्धक्षेत्रविषैंही सिद्ध होयहै। याकैं अल्पबहुत्व नहीहै। बहुरि भूतग्राहीनयकी अपेक्षा क्षेत्रसिद्ध दोय प्रकार है। जन्मतै अर संहरणतै। तिनमे संहरणाद्धि अल्प है। इनतै संख्यातगुणें जन्मसिध्द है। बहुरि क्षेत्रनिका विभागतै ऊर्ध्वलोकतैं भए सिध्द अल्प है। तिनतै असंख्यातगुण अधोलोकतै भए सिध्द है। तिनतै असंख्यात-गुणातिर्यंग्लोकतै भए सिध्द है। कोऊ कहै ऊर्ध्वलोकतै अर अधोलोकतै भए सिध्द कैसे है। ताका उत्तर। जो आगमकी आज्ञाविना अपनी रूचिसै तो कहि कोंन संसारमे डुबै। विशेष जाणेविना कह्याजाय नही सामान्य सो आगममे लिख्या सो प्रमाण है। सोही लिखदींया हैं।

वहुरि सर्वतै थोरे समुद्रतै भए सिध्द है तिनतै संख्यातगुणा द्वीपतै सिध्द भएहै। ऐसे तो सामान्य कह्या ।

इनका विशेष । सबेतेंथोरे लवणसमुद्रतै भए समुद्रतै सिध्द है। तिनतै संख्यातगुणा कालोदधिसमुद्रतै भए सिध्द हैं। तिनतै संख्यातगुणा जंबूद्वीपतै भए । तिनतें संख्यातगुणा धीतकी द्वीपतें भए सिध्द है तिनतै असंख्यातगुणा पुष्करार्द्धते भए सिद्ध है। ऐंसे क्षेत्रका विभागतै अल्पवहुत्व जानना। वहुरि कालका विभागतें उत्सर्प्पिणीकालतै सिद्ध भए तिनतें अवसर्पिणीकालमे भए सिद्ध विशेषकरि अधिक है। वहुरि उत्सर्प्पिणी अवसर्पिणीकाल विना जे सिद्ध भए ते तिनते संख्यातगुणा है जाते विदेहक्षेत्रनिमे उत्सर्प्पिणी अवसर्पिणी दोऊ काल नही प्रवर्त्तैहै । वहुरि प्रत्युत्पन्नयनकी अपेक्षाकरि एकसमयमे सिद्ध होयहै यातें अल्पवहुत्व नाही है। गतिविषै प्रत्युत्पन्ननयकीं अपेक्षा तो अल्पबहुत्व नाही । वहुरि एकगतिका अंतर अपेक्षाकरि तर्यंचगतिके आये मनुष्य सिद्ध भए ते तो समस्ततै अल्प है। तिनतें संख्यातगुणें मनुष्यगतितें मिनुष्य होय सिद्ध होयहै। तिनतें संख्यातगुणा नरकगतिते आए मनुष्य होय सिद्ध होयहै तिनते संख्यातगुणा देवगतितें आए मनुष्य होय सिद्ध होयहै ।

वहुरि वेदका अनुयोगकरि प्रत्युत्पन्ननयकरि तो वेदरहित सिद्ध होयहै तहां अल्पवहुत्व नाही। भूतनयअपेक्षासर्वतै अल्प तो नपुंसकलिंगतै श्रेणी चढी सिध्द होयहै। तिनतै असंख्यात-गुणा स्त्रीवेदमे श्रेणी चडी सिध्द होयहै। तिनतै संख्यातगुणा पुरूष वेदतै श्रेणी चढि सिध्द भए है। वहुरि तीर्थंकर होय सिध्दभए अल्प है। तिनतै संख्तःतगुणा सामान्यकेवली होय सिध्द भए है। वहुरि चारित्रकरि प्रत्युत्पन्ननयअपेक्षा चारित्रविनाही सिध्द भए तहां अल्प-वहुत्व नाही। अर भूतनयअपेक्षा अनंतरचारित्र यथाख्यातहीते सिध्द होयहै तहांभी अल्पवहुत्व नाहीहैं। वहुरि अंतरसहित चारित्रअपेक्षा पंचचारित्रते सिध्द भए अल्प है। गिनतें संख्यात-गुणा चारित्रते भएहैं ।

वहुरि प्रत्येकबुद्धनितें संख्यातगुणें बोधितबुद्ध भए सिद्ध है। वहुरि ज्ञानकरि प्रत्यु-त्पन्नयकी अपेक्षा तो केवलज्ञानहीतें सिद्ध होय है। तिनमें अल्पवहुत्व नाही। भूतनयकी अपेक्षाकरि दोय ज्ञानतें सिद्ध भए अल्प है। तातें संख्यातगुणा च्यार ज्ञानतें भए सिद्ध है। तिनतें असंख्यातगुणा तीन ज्ञानतें भए सिद्ध है। वहुरि अवगाहनाकरि जघन्य अव-गाहनातें सिद्ध भए थोरे है। तिनने संख्यातगुण उत्कृष्ट अवगाहनातें भए सिद्ध है। तिनतै संख्यातगुणे मध्यम अवगाहनातै भए सिद्ध है।

वहुरि संख्याविषें एकसमयमे उत्कृष्टपणें एकसो आठ सिद्ध होय है तें तो अस्प है। तिनतें अनंतगुणा पचासतांईकी संख्यातें भए सिद्ध है। तिनतैं असंख्यातगुणा गुणचासतें

लगाय पचीसतांईकी संख्यातें एकसमयमे भए सिद्ध हैं। तिनतें संख्यातगुणे चोईसते लगाय एकपर्यंत संख्यातै एक सकसमयमे भए सिद्ध है।

ऐसे निसर्ग अर अधिगमविषें कोऊ एकतें उपज्या तत्वार्थनिका श्रद्धान है स्वरूप जाका अर शंकादि अतिचाररहित है। अर प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य है। प्रगट लक्षण जाका ऐसा निर्मलसम्यग्दर्शन अर सम्यग्दर्शनकीं उपलब्धितेंही विशुध्द हुवा सम्यग्ज्ञानकूं प्राप्त होय करिके अर नामादिक च्यार निक्षेप अर प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण अर निर्देशादिक अर सत्संख्यादिक जे बडे उपाय तिनकरि जीवनिके पारिणामिक औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिक भावनिके स्वकप है। ताहि जाणि करिकै।

वहुरि चेतनके भोगकें साधने जे विषय तिनका उत्पत्ति विनाश स्वभावके ज्ञान होनेतें विषयनिमे विरक्त होय अर वांछारहित होय तीनगुप्ति पंच समितिरूप हुवो दशलक्षण धर्मके आचरणतैं अर धर्मके फलका दर्शनतै निर्वाणकी प्राप्तिमे यत्नकें अर्थि वृद्धितै प्राप्त हुवा है। श्रध्दान अर संवेग जाके अर भावनाकरि प्रगट कीया है। स्वरूप जानें ऐसा अर अनुप्रेक्षाकरि स्थिर कीया है। अभिप्राय जाने ऐसा अर संवररूप है। आत्मा जाका ऐसा हुवा संता आस्रवरहितपणातै दूरि भया है। नवीनकर्मका संचय जाके ऐसा वहुरि परिग्रहके जीतनेतै अर बाह्य अभ्यंतर तपके आचरणतें अर अनुभव करनेतें सम्यग्दर्शनके धारक विरतापिरतकूं आदि लेय सयोगीजिन पर्यंतनिके परिणमनरूप अध्यवसाय कहिए परिणाम तिनकी विशुध्दताके स्थानांतरके असंख्यातका गुणकार कीया आधिक्यता करिकै पूर्वंले संचय कीए कर्मनिकूं निर्जरा करता संता ऐसा।

वहुरि सामायिकचारित्रकूं आदि लेय सूक्ष्मसांपरायपर्यंत कषायनिकें विशुध्दिस्थाननिका उत्तरोत्तर उत्कृष्टपणाका अवलंबनतै अर पुलाकादिक निर्ग्रंथनिका संयमके अनुपालनके विशुध्दिताके स्थानविशेषनिकी उत्तरोत्तर उत्कृष्टताकी प्राप्तिकरि रच्यो अर अत्यंत नष्ट हुवो है। आर्त्त रौद्र ध्यान जामें अर धर्मध्यानके प्रभावलें प्राप्तभयो है। समाधिबल जाकै। अर शुक्लध्यानके विकल्प जे पृथक्त्ववितर्कविचार अर एकत्वावितर्कविचार इन दोऊ ध्याननिके मध्य किसि एक ध्यानमें वर्त्तंतो ऐसो। अर नानाप्रकारकी पूर्वोदित शुध्दिनिके विशेषकरि युक्त ऐसो। अर तिन शुध्दिनिमे नही आसक्त है। चित्त जाका ऐसा कोऊ महान् साधु है।

सो पूर्वें कह्या क्रमकरि मोहादिक च्यार घातिया कर्मनिका नाशकरि सर्वज्ञपणाकी ज्ञानलक्ष्मीकूं अनुभवकरि अरहंतपणा पाय पछे शेष अघातिकर्मनिका नाशतें भवबंधरहित हुवा। जैसे उपादानकारण ईंधनका अभाव जाके होयगा ऐसा अग्निकीज्यों पूर्वें ग्रहणकीया

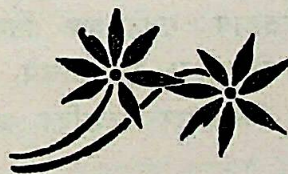
भव ताका वियोगतैं अर कारणके अभावतें नवीन शरीरका नहीं प्रगट होनेतें संसारका दुःखको उल्लंघनतें अंतरहित ऐकांतिक निरुपम निरतिशय ऐसा निर्वाणका सुखकूं प्राप्त होय है। इस प्रकार तत्वार्थभावनाको यो फल हैं । सो तत्वार्थसूत्रके ज्ञाता ऐंसे वक्ता श्रोता भव्यजीविनिकूं प्राप्त होहू ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।।

ऐसे तत्वार्थका है अधिगम जातें ऐसा जो दश अध्यायरूप मोक्षशास्त्र तिस विषैं दशम अध्याय पूर्ण भया ।

दोहा–

है जातैं तत्वार्थका । अधिगम सबसुखदाय ।
मोक्षशास्त्रमंगलमय । नमो दशम अध्याय ।। १० ।।



ऐसे अर्थप्रकाशिकानाम देशभाषामय वचनीका श्री राजवार्तिक नाम ग्रंथका अल्पलेश लेय अपना उपगोगकी विशुध्दिताके अर्थि तथा संस्कृतके बोधरहित अल्पज्ञके तत्वार्थसूत्रनिके अर्थं समझनेके अर्थि अपनी बुध्दिकी अनुसार लिखी है। परंतु राजवार्तिकका अर्थ तथा कहूंकहूं गोमटसार त्रिलोकसारका अर्थकूं लेय लिख्या है। अपनी बुध्दिकी कल्पनातें इस ग्रंथमें एक अक्षरहू नहीं लिख्या है। जाके पापका भय होयगा अर जिनेंद्रकी आज्ञाका धारणेंवाला होयगा सो जिनेंद्रके आगमकी आज्ञाविना एक अक्षर स्मरणगोचर नहीं करेगा लिखना तो वर्णैही कैसे। अर जे सूत्रकी आज्ञा छांडि अपने मनकीं युक्तितैंही अपनें अभिमान पुष्ट करनेकूं योग्य अयोग्य कल्पनाकरि लिखैं है। मिथ्यादृष्टी सूत्रद्रोही अनंतसंसारपरिभ्रमण करेंगे।

इस तत्वार्थसूत्रके दश अध्याय ऊपरि समंतभद्रस्वामी चोन्यासी हजार श्लोकनिमें गंधहस्तिनाम महाभाष्य रची है। अर च्यार हजार श्लोकनिमें सर्वार्थंसिद्धिनाम टीका श्रीपूज्यपादस्वामी रची है। अर सोलह हजार श्लोकनिकमें राजवार्तिक नाम भाष्य श्रीअकलंकदेव रची हैं। अर वीस हजार श्लोकनिमे श्लोकवार्तिक नाम भाष्य श्रीविद्यानंदस्वामी रची हैं। अर इस दशाध्यायसूत्रका आदिका एक श्लोककी व्याख्याही आठ हजार अष्ट सहस्री अर तीन हजार आप्तपरीक्षा ए दोऊ ग्रंथ तथा अन्य भी बडेबडे ग्रंथ विद्यानंदस्वामी रची। आप्तप्रकाश सत्यार्थस्वरूपकी दृढता कराई है।

एकांत अभिप्रायकूं निकाशि दीया है। जिनके हृदयमें ए ग्रंथ प्रवेश कीए तिनके मिथ्याश्रध्दान जन्मांतरहूमे प्रगट नहीं होय है। इसकी महिमा वचनद्वार कहनेकूं कोंन समर्थ है। इस कलिकालमे ए ग्रंथही साक्षात् केवलीतुल्य है। श्रीकुंदकुदस्वामीकरि विरचित समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय नाटिकत्रय तिनउपरि श्रीअमृतचंद्रसूरि टीका रची है। सो ऐसे ग्रंथ ऐसी टीकाकी रचना इस कालमे ओर है। नहीं श्रुतकेवलीतुल्य ज्यांकी व्याख्या है। अर अष्टपाहुड नियमसार इत्यादिक अनेकग्रंथनिकी रचनाकरि धर्मका स्तंभ कीया है।

वहुरि श्रीनेमिचंद्र गोमटसार लब्धिसार क्षपणासार त्रिलोकसार द्रव्यसंग्रहादिक अनेक रचना जिनसूत्र नितेंरची है। जिन उपरि अभयनंदीसिध्दांती तथा केशवमुनि टीक रची तथा त्रिलोकसारउपरि माधवचंद्र त्रैविद्यदेव रचना रची है। श्रीवटकेरस्वामी मूलाचार रच्या। श्रीबीरनंदी आचारसार रच्या श्रीपूज्यपादस्वामी जैनेंद्रव्याकरण रच्या श्रीजिनसेन गुणभद्रादि महापुराण रच्या शिवाचार्य भगवती आराधना रची। तथा श्रीप्रभाचंद्रमुनि अकलंकदेवकृत लघुत्रयी वृहत्रयीचूलिका इन सप्तग्रंथनिका सारभूत लेय कुमुदचंद्रोदय नाम महाप्रभावीक अनेकांतमय ग्रंथ रच्या। तथा परीक्षामुख कमलप्रमेयमार्तंड

प्रमेयचंद्रिका प्रमाणपरीक्षा प्रमाणनिर्णय प्रमाणमीमांसा पत्रपरीक्षादि अनेक ग्रंथ जीवनिका उपकारके निमित्त अनेक आचार्य रचना करि इस अनादिके धर्मकी इस कलिकालमें रक्षा करी है ।

जातैं इस कालमे बुद्धि वीर्य आयु अत्यंत घटता जायहै । तातैं पूर्वाचार्यनिकरि प्ररूपे महान् ग्रंथ तिनमैं प्रवेश अति दुर्द्धंव जानि इन ग्रंथनिमैं महान् ग्रंथामें प्रवेश होना जानि वडा उपकार कीयाहै । अव इन ग्रंथनिके समझनेवालेहू विरले रहिगये । तातैं धर्मकी प्रवृत्तिकै निमित्त भाषावचनीका रचना वनीहैं । अब स्याद्वादविद्याके पारगामी वीतरागी परमहितोपदेशक दयारूप अमृतरसकरि भीजें ऐंसे निर्ग्रंथगुरूनिकूं अर उनके प्ररूपे ग्रंथनिकूं हमारा मन वचन कायकरि वारंवार सदाकाल आगामीकालमे वर्त्तमानमे बहुत विनययुक्त नमस्कार होहु इनके चरणारविंदके प्रसादतैं हमारै हृदयविषैं निरंतर पंच परमगुरूनिकी भक्ति होहु । हमारे समाधिमरण होहु । अपमृत्युको विनाश होहु । जिनभक्तिविना पर्यायका एकक्षणहू मतिजाहु ।

दोह–नाम जु अर्थप्रकाशिका । देशवचनिकारूप । पढो षढावो ज्ञान वढि । पावो सुख निजरूप । १ । संवत् उगणीसै अधिक । द्वादश श्रावणमास । बदीं नवमी शसिवार है । आरंभदिन उज्जास । २ । संवतू उगणीसें अधिक । चोदह आदितवार । सुदि दसमी वैशाखकी । पूरणकीयो विचार । ३ । उमास्वामीं मुनि सूत्र धर बंदों शिवदातार । पूज्यपादगुरूकों नमो । शद्वब्रह्मआधार । ४ । अनेकांतआकाशमे । दिपैं जु सूरसमान । समंतभद्रस्वामीचरन । नमत नसत अज्ञान । ५ । श्रींअकलंक कलंकहर । विद्यानंदि महान् । बंदो मनबचकायतै । द्यो मम सम्यग्ज्ञान । ६ । पंचमकालकरालमे । मोहतिमिर नही थाह । गुरूदीपगविनु को गहै । अनेकांत पथराह । ७ । चौपई–बंदो उमास्वामिमुनिराज । तत्वारथगर्भित वचकाज । सूत्र मोक्षमारगकें रचे । द्वादशांग आगमतै जचे । ८ । भाष्यरचिता परि अकलंक राजवार्त्तिक निशंक । मिथ्यातमखंडनकूं सूर । अनेकांतमय गुणकरि पूर । ९ ।ताको महिमाको कहि सकै । कोटी जीभ बरनत वक थकैं । जाकूं पढत जु सम्यक्ज्ञान । प्राप्त होय पावै सिवथान । १० । ताको किंचित अर्थ जु लेय । अर्थप्रकाशिक नाम धरेय । भाषा देशबचनीका करीं । भूलि सोधि बुध करि यो खरी । ११ । मोक्षभार्ग प्रापक परिपूर । कर्मकठिणनग भेदन शूर । सकलतत्वके जाननहार । तद्गुणहेतु नमो हितकार । १२ । पूरवमैं गंगातटधाम । अतिसुंदर आरा तिस नाम । तामै जिनचैतालय लसै । अग्रवाल जैनी वहु वसै । १३ । बहुज्ञाता तिनमै जु रहाय । नाम तास परमेष्ठीसहाय । जैनग्रंथमे रूचि वहु करे । मिथ्याधरम न चितमै धरै । १४ ।

दोहा–सो तत्वारथसूत्रकी । रची बचनिकासार । नाम जु अर्थप्रकाशिका । गिणती पंच हजार । १५ । सो भेजी जयपूरविषै । नाम सदासुख जास । सो पूरण ग्यारह सहस । करि भेंजी तिनपास । १६ ।

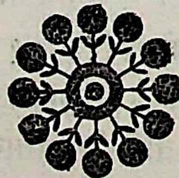
छप्पै–डेंडराजके वंसामाहि इक किंचित ज्ञाता । दुलीचंदका पुत्र कासलीवाल विख्याता नाम सदासुख कहे आत्मसुखका बहु इच्छक । सो सुख बानिप्रसाद विषयतै भए निरिच्छक । इम जानि बानि सेवन करो जगउपकार जु करनकी । इस भव परभवमे होहू मुझ सरन जु सम्यक्ज्ञानकी । १ ।

सवैया । ३१ । अगरवालकुल श्रावक कीरतिचंद जु आरेमांहि सुवास । परमेष्ठी-सहाय तिनके सुत पितानिकट करि शास्त्रअभ्यास । कियो ग्रंथनिजपरहित कारण लखि वहुरुचि जगमोहनदास । तत्वारथअधिगम सुसदासुखरास चहु दिश अर्थ प्रकाश । १८ ।

दोहा–

बरतो भव्यनि उरविषैं । स्यादवाद उज्जास ॥
यातैं निजपरतत्व लखि । होय जु अर्थप्रकाश ॥ १९ ॥

इति श्रीतत्वार्थसूत्रकी अर्थप्रकाशिका नाम वचनीका समाप्ता ॥ १ ॥



शुद्धि पत्र

(पान नं. ३८३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका १३	१९	सत्य	सप्त
,,	२१	कपन	कंपत्र
१४	१२	नामसेन	नागसेन
,,	२१	भगवानको	भगवानके
१५	४	वदो	वंदो
३	१	एकात	एकांत
४	१३	माग	मार्ग
६	३	सम्यग्यदर्शन	सम्यग्दर्शन
७	२७	सप	सप्त
९	९	सभ्दाव	सद्भाव
,,	२९	निष्ठै	तिष्ठै
,,	३०	अनुभार	अनुभाग
१०	३	कर्मात्रिमे	कर्मनिर्मे
,,	१०	विंपमे	विंवमे
,,	१२	शुक	शुभ
,,	१६	पुग्द्ल	पुगद्ल
,,	१८	उपनात्रेकू	उपजावनेकू
,,	२३	उताहिये	उतारिये
,,	२९	आशध्व	आराध्य
११	१५	तोआगमद्रय	नोआगमद्रव्य
,,	२१	आयुक्त	आयुका
,,	२७	व्यक्त	त्यक्त
,,	२८	पूजा	दूजा
१२	९	तो आगम	नोआगम
,,	२६	को	भी
,,	,,	विशल्प	विकल्प
१३	१९	परिणमत्रका	परिणमनका
,,	२०	स्वतुष्टय	स्वचतुष्टय
,,	२३	चतुष्य	चतुष्टय
,,	२५	संकट	संकर
,,	२७	स्वचतुष्य	स्वचतुष्टय
१४	४	चतुष्य	चतुष्ठय
१९	५	अकने	अनेक
,,	१३	वाचा	वाच्य
२२	२८	दो	गो
२३	१०	अन्यय	अन्वय
२४	१३	क्षमोपशम	क्षयोपशम
२६	११	ईहाजान	ईहाज्ञान
,,	१९	धनुक्र	अनुक्त
२९	१२	कोठी	कोटी
३१	१३	पुग्दल	पुगद्ल
३२	६०	,,	,,
,,	१४	परिणामे	परिणमे
,,	२३	आम रण	आमरण
३५	२०	अनुनामी	अनुगामी
३७	१५	प्रक	प्रकट
३९	१०	सर्वपर्यायेषु	असर्वपर्यायेषु
४०	१४	विपर्यश्च	विपर्ययश्च
४७	११	नयनां	नयानां
५१	२०	केवलाहार	कवलाहार
५२	३०	नदी	नही
५३	९५	लिग्ड	लिग्ङ
५४	६	पद्य	पद्म
६०	२०	निर्वत्त्युपकरणे	निवृत्युपकरणे
६१	२०	नामककार्म	नामकर्म
,,	२७	अन्यदोय	अन्य
६२	२८	लट संखादीको	दो इंद्रिय
		पिपीलिकादीको	तीन इंद्रिय
६३	७	मनरहित	असंज्ञीमनरहित
,,	१७	पुग्दलका	कर्णपुग्दलका
,,	१९	समयप्रवृद्ध	समयप्रबद्ध
६४	१९	जाने	जाते

शुद्धि पत्र

(पान नं. ३८४)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६५	१७	उत्पाद	उपपाद	२२७	१	स्ततत्त्व	स्वतत्त्व
६७	१३	जो	चऊ	२३२	१८	छाया	क्षय
„	२५	श्पं	परं	२३४	१४	सूक्ष्मदृष्टि	सूक्ष्मकृष्टि
७०	१८	औपपादि	औपपादिकं	२४१	२५	णिगिदृमण्णा	णिगिहमण्णाणा
„	„	वैाक्रयिकम्कं	वैक्रियिकं	२४६	२४	उपदाद	उपपाद
७१	२३	प्रयत्त	प्रमत्र	२५५	२४	अनघन्य	जघन्य
७९	१४	त्रिशस	त्रिंश	२५६	२६	च्याय	चार
१००	१	म्लेंछाच्च	म्लेंछाश्च	२६०	२४	तिखना	दीखना
१२७	४	सतार	शतार	२६५	१	सारद्य	सावद्य
„	„	न्नवसु	न्नंवसु	„	११	परहृरिण	परिहृरण
१४३	११	काकाश	आकाश	„	१३	षंव	वर्ष
१४४	२२	जिवाश्च	जीवाश्च	२६८	१०	आपमे	आत्पमे
१४५	१७	आकाशादक	आकाशादेक	२७०	१	समुद्रघात	समुद्घात
१४९	१८	वारदोहि	वादरेहिं	„	११	„	„
१५२	११	अहगाह	अवगाह	„	१४	„	„
१६४	२४	अदनाअदना	अपना।अपना	२७२	७	प१त्पिमे	अपर्यात्पमे
१६८	२४	बंदो	बंधो	„	१७	वेदना	वेद
१७१	८	अन्यत्वमे	अनन्यत्वमे	„	२३	मतज्ञान	मतिज्ञानश्रुतज्ञान
„	१३	अनन्यत्व	अन्यत्वमे	„	३१	दर्षन	दर्शन
१७९	१३	गोदु	होदु	२७३	२	पह्य	पद्म
१८३	१३	प्रदुष्ट	दुज्प्रमृष्ट	२७९	१९	मप्य	मध्य
१८६	१३	वाद्रो	वादो	२८०	३	भुक्राजार	भुजाकार
१९१	१०	मार्गं	मर्गि	२८१	२१	सत्यःनगृयद्धश्च	स्त्यानगृद्धयश्च
„	११	अनतीहार	अनतीचार	„	२६	अचक्षु	चक्षु
१९७	२३	तीर्तंकर	तीर्थंकर	२८२	२७	प्रत्यंख्यान	प्रत्याख्यान प्रत्याख्यान
२१६	१२	योषिता	जोषिता	२८७	११	असृपाटिका	असंप्राप्तासृपाटिका
„	१३	„	„	२९१	११	मत्तरासस्प	मत्तरायस्य
२२५	१६	क्षीणसोह	क्षीणमोह	„	„	कोठयः	कोटचः
२२६	२६	दडय	उदय	२९६	१३	प्रदेशेष्ट	प्रदेशेष्व

१३९ ३ सनत्कुमार माहेंन्द्रन्योः सानत्कुमार माहेन्द्रयोः

शुद्धि पत्र

(पान नं.३८४)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०४	७	मिथ्यात्स	मिथ्यात्व
३११	३	प्रम्वलित	प्रवलता
३१४	२५	प्रम्वलित	प्रज्वलित
३१९	२०	रक	रंक
३२१	२४	डक ससयमे	एक समयमे
,,	२८	अगृहित	गृहीत अगृहीत
३२४	२०	समत्र	समय
३२५	२१	योग्यस्थान	योगस्थान
३२६	१५	वभ	भव
,,	२९	मै आद्यतवन्	शरीरआद्यंतवत्
३३१	८	परषहा:	परीषहा:
३३३	६	होगी	भोगी
३३४	८	सतिति	समिति
३३९	११	आज्ञचण	आचरण
,,	१२	तव्रत्रिका	व्रतनिका
३४४	२	सवम	नवम
३४५	१	विंशति	विंशते:

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४९	५	प्राध्यानात्	प्राध्यानात्
,,	९	आलोचन	आलोचना
३५१	२४	गरए	गण
३५३	२५	उत्तक	उत्तम
३५६		विष	विषय
,,	,,	संरक्षभ्यो	संरक्षणैभ्यो
३५७	१६	नहीं	ही
३५८	९	पूर्वो	पूर्वे
,,	१०	,,	,,
,,	१३	अविचारं	अवीचारं
,,	२०	विचारो	वीचारो
,,	२१	,,	,,
३६१	८	ध्यानही	ध्याननही
,,	२२	निज्जरा	निर्जरा
३६३	२१	वकुशील	बकुश कुशील
३६४	१५	निरथं	निग्रंथ



